श्रीरघुनाथतर्कवागीशप्रणीतः

आगमतत्त्वविलासः

ĀGAMATATTVA-VILĀSAḤ

भाषाभाष्यसंवलितः

भाषाभाष्यकारः

एस. एन. खण्डेलवाल

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
505

श्रीरघुनाथतर्कवागीशप्रणीतः

आगमतत्त्वविलासः

भाषाभाष्यसंवलितः

[द्वितीयो भागः]

भाषाभाष्यकारः
श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

THE
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHMALA
505

ĀGAMATATTVA-VILĀSAḤ

of

Raghunātha Tarka-Vāgīśa

[VOL : 2]

Hindi Commentary by

Sri S. N. Khandelwal

Chaukhamba Surbharati Prakashan
Varanasi

ISBN : 978-93-80326-66-5 (Set)
978-93-80326-87-0 (Vol. II)

Publishers :

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. : 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

Also can be had from :

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : 32996391
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

विषयानुक्रमः

॥ श्रीः ॥

श्रीरघुनाथतर्कवागीशप्रणीतः

आगमतत्त्वविलासः

भाषाभाष्यसंवलितः

द्वितीयः परिच्छेदः

अथाहःकृत्यानि

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय त्यक्तस्वापस्त्यक्तरात्रिवासा बद्धपद्मासनः शिरस्था-धोमुखशुक्लवर्णसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपूर्णचन्द्रमण्डलस्थहंसपीठे निजगुरुं शुक्लवर्णं शुक्लालङ्कारभूषितं ज्ञानानन्दमुदितमानसं द्विभुजं वराभयकरं शान्तं स्वप्रकाशरूपं श्वेतमाल्यानुलेपनं स्ववामोरुस्थया रक्त-वर्णया गुरुपत्नीरूपया वामकरधृतरक्तोत्पलया शक्त्या दक्षिणहस्ते गृहीत-कलेवरं द्विनयनं परमशिवस्वरूपं विचिन्त्य दिव्याभिषेकेन गुरुणा सम्प्रदा-यानुगतकृतनामपूर्वकं अभिषेकाद्यभावे प्रकृतनामपूर्वकं श्रीअमुकानन्द-नाथगुरुं पूजयामीति स्मृत्वा वक्ष्यमाणरीत्या शिवशक्तिबुद्ध्या तौ मानसो-पचारैरभ्यर्च्य गुरुमन्त्रं दशधा जप्त्वा वक्ष्यमाणमन्त्राभ्यां प्रणमेत् ॥१॥

अब दिनकृत्य कहा जाता है। ब्राह्ममुहूर्त्त में निद्रा-त्याग करके शय्या से उठकर पद्मासन में बैठकर मस्तकस्थित अधोमुख श्वेतवर्ण सहस्रदल पद्म की कर्णिका के अन्दर पूर्ण चन्द्रमण्डल-स्थित हंसपीठ पर अपने गुरु के शुक्ल वर्ण श्वेत अलंकार से भूषित, ज्ञानानन्द से हर्षित चित्त, द्विभुज वराभय हस्त, शान्त स्वप्रकाश रूप, श्वेत माला तथा अनुलेपन से युक्त, जिनके वाम जंघे पर अवस्थिता रक्तवर्णा बाँयें हाथ में लाल कमल धारण की हुई गुरुपत्निरूपा शक्ति दक्षिण हाथ से गुरुकलेवर को लिप-टाया हुआ है, द्विनयनधारी परम शिवस्वरूप का चिन्तन करे। गुरु का दिव्य अभिषेक (मन ही मन) करे। उसमें सम्प्रदाय के अनुसार उनका नाम लेना चाहिये। अभिषेक

के अभाव में गुरु के वास्तविक नाम का उच्चारण करके 'श्रीअमुकानन्दनाथगुरुं पूजयामि' कहकर वक्ष्यमाण रीति से शिव-शक्तिबुद्धि से शिव-शक्तिरूपा गुरु तथा गुरुपत्नी का मानसिक उपचार द्वारा पूजन करना चाहिये। तदनन्तर गुरुमन्त्र को दस बार जपकर वक्ष्यमाण मन्त्र द्वारा उन्हें प्रणाम करे।।१।।

यथा—

सहस्रदलपङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभम्।
वराभयकराम्बुजं विमलगन्धपुष्पाम्बरम्।।२।।
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणम्।
स्मरेच्छिरसि हंसगं तदभिधानपूर्वं गुरुम्।।३।।

हंसगं = सर्वोत्तीर्णपीठस्थम्।

कहते हैं कि सहस्रदल कमल में शीतल रश्मिसमूह की प्रभा के समान प्रभायुक्त करकमलद्वय में वर मुद्रा तथा अभय मुद्राधारी, श्वेत विमल, गन्ध, पुष्प, वस्त्रधारी प्रसन्न मुख तथा प्रसन्न नयन, समस्त देवतारूपी हंसगत गुरु को नामोच्चार-पूर्वक मस्तक में स्मरण करे।।२-३।।

विशेष—हंसग = समस्त पीठ से (पद्म से) ऊपर स्थित।

तथा श्यामारहस्यधृतम्—

सहस्रारे महापद्मे प्रातः शिरसि निर्मले।
पूर्णेन्दुमण्डलयुते शुद्धस्फटिकसन्निभे।।४।।
गन्धानुलेपितं शान्तं वरदाभयपाणिकम्।
मन्दस्मितं निजगुरुं कारुण्येनाऽवलोकितम्।।५।।
त्रियया दक्षहस्तेन धृतचारुकलेवरम्।
वामे धृतोत्पलायाश्च सुरक्तायाः सुशोभनम्।।६।। इति।

श्यामाहस्य में कहा गया है कि अपने मस्तकस्थित पूर्णेन्दु मण्डलयुक्त शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल सहस्रार पद्म में गन्ध से लिप्त, शान्त, वराभय मुद्राधारी, मन्द हास्ययुक्त, करुणा दृष्टि से (जगत् का) अवलोकन करने वाले, जिनके शरीर को उनकी शक्ति ने अपनी दाहिनी बाहु से जकड़ रखा है, बाँयें हाथ की ओर कमलधारिणी सुरक्ता स्त्री (शक्ति) द्वारा सुशोभित अपने गुरु का प्रातःकाल स्मरण करे।।४-६।।

ज्ञानार्णवे—

प्रातरुत्थाय देवेशि! ब्रह्मरन्ध्रे निजं गुरुम्।
स्मृत्वा देवीमयो भूत्वा तत्प्रभापटलामले।।७।। इत्यादि।

ज्ञानार्णव में कहा है कि हे देवेशि! प्रात:काल उठकर ब्रह्मरन्ध्र में अपने गुरु का चिन्तन करे, जो प्रभासमूह से घिरे हुये ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हैं।।७।।

यत् तु रक्तमाल्याम्बरधरं सुरक्तं पद्मविष्टरमिति शारदाटीकाकारसम्मतं शाक्तादीनां रक्तत्वेन गुरुध्यानं श्वेतत्वेन ध्यानन्तु वैष्णवानामिति। तन्न युक्तं; सर्वत्र शुक्लत्वेन ध्यानस्योक्तत्वात्। शक्तिग्रन्थे कुलार्णवेऽपि—

ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे कर्पूरधवलो गुरुरित्यादि।
अतएव रक्तत्वं साधकवचनं प्रमाणशून्यमेव ॥८॥

जो यह कहते हैं कि रक्त माला तथा वस्त्रधारी सुरक्त पद्म पर बैठे, इत्यादि वचन-मूलक टीकाकार-सम्मत शाक्त साधकों को रक्तवर्ण गुरु का ध्यान तथा वैष्णवगण को श्वेत वर्णरूप गुरु का ध्यान कर्त्तव्य है, वह उचित नहीं है। कारण, सर्वत्र शुक्ल वर्णरूप गुरु का ध्यान ही कहा गया है। शक्तिग्रन्थ कुलार्णव में भी कहा गया है कि ब्रह्मरन्ध्र के सहस्रदल कमल में गुरु कर्पूर के समान धवल हैं; अतएव रक्तत्व-साधक वचन प्रमाणशून्य है (अर्थात् धवल वचन का प्रमाण सर्वत्र मिलता है)।।८।।

ब्राह्ममुहूर्त्तमाह लक्षनिर्णये—

द्वौ दण्डौ रात्रिशेषं तु ब्राह्मं मुहूर्त्तकं विदुः ॥९॥

लक्षनिर्णय ग्रन्थ में ब्राह्ममुहूर्त्त के बारे में कहते हैं कि रात्रि-समाप्त होने के पूर्व के दो दण्ड को ब्राह्ममुहूर्त कहते हैं।।९।।

रात्रिशेषं रात्रिशेषार्द्धप्रहरं प्राप्य इति शेषः। तत्राद्यदण्डद्वयं ब्राह्मो मुहूर्त्तः। शेषदण्डद्वयन्तु रौद्रो मुहूर्त्तः॥१०॥

रात्रिशेष—रात्रिशेष अर्धप्रहरक हो। उसमें दण्डद्वय को ब्राह्ममुहूर्त्त कहते हैं। शेष दण्डद्वय—रौद्रमुहूर्त्त।।१०।।

गुरुमानसपूजाप्रपञ्चस्तु विशुद्धेश्वरतन्त्रे यथा।
एवं ध्यात्वा पुनश्चैव पञ्चभूतमयैर्यजेत्।
गन्धतत्त्वं पार्थिवन्तु कनिष्ठाङ्गुलियोगतः ॥११॥
शब्दमयं तथा पुष्पं प्रथमाङ्गुलियोगतः।
वायुरूपं महाधूपं तर्जनीभ्यां नियोजयेत् ॥१२॥
तेजोरूपं महादीपं मध्यमाद्वययोगतः।
अमृतं भोजनं तद्वदमृताङ्गुलियोगतः ॥१३॥
नमस्कारेणाञ्जलिना वाग्भवात्ताम्बूलं स्मृतम्।
स्व-स्वबीजान्ते सर्वत्र नमस्कारेण योजयेत् ॥१४॥

अथ बीजान्ते—भूतबीजान्ते।

जैसे गुरु की मानसपूजा का विस्तार से वर्णन विश्वेश्वर तन्त्र में मिलता है इस प्रकार ध्यान करके पुनः पञ्चभूतमय पाँच उपचार द्वारा गुरु की पूजा करे। दोनों कनिष्ठा उंगली के योग से पार्थिव गन्ध तत्त्व (चन्दनादि), दोनों ज्येष्ठा उंगली के योग से शब्दमय पुष्प, तर्जनीद्वय के योग से (दोनों हाथ की तर्जनी मिलाकर) वायुरूप महाधूप प्रदान करना चाहिये। दोनों मध्यमा उँगलियों के योग से तेजोरूप महादीप प्रदर्शित करना चाहिये। दोनों अनामिका के योग से अमृतरूप नैवेद्य का समर्पण करना चाहिये। वाग्भव बीज के साथ नमस्कार करना चाहिये। अंजलि से ताम्बूलद्वय का समर्पण करना चाहिये। उन-उन बीज के अन्त में समस्त उपचार को 'नमस्कार' शब्द के साथ योजित करके कथन करना चाहिये। उन-उन पृथिवी-प्रभृति भूतबीज के अन्त में—यह 'स्व-स्व बीजान्ते' का अर्थ है।।११-१४।।

तथा च लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः इति कनिष्ठाभ्याम्। हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः इति अंगुष्ठाभ्याम्। यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नमः इति तर्जनीभ्याम्। रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः इति मध्यमाभ्याम्। वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः इत्य-नामिकाभ्याम्। ऐं ताम्बूलं समर्पयामि नमः इत्यञ्जलिना नियोजयेत्। एवञ्च गुरुपूजायां भूतबीजादौ त्रितारीयोगं न युक्तः, प्रमाणाभ्यां असार्व-त्रिकत्वाच्च ॥१५॥

जैसे 'लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः' मन्त्र से कनिष्ठा (दोनों) उँगली द्वारा पृथिव्यात्मक गन्ध, ऐसे ही ऊपर लिखे 'हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः' मन्त्र से दोनों अंगुष्ठ द्वारा पुष्प, दोनों तर्जनी द्वारा 'यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नमः' मन्त्र से वायु-स्वरूप धूप, दोनों मध्यमा द्वारा 'रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः' द्वारा दीप, दोनों अनामिका द्वारा 'वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः' से नैवेद्य तथा दोनों अंजलि द्वारा 'ऐं ताम्बूलं समर्पयामि नमः' से ताम्बूल का समर्पण करे। इस रूप से कहे गये गुरुपूजा के भूतबीज के प्रारम्भ में त्रितारीयोग समीचीन नहीं है; क्योंकि उसका प्रमाण नहीं है। अतः वह सार्वत्रिक (सर्वत्र उपयोगयोग्य) नहीं है।।१५।।

श्रीविद्यायां गुरुमन्त्रस्तु गान्धर्वे—

बालाद्यं भुवनेशानी रमा चैव सुरेश्वरि।
तारत्रयमिदं प्रोक्तं गुरुमन्त्रे प्रतिष्ठितम् ॥१६॥

गन्धर्वतन्त्र में श्रीविद्या का गुरुमन्त्र इस प्रकार कहा गया है—हे सुरेश्वरि! बालाद्य (ऐं), रमा (श्रीं) तथा भुवनेशानी (ह्रीं)—इन्हें तारकत्रय कहते हैं, जो गुरुमन्त्र में प्रतिष्ठित हैं।।१६।।

ततः स्वगुरुनामान्ते आनन्दनाथमालिखेत्।
रक्तशक्तिपदान्ते च अम्बापदमथालिखेत् ॥१७॥
श्रीपादुकां समुच्चार्य पूजयामीति सञ्जपेत्।
स्तोत्रैः स्तुत्वा नमस्कुर्यान्मन्त्रेणाऽनेन सर्वदा ॥१८॥

बालाद्यं—वाग्भवबीजम्।

तदनन्तर अपने गुरु के नाम के आगे 'आनन्दनाथ' लिखे। तदनन्तर 'रक्तशक्ति' पद के अन्त में 'अम्बा' पद लिखे। तत्पश्चात् 'श्रीपादुकां' का उच्चारण करके 'पूजयामि' इस मन्त्र का जप करे। स्तोत्र द्वारा स्तुति करके वक्ष्यमाण इस मन्त्र के द्वारा सर्वदा नमस्कार करना चाहिये।।१७-१८।।

बालाद्य = वाग्भव बीज (ऐं)।

तथा च ऐं ह्रीं श्रीं अमुकानन्दनाथरक्तशक्त्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामीति गुरुमन्त्रः श्रीविद्यायाम्। अन्यत्र तु गुरुमन्त्रजपो नास्ति, प्रमाणाभावात्। यत्तु श्यामारहस्ये श्रीविद्यावदखिलं लिखितम्। तच्चिन्त्यम्, अन्यैरनुक्तत्वात् ॥१९॥

उपरोक्त श्रीविद्या का गुरुमन्त्र है—'ऐं ह्रीं श्रीं अमुका-(अमुक की जगह गुरु का नाम)नन्दनाथरक्तशक्त्यम्बाश्रीगुरुपादुकां पूजयामि'। अन्यत्र गुरुमन्त्र का जप नहीं कहा गया है; क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं है। श्रीविद्या के सदृश ही श्यामारहस्य में जो लिखा गया है, वह विचार का विषय है; क्योंकि अन्य ने इसे नहीं कहा है।।१९।।

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२०॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२१॥

इति मन्त्राभ्यां नमस्कुर्यात्।

उपर्युक्त दोनों मन्त्रों से गुरु को नमस्कार करना चाहिये। अर्थ है—यह अखण्ड-मण्डलाकार चराचर विश्व जिन इष्टदेवता द्वारा व्याप्त है, उन इष्टदेवता का पद जिसने दिखलाया है, उन गुरु को नमस्कार है। श्रीगुरु द्वारा अज्ञानरूप तिमिर द्वारा (नेत्ररोग द्वारा) अन्धे व्यक्ति की (मोहग्रस्त की) आँखों को ज्ञानाञ्जन-शलाका द्वारा दृष्टि प्रदान की गयी है, उन गुरु को नमस्कार है।।२१-२२।।

चराचरं येन इष्टदैवतेन व्याप्तं तस्य पदं येन दर्शितं तस्मै। येन गुरुणा

शिवरूपेण चराचरं व्याप्तं, तस्य इष्टदैवतस्य पदं दर्शितञ्च तस्मै इति वा प्रथमार्थः ॥२२॥

जिस इष्टदेवता से चराचर व्याप्त है, उनका पद जिसने कृपापूर्वक दर्शित किया, जिस गुरु ने शिवरूप से चराचर में व्याप्त इष्टदेवता का दर्शन कराया, उन्हें प्रणाम है।।२२।।

नक्षत्रविद्यायान्तु गुरुं ध्यात्वा ऐं इति वाग्भवबीजं यथाशक्ति जप्त्वा ऐं इत्युच्चार्याऽखण्डमण्डलेत्यादिभ्यां प्रणमेदिति साम्प्रदायिकाः। रहस्य-वृत्तावप्येवम् ॥२३॥

नक्षत्रविद्या में गुरु का ध्यान करके 'ऐं' वागभव बीज का जप यथाशक्ति करके 'ऐं' का उच्चारण करके ऊपर लिखे श्लोक २० तथा २१ को पढ़ते हुये नमस्कार करने का नियम है। यह साम्प्रदायिकगण कहते हैं। रहस्यवृत्ति में भी यही कहा गया है।।२३।।

ततस्तदाज्ञां गृहीत्वा दक्षिणावर्त्तयोगेन सार्द्धत्रिवलयावृत्त्या मूलाधारपद्मस्थ-त्रिकोणान्तर्गताधोमुखस्वयम्भुलिङ्गवेष्टिनीं षट्पद्मानुषक्तायाः मेरुदण्डा-न्तर्गतायाः सरन्ध्रायाः सुषुम्नायाः मुखरन्ध्रे संसक्तमुखाग्रां त्रिकोणस्थाग्नि-शिखोपरि स्थितां प्रसुप्तभुजगाकारां सूर्यकोटिप्रकाशां चन्द्रकोटिशीतलां तड़ित्कोटिप्रभां नीवारशुकवत् तन्वीं कुलकुण्डलिनीं मूलविद्यामयीं ध्यात्वा मनोदण्डेनावहत्य हुंकारेण त्रिकोणमण्डलस्थाग्निना सचेतनां विधाय हंसः इति प्राणमन्त्रेणोत्थाप्य शनैः शनैः श्वासमुत्तोलयन् सुषुम्ना-विवरवर्त्मना षट्चक्रभेदेन परमशिवे सङ्गमय्य स्त्रीरूपधारिण्या तया सह पुंरूपधारिणः शम्भोः सम्भोगक्रियासमभिव्याहारेण बिन्दुश्रुतसुधा-धारया लोलीभूतां चैतन्यमयीं तां भुजगाकारेण तेनैव पथा शनैः शनैः श्वासं त्यजन् पुनर्मूलाधारमानयेत्, तत्प्रभापटलव्याप्तं स्वशरीरं चिन्त-येच्च ॥२४॥

तदनन्तर गुरु की आज्ञा लेकर दक्षिणावर्त्त क्रम से साढ़े तीन फेरा लेकर मूलाधार पद्म में स्थिता त्रिकोण के अन्तर्गत अधोमुख स्वयम्भू लिंग को घेर कर षट्चक्रानुवृत्ता मेरुदण्ड के अन्तर्गत रन्ध्रयुक्त सुषुम्ना के मुखरन्ध्र में संसक्तकारिणी त्रिकोणस्थ अग्निशिखा के ऊपर स्थिता प्रसुप्त भुजगाकृति, कोटि सूर्य के समान प्रकाशयुता, कोटि चन्द्र के समान शीतला, करोड़ों विद्युत् के समान प्रभायुता, नीवार के तन्तु के समान पतली, मूलविद्यारूपा कुण्डलिनी का ध्यान करके मनोदण्ड द्वारा अवहत

करके, हुं मन्त्र से मूलाधारस्थ त्रिकोण में स्थित अग्नि से सचेतन करके, हंसः प्राणमन्त्र से उस कुण्डलिनी को जगाकर धीरे-धीरे साँस लेते-लेते सुषुम्णा के मार्ग से षट्चक्र-भेदन द्वारा परमशिव में योजित करके स्त्रीरूपधरा कुलकुण्डलिनी के साथ पुरुषरूपी शम्भु की संभोग क्रिया द्वारा बिन्दु से क्षरित सुधाधारा में लोटती हुयी चैतन्यमयी उस कुलकुण्डलिनी को धीरे-धीरे श्वास लेते हुये उसी मार्ग से पुनः मूलाधार में वापस लाये और उसके प्रकाशपटल द्वारा व्याप्त अपने शरीर का चिन्तन करे।।२४।।

विद्युत्कुण्डलिनीरूपां मण्डलत्रयभेदिनीम्।
मूलविद्यामिति विशेष्यं पूरणीयम्॥२५॥

मण्डलत्रयभेदिनी विद्युत् कुण्डलिनीरूपा का चिन्तन करना चाहिये।।२५।।

अन्यत्रापि—

ध्यायेत् कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम्।
तामिष्टदेवतारूपां सार्द्धत्रिवलयान्विताम्।
कोटिसौदामिनीभासां स्वयम्भुलिङ्गवेष्टिनीम्॥२६॥
तामुत्थाय महादेवीं प्राणमन्त्रेण साधकः।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यां विभावयेत्।
उद्यद्दिनकरद्योतां यावत् श्वासं दृढ़ासनः॥२७॥
अशेषाशुभशान्त्यर्थं समाहितमनाः शिवम्।
तत् प्रभापटलव्याप्तं शरीरमपि चिन्तयेत्॥२८॥

अन्यत्र भी कहा गया है कि मूलाधार-निवासिनी इस सूक्ष्मा कुण्डलिनी को इष्टदेवतारूप सार्द्ध त्रिवलययुक्ता कोटि विद्युत् के समान प्रकाशयुता तथा स्वयंभूलिंग वेष्टनकारी रूप से ध्यान करे। साधक दृढ़ता से आसन पर बैठकर श्वास काल में उस उदीयमान सूर्य के समान प्रदीप्ता महादेवी मूलविद्या (कुण्डलिनी) को प्राणमन्त्र द्वारा जगाकर मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त ध्यान करे। साधक समाहित चित्त होकर अशेष अशुभ-नाश के लिये शिव का चिन्तन करे तथा उसकी प्रभा से व्याप्त अपने शरीर का चिन्तन करे।।२६-२८।।

मत्स्यसूक्ते—

उत्थाय चोत्तरे यामे कुण्डलीं तड़िताकृतिम्।
ध्यात्वा सिद्धीश्वरो भूत्वा मुक्तिभागी भवेन्नरः॥२९॥

मत्स्यसूक्त के अनुसार रात्रि के उत्तर प्रहर में शय्या से उठकर तड़ित् के समान आकृतियुता कुण्डलिनी का ध्यान करके मनुष्य सिद्धियों का अधिपति तथा मुक्ति का भागी होता है।।२९।।

नीलतन्त्रे—

उत्थाय चोत्तरे यामे चिन्तयेदुग्रतारिणीम्।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं बिसतन्तुतनीयसीम् ॥३०॥
मूलमन्त्रमयीं साक्षादमृतानन्दरूपिणीम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम् ॥३१॥
तड़ित्कोटिसमप्रख्यां कामानलशिखोपरि।
तत्प्रभापटलव्याप्तं पाटलीकृतदेहवान् ॥३२॥

नीलतन्त्र में कहते हैं कि रात्रि के उत्तर याम में शय्या से उठकर मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त कमलतन्तु के समान विसतन्तुतनीयसी (तन्तु के समान पतली) मूल-मन्त्रमयी साक्षात् अमृतस्वरूपा आनन्दरूपा कोटिसूर्य के समान प्रकाशमान, कोटिचन्द्र के समान शीतल, कोटि विद्युत् के समान प्रभायुता, कालानल अग्निशिखा से भी उज्ज्वला उग्रतारिणी का चिन्तन करे। इससे कुण्डलिनी के प्रभापटल के समान व्याप्त पाटलीकृत साधक की देह हो जाती है।।३०-३२।।

श्रुतिः—

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम्।
अन्तःपदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥३३॥

श्रुति में भी कहा गया है कि यह प्रथम गमन (ब्रह्मरन्ध्र की ओर जाने में) प्रकाशमाना होती है और वापस आने में (मूलाधार की ओर लौटने में) यह अमृत-समाना हो जाती है। मैं इस आनन्दरूपा अबला (कुण्डलिनी) की शरण लेता हूँ।।३३।।

कालिकाश्रुतौ—

मूलाधारे स्मरेद् दिव्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम्।
एवं कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३४॥ इति।

कालिका श्रुति में कहते हैं कि मूलाधार में तेजःसमूह के निधिरूप दिव्य त्रिकोण का स्मरण करो; इस रूप से कुण्डलिनी का ध्यान करने से समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है।।३४।।

ततो मूलमन्त्रं यथाशक्ति जप्त्वा देवतां नमस्कृत्य—

ॐ समुद्रवलये देवि! पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इति पृथिवीं प्रसाद्य तल्पादुत्तिष्ठेत्। प्रातर्गुरुचिन्तनाद्यकरणे पूजारम्भे

कालेऽपि तत्कार्यम्, अधिकारसम्पादकत्वात्, प्रत्यवायप्रयोजकाकरण-निवारकत्वाच्च ॥३५॥

तदनन्तर यथासाध्य मूल मन्त्र जपानन्तर देवता को नमस्कार करके ऊपर लिखे 'ॐ.समुद्रमेखले' इत्यादि का पाठ करके पृथ्वी को प्रसन्न करके शय्या से उठे। उस श्लोक का अर्थ है—हे देवि! विष्णुपत्नी (पृथ्वी)! हे समुद्रवलये (जिनके चतुर्दिक वलयाकार समुद्र है)! जिनके पर्वत ही स्तनमण्डल हैं, आपको नमस्कार! अपने देह से हमारे पाद-स्पर्श के अपराध को क्षमा करो।

यदि शय्या से उठते ही गुरुचिन्तन न किया हो तब पूजा के प्रारम्भ में करना चाहिये। पूजादि के अधिकार-प्राप्त करने के लिये तथा पापों के कारण नित्य कर्म की त्रुटियों का इससे निवारण हो जाता है।।३५।।

यथा गौतमीये—

इदानीं पूर्वकृत्यञ्च प्रसङ्गात् कथयामि ते।
यत्कृत्वाऽधिकारितां याति मन्त्रयन्त्रार्चनादिषु।
येन विना न सिद्धिः स्यान्नरकं प्रतिपद्यते ॥३६॥

जैसा कि गौतमीय तन्त्र में कहते हैं कि पूर्वकृत्य (गुरुनमस्कारादि, पृथ्वी-नमस्कारादि) से मानव को मन्त्रविहित अर्चनादि का अधिकार मिलता है। इनके विना सिद्धि मिलना तो दूर की बात है, उलटे नरक की प्राप्ति होती है। इसीलिये प्रसंगक्रम से इन पूर्वकृत्यों का वर्णन किया गया है।।३६।।

यामले—

प्रातःकृत्यमकृत्वा तु यो देवीं भक्तितो यजेत्।
निष्फला तस्य पूजा स्यात् शौचहीना यथा क्रिया ॥३७॥

यामल में कहते हैं कि जो व्यक्ति प्रात:कृत्य किये विना यदि भक्तिसहित देवी का पूजन भी करता है, तो उसकी वह पूजा वैसे ही निष्फल होती है, जैसे शौचहीन (शुद्धिहीन) क्रिया होती है।।३७।।

प्रातःस्नानमावश्यकमपि प्रातरकरणे मध्याह्नादौ न कर्त्तव्यमेव, कालबाधात्। सन्ध्यादिकन्तु कालबाधेऽपि प्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम्, वाचनिकत्वात् अकरणे प्रत्यवायाच्च ॥३८॥

जो आवश्यक प्रात:स्नान प्रात: नहीं करता, वह मध्याह्न कालीन स्नान करने से (शुद्ध हो) अपना कर्त्तव्य नहीं कर सकता; क्योंकि इससे काल का बाध हुआ है;

क्योंकि मध्याह्न काल प्रातःकाल नहीं हो सकता। यदि प्रातःस्नान न किया हो तब उसके निमित्त किये गये मध्याह्न स्नान को कदापि प्रातःस्नान नहीं कह सकते। प्रातःसन्ध्यादि न करने पर (काल से अतीत अर्थात् समय बीत जाने पर करना) काल का बाध होने पर प्रायश्चित्त करना चाहिये। इसीलिये शास्त्रवाक्य में प्रायश्चित्त का विधान है, जिसे न करने पर पाप होता है।।३८।।

यथा—

सन्ध्यायाः पतितायान्तु गायत्रीं दशधा जपेत्।
गायत्रीं दशधा जप्त्वा पुनः सन्ध्यां समाचरेत् ॥३९॥ इति।

यदि सन्ध्या समय से न किया हो, तब १० बार गायत्री जप कर तदनन्तर सन्ध्या करनी चाहिये।।३९।।

एतत् सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यदधिष्ठितम्।
यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥४०॥ इति च।

जिससे ब्राह्मणत्व अधिष्ठित रहता है, वह है सन्ध्या। जो ब्राह्मण इसका आदर नहीं करता, वह ब्राह्मण कहलाने योग्य नहीं है।।४०।।

न चागामिक्रियापर्यन्तकालस्य पूर्वक्रियायोग्यतयाऽन्यदापि प्रातःस्नानं युक्तमिति वाच्यम्। आगामिक्रियामुख्यकालस्यैव पूर्वक्रियायोग्यतया प्रातःसन्ध्यामुख्यकाले प्रातःस्नानस्येष्टत्वात्। न च नवान्नादाविव उत्तर-क्रियाकरणपर्यन्तकालस्य पूर्वक्रियायोग्यत्वमस्त्विति वाच्यम्, पर्युदन्त-हरिशयनाद्यन्यकालमात्रस्यैव नवान्नादौ विहितत्वात्, अत्र तथाविधाना-भावाच्च। अहःस्नानं त्वहर्विहितत्वादपराह्णेऽपि। एवं दिवास्नानाकरणे रात्रौ स्नानमपि न, मध्याह्नसायंकालबाधात्, परन्तु अहरहः स्नायादिति विधिप्राप्तं प्रात्यहिकस्नानमेव ॥४१॥

'आगामी क्रिया-पर्यन्त समय के बीच में पूर्व क्रिया का अधिकार है, यह कहकर अन्य काल में अर्थात् प्रातःकाल के पश्चात् भी प्रातःस्नान को युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यहाँ आगामी क्रिया अर्थात् प्रातःसन्ध्या के मुख्य काल में ही प्रातःस्नान करना अभिलषित नहीं है। नवान्न (नयी फसल) प्रभृति स्थल में भी यह नहीं कहा जा सकता कि आगामी क्रिया के समय-पर्यन्त छूटी हुई पूर्व क्रिया की जा सकती है; क्योंकि निषिद्ध हरिशयनादि तिथि के भिन्न अन्य काल में जैसे नवान्नादि विहित है, वैसा विधान यहाँ नहीं है। किन्तु अहःस्नान अहर्विहित होने से अपराह्न में होता है। इस प्रकार दिन में स्नान न करने पर रात्रि में स्नान नहीं होगा; क्योंकि मध्याह्न काल

भी सायंकाल द्वारा कालबाधित है; परन्तु 'अहरहः स्नायात्' से विधिसम्मत प्रातःस्नान ही होगा।।४१।।

अत्र अहःपदस्य सावनदिनपरत्वात् सावनदिनेऽपि सूर्यास्तात् परः सार्द्ध-प्रहरपर्यन्तकाल एवाह्निकक्रियायोग्यः अर्धप्रहरस्य दिनधर्मातिदेशात् तदुत्तरप्रहरस्य क्रियायोग्यभाक्त्वात् ॥४२॥

यहाँ 'अहः' पद सावन दिनकेपरक कहने से सावन दिन भी सूर्यास्त के पश्चात् आधा प्रहर-पर्यन्त आह्निक क्रियायोग्य है, क्योंकि अर्ध प्रहर दिन के लिये धर्म का अतिदेश है। उसके उत्तरवर्ती प्रहर को वाचनिक अर्थात् शास्त्रवाक्यों द्वारा क्रिया-योग्यताभागी माना गया है, अतः वह क्रियायोग्य है।।४२।।

यथा—

प्रदोषे घटिकायुग्मं प्रभाते घटिकाद्वयम्।
दिनवत् सर्वकर्माणि कारयेन्न विचारयेत् ॥४३॥ इति।

प्रदोष की दो घड़ी तथा प्रभात की दो घड़ी दिनवत् होता है। उसमें समस्त कार्य करना चाहिये, कोई विचार नहीं करना चाहिये।।४३।।

दिवोदितानि कर्माणि प्रमाद्यन्न कृतानि चेत्।
शर्वर्याः प्रथमे यामे तानि कुर्याद्यथाक्रमम् ॥४४॥ इति।

अत्र दिवेत्यस्य उभयत्रान्वयः। तेन दिनकर्त्तव्यत्वेनोक्तानि कर्माणि दिवासूर्यास्तानन्तरवर्त्तिदण्डचतुष्टयपर्यन्तकालमध्ये न कृतानि चेदित्यर्थः। शर्वरी त्रियामैव ॥४५॥

यह भी कहा गया है कि यदि प्रमाद के कारण दिन का कृत्य दिन के समय अनुष्ठित न हो तब रात्रि के प्रथम प्रहर में उसे यथाक्रमेण करना चाहिये। यहाँ दिवा पद का दोनों स्थान पर अन्वय (सम्बन्ध) है; इसलिये श्लोक के प्रथमार्ध का यह अर्थ है कि दिन के कर्त्तव्य के रूप में उक्त कर्मादि यदि प्रमादवशतः न किया गया हो तब उसे उस दिन के सूर्यास्त के अनन्तर दण्डचतुष्टय काल के मध्य न करे। रात्रि के त्रियाम में करना चाहिये।।४४-४५।।

त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्ते चतुष्टयम्।
नाड़ीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंस्थिते ॥४६॥

इति वचनात्।

इसीलिये यह वचन है कि रात्रि के आदि तथा अन्तरूप दण्डचतुष्टय का त्याग

करके रात्रि को त्रियामा कहा गया है। दिवस के आदि तथा अन्त नामक नाड़ियों (रश्मियों) की दो सन्ध्यायें होती हैं।।४६।।

एवञ्च प्राङ्मुखेन विहितं कर्म सूर्यास्तानन्तरदण्डचतुष्टयमध्ये प्राङ्मुखेन ततः परमुदङ्मुखेनैव कार्यमिति तत्त्वम्। अर्द्धरात्रपूजादिकन्तु रात्रावपि कार्यम्, विशेषविधानात्। एवञ्चाहरहः सन्ध्यात्रयमुपासीतेति विधिदर्शनात् सन्ध्यात्रयमहर्विहिततया रात्रावपि कार्यम्। प्रातःस्नानन्तु नाहर्विहितम्, किन्तु प्रातर्विहितमिति कालबाधादप्रसक्तमेव ॥४७॥

यह है—पूर्वमुख विहितकर्म; जिसे सूर्यास्त के चार दण्ड में पूर्वमुख तथा उसके पश्चात् उत्तरमुख होकर करे, यह तत्त्व है। विशेष विधान के अन्तर्गत अर्द्धरात्रि-विहित पूजादि को अर्द्धरात्रि में ही करे। ऐसा होने के कारण 'अहरह: सन्ध्यात्रयमुपासीत' यह नियम तीन सन्ध्या में विहित होने के कारण रात्रि में भी कर्त्तव्य है; किन्तु प्रात:स्नान कदापि दिन में नहीं माना जा सकता। उसे प्रात:काल ही करना होगा। इसी कारण प्रात:स्नान केवल प्रात:काल में ही मान्य है, अन्य काल में वह कालबाधित है अर्थात् अन्य काल में किये स्नान को प्रात:स्नान नहीं माना जाता।।४७।।

इदमत्र बोध्यम्—अकृतप्रातःसन्ध्येनाऽहःस्नानकाले मलापकर्षणस्नानं कृत्वा प्रातःसन्ध्याकृत्वैवाहःस्नानादिकं कर्त्तव्यम् ॥४८॥

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जो प्रात:सन्ध्या नहीं करते, वे दिन में स्नानकाल में मलापकर्षण स्नान करके प्रात:सन्ध्या करके अह: अर्थात् दिवा-स्नान करें।।४८।।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सन्ध्योपासनिकं विधिम्।
अनर्हः कर्मणां विप्रः सन्ध्याहीनः यतः स्मृतः ॥४९॥

इति छन्दोगपरिशिष्टीयात्।

सन्ध्याहीन विप्र समस्त कर्म के लिये अयोग्य है, इस कारण इसके पश्चात् सन्ध्या तथा उपासना की विधि कही गयी है; छान्दोग्य उपनिषद् के परिशिष्ट में ऐसा वचन है।।४९।।

इदन्तु प्रातःस्नानादितरवैधकर्मपरम्। अथवाऽहःस्नानं कृत्वैव सन्ध्याद्वयाधिकं कार्यम् ॥५०॥

इसके अनुसार प्रात:स्नान के अतिरिक्त अन्य वैध कर्म के लिये सन्ध्याहीन विप्र अनधिकारी है। अथवा दिवा स्नान करके सन्ध्यात्रय करना कर्त्तव्य है।।५०।।

अस्नातस्य क्रियाः सर्वा भवन्तीह यतोऽफलाः।
स्नानं समाचरेद् विद्वानतो नित्यमतन्द्रितः ॥५१॥

इति वचनात्।

क्योंकि विना स्नान किये व्यक्ति की सन्ध्यादि सभी क्रियायें निष्फल होती हैं। अतएव विद्वान् व्यक्ति आलस्य छोड़कर स्नान करे—ऐसा कहा गया है।।५१।।

इदञ्च स्नानेतरवैधकर्मपरम्। तस्मादत्रेच्छाविकल्प एव। तर्पणन्तु स्नानाङ्गतया स्नानव्यवहितोत्तरसन्ध्यामध्ये एव कार्यम्। प्रातःस्नान-करणस्थले तु प्रातःसन्ध्यान्तर्गततर्पणेनैव पञ्चयज्ञसिद्धिर्भवति। अहःस्नान-कालेऽपि पुनस्तर्पणं कार्यम्, स्नानाङ्गत्वात्। अहःस्नानमुख्यकालस्तु अष्टधा विभक्तदिनचतुर्थभागः, 'चतुर्थे च तथाभागे स्नानार्थं मृदमाहरे-दि'ति वचनात्। मध्याह्नसन्ध्यामुख्यकालस्तु दिवसस्याष्टमो मुहूर्त्तः, 'मध्याह्नसन्ध्या कर्त्तव्या मुहूर्तसप्तमोपरी'ति वचनात्। देवपूजामुख्यकालस्तु पूर्वाह्न एव, 'पूर्वाह्नो वै देवानामि'ति श्रुतेः। एवञ्च पूर्वोक्तस्नानप्रातःसन्ध्ये निर्वर्त्त्य देवतार्चनं कृत्वा स्वस्वकाले मध्याह्नस्नानसन्ध्ये कर्त्तव्ये मुख्य-कालानुरोधात् ।।५२।।

उपर्युक्त वचन स्नान को छोड़कर अन्य कर्म के लिये है। अतएव यहाँ इच्छाविकल्प ही होगा; किन्तु तर्पण स्नान का अंग है। इसलिये स्नान के द्वारा व्यवहित उत्तरवर्ती सन्ध्या के मध्य ही यह कर्त्तव्य करना होगा। प्रातःस्नान तथा प्रातःसन्ध्या के अन्तर्गत तर्पण से ही पञ्चयज्ञ की सिद्धि होती है। दिन में (प्रातः के स्थान पर) स्नान करने पर भी पुनः तर्पण कर्त्तव्य है; क्योंकि तर्पण को स्नान का अंग मानते हैं। दिवा स्नान का मुख्य काल है—अष्टधा विभक्त दिन का चतुर्थ भाग; क्योंकि 'दिन के चतुर्थ भाग में स्नान के लिये मिट्टी का आहरण करना चाहिये' ऐसा वचन है। किन्तु मध्याह्न सन्ध्या का मुख्य काल है—दिवस का अष्टम मुहूर्त्त। 'मध्याह्नसन्ध्या कर्त्तव्या मुहूर्त्ते सप्तमोपरि' अर्थात् सप्तम मुहूर्त्त के पश्चात् मुहूर्त्त में मध्याह्न सन्ध्या कर्त्तव्य है, यह वचन है। किन्तु देवपूजा का मुख्य काल है—पूर्वाह्न; क्योंकि 'पूर्वाह्नो वै देवानां' अर्थात् देवता की पूजा का काल है—पूर्वाह्न, यह श्रुति है। ऐसी स्थिति में मुख्य काल के लिये पूर्वाह्न स्नान और प्रातःसन्ध्या समाप्त करके देवता की पूजा करके मध्याह्न स्नानकाल में मध्याह्न स्नान तथा मध्याह्न सन्ध्या करे।।५२।।

परन्तु 'प्रातः सर्वे कृताह्निका' इति महाभारतदर्शनात्,

कलार्द्धं द्वादशीं दृष्ट्वा निशीथादूर्ध्वमेव हि।
आमध्याह्नाः क्रियाः सर्वाः कर्त्तव्याः शम्भुशासनात् ।।

इति वचनाच्च अहःक्रियायामहर्मात्रस्य गौणकालतया पूर्वकरणेऽपि तत्सिद्धिः। सायंसन्ध्या तु पूर्वकाले कर्त्तुं न शक्यते, उक्तवचनयोर्युक्ति-मूलकतया भोजनविरुद्धवैदिककर्मपरत्वात् ।।५३।।

लेकिन 'प्रातः सर्वे कृताह्निकाः' अर्थात् प्रातःकाल सभी आह्निक करें—महाभारत में यह वचन है तथा 'कलार्द्ध मात्र द्वादशी देखकर रात्रि के पहले ही मध्याह्न-व्यापिनी समस्त क्रिया शम्भु के अनुशासन (नियम) के अनुसार करे' इस प्रकार के वचनों के कारण दिन क्रिया दिनमात्र को ही गौण काल समझ कर पहले करने से उसकी सिद्धि होती है। तथापि उक्त दोनों वचनों की युक्तिमूलकता-हेतु भोजन-विरुद्ध वैदिक कर्मपरत्व है।।५३।।

●

अथ स्नानम्

वैदिकस्नानं कृत्वा सर्वं स्वदेवतामयं विचिन्त्य आचम्य सङ्कल्पं कुर्यात्। गौतमीये—

मलप्रक्षालनं स्नानं स्वशाखोक्तं समाचरन्।
मन्त्रस्नानं ततः कुर्यात् कर्मणां सिद्धिहेतवे ॥१॥

अब स्नान के सम्बन्ध में कहते हैं। वैदिक स्नान करके सब कुछ को स्वदेवतामय चिन्तन करके आचमनोपरान्त संकल्प करे। गौतमीय तन्त्र के अनुसार अपनी शाखा (परम्परा) के अनुसार मलप्रक्षालन स्नान करके (शरीर साफ करके) कर्म की सिद्धि के लिये मन्त्रपूत स्नान करना चाहिये।।१।।

आगमोक्तक्रियायां सौरमासस्यैवोल्लेखः दीक्षायां तथा दर्शनात्। तथा च 'ॐ तत्सत् ॐ अद्यामुके मास्यमुकराशिस्थे भास्करेऽमुकपक्षेऽमुक-तिथावमुकगोत्रः श्री अमुकः अमुकदेवताप्रीतिकामो मन्त्रस्नानमहं करिष्ये' इति संकल्प्य, षडङ्गन्यासप्राणायामौ कृत्वा, जले त्रिकोणमण्डलं विलिख्य तत्र 'ॐ गङ्गे चे'त्यादिनाऽङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात् तीर्थमावाह्य, तज्जलं वमिति वरुणबीजेन धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, हुमिति कवचबीजेना-वगुण्ठनमुद्रयावगुण्ठ्य, फडित्यस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य, मूलेनैकादशधामिमन्त्र्य कराभ्यां मृदमादाय सूर्याय दर्शयित्वा तया मृदा मूलेनाङ्गं विलिप्य, मूर्ध्नि हृदयनाभिषु जलाञ्जलित्रयं दत्त्वा, सूर्याभिमुखं द्वादशकृत्वो वारि निक्षिप्य, तस्मिन्निष्टदेवताचरणारविन्दनिःसृतजले त्रिर्निमज्य, देवतां ध्यायन् मूलमन्त्रं जपन् उन्मज्याचम्य त्रिवारं मूलाभिमन्त्रितेन पयसा कलसमुद्रया त्रिरात्मानमभिषिञ्चेदिति। श्यामायां नक्षत्रविद्यायाञ्च स्नाने विशेषो वक्तव्यः ॥२॥

आगमोक्त क्रिया में सौर मास का उल्लेख कर्त्तव्य है; क्योंकि दीक्षा के समय का उसी से विचार होता है। अतएव ऊपर लिखे 'ॐ तत्सत्' से लेकर 'स्नानमहं करिष्ये' पर्यन्त संकल्प करके षडङ्ग न्यास तथा प्राणायाम करके जल से त्रिकोण मण्डल बनाकर उस त्रिकोण मण्डल में 'ॐ गङ्गे' मन्त्र से अङ्कुश मुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थ का आवाहन करे और उस जल का अमृतीकरण 'वं' बीज से धेनुमुद्रा प्रदर्शित

करते हुये करे। 'हुं' बीज से अवगुण्ठन मुद्रा का प्रदर्शन करते हुये 'फट्' इस रक्षाबीज का उच्चारण करके रक्षा करे। मूल मन्त्र से ११ बार अभिमन्त्रित करते हुये दोनों अंजुलि से मृत्तिका लेकर सूर्य को दिखलाना चाहिये। पुनः उस मृत्तिका का मूल मन्त्र पढ़ते हुये अंगों में लेपन करके मस्तक, हृदय तथा नाभि को जलांजलि देकर सूर्य की ओर मुख करके बारह बार जल छिड़के। तदनन्तर इष्टदेवता के चरणों के स्पर्श से पवित्र जल से तीन बार निमज्जित होकर मन्त्रदेवता का ध्यान करते-करते मूल मन्त्र जपते-जपते स्नान करके आचमन करे और कलश मुद्रा से तीन बार मूल मन्त्र जप करके अभिमन्त्रित जल द्वारा तीन बार अपने को सींचे। श्यामा-साधना में तथा नक्षत्र-विद्या में स्नान का विशेष उल्लेख है।।२।।

जाबालः—

अशिरस्कं भवेत् स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मणाम्।
आर्द्रेन वाससा वापि मार्जनं दैहिकं स्मृतम्।।३।। इति।

जाबाल ऋषि कहते हैं कि साधक स्नान में असमर्थ होने पर विना शिर भिंगोये स्नान कर सकता है। अथवा भींगे कपड़े से देह को पोंछना चाहिये। यह दैहिक स्नान होता है।।३।।

अथ सूर्यार्घ्यदानास्तां वैदिकीं सन्ध्यां कृत्वा तान्त्रिकीं कुर्यात्। तदुक्तं 'वैदिकी तान्त्रिकी सन्ध्या यथानुक्रमयोगतः' इति। तान्त्रिकसन्ध्यायां वैदिकसन्ध्यानन्तर्या तु तत्तद्दिवसे तत्पुरुषीयतत्तद् वैदिकसन्ध्याकरणसत्व एव। अतएव द्वादश्यादौ सायं तान्त्रिकसन्ध्या कर्त्तव्यैव। स्त्रीशूद्रयोः तान्त्रिकसन्ध्यायामधिकारश्च। सूतकादौ वैदिकस्येव तान्त्रिकस्यापि विशेषाविहितस्य कर्मणो निषेधः सामान्यत एव। सन्ध्यानिषेधकवचनन्तु वैदिकसन्ध्यामात्रपरम्, स्त्रीशूद्रयोर्गायत्रीप्रणवनिषेधकं वचनं वैदिक-गायत्रीप्रणवमिव। सूर्यायार्घ्यञ्च तान्त्रिकसन्ध्यानन्तरमपि पुनर्देयम्, तान्त्रिक-त्वात्।।४।।

तदनन्तर सूर्यार्घ्य-विधान पर्यन्त वैदिक सन्ध्या को करके तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिये। कहा गया है कि क्रमानुसार वैदिक तथा तान्त्रिक सन्ध्या करे। तान्त्रिक सन्ध्या वैदिक सन्ध्या के पश्चात् उसी दिन वैदिक सन्ध्या का अनुष्ठान होने पर ही करना होगा, अन्यथा नहीं। इसी कारण द्वादशी प्रभृति के दिन सायंकाल तान्त्रिक सन्ध्या करना कर्त्तव्य है। स्त्री और शूद्र का भी अधिकार तान्त्रिक सन्ध्या-हेतु है। सूतकादि में वैदिक सन्ध्या नहीं की जाती, तदनुसार तान्त्रिक सन्ध्या भी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उसके

लिये (करने-न करने से सम्बन्धित) अलग से कोई नियम नहीं है। सन्ध्या-निषेध वाक्य केवल वैदिक सन्ध्या के लिये है। स्त्री तथा शूद्र से सम्बन्धित गायत्री तथा प्रणव का निषेध वैदिक सन्ध्या के लिये है (अर्थात् शूद्र तथा स्त्री सामान्यतः सूतकादि न रहने पर तान्त्रिक सन्ध्या कर सकते हैं)। तान्त्रिक मत से सूर्य को अर्घ्य-दान तान्त्रिक सन्ध्या के अनन्तर पुनः देना चाहिये। अर्थात् वैदिक सन्ध्या करके सूर्य को अर्घ्य, पुनः तान्त्रिक सन्ध्या करके सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये।।४।।

सा यथा—शक्तिविषये ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्वाय स्वाहा इत्याचमेत्। अन्यत्र त्वाचमनमात्रम्, स्वतन्त्रतन्त्रादौ शाक्ताचमन एव मन्त्रकथनात् ।।५।।

जैसे शक्ति-उपासना में ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा से तीन बार आचमन करे। अन्यत्र केवल आचमन होता है। इसीलिये स्वतन्त्रतन्त्रादि में शाक्ताचमन का मन्त्र कहा गया है।।५।।

तथा—

आत्मविद्या शिवैस्तत्त्वैर्वाचामेत् साधकाग्रणीः ।
वह्निजायां परे दत्त्वा शुद्धेन पाथसा प्रिये ।।६।।

जैसे भगवान् कहते हैं—हे प्रिये! वह्निजाया (स्वाहा) के पश्चात् श्रेष्ठ साधक आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्व के साथ शुद्ध जल से आचमन करे।।६।।

ततो जले ॐ गङ्गे चेत्यादिना तीर्थमावाह्य, मूलमन्त्रेण कुशेन भूमौ त्रिर्जलं निक्षिप्य कुशेन सप्तवारान् तज्जलेन मूर्द्धानमभ्युक्ष्य, षडङ्गन्यासं कृत्वा, वामहस्ते जलं निधाय, दक्षिणहस्तेनाच्छाद्य हं यं वं लं रं इति त्रिरभिमन्त्र्य मूलमुच्चरन् गलदम्बुबिन्दुभिस्तत्त्वमुद्रया सप्तकृत्वो मूर्द्धानमभ्युक्ष्य, शेषजलं दक्षिणहस्ते समादाय तेजोरूपं ध्यात्वा, इड़याकृष्य देहान्तः पापं प्रक्षाल्य कृष्णवर्णं तज्जलं पापरूपं ध्यात्वा, पिङ्गलया विरिच्य पुरःकल्पितवज्रशिलायां फड़िति मन्त्रेण पापपुरुषरूपं तज्जलं क्षिपेदित्यघमर्षणम् ।।७।।

तदनन्तर जल से 'ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति, नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु' मन्त्र से तीर्थ का आवाहन करके मूल मन्त्र पढ़ते हुये कुशा से तीन बार जल छड़के, उसी कुश से मस्तक पर सात बार जल से अभ्युक्षण करे, षडङ्ग न्यास करके बाँयें अंजलि में जल लेकर उसे दाहिने अंजली से ढँके। उसे हं यं वं रं लं मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित कर मूल मन्त्र का उच्चारण करते-करते वाम

हाथ की उंगली से तत्त्वमुद्रा द्वारा मस्तक का उस उंगली से टपकते जल द्वारा सात बार अभ्युक्षण करे। शेष जल को दाहिने हाथ में लेकर उसे तेजोरूप कल्पित करके इड़ा नाड़ी द्वारा उस तेज के आकर्षण की कल्पना करके उससे देह के अन्दर स्थित पाप का प्रक्षालन करना चाहिये। तदनन्तर उसी जल को कृष्णवर्ण मान कर उसकी पापरूप से कल्पना करके पिंगला नाड़ी द्वारा उसे नि:सारित करके सामने कल्पित वज्रशिलापर 'फट्' मन्त्र द्वारा उस पापपुरुष रूप जल को फेंके। यही अघमर्षण कहा जाता है।।७।।

गौतमीये—

आचम्य विधिवन्मन्त्री शुचौ देशे च संविशेत्।
जले संयोज्य तीर्थानि त्रिवारं मूलमन्त्रतः।
क्षिपेद् भूमौ कुशाग्रेण सप्तधा मूर्ध्नि सेचयेत्॥८॥

गौतमीय तन्त्रमतानुसार मन्त्रज्ञ साधक विधिपूर्वक आचमन करके पवित्र स्थान पर बैठे। जल में तीर्थों का आवाहन करने के अनन्तर मूल मन्त्र पढ़ते हुये कुश के द्वारा भूमि पर तीन बार जल छिड़के और सात बार मस्तक को सिञ्चित करे।।८।।

तन्त्रान्तरे—

षडङ्गन्यासमाचर्य वामहस्ते जलं ततः।
गृहीत्वा दक्षिणेनैव सम्पुटं कारयेत्ततः॥९॥

तन्त्रान्तर में कहते हैं कि तदनन्तर षडङ्ग न्यास करके बाँयें अंजली में जल लेकर उसे दाहिने अंजलि द्वारा सम्पुटित आच्छादित करे।।९।।

शिववायुजलपृथ्वीवह्निबीजैस्त्रिधा पुनः।
अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तधा तत्त्वमुद्रया॥१०॥
निक्षिप्य तज्जलं मूर्ध्नि शेषं दक्षे निधाय च।
शरीरान्तःस्थितं पापं क्षालयेत् साधकाग्रणीः॥११॥

तदनन्तर साधकश्रेष्ठ 'हं' 'यं' 'रं' 'वं' तथा 'लं' द्वारा इस जल को तीन बार अभिमन्त्रित करके मूल मन्त्र जपते हुये तत्त्वमुद्रा द्वारा मस्तक पर सात बार छिड़के तथा शेष जल को दक्षिण अंजुलि में लेकर उस जल द्वारा शरीर के अन्दर-स्थित पाप का प्रक्षालन करे।।१०-११।।

कुमारीतन्त्रे—

इड़याकृष्य देहान्तः क्षालितं पापसञ्चयम्।
कृष्णवर्णं तदुदकं दक्षनाड्यां विरेचयेत्॥१२॥

दक्षहस्ते च तन्मन्त्री पापरूपं विचिन्त्य च।
पुरतो वज्रपाषाणे निक्षिपेन्मन्त्रमुच्चरन् ।।१३।।

श्यामानक्षत्रविद्ययोः सन्ध्यायां विशेषो वक्तव्यः।

कुमारी तन्त्र में कहते हैं कि दाहिने हाथ-स्थित उस जल का इड़ा नाड़ी द्वारा आकर्षण करके उस जल से देह में स्थित पापों को प्रक्षालित करके उस पापयुक्त कृष्णवर्ण जल का पिंगला नाड़ी द्वारा त्याग करे। पुन: मन्त्रज्ञ साधक दक्षिण हाथ-स्थित उस जल को पापरूप मानकर सामने स्थित वज्र पाषाण पर फट् मन्त्र का उच्चारण करके फेंके। श्यामा तथा नक्षत्रविद्या में सन्ध्या का विशेष विधान कहा गया है।।१२-१३।।

ततो हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य तर्पणं कुर्यात्। यथा ॐ देवांस्तर्पयामि एवं ऋषीन्, पितॄन्, गुरुं, परमगुरुं, परापरगुरुं, परमेष्टिगुरुम्। ततो मूलमुच्चार्य ॐ अमुकदेवतां तर्पयामि नमः इति पञ्चविंशतिधा दशधा त्रिधा वा तर्पयेत् ।।१४।।

तत्पश्चात् दोनों हाथों को धोकर आचमन करके तर्पण करे। जैसे ॐ देवांस्तर्पयामि, ॐ ऋषींस्तर्पयामि, ॐ पितॄंस्तर्पयामि, ॐ गुरुं तर्पयामि, ॐ परमगुरुं तर्पयामि, ॐ परापरगुरुं तर्पयामि, ॐ परमेष्टिगुरुं तर्पयामि। इस प्रकार मन्त्र से यथाक्रम इनका तर्पण करके तत्पश्चात् मूल मन्त्र उच्चरित करके ॐ अमुक (देवता का नाम अमुक के स्थान पर) देवतां तर्पयामि नम: इस मन्त्र से पच्चीस अथवा दस अथवा तीन बार इष्टदेव का तर्पण करे।।१४।।

देवानृषीन् पितॄंश्चैव तत्कल्पोक्तविधानतः।
गुरुपङ्क्तिं पुरा तर्प्य तर्पयेदिष्टदेवताम् ।।

इति वचनात्। 'पञ्चविंशति कृत्वा वा दशधा वा त्रिधापि वा' इति विशुद्धेश्वरवचनात् विष्णुविषये नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चार्य तर्पयेत् 'नमोऽन्तं तर्पयेत् सुधी'रिति गौतमीयवचनात् ।।१५।।

कल्पविधान के अनुसार इष्टदेवता के तर्पण के पूर्व देवगण, ऋषिगण, पितृगण तथा गुरुपंक्ति का तर्पण करके इष्टदेवता का तर्पण करे, ऐसा वचन है। पच्चीस बार, दस बार अथवा तीन बार तर्पण करे—यह विशुद्धेश्वर तन्त्र का वचन है। गौतमीय तन्त्र मतानुसार सुधी साधक नम: अन्त वाले मन्त्र कहकर तर्पण करे।।१५।।

शक्तौ तु स्वाहान्तमुच्चार्य त्रिधैव तर्पयेत्। 'होमतर्पणयोः स्वाहे'ति

तन्त्रवचनात्, 'तर्पणञ्च त्रिधा शक्तावि'ति वचनाच्च। तत्र शक्तौ शक्तिविषये इत्यर्थः। अशक्तौ त्रिधेति कुव्याख्या तु न युक्ता, 'तर्पणञ्च त्रिधा भूयस्त्रिधा च प्रोक्षणे तनोः' इति कुलामृतवचनविरोधात् ॥१६॥

शक्ति-विषय में स्वाहा-अन्त (जिसके अन्त में स्वाहा लगा हो) मन्त्र का उच्चारण करके तीन बार तर्पण करे; क्योंकि 'होम तथा तर्पण में स्वाहा कहना होता है' यह वचन तथा 'शक्ति (साधना) में तीन बार तर्पण' यह भी वचन है। यहाँ 'शक्तौ' का अर्थ है—शक्ति के विषय में। 'अशक्ति में (जहाँ शक्ति-साधना नहीं है) तीन बार तर्पण' वचन की इस प्रकार कुव्याख्या उचित नहीं है; क्योंकि 'पुनः तर्पण तथा तीन बार देह का प्रोक्षण' इस कुलामृत-वचन का विरोध हो जाता है।।१६।।

वैष्णवे तु प्रधानतर्पणात् प्राक् ॐ नारदं तर्पयामि। एवं पर्वतं, विष्णुं, निषाटं, उद्धवं, दारुकं, विष्वक्सेनं, सैनेयं इत्येकैकस्तर्पयेत्।

नारदं पर्वतं जिष्णुं निषाटमुद्धवं तथा।
तर्पयेद् दारुकं विष्वक्सेनं सैनेयमित्यपि ॥१७॥

इति वचनात्।

वैष्णव उपासना में प्रधान तर्पण के पहले 'ॐ नारदं तर्पयामि'; इसी प्रकार से पर्वत, जिष्णु, निषाट, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा सैनेय का एक-एक बार तर्पण करे। इसीलिये उपरोक्त श्लोक में इसी बात को कहा भी गया है।।१७।।

सर्वदेवताविषये परिवारतर्पणमेकैकशो मूलदेवतातर्पणात् प्राक् शक्तेन कार्यम्, अशक्तौ प्रधानतर्पणमावश्यकम्।

एकैकमञ्जलिं तोयं परिवारान् प्रतर्पयेत्।
अशक्तौ मूलमुच्चार्य देवीमात्रं प्रतर्पयेत् ॥१८॥

इति कुलार्णववचनात्।

समस्त देवताओं का तर्पण करने में समर्थ व्यक्ति मूल देवता का तर्पण करने के पूर्व परिवार का तर्पण एक-एक बार करे; असमर्थता में प्रधान तर्पण अवश्य करे; क्योंकि कुलार्णव तन्त्र में कहते हैं कि परिवार वालों को (जिनका देहान्त हो चुका है) एक-एक अंजलि जल से तर्पण करना चाहिये। असमर्थ व्यक्ति केवल मूल मन्त्र का उच्चारण करके मात्र देवी का ही तर्पण करे।।१८।।

अत्र च वारसंख्या पूर्वोक्तैव। अत्र देवीत्युपलक्षणम्। नक्षत्रविद्यायां श्यामायाञ्च विशेषो वक्ष्यते।

इति तर्पणम्

तर्पण कितनी बार करे, यह संख्या पहले कही जा चुकी है। यहाँ 'देवी' पद देवताओं का भी उपलक्षक है। नक्षत्र विद्या तथा श्यामा के विषय में बाद में कहा जायेगा। यही तर्पण-विधि है।।१९।।

स्नानद्वयं कृत्वा सन्ध्यातर्पणेभ्यः परतः पूर्वतो वा वस्त्रान्तरे परिधायैव मृज्जलाभ्यामुरूं प्रक्षालयेत् ॥२०॥

दो स्नान (एक सामान्य स्नान, दूसरा मन्त्रस्नान) करके सन्ध्या तथा तर्पण के पश्चात् या पहले परिधेय तथा उत्तरीय पहनकर मिट्टी तथा जल द्वारा दोनों ऊरुओं का प्रक्षालन करे।।२०।।

यथा योगी याज्ञवल्क्यः—

स्नात्वैवं वाससी धौते अक्षुण्णे परिधाय च।
प्रक्षाल्योरु मृदाद्भिश्च हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ॥२१॥

पूर्वोक्त रीति से स्नान करके वस्त्र तथा उत्तरीय पहनकर मिट्टी तथा जल से उरुद्वय धोकर हाथ धोना चाहिये, यह योगी याज्ञवल्क्य का कथन है।।२१।।

यत्तु—

निष्पीड़यति यः पूर्वं स्नानवस्त्रन्तु तर्पणात्।
निराशास्तस्य गच्छन्ति देवाः पितृगणैः सह ॥२२॥

इति वचनम्; तत् तु पितृतर्पणपरम्, तान्त्रिकतर्पणपूर्वक्रियमाणवस्त्र-निष्पीड़नोदकतर्पणानुपपत्तेः ॥२३॥

और कहते हैं कि जो व्यक्ति तर्पण के पहले स्नान के समय वस्त्र को निचोड़ता है, पितृगण सहित देवगण उसके यहाँ से निराश होकर चले जाते हैं। यह वचन पितृतर्पण तात्पर्य-विषयक है; क्योंकि तान्त्रिक तर्पण के पूर्व क्रियमाण वस्त्र निचोड़ने से तर्पण उपपन्न नहीं होता।।२२-२३।।

वशिष्ठः—

जलमध्ये तु यः कश्चित् द्विजातिर्ज्ञानदुर्बलः।
निष्पीड़यति तद्वस्त्रं स्नानं तस्य वृथा भवेत् ॥२४॥

वशिष्ठ कहते हैं कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अनजाने में जल में स्नान का वस्त्र निचोड़ता है, उसका स्नान व्यर्थ हो जाता है।।२४।।

अन्यत्र—

प्रागग्रमुदगग्रं वा धौतं वस्त्रं प्रसारयेत्।
दक्षाग्रं पश्चिमाग्रं वा पुनः प्रक्षालनाच्छुचिः ॥२५॥

अग्राग्रं दशा।

अन्यत्र भी कहते हैं कि धौत वस्त्र को (धुले कपड़े को) पूर्वाग्र अथवा उत्तराग्र प्रसारित करे (फैलाये); दक्षिणाग्र अथवा पश्चिमाग्र फैलाने से पुनः धोकर पवित्र करना पड़ता है।।२५।।

विष्णुपुराणम्—

स्नात्वाऽङ्गानि प्रमृज्याच्च स्नानशाड्यानपापिना ॥२६॥

विष्णुपुराण में कहते हैं कि स्नान करके गमछा आदि से शरीर को पोंछना चाहिये। हाथ द्वारा उस समय शरीर को मर्दन करना (पानी हटाना) वर्जित है।।२६।।

अन्यत्रापि—

नाप्सु त्यजेत् स्नानवस्त्रं न च गात्रमलं बुधः ॥२७॥

अन्यत्र भी कहते हैं कि विद्वान् व्यक्ति जल में स्नानवस्त्र न छोड़े और वहाँ देह का मैल भी न निकाले।।२७।।

एषु स्नानवस्त्रमधःपरिहितवस्त्रमिति साम्प्रदायिकाः। वस्तुतस्तु अविशेष-निर्देशात् स्नानकालीनोत्तरीयवस्त्रमपि स्नानवस्त्रमुच्यते। अतएव गात्र-मार्जन्याः स्नानादावुत्तरीयत्वमर्थतो न निरस्तम्, तर्पणात् प्राक् निष्पीड़नानु-पपत्तेरितिवत् ॥२८॥

साम्प्रदायिकगण कहते हैं कि इन वचनों में स्नानवस्त्र है—नाभि के नीचे पहना वस्त्र। वास्तव में स्नानकालीन उत्तरीय भी स्नानवस्त्र कहा गया है। इसलिये स्नानादि में प्रयुक्त गमछा में भी उत्तरीयत्व है। इसलिये वह भी उत्तरीय है। तर्पण के पहले स्नानवस्त्र निचोड़ना उचित नहीं है।।२८।।

जाबालः—

स्नानं कृत्वार्द्रवासस्तु विण्मूत्रं क्रियते यदि।
प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनः स्नानेन शुध्यति ॥२९॥

अत्र तन्त्रोक्तकर्मसु स्मृतिवचनप्रदर्शनमयुक्तमिति चेन्नैवं वादीः, यत्र विशेषविधानं तन्त्रे नास्ति तत्र श्रुत्युक्तविशेषस्यैव न्यायत्वात् ॥३०॥

जाबाल ऋषि कहते हैं कि यदि स्नान करके भीगे कपड़े से मल तथा मूत्र का कोई त्याग करता है तब वह व्यक्ति तीन प्राणायाम करके पुनः स्नान द्वारा शुद्ध होता है। यहाँ यदि कोई यह कहता है कि तन्त्रोक्त कर्मों में स्मृतिवचन का प्रमाण रूप से उद्धरण देना अयुक्त है तब उसका उत्तर यह है कि ऐसा कहना अनुचित है; क्योंकि जहाँ तन्त्र में विशेष विधान नहीं है, उन सब विषयों में स्मृति में कहा गया विशेष वचन ही न्यायसंगत होता है।।२९-३०।।

ततो हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य ह्रीं हंसः इदमर्घ्यं ॐ सूर्याय स्वाहेति सूर्यायार्घ्यं दद्यात् ॥३१॥

तदनन्तर दोनों हाथ धोकर आचमन करके 'ह्रीं हंस: इदमर्घ्यं ॐ सूर्याय स्वाहा' मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे।।३१।।

सम्मोहनतन्त्रे—

शिवबीजं वह्निसंस्थं वामनेत्रविभूषितम् ।
बिन्दुनादान्तकं देवि! हंसः पदमतो लिखेत् ।
अनेन मनुना देवि! सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥३२॥

नक्षत्रविद्यादौ तु—ह्रीं हंसः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहेति मन्त्रेण ॥३३॥

सम्मोहनतन्त्र में कहते हैं कि शिवबीज (ह) वह्निमन्त्र (र) वामनेत्र (ई) तथा बिन्दुनादान्त (अनुस्वार) अर्थात् 'ह्रीं'। इसके अनन्तर 'हंस:' लिखे। हे देवि! इस 'ह्रीं हंस:' मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। नक्षत्रविद्यादि में मूलोक्त (ऊपर लिखा) 'ह्रीं हंस: मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा' इस मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।।३२-३३।।

यथा—

सूर्यमन्त्रं समुच्चार्य मार्त्तण्डभैरवाय च ।
प्रकाशशक्तिसहितायेदमर्घ्यं ततः पठेत् ।
स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य अर्घ्यं दत्त्वा जपेन्मनुम् ॥३४॥

जैसे तन्त्र में कहा गया है—सूर्यमन्त्र का सम्यक् रूप से उच्चारण करके 'मार्त्तण्ड-भैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं' बोलने के बाद 'स्वाहा' का उच्चारण करके अर्घ्य देकर मन्त्र का जप करे।।३४।।

श्रीविद्यायास्तु—ऐं ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं क्लीं ब्लूं हंसः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसंहिताय ग्रहराशिनक्षत्रतिथियोगकरणपरिवारसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहेति मन्त्रेण। सूर्यार्घ्यदानं त्वावश्यकम्—

यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय निवेदनम् ।
तावन्न पूजयेद् विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरीम् ॥३५॥

इति नन्दिकेश्वरसाहित्यवचनात् ।

श्रीविद्या के अनुसार ऊपर मूल संस्कृत में लिखे मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य प्रदान

करे। यह आवश्यक है। नन्दिकेश्वर साहित्य में कहते हैं कि जब तक सूर्य को अर्घ्य नहीं दिया जाय तब तक विष्णु, शंकर अथवा शांकरी की पूजा न करे।।३५।।

शक्तश्चेदर्घ्यत्रयं सूर्यायापि दद्यात्—

दिनेशायोक्षिपेत् तिष्ठन् वारिणा चाञ्जलित्रयम्।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या गायत्रीं प्रपठेत् सुधीः ॥३६॥

इति तन्त्रान्तरवचनात्।

यदि शक्ति हो तब सूर्य को तीन बार अर्घ्य देना चाहिये; क्योंकि अन्य तन्त्र में कहते हैं कि सुधी साधक खड़ा होकर सूर्य को जल द्वारा पूर्ण तीन अंजली ऊर्ध्व निक्षेप करे तथा १०८ बार गायत्री का जप करे ।।३६।।

ततः सूर्यमण्डले देवतां विचिन्त्य मूलमुच्चार्य ॐ सूर्यमण्डलवासिन्यै अमुकदेवतायै इदमर्घ्यं स्वाहेति मन्त्रेण तत्तद् गायत्र्या वा अर्घ्यत्रयं दद्यात्।

सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै ततः परम्।
अर्घ्यमञ्जलिमादाय गायत्र्या वा त्रिकं क्षिपेत् ॥३७॥

इति वचनात्।

तदनन्तर सूर्यमण्डल में देवता का चिन्तन करके मूल मन्त्र का उच्चारण करके उपरोक्त ॐ 'ॐ सूर्यमण्डलवासिन्यै' इत्यादि मन्त्र द्वारा अथवा गायत्री मन्त्र द्वारा तीन अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।।३७।।

नक्षत्रविद्यायान्तु सूर्यार्घ्यं दत्त्वा ताम्रादिपात्रे रक्तचन्दनार्ककुसुमापराजिता-पुष्पाणि निक्षिप्य मूलमुच्चार्य उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै शिवचैतन्यमय्यै श्रीमदेकजटायै इदमर्घ्यं स्वाहेति मन्त्रेण। मूलरहितेन उद्यदादित्यमण्डल-मध्यवर्त्तिन्यै नित्यचैतन्योदितायै श्रीमदेकजटायै स्वाहेति मन्त्रेण वा त्रिरर्घ्यं दद्यात् ॥३८॥

नक्षत्र विद्या में सूर्य को अर्घ्य देने के लिये जो विधान है, तदनुसार ताम्र पात्र में लाल चन्दन, मदार का पुष्प, अपराजिता का फूल छोड़कर (जल के साथ) मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'उद्यदादित्यमण्डल' इत्यादि ऊपर पहले श्लोक ३७ में लिखे मन्त्र से तीन बार अर्घ्य देना चाहिये।।३८।।

यथा वीरतन्त्रे अर्घ्यानुवृत्तौ—

मूलान्ते उद्यदादित्यवर्त्तिन्यै तदनन्तरम्।
शिवचैतन्यशब्दान्ते मय्यै स्वाहेति तन्मनुः ॥३९॥

नीलतन्त्रे—

उद्यदादित्यमण्डले वर्त्तिन्यै च समुच्चरेत्।
नित्यचैतन्योदितायै स्वाहेति च मनुः स्मृतः ।।४०।।

जैसा कि वीरतन्त्र में अर्घ्य की अनुवृत्ति अर्थात् प्रकरण में कहा गया है कि मूल मन्त्र के अनन्तर 'उद्यदादित्यवर्त्तिन्यै' इत्यादि ऊपर मूल संस्कृत में लिखे मन्त्र को कहकर अर्थात् 'उद्यदादित्यमण्डलवर्त्तिन्यै' के अनन्तर 'नित्यचैतन्योदित्यायै स्वाहा' कहकर अर्घ्य देना चाहिये। नीलतन्त्र में भी ऐसा ही कहा गया है। इसे ही अर्घ्यमन्त्र कहते हैं।।३९-४०।।

एकजटापदस्थाने उग्रतारादितत्तन्नामापि प्रयोज्यम्। नीलतन्त्रोक्तमन्त्रः कालिकायां नामव्यत्ययात् प्रयोज्य इति साम्प्रदायिकाः। पूर्णानन्दमते तु सर्वदेवसाधारणः प्रागुक्तमन्त्रः प्रयोज्यः। ततस्तत्तद् गायत्रीं शतधा दशधा वा जपेत् ।।४१।।

एकजटा के स्थान पर उग्रतारादि (अर्थात् जिसकी उपासना की जा रही है) नाम भी लग सकता है। नीलतन्त्रोक्त देवता नाम में परिवर्तन करके ऐसा कालिका के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है। ऐसा साम्प्रदायिक भी कहते हैं। पूर्णानन्द के मत से सभी देवताओं के लिये पूर्वकथित मन्त्र ही प्रयोज्य है। तदनन्तर उन देवता की गायत्री का १०० बार अथवा दस बार जप करना चाहिये।।४१।।

यथा तन्त्रे—

अष्टोत्तरशतावृत्त्या गायत्रीं प्रजपेत् सुधीः।

जैसा कि तन्त्र में कहा है कि सुधी व्यक्ति को (उस देवता की) गायत्री का १०८ जप करना चाहिये।

तथा—

महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद् दशधा यदि।
सत्यं सत्यं महादेवि मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।।४२।।

जैसे तन्त्र में भगवान् कहते हैं कि हे देवि! महापातक-युक्त व्यक्ति भी यदि दस बार गायत्री जपता है, तब वह क्षणमात्र में मुक्त हो जाता है।।४२।।

शतधा दशधेति शक्ताशक्तभेदेन। महापातकादिनाशकत्वञ्च तान्त्रिक-गायत्रीसामान्यस्यैव। सुव्यक्तं कालिकापटले वक्ष्यते। गायत्रीजपानन्तरं वा तर्पणं कार्यम् ।।४३।।

शक्ति तथा अशक्तिभेद से सौ बार अथवा १० बार गायत्री का जप करना चाहिये। तान्त्रिक गायत्री से सामान्यत: महापातकादि का नाश होता है। यह आगे इसी ग्रन्थ के कालिका पटल में कहा जायेगा। गायत्री-जप के पश्चात् तर्पण करने का विधान है।।४३।।

यथा—

सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै ततः परम्।
अर्घ्यमञ्जलिमादाय गायत्र्या वा त्रिकं क्षिपेत्॥४४॥
यथाशक्तिं जपेद् देवीं गायत्रीं तदनन्तरम्।
तर्पणार्थं समाचम्य प्राणानायम्य साधकः।
ध्यात्वा जलाञ्जलिं दत्त्वा तर्पयेदिष्टदेवताम्॥४५॥

जैसे कहते हैं कि 'सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै नम:' मन्त्र से; किंवा गायत्री द्वारा अंजलि में अर्घ्य लेकर तीन बार अर्घ्यदान करना होगा। तत्पश्चात् यथाशक्ति उन देवता की गायत्री का जप करे। तदनन्तर तर्पणार्थ आचमन करे और प्राणायाम, ध्यानादि के पश्चात् जलांजलि से इष्टदेवता का तर्पण करे।।४४-४५।।

ततो गायत्रीजपं देव्या हस्ते समर्प्य सूर्यमण्डले देवतां विभाव्य मूलं यथाशक्ति जप्त्वा जपं समर्प्य संहारमुद्रया देवतां सूर्यमण्डलात् स्वहृदय-मानयेत्। अघमर्षणावधि गायत्रीजपान्ता सन्ध्या चेत् कर्त्तुं न शक्यते, तर्हि केवलाघमर्षणरूपा संक्षेपसन्ध्यैव कर्त्तव्या। सन्ध्यायां पतितायां तत्तद्गायत्रीं दशधा प्रायश्चित्तत्वेन जप्त्वा सन्ध्यां कुर्याद्, वैदिकसन्ध्या-वत्॥४६॥

तत्पश्चात् देवी के वाम हस्त में जप-समर्पण की कल्पना करके सूर्यमण्डल में देवता का ध्यान करके मूल मन्त्र का यथाशक्ति जप करे। जप-समर्पण करके संहार मुद्रा में यह चिन्तन करे कि देवता सूर्यमण्डल से आकर उसके हृदय में आ गये हैं। यदि अघमर्षण से लेकर गायत्री जप के अन्त-पर्यन्त सन्ध्या नहीं कर सके हैं, तब केवल अघमर्षण रूप संक्षेप सन्ध्या को ही करे। सन्ध्या छूट जाने के प्रायश्चित्तस्वरूप उसी गायत्री का दस जप करके वैदिक सन्ध्या की तरह सन्ध्या करे।।४६।।

यथा गौतमीये—

एवन्तु कथिता मन्त्रसन्ध्या मन्त्रफलाप्तये।
न कुर्याद् यदि मोहेन न दीक्षाफलमाप्नुयात्॥४७॥
सन्ध्यात्रयं तथा कुर्याद् ब्राह्मणो विधिपूर्वकम्।
तन्त्रोक्तविधिपूर्वान्तु शूद्रः सन्ध्यां समाचरेत्॥४८॥

संक्षेपसन्ध्यामथवा कुर्यान्मन्त्री ह्यशक्तितः।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने देवं ध्यात्वा मनुं जपेत्।
सन्ध्यायां पतितायान्तु गायत्रीं दशधा जपेत्।।४९।।

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि मन्त्र के फलप्राप्ति के लिये यह मन्त्र-सन्ध्या कही गयी है। इसे मोहवशात् न करने से दीक्षा का फल नहीं मिलता। ब्राह्मण विधिपूर्वक तीन सन्ध्या करे और शूद्र तन्त्रोक्त विधि के अनुसार सन्ध्या करे। अशक्त व्यक्ति केवल संक्षेप सन्ध्या करे। इसमें प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल देवता का ध्यान करके मन्त्र-जप करना चाहिये। सन्ध्या (भूलवश) न करने पर दस बार गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिये।।४७-४९।।

गायत्री चात्र तान्त्रिकी, प्रकरणप्राप्तेः। सा च प्रणवपुटिता जप्या वैदिक-गायत्रीवदिति तान्त्रिकाः। एतेन तान्त्रिकसन्ध्यागायत्रीजपादौ शूद्रस्य तद्धर्मा-तिदेशात् स्त्रियाश्चाधिकारः कथितः ।।५०।।

अथवा अशक्त होने पर केवल संक्षेप सन्ध्या करे। यहाँ गायत्री है—तान्त्रिकी। वैदिक गायत्री के समान ही तान्त्रिक गायत्री को भी प्रणव से पुटित करके जपना होगा। ऐसा तान्त्रिक मत है। तान्त्रिक सन्ध्या, गायत्री-जपादि में स्त्री तथा शूद्र का अधिकार यहाँ कहा गया है।।५०।।

अथ गायत्री—त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयादिति विष्णोः।

यह विष्णु गायत्री है।

नारायण गायत्री—नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।
नृसिंहगायत्री—वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात्।
हयग्रीवगायत्री—वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्।
कृष्णगायत्री—कृष्णाय विद्महे दामोदराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।
श्रीरामगायत्री—दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्।
गरुड़गायत्री—गरुड़ाय विद्महे सुवर्णपर्णाय धीमहि तन्नो गरुड़ः प्रचोदयात्।
शिवगायत्री—तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।
गणेशगायत्री—तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।

दक्षिणामूर्त्तिगायत्री—दक्षिणामूर्त्तये विद्महे ध्यानस्थाय धीमहि तन्नोऽघींशः प्रचोदयात्।
सूर्यगायत्री—आदित्याय विद्महे मार्त्तण्डाय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।
कामदेवगायत्री—कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्।
शक्तित्रिपूटागायत्री—सर्वसम्मोहिन्यै विद्महे विश्वजनन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्।
त्वरितागायत्री—त्वरितायै विद्महे महानित्यायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।
त्रिपुरसुन्दरीगायत्री—ऐं त्रिपुरादेव्यै विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै धीमहि सौस्तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्।
भैरवीगायत्री—त्रिपुरायै विद्महे भैरव्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।
दुर्गागायत्री—महादेव्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।
जयदुर्गागायत्री—नारायण्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।
लक्ष्मीगायत्री—महालक्ष्म्यै विद्महे महाश्रियै धीमहि तन्नः श्रीः प्रचोदयात्।
सरस्वतीगायत्री—वाग्देव्यै विद्महे कामराजाय धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।
भुवनेश्वरीगायत्री—नारायण्यै विद्महे भुवनेश्वर्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।
अन्नपूर्णागायत्री—भगवत्यै विद्महे माहेश्वर्यै धीमहि तन्नोऽन्नपूर्णे प्रचोदयात्।
महिषमर्दिनीगायत्री—महिषमर्द्दिन्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।
छिन्नमस्तागायत्री—वैरोचन्यै विद्महे छिन्नमस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।
कालिकागायत्री—कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात्।
तारागायत्री—तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।
महोग्रागायत्री—महोग्रायै विद्महे तारायै धीमहि तन्नो देवी धियो यो नः प्रचोदयात् ॥५१॥

यथा तारार्णवे—

> महोग्रायै विद्महे च तारायै धीमहीति च।
> तन्नो देवीति शब्दान्ते धियो यो नः प्रचोदयात् ॥५२॥ इति।

नारायण, नृसिंह, हयग्रीव, कृष्ण, श्रीराम, गरुड़, शिव, गणेश, दक्षिणामूर्ति, सूर्य, कामदेव, शक्तित्रिपूटा, त्वरिता, त्रिपुरसुन्दरी, भैरवी, दुर्गा, जयदुर्गा, लक्ष्मी,

सरस्वती, भुवनेश्वरी, अन्नपूर्णा, महिषमर्दिनी, छिन्नमस्ता, कालिका, तारा एवं महोंग्रा की गायत्री मूल में स्पष्टत: उल्लिखित है। महोग्रा गायत्री के सम्बन्ध में तारार्णव में कहा गया है कि पहले 'महोग्रायै विद्महे' तदनन्तर 'तारायै धीमहि' तदनन्तर 'तन्नो देवि' शब्द के अन्त में 'धियो यो न: प्रचोदयात्' लगाना चाहिये।।५२।।

अथवा तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवी धियो यो नः प्रचोदयादिति। यथा ताररहस्ये—

तारायै विद्महे प्रोक्त्वा महोग्रायै च धीमहि।
तन्नो देवीति शब्दान्ते धियो यो नः प्रचोदयात्।
गायत्र्यैषा समाख्याता सर्वपापनिकृन्तनी ॥५३॥ इति।

अथवा तारा की अन्य गायत्री है—तारायै विद्महे इत्यादि। जैसे कि ताररहस्य में कहा भी है—तारायै विद्महे कहकर महोग्रायै तथा धीमहि तन्नो देवी शब्द के अन्त में यो न: प्रचोदयात् कहे। यह गायत्री सब पापों का नाश करने वाली है।।५३।।

अथवा नारायण्यै विद्महे विकटदंष्ट्र्यै धीमहि तन्नो तारे प्रचोदयादिति; यथा ताराप्रदीपे—

नारायण्यै पदञ्चोक्त्वा विद्महे च पदन्ततः।
विकटदंष्ट्र्यै धीमहि तन्नो देवी धियो यो नः प्रचोदयात् ॥५४॥ इति।

अथवा उनकी अन्य गायत्री कहते हैं जो कि ऊपर कहा गया है अथवा तारायै धीमहि महोग्रायै विद्महे तन्नो देवी धियो यो न: प्रचोदयादिति। नारायण्यै विद्महे विकटदंष्ट्र्यै धीमहि तन्नो देवी धियो योन: प्रचोदयात्। यह गायत्री ताराप्रदीप में कही गयी है।।५४।।

यथा वीरतन्त्रे—

तारायै धीमहि प्रोक्त्वा महोग्रायै च विद्महे।
तन्नो देवीति शब्दान्ते धियो यो नः प्रचोदयात् ॥५५॥

तस्मादेषामेकतमः पाठः शास्त्रार्थ इति।

अथवा यह गायत्री भी कही गई है—तारायै धीमहि महोग्रायै विद्महे तन्नो देवी धियो योन: प्रचोदयात्। वीरतन्त्र में कहते हैं कि तारायै धीमहि कहकर महोग्रायै विद्महे तन्नो देवी इस शब्द के अन्त में धियो यो न: प्रचोदयात् लगाये। अतएव तारागायत्री मन्त्रों की अनेकता में से किसी एक मन्त्र का जप करना चाहिये।।५५।।

अथ गायत्रीध्यानम्

प्रातःध्यानम्—

उद्यदादित्यसङ्काशां पुष्कराक्षकरां स्मरेत्।
कृष्णाजिनाम्बरधरां ब्राह्मीं धारयेत्तारकितेऽम्बरे ॥५६॥

अब गायत्री-ध्यान कहते हैं। प्रातःकाल में अथवा अत्यन्त प्रत्यूषकाल में जब आकाश में तारे उगे रहते हैं तब गायत्री का उदीयमान सूर्य के समान रक्तवर्णा ध्यान करे; जिन्होंने कृष्ण मृगचर्म के वस्त्र के रूप में आकाश को पहन रखा है। उनके हाथ में पुस्तक तथा अक्षमाला है, उन ब्राह्मी का ध्यान करे।।५६।।

मध्याह्नध्यानम्—

श्यामवर्णां चतुर्बाहुं शङ्खचक्रलसत्कराम्।
गदापद्मधरां देवीं सूर्यासनकृताश्रयाम् ॥५७॥

मध्याह्न काल में देवी के गायत्री-ध्यान का अर्थ यह है कि गायत्री श्यामवर्णा, चतुर्बाहु वाली, दो हाथों में शङ्ख तथा चक्र से भूषित एवं अन्य दो हाथों में गदा तथा कमल धारण करके सूर्यमण्डल में स्थित है।।५७।।

सायाह्नध्यानम्—

सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद्यतिः।
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम् ॥५८॥
त्रिनयनां वरदां पापं शूलञ्च नृकरोटिकाम्।
सूर्यमण्डलमध्यस्थां ध्यायेद्देवीं समभ्यसेत् ॥५९॥

सायंकालीन गायत्री-ध्यान का अर्थ है कि यति सायंकाल में वर देने को उद्यत गायत्री को शुक्लवर्ण वस्त्रयुक्त सूर्यमण्डल के मध्य त्रिनयना, वरमुद्रा, पाश, शूल तथा नरकपालधारिणी वृषभ पर अधिष्ठिता ध्यान करे।।५८-५९।।

त्रिपुरादौ ध्यानविशेषस्तु—

प्रातराधारकमले हुतभुङ्मण्डलोपरि।
वाग्बीजरूपां विद्यां वा विद्युत्पाटलभास्वराम् ॥६०॥
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशलसत्कराम्।
स्वेच्छागृहीतवपुषीं गुरुविद्याक्षरात्मिकाम् ॥६१॥

त्रिपुरा-प्रभृति के विषय में गायत्री का ध्यान अलग कहा गया है। यह मूल श्लोक में उल्लिखित है। इसका अर्थ है कि प्रातःकाल गायत्री को मूलाधार में वह्निमण्डल

के ऊपर आसीना, वाग्बीजरूपा अथवा गुरुविद्यारूपिणी विद्युत् पुंज के समान उज्वल वर्णा ध्यान करे।।६०-६१।।

मध्याह्नहृदयाम्भोजकर्णिके सूर्यमण्डले ।
कामबीजात्मिकां देवीमलक्तकरसारुणाम् ।।६२।।
प्रसूनबाणपुण्ड्रेक्षूचापपाशाङ्कुशान्विताम् ।
परितः स्वात्ममुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्त्वशक्तिभिः ।।६३।।

मध्याह्न काल में इस प्रकार ध्यान करे—देवी हृदय कमल की कर्णिका के मध्य में सूर्यमण्डल के बीच अवस्थिता, कामबीजरूपिणी, आलता के समान अरुण वर्ण वाली, पुष्पबाण, ईख का धनुष, चाप, पाश तथा अंकुश से युक्त हैं और अपनी छत्तीस शक्तियों द्वारा चारो ओर से घिरी हैं।।६२-६३।।

सायमाज्ञासरोजस्थे चन्द्रे चन्द्रसमद्युतिम् ।
शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशाङ्कुशान्विताम् ।।६४।।
युगनित्याक्षराकारां स्फटिकाभरणान्विताम् ।
चिन्तयित्वा भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम् ।।६५।।

सायंकाल गायत्री भगवती का ध्यान इस प्रकार करे—आज्ञा चक्र के मध्य में चन्द्रमण्डल में समासीना, चन्द्रमा की द्युति के समान प्रकाशमाना तथा शक्तिबीजरूपा, चाप, बाण, पाश तथा अंकुशयुक्ता, नित्य अक्षरमयी स्फटिकाभरण से सुशोभिता नित्या प्रभृति शक्तियों द्वारा देवी गायत्री चारो ओर से आवृत हैं।।६४-६५।।

युगेति युगभूते द्वे नित्ये ये अक्षरे हक्षस्वरूपे तन्मयामित्यर्थः। एतत्पर्यन्ता स्नानादिक्रिया जलेऽपि कर्त्तुं शक्यते अथवा स्नानं जले कृत्वा सन्ध्यादि गृहादौ कार्यम् ।।६६।।

युगनित्याक्षराकारा इस वाक्य का अर्थ है कि युगस्वरूप नित्य दो अक्षर ह तथा क्ष मयी हैं। यहाँ तक स्नानादि क्रिया जल में भी (नदीजल) कर सकते हैं अथवा जल में स्नान करके गृहादि में सन्ध्यादि करे।।६६।।

हारीतः—

आर्द्रवासा जले कुर्यात् तर्पणाचमनादिकम् ।
शुष्कवासाः स्थले कुर्यात् तर्पणाचमनं जपम् ।।६७।।

हारीत के अनुसार गीले वस्त्र पहने ही जल में तर्पण-आचमनादि करना चाहिये। शुष्क वस्त्र पहन कर सूखे स्थान में तर्पणादि एवं आचमनादि करना चाहिये।।६७।।

अतो धौते वाससी परिधाय तिलकं कृत्वा पादौ हस्तौ च प्रक्षाल्यासने उपविश्य कुशान् करयोर्न्यस्य मन्त्राचमनमाचमनं वा कुर्यात् ॥६८॥

अतएव स्वच्छ वस्त्र पहन कर तिलक लगाकर दोनों पैर और हाथों को धोकर आसन पर बैठे। दोनों हाथों में कुशा धारण करके मन्त्राचमन अथवा आचमन करे।।६८।।

यथा कुलचूड़ामणौ—

उत्थाय कुलवस्त्रे द्वे परिधाय कुलेन च।
तिलकं कुलरूपन्तु कृत्वाचम्य कुलेश्वरः ॥६९॥

जैसे कुलचूड़ामणि तन्त्र में कहते हैं कि शय्या से उठकर दो कुलवस्त्र (अधोवस्त्र तथा उत्तरीय) पहन कर रक्त चन्दन से कुलाचार (कुल) के अनुरूप तिलक लगाकर कौल साधक मन्त्रों से आचमन अथवा आचमन करे।।६९।।

स्वतन्त्रतन्त्रे च—

मोक्षार्थी रक्तवस्त्रे च भोगार्थी श्वेतवाससी।
मारणे कृष्णवासश्च वश्ये रक्तं सदा गृही ॥७०॥
उच्चाटने व्याघ्रचर्म वृक्षत्वक् स्तम्भकर्मणि।
परिधाय ततो मन्त्री यागभूमिमथाविशेत् ॥७१॥

स्वतन्त्र तन्त्र में कहते हैं कि मोक्ष चाहने वाला दो लाल रंग का वस्त्र, भोग चाहने वाला दो सफेद वस्त्र, मारण कार्य में काला वस्त्र, वशीकरण में लाल वस्त्र, उच्चाटन में व्याघ्रचर्म, स्तम्भन में वल्कल का परिधान धारण करके (पहनकर) मन्त्रज्ञ गृहस्थ यागभूमि में प्रवेश करे।।७०-७१।।

कुलवस्त्रं रक्तवस्त्रादि। तिलकं कुलरूपस्त्विति ऊर्ध्वपुण्ड्रादिरूपमित्यर्थः। कुलेन रक्तचन्दनादिना ॥७२॥

कुलवस्त्रं—लाल वस्त्र। तिलकं कुलरूपम् = ऊर्ध्वपुण्ड्रा तिलक। कुलेन—रक्तचन्दनादि से।।७२।।

गोभिलः—

एकवस्त्रेण यत् स्नानं सूचीविद्धेन चैव हि।
स्नानेन न भवेच्छुद्धिः श्रिया च परिहीयते ॥७३॥

गोभिल ऋषि कहते हैं कि जो मात्र एक वस्त्र पहनकर स्नान करता है अथवा जो सिले कपड़े पहन कर स्नान करता है, उस स्नान से नहाने वाले की शुद्धि नहीं होती और लक्ष्मी उसे छोड़ देती है।।७३।।

अतएव—'स्नानतर्पणपर्यन्तं कुर्यादेकेन वाससे'ति यदि समूलम् तदा एकेन एकजातीयेनेति मिश्राः। येन वाससा स्नानं, तेनैव तर्पणमित्या-चार्यचूड़ामणिः। अत्र स्नानेनेति वैधकर्ममात्रोपलक्षणम् ।।७४।।

अतएव 'एक वस्त्र पहनकर स्नान तथा तर्पण-पर्यन्त कर्म करे' यदि यह वचन समूल है (सही है) तब इसका अर्थ है कि एकजातीय वस्त्र पहनकर। यह वाचस्पति मिश्र का मत है। जो वस्त्र पहनकर स्नान करे, वही पहने हुये तर्पण करे—यह आचार्य चूड़ामणि का वचन है। यहाँ स्नान वैधकर्ममात्र का उपलक्षण है।।७४।।

तथा च स्मृतिः—

विकच्छोऽनुत्तरीयश्च नग्नावस्थः प्रकीर्त्तितः।
श्रौतं स्मार्तं तथा कर्म न नग्नश्चिन्तयेदपि ।।७५।।

विकच्छः परिधानासम्भृतकच्छत्रयः, तत्त्रयश्च वस्त्रस्याग्रं दशा वाम-कटिस्थभागश्च।

स्मृति का वचन है कि विकच्छ तथा उत्तरीय-हीन व्यक्ति को नग्न कहा गया है। नग्न व्यक्ति श्रौत कर्म तथा स्मार्त कर्म न करे।

विकच्छ—वस्त्र-परिधान में विशृंखलित कक्षत्रय अर्थात् धोती का पीछे का कांछा (अर्थात् लुंगी)।।७५।।

भारते—

न क्षतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषतः।
मूषिकोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद् विचक्षणः ।।७६।।

महाभारत में कहते हैं कि विद्वान् व्यक्ति फटे वस्त्रों में, जले वस्त्रों में, दूसरे के वस्त्र द्वारा तथा चूहे से काटे वस्त्र पहनकर कार्य न करे।।७६।।

नारसिंहे—

न रक्तमुल्बणं वासो न नीलञ्च प्रशस्यते।
मलाक्तञ्च दशाहीनं वर्जयेदम्बरं बुधः।
नोत्तरीयमधः कुर्यादधोवस्त्रञ्च नोत्तरम् ।।७७।।

अत्र पूर्वार्द्धमतान्त्रिके कर्मणि।

नारसिंह पुराण में कहते हैं कि व्यक्त रक्त वस्त्र तथा नीला वस्त्र उचित नहीं है। पण्डित व्यक्ति मैल से लिपटे तथा दुर्दशा वाले वस्त्र को नहीं धारण करते। उत्तरीय को कभी भी नाभि के नीचे न पहने तथा पहनने वाले वस्त्र को उत्तरीय न बनाये यहाँ पूर्वार्द्ध में कथित नियम अतान्त्रिक कार्य के लिये कहा गया है।।७७।।

भारते—

मृदा तु तिलकं कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं भस्मना सदा।
दृष्टदोषविघातार्थः चाण्डालस्यादि तर्पणे ॥७८॥

अस्यार्थः—चाण्डालादिकृतस्वमुखदर्शनजन्यपापानुत्पादाय मृदा तिलकं सामान्यं कुर्याद् भस्मना त्रिपुण्ड्रं वेति॥७९॥

महाभारत के अनुसार चाण्डाल-प्रभृति की दृष्टि का दोषनाश करने के लिये सर्वदा मिट्टी का सामान्य तिलक करना चाहिये अथवा भस्म द्वारा त्रिपुण्ड्र बनाना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि चण्डालादि से दृष्ट होने पर, चाण्डाल द्वारा अपने मुख के देखे जाने पर साधक उस पाप के नाश के लिये मृत्तिका का तिलक लगाये अथवा भस्म का त्रिपुण्ड्र लगाये।।७८-७९।।

ब्रह्माण्डपुराणम्—

गोप्रदानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
भस्मीभवति तत्सर्वमूर्द्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्॥
इदं ब्राह्मणमात्रविषयकम्॥८०॥

ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है कि ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाये विना गोदान, तपस्या, होम, वेदपाठ, पितृतर्पणादि सब व्यर्थ हो जाता है, भस्मीभूत हो जाता है। यह उक्ति ब्राह्मणों के लिये कही गई है।।८०।।

आचारनिर्णयधृतम्—

ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदा कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं भस्मना तथा।
तिलकं वै द्विजः कुर्याच्चन्दनेन यदृच्छया॥८१॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजः कुर्यात् क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रकम्।
अर्धचन्द्रञ्च वैश्यानां वर्त्तुलं शूद्रजातिषु॥८२॥

आचारनिर्णय ग्रन्थ में कहते हैं कि ब्राह्मण भस्म द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करे या त्रिपुण्ड्र लगाये। चन्दन आदि से जैसी इच्छा हो, ऊर्ध्वपुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र तिलक लगाये। क्षत्रिय त्रिपुण्ड्र लगावे। वैश्य अर्धचन्द्र तिलक लगाये एवं शूद्र लोग वर्तुल अर्थात् गोलाकार तिलक लगायें।।८१-८२।।

अस्यार्थः—द्विजः ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदैव कुर्यात्। भस्मना त्रिपुण्ड्रं तिलकञ्च। भस्मना—यज्ञीयेन। त्रिपुण्ड्रे भस्मनः प्राधान्यम्। मृदादिनापि सम्भवात्, तदेवाह—यदृच्छया स्वेच्छावशाच्चन्दनेन वेति। पुण्ड्रं रेखा। द्विजमात्रे

ऊर्ध्वपुण्ड्रमुक्त्वा वर्णचतुष्टयभेदेन तिलकं पुनराह—ऊर्ध्वपुण्ड्रमिति। द्विज इति नान्य इत्यर्थः। क्षत्रियस्येति त्रिपुण्ड्रकमित्यत्र साधारणोक्तिः। एवमर्द्धचन्द्रवर्त्तुलयोरपि। अथ ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजस्यैव नान्यस्य। क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रकमेव नान्यत्। क्षत्रियस्यैव त्रिपुण्ड्रकं नान्यस्येति तु नार्थः, विप्रस्यापि त्रिपुण्ड्रविधानात्। वैश्यस्यार्द्धचन्द्रमेव नान्यत्। शूद्रस्य वर्तुलमेव नान्यत् ॥८३॥

यहाँ कहा गया है कि द्विज ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक तथा भस्म से त्रिपुण्ड्र तिलक करे। भस्म = यज्ञभस्म। त्रिपुण्ड्र में भस्म प्रधान है। यह मिट्टी से भी सम्भव है, अतः कहा गया है कि इच्छानुसार चन्दन लगाये। यदृच्छया = इच्छानुसार भस्म से अथवा चन्दन से। पुण्ड्र = रेखा। ग्रन्थ में चारो वर्ण के अनुसार पुनः तिलक के सम्बन्ध में कहते हैं। द्विज का अर्थ है कि अन्य व्यक्ति ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक न करें। त्रिपुण्ड्र शब्द से यहाँ क्षत्रियों के लिये साधारण भाव से कहा गया है कि वे साधारणतः त्रिपुण्ड्र लगावें। द्विज के लिये ऊर्ध्वपुण्ड्र होता है, अन्य के लिये नहीं होता। क्षत्रिय के लिये ही त्रिपुण्ड्र, अन्य के लिये नहीं, यहाँ ऐसा अर्थ नहीं है; क्योंकि क्षत्रिय के अतिरिक्त ब्राह्मण भी त्रिपुण्ड्र लगा सकते हैं। वैश्य के लिये अर्धचन्द्र के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं, शूद्र के लिये वर्त्तुल तिलक; अन्य कुछ नहीं।।८३।।

तथाच विप्रस्याऽर्द्धचन्द्रवर्त्तुले स्यातामिति चेन्नः 'ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदा कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं भस्मना तथे'ति प्रागुक्तवचनादूर्ध्वत्रिपुण्ड्रयोरेव विप्रे विशेष्याऽऽ-भिधानात्। अतएव ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विज एव कुर्यादिति व्याख्यातम्। न तूर्ध्वपुण्ड्रमेव द्विज इत्यपि ॥८४॥

इस प्रकार यह नहीं कह सकते कि ब्राह्मण अर्धचन्द्र अथवा वर्त्तुल तिलक लगावे; क्योंकि उसके लिये ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा त्रिपुण्ड्र का विशेषतः विधान है। किन्तु द्विज ही ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये—ऐसा नहीं कहा गया है।।८४।।

अन्यत्रापि—

शैवो वा वैष्णवो वापि यो वा स्यादन्यपूजकः।
त्रिपुण्ड्रेण विना पूजां कुर्वाणो यात्यधोगतिम् ॥८५॥

अन्यत्र भी कहते हैं कि हे राजन्! शैव तथा वैष्णव अथवा अन्य कोई भी पूजक ऊर्ध्वपुण्ड्र विना पूजा करने पर अधोगति को प्राप्त होते हैं।।८५।।

त्रिपुण्ड्रेन विना कुर्याद्यां काञ्चित् वैदिकीं क्रियाम्।
सा निष्फला भवेद् भूप! ब्रह्मणापि कृता यदि ॥८६॥

हे राजन्! त्रिपुण्ड्र के विना कोई भी वैदिकी पूजा निष्फल होतीं है। यदि ब्रह्मा भी त्रिपुण्ड्र के विना क्रिया करते हैं, तब भी वह पूजा निष्फल ही होगी।।८६।।

ऊर्ध्वपुण्ड्र एकैव द्वयी त्रयी वा रेखा विशेषाभावात्, किन्त्वधस्तादूर्ध्वगामिनी न तूर्ध्वादधोगामिन्यपि। त्रिपुण्ड्रे तु रेखात्रयमेव ॥८७॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र में एक, दो अथवा तीन रेखायें हो सकती हैं; किन्तु रेखायें अधः से ऊर्ध्व की ओर जाने वाली होनी चाहिये; ऊपर से नीचे रेखा न आये। किन्तु त्रिपुण्ड्र रेखामात्र ही होता है।।८७।।

तथा च पठन्ति—

आगमा वामभ्रुव ऊर्ध्वदेशादानन्यनासमधिगम्य मूले।
आदक्षिणभ्रूपरिदेशलग्नं त्रिपुण्ड्रमूर्ध्वाग्रमुदाहरन्ति ॥८८॥

कहा भी गया है कि त्रिपुण्ड्र वाम भौं के ऊपर से नीचे की ओर नत होकर नासिका के मूल तक आकर दाहिनी भौं के ऊपर पर्यन्त जुड़कर आगे ऊर्ध्व को जाता है।।८८।।

उभयकरणे विधानन्तु—

ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजः कुर्यात् तदूर्ध्वन्तु त्रिपुण्ड्रकम्।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं च त्रिपुण्ड्रेनार्धपुण्ड्रकम् ॥८९॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा त्रिपुण्ड्र दोनों में विधान है कि द्विज ऊर्ध्वपुण्ड्र करें। वे त्रिपुण्ड्र भी लगा सकते हैं अर्थात् पहले ऊर्ध्वपुण्ड्र लगायें, तत्पश्चात् उसके ऊपर की ओर त्रिपुण्ड्र लगावें।।८९।।

तेनोद्ध्र्वपुण्ड्रमादौ कृत्वा पश्चात्त्रिपुण्ड्रं कुर्यात्, तथा च त्रिशूलाकार-निष्पत्तिः। तत्राह—

ललाटे दृश्यते यस्य त्रिशूलाभं त्रिपुण्ड्रकम्।
आत्मानमात्मना दृष्ट्वा नयत्यच्युतरूपताम् ॥९०॥

इस वचनानुसार पहले ऊर्ध्वपुण्ड्र, तत्पश्चात् उसके ऊपर की ओर त्रिपुण्ड्र बनाये। इससे त्रिशूलाकृति बनती है। कहा भी गया है कि जिनके ललाट पर त्रिशूल के समान त्रिपुण्ड्र दीखता है, वे दर्पणादि में स्वयं को देखकर भगवान् विष्णु का स्वरूप प्राप्त करते हैं।।९०।।

काशीखण्डे—त्रिपुण्ड्रचन्द्रार्द्धधरा धरागता इति।

जले स्थित्वा कर्म कुर्वन् जलेन तिलकं चरेत्।
अन्यदा भस्मना मृद्भिः कुर्यात् काष्ठेन वा पुनः ॥९१॥

काशीखण्ड ग्रन्थ के अनुसार त्रिपुण्ड्र तथा अर्धचन्द्रयुता धरा (पृथ्वी) उपस्थित हुई है। जब जल में खड़े कर्म कर रहे हों तब जल से ही तिलक करना चाहिये; परन्तु अन्य समय में भस्म, मिट्टी, चन्दनादि द्वारा तिलक करना चाहिये।।९१।।

अथ पादप्रक्षालनविधिः

देवलः—

प्रथमं प्राङ्मुखः स्थित्वा पादौ प्रक्षालयेच्छनैः ।
उदङ्मुखो देवकृत्ये पैतृके दक्षिणामुखे ॥१॥

अब पैर धोने की विधि कहते हैं। देवल ऋषि के अनुसार पहले पूर्व की ओर मुख करके धीरे-धीरे दोनों पैर धोना चाहिये। देवकृत्य में उत्तर की ओर मुख करके तथा पितृकार्य में दक्षिणाभिमुखी होकर पाद-प्रक्षालन करना चाहिये।।१।।

पूर्वार्द्धं सामान्यविषयम्। 'सव्यं पादमवनेनिजे इति वामपादं प्रक्षालयति'। 'दक्षिणं पादमवनेनिजे इति दक्षिणं पादं प्रक्षालयती'ति सामगग्रन्थीयगोभिलसूत्रात्, 'सव्यं प्रक्षाल्य दक्षिणं प्रक्षालयती'ति यजुर्वेदिकग्रन्थीयकात्यायनसूत्राच्च सामगयजुर्वेदिनोरेक एव क्रमः। स्त्रीशूद्रयोरपि, एवमेव स्मार्त्ताः ॥२॥

वचन का पूर्वार्द्ध—'पूर्व की ओर मुख करके पैर धोये' यह सामान्य-विषयक है। 'सव्यं पादमवनेनिजे' मन्त्र से वाम पाद तथा 'दक्षिणं पादमवनेनिजे' मन्त्र से दाहिने पैर धोये। यह सामवेदीय गोभिलसूत्र है और कात्यायन सूत्र, जो कि यजुर्वेदीय है, उसके अनुसार पहले बाँयाँ पैर धोकर तब दाहिना पैर धोये। इस प्रकार दोनों वेदों का ब्राह्मणों के पाद-प्रक्षालन का एक ही क्रम है। इसी प्रकार स्त्री तथा शूद्र का भी क्रम है एवं यही क्रम स्मार्त्तों का भी कहा गया है।।२।।

सेव्यः सोपग्रहः कार्या दक्षिणः सपवित्रकः । सेव्यो = वामः। उपग्रहो बहवः कुशाः द्व्यधिका इति यावत्। मत्स्यसूक्ते—

शस्ताः समूला दर्भाश्च गुच्छेन चाधिकं फलम् ॥३॥

वाम हाथ की उँगली को उपग्रहयुक्त करे एवं दक्षिण को पवित्री-युक्त करे। सव्य = वाम। उपग्रह = दो से अधिक कुश। पवित्री = कुश की अँगूठी। मस्त्यसूक्तानुसार समूल कुश प्रशस्त है अर्थात् जड़सहित कुश। ऐसे गुच्छे का अधिक फल है।।३।।

मार्कण्डेयः—

सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम् ।
नोच्छिष्टं तत्पवित्र्यन्तु भुक्तोच्छिष्टन्तु वर्जयेत् ॥४॥

मार्कण्डेय कहते हैं कि पवित्री-युक्त हाथ से ही आचमन करना उचित है। वह आचमन से जूठी नहीं होती। भोजन से जूठी हुई पवित्री का त्याग कर देना चाहिये।।४।।

छन्दोगपरिशिष्टः—

अनन्तगर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।
प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्।।५।।

छान्दोग्य में कहते हैं कि किसी भी विहित क्रिया में प्रादेश परिमाण अन्तर्गर्भी साग्र द्विदल कुश को ही पवित्र जानना चाहिये।।५।।

अत्र मैथिलाः अन्तर्गर्भा यस्य तदन्तर्गर्भं द्वितीयदलम्, तद्वद् तृतीयदलम्, तद्भिन्नं चतुर्थादिदलमित्यूचुः। तन्न, तथा सति तन्मते अन्तर्गर्भिभिन्नस्य ग्रहणात् प्रथमद्वितीयदलयोरपि ग्रहणापत्तेः। न च यद्विशेषणविशिष्टत्वेन यस्य निषेधस्तद्विशिष्टस्य निषेधे तद्विशेषणस्यापि निषेध इति वाच्यम्। तादृशनियमे मानाभावात्।।६।।

यहाँ मैथिल विद्वान् अन्तर्गर्भ पद का यह अर्थ करते हैं कि मध्यगर्भ में जो है। द्वितीय दल में गर्भकुश रहता है। इसलिये इस द्वितीय दल को गर्भकुश कहा गया है। जो द्वितीय दल में है, वह है अन्तर्गर्भी। क्या तृतीय दल या उससे भिन्न चतुर्थादि दल है अनन्तगर्भी? ऐसा नहीं है; क्योंकि यदि ये अन्तर्गर्भी होते तब प्रथम तथा द्वितीय दल के ग्रहण का भी प्रसंग होता। जो विशेषण-विशिष्टरूप से जिसका निषेधक होता है, उस विशेषण विशिष्ट विशेष्य का निषेध होने पर उस विशेषण का ही निषेध हो जाता है, यह नहीं कहा जा सकता; क्योंकि ऐसे नियम का कोई प्रमाण नहीं है।।६।।

जरन्तो गौड़ीयास्तु अन्तश्चासौ गर्भश्चेति अन्तर्गर्भः प्रथमं दलं, तद्वत् द्वितीयं, तदन्यत् तृतीयादिदलं ग्राह्यमिति विवक्रुः। तदपि न, प्रथमदलस्यापि ग्राह्यतापत्तेः कर्मधारयोत्तरं मत्वर्थप्रत्ययनिषेधाच्च।।७।।

प्राचीन गौड़ीयगण अनन्तगर्भी शब्द के इस अर्थ में कहते हैं कि अन्तः (मध्यवर्त्ती) जो गर्भ है—इस प्रकार कर्मधारय समास से निष्पन्न अन्तर्गर्भ शब्द का अर्थ है—प्रथम दल। अन्तर्गर्भ (प्रथम दल) है जिसका, वह है अन्तर्गर्भी। यह है द्वितीय दल। जो अन्तगर्भी नहीं है, वह है अनन्तर्गर्भी, वह है तृतीयादि चतुर्थादि दल। अर्थात् अन्तर्गर्भी से भिन्न होने के कारण उसके ग्रहण में आपत्ति होगी। साथ ही कर्मधारय समास के पश्चात् मत्वर्थीय प्रत्यय का निषेध भी कहा गया है।।७।।

स्मार्त्तास्तु अन्तर्गर्भस्याभावोऽनन्तगर्भं तद्वदन्तगर्भशून्यमित्यर्थ इति संस्कार-तत्त्वे व्याचख्युस्तथा च द्वितीयादिदललाभः, प्रथमदलस्यान्तर्गर्भात्मकप्रति-योग्यप्रसिद्ध्या नान्तर्गर्भशून्यत्वमिति। गर्भोऽत्रास्फुटदलम् ॥८॥

अन्तर्गर्भ का अभाव होने पर अनन्तगर्भ अर्थात् अन्तर्गर्भ से शून्य। यही है—अनन्तगर्भी का अर्थ। यह संस्कारतत्त्व में स्मार्त्त लोगों की व्याख्या है। अनन्तगर्भी शब्द का यह अर्थ होने से द्वितीयादि दल का लाभ होता है। प्रथम दल के अन्तर्गर्भ रूप प्रतियोगी की प्रसिद्धि नहीं है, अत: वह अन्तर्गर्भशून्य नहीं है। यहाँ गर्भ का अर्थ है—अस्फुट दल।।८।।

वस्तुतस्तु अन्तर्गर्भशून्यमित्यस्य बहिष्कृतान्तर्गर्भमित्यर्थः। नव्यास्तु अन्तर्गर्भोऽप्रकाशितान्तर्नभोदेशस्तद्वत् प्रथमदलम्, तदन्यत् द्वितीयादि दलं ग्राह्यमिति प्राहुः। गर्भिणमित्यत्र बर्हादित्वादिनिः। एवञ्च प्रथमदलस्य पवित्रकरणे वर्ज्यतया सर्वत्रैव वर्ज्यत्वं, स्वरूपतो दुष्टत्वात्। एतादृशं पवित्रालाभे पत्रत्रयं पत्रचतुष्टयं वा धार्यम् ॥९॥

वास्तव में अन्तर्गर्भशून्य का तात्पर्यार्थ है—अन्तर्गर्भशून्य बहिष्कृत अन्तर्गर्भ। नव्यगण कहते हैं कि अन्तर्गर्भ से अप्रकाशित अन्त: अर्थात् नभोदेश, तद्वत् है प्रथम दल, उसके अन्य (जगह पर) द्वितीयादि दल ग्रहणीय हैं। 'गर्भिणम्' में बर्हादित्व हेतु से इन् प्रत्यय होता है। अनन्तगर्भी शब्द का अर्थ हुआ कि प्रथमदल पवित्री में वर्जनीय है। अत: वह सर्वत्र वर्जित है; क्योंकि वह स्वरूपत: दुष्ट है। ऐसी पवित्री की प्राप्ति न होने पर (द्वितीय दल न मिलने पर) पत्रत्रय अर्थात् तीसरा अथवा चौथा पत्र (दल) ग्रहणीय होता है।।९।।

यथा—

चतुर्भिदर्भपत्रैस्तु त्रिभिर्द्वाभ्यामथापि वा।
पवित्रं कारयेन्नित्यं प्रशस्तं सर्वकर्मसु ॥१०॥

जैसे कहते हैं कि द्विज को चाहिये कि वह दो अथवा तीन कुशाओं से सर्वदा पवित्री बनाये। यह सभी कर्मों में प्रशस्त होता है।।१०।।

अन्यत्र—

पवित्रन्तु द्विजः कुर्यात् कुशपत्रद्वयेन वा।
पत्रत्रयेण वा कार्यं नैकपत्रेण कर्हिचित् ॥११॥

एतादृशपवित्र्येषु कुशान्तरबन्धनं नास्ति, मानाभावत्।

अन्यत्र भी कहते हैं कि द्विज सदा दो अथवा तीन दर्भों द्वारा पवित्री का निर्माण करे, कभी भी एक पत्र द्वारा पवित्री न बनाये। इस प्रकार पवित्री में अन्य किसी कुशा द्वारा गाँठ इत्यादि भी नहीं देना चाहिये; क्योंकि ऐसे बन्धन का कोई प्रमाण नहीं है।।११।।

कुशधारणक्रममाह। स्मृतिः—

कुशानां धारणं मूलेष्वङ्गुलीषु विधीयते।
अधः कनिष्ठा तर्ज्जन्योर्मध्यमानामिकोपरि।
ऊर्ध्वाग्रो एव धर्त्तव्या नाधस्थाग्राः कुशाः क्वचित्॥१२॥

स्मृति का कथन है कि अंगुली में कुशा धारण का स्थान उँगलियों का मूल है। कनिष्ठा तथा तर्जनी के अधोभाग में एवं मध्यमा तथा अनामिका के ऊपरी भाग में पवित्रीधारण करना चाहिये। कभी भी अधोदेश (उँगली) के अग्रभाग में कुशाधारण नहीं करना चाहिये।।१२।।

ब्रह्मग्रन्थियुक्तोक्तान्यतमरूपकुशाङ्गुलीयधारणस्त्वनामिकायैव। यथा स्मृतिः—

कर्मकाले तु कुर्वीत सपवित्रामनामिकाम्।
लङ्घयेदेकपर्वास्या द्वितीयन्तु न लङ्घयेत्॥१३॥
अनामिकायाः प्रथमं पर्वं स्वर्णेन योजयेत्।
द्वितीयं दर्भसंयुक्तं कार्यं विप्रेण सर्वशः॥१४॥

उक्त कुशों द्वारा ब्रह्मग्रन्थि-युक्त कुश (पवित्री) की अंगूठी को अनामिका में ही धारण करना उचित है; जैसा कि स्मृति का नियम है कि कर्मकाल (पूजनादि में) अनामिका में ही पवित्री पहनना चाहिये। अनामिका के एक ही पर्व का लङ्घन करे, मध्यम (द्वितीय) पर्व का लङ्घन न करे। ब्राह्मण को चाहिये कि अनामिका के प्रथम पर्वमात्र को स्वर्णयुक्त करे एवं द्वितीय पर्व पर पवित्री पहने।।१३-१४।।

अथ प्रथमत्वं द्वितीयञ्चाधस्तो गणनया। अत्राऽनामिकाद्वितीयपर्वणः कर्मकाले सपवित्रत्वं विधिनादबन्धकुशेन तदसम्भवादर्थां कुशाङ्गुरीय-लाभः। एतेन वचनपरभागमनालोच्याऽनामिकामात्रमूलदेशे यत् कुशधारणं वर्णयन्ति, एतद् भ्रममूलकमेव॥१५॥

यहाँ अधोदेश से गणना करते समय उँगली के नीचे जो रेखा है (प्रत्येक उँगली में तीन रेखा होती है—नीचे वाली एक, बीच की दो तथा ऊपर की तीन) वहाँ से प्रथम, द्वितीय—इस प्रकार से गणना करनी चाहिये। यहाँ यह कहते हैं कि अनामिका के द्वितीय पर्व में कुशा की पवित्री पहननी होगी। इसे अंगूठी बना कर (ब्रह्मग्रन्थी देकर)

पहनना चाहिये। उपरोक्त वचन के परभाग का चिन्तन न करके जो लोग अनामिका के प्रथम पर्व पर कुशपवित्री-धारण की बात कहते हैं, इस (परभाग) के द्वारा उनका कथन भ्रममूलक सिद्ध होता है।।१५।।

कुशाङ्गुरीयेनाचमनं न कार्यं, 'ग्रन्थिर्यस्य पवित्रस्य न तेनाचमनं चरेत्' इति हारीतवचनात्। व्यासः—

जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे।
अशून्यन्तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः ॥१६॥

कुशाङ्गुली के साथ आचमन नहीं करना चाहिये—यह हारीत का वचन है। व्यास कहते हैं कि जप, होम, दान, स्वाध्याय तथा पितृतर्पण में हाथ को सुवर्ण, रजत तथा कुश से अशून्य रखना चाहिये।।१६।।

अत्र वाचस्पतिमिश्रैरनामिकायां सुवर्णधारणावगतेः कुशत्रयरजत-धारणमपि तत्रैवेति द्वैतनिर्णयेऽभिहितम्। गौडीयास्त्वेवं न मन्यन्ते ॥१७॥

यहाँ कहा गया है कि अनामिका में सुवर्ण-धारण से अवगति होने के कारण अनामिका में कुशत्रय तथा चाँदी धारण करना कर्त्तव्य है। यह द्वैतनिर्णय में वाचस्पतिमिश्र का वचन है; लेकिन गौड़ीय लोग इस तर्क को नहीं मानते।।१७।।

अनामिकाधृतं हेम तर्जन्यां रूप्यमेव च।
कनिष्ठायां धृतं खड्गं तेन पूतो भवेन्नरः ॥१८॥

इति योगियाज्ञवल्क्यवचनविरोधात्। खड्गं गण्डकखड्गावयवनिर्मितम्।

अनामिका में स्वर्ण, तर्जनी में चाँदी तथा कनिष्ठा में गैडे की सींग से बनी अंगूठी पहनने से व्यक्ति पवित्र होता है—इस योगी याज्ञवल्क्य के वचन से यहाँ विरोध भी होता है। खड्ग = गैण्डा के सींग से बनी अंगूठी।।१८।।

तर्जनी रुप्यसंयुक्ता हेमयुक्ता अनामिका।
सैव युक्ता तु दर्भेण कार्या विप्रेण सर्वदा ॥१९॥

इति विद्याकरधृतवचनविरोधाच्च।

विप्र सदा तर्जनी में चाँदी की एवं अनामिका में स्वर्ण की अंगूठी पहने; साथ ही अनामिका में दर्भ (कुशा) की अंगूठी पहने—इस विद्याकर-वचन से भी यहाँ विरोध हो रहा है।।१९।।

अत्र दर्भो अङ्गुरीयरूपः 'द्वितीयं दर्भसंयुक्तमि'त्युक्तैकवाक्यत्वात्। तस्माद् गौड़ीयानां मते यथाशक्ति तेषां धारणमवगम्यते। तान्त्रिकास्तु

पृथग्विभक्तिनिर्देशात् सुवर्णरजतैरित्येकः कुशैरित्यपरं कल्पः॥२०॥

'द्वितीयं दर्भसंयुक्तं' इस वचनांश के साथ एकवाक्यता के कारण यहाँ कुश अंगूठी के रूप में होगा। अतएव गौड़मत से यथाशक्ति अंगूठी धारण करने का तात्पर्य प्रतीत होता है। तान्त्रिक कहते हैं कि 'सुवर्णरजतैः कुशैः' इस प्रकार पृथक् विभक्ति का निर्देश रहने के कारण 'सुवर्ण-रजत द्वारा' यह एक पक्ष है और दूसरा पक्ष है—कुश द्वारा।।२०।।

तथा च तन्त्रे—

सुवर्णं रजतञ्चैव जपपूजादिकर्मसु।
कुशकार्यकरं प्रोक्तं न तु वन्याः कुशाः कुशाः॥२१॥
तर्जन्यो रजतं धार्यमनामासु सुवर्णकम्।

इति प्राहुः। विष्णुः—कुशाभावे कुशस्थाने काशं दूर्वां वा दद्यादिति॥२२॥

तन्त्र में कहा गया है कि जप-पूजादि कर्म में सुवर्ण तथा रजत कुश का ही कार्य करता है। जंगली कुश कदापि कुश नहीं होता। दोनों तर्जनी में चाँदी तथा अनामिका में सुवर्ण पहनना चाहिये। विष्णु कहते हैं कि कुश न मिलने पर कुश के स्थान पर कास तथा दूर्वा से भी काम चलाना चाहिये।।२१-२२।।

आचमनविधिः

भरद्वाजः—

आयतं पर्वणां कृत्वा गोकर्णाकृतिमत्करम्।
संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः॥२३॥
युक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं चरेत्।
माषमज्जनमात्रास्तु संगृह्य त्रिः पिबेदपः॥२४॥

द्विजगण अंगुलियों के पर्व को फैलायें और हथेली को गोकर्ण (गाय के कान) के आकार का करके अंगुलियों को संहत करके हथेली में जल लेकर अंगूठा तथा कनिष्ठा को युक्त करके शेष को संहत करके उससे आचमन करें। एक बार में माषमात्र जल लेकर तीन बार आचमन करना चाहिये।।२३-२४।।

युक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यामिति। तेन तर्जनीमध्यमानामिकानां संहतत्वं निविड-संयोगित्वं तथैव करस्य गोकर्णाकारत्वसम्भवात्॥२५॥

'युक्तांगुष्ठ' से तर्जनी, मध्यमा तथा संहति की सूचना मिलती है। इसी तरह से गोकर्ण का आकार सम्भव होता है (अर्थात् अंजली की आकृति गोकर्ण के समान बनती है)।।२५।।

याज्ञवल्क्यः—

अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः।
हृत्कण्ठतालुकाभिश्च यथासंख्यं द्विजादयः॥
शुद्ध्येरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत्पृष्ठाभिरन्ततः॥२६॥

अन्तत इति ओष्ठप्रान्त इत्यर्थः।

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि फेन तथा बुलबुले से रहित (स्वच्छ) जल द्वारा हृदय, कण्ठ, तालु तथा मुख को तीन बार द्विजाति के लोग शुद्ध करें। स्त्री तथा शूद्र केवल ओठ पर एक बार जल का स्पर्श करायें। इसी से उनकी शुद्धि हो जाती है।।२६।।

प्रचेताः—

अनुष्णाभिरफेनाभिः पूताभिर्वस्त्रचक्षुषा।
हृद्गताभिरशब्दाभिस्त्रिश्चतुर्वाऽद्भिराचमेत् ॥२७॥

चतुर्वेति भावशुद्धापेक्षया।

प्रचेतागण कहते हैं कि अनुष्ण (जो गर्म न हो) वस्त्र से छाना हुआ, पवित्र, शब्दरहित हृदय में जाने योग्य जल द्वारा तीन अथवा चार बार आचमन करना चाहिये। यहाँ चार बार आचमन भावशुद्धि के लिये कहा गया है।।२७।।

इन्द्रियादिस्पर्शनान्तरं भविष्ये—

यद् भूमावुदकं वीर! समुत्सृजति मानवः।
वासुकिप्रमुखान् नागांस्तेन प्रीणाति मानदः॥२८॥

भविष्य पुराण में कहा गया है कि इन्द्रियस्पर्श के अनन्तर पृथ्वी पर छोड़ा (आचमनोपरान्त पृथ्वी पर छोड़ा) गया जल वासुकी-प्रभृति प्रमुख नागों को प्रसन्न करता है।।२८।।

देवलः—

सोपानत्को जलस्थो वा मुक्तकेशोऽपि वा पुनः।
उष्णीशी चापि नाचामेद् वस्त्रेणोद्वेष्ट्य वा शिवः॥२९॥
न गच्छन्न शयानश्च न जपन्न परान् स्पृशन्।
न हसन् नैव जल्पन् वा नात्मानन्नैव वीक्षयन्॥३०॥

आत्मानं = हृदयम्।

देवल ऋषि कहते हैं कि जूता पहने, जल में, खुले बालों वाली स्थिति में, उष्णीश धारण करके, मस्तक को वस्त्र से लपेट कर, चलते-चलते, सोये-सोये,

जपकाल में, अन्य को छूते हुये, हंसते-हंसते, बात करते-करते, हृदय को देखते हुये आचमन नहीं करना चाहिये।।२९-३०।।

दक्षः—

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च त्रिः पिबेदम्बु वीक्षितम्।
संवृत्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात् ततो मुखम्॥३१॥
संहत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुपस्पृशेत्।
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम्॥३२॥

दक्षप्रजापति कहते हैं कि दोनों हाथ-पैर को धोकर तीन बार परिदृष्ट जल का पान करे। तदनन्तर आवृत अंगुष्ठमूल द्वारा दो बार मुख धोना चाहिये। तदनन्तर तीन उँगलियों को संहत करके प्रथमतः मुख का स्पर्श करे। अनन्तर अंगुष्ठ तथा तर्जनी द्वारा नासिका का स्पर्श करे।।३१-३२।।

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु चक्षुः श्रोत्रे पुनः पुनः।
नाभिं कनिष्ठाङ्गुष्ठेन हृदयन्तु तलेन वै।
सर्वाभिस्तु शिरोदेशं बाहू चोग्रेण संस्पृशेत्॥३३॥

तत्पश्चात् अंगुष्ठ तथा अनामिका से चक्षु एवं कान का बार-बार स्पर्श करे। कनिष्ठा द्वारा नाभि, हथेली द्वारा हृदय, समस्त उँगलियों द्वारा मस्तक तथा उँगलियों के अग्रभाग से दोनों बाहु का स्पर्श करे।।३३।।

पुनः पुनरिति। घ्राणादीनां गोलकद्वयाभिप्रायेणेति श्रीदत्तः। मुखमार्जनानन्तरं व्यासः—'वामहस्तं पादौ शिरश्च दक्षिणेन पाणिना जलेनाभ्युक्षेदि'ति सामगानां क्रमः। यजुर्वेदिनान्तु गौतमः 'पादौ चाभ्युक्षेत् खालितोपस्पृशेत् सर्वान् उदकबिन्दून् मूर्ध्नि दद्यादि'ति। इन्द्रियस्पर्शे मनुः—खालितोपस्पृशेदद्भिरिति॥३४॥

घ्राणादि के दोनों गोलक का स्पर्श करने के लिये पुनः-पुनः यह बात कही गयी है, यह श्रीदत्त कहते हैं। मुख धोने के अनन्तर श्री व्यासदेव कहते हैं कि दाहिने हाथ के जल द्वारा वाम हस्त, दोनों पैर तथा मस्तक का अभ्युक्षण करे (अभ्युक्षण = मार्जन)। यह सामवेदियों का मत है। यजुर्वेदीगण के सम्बन्ध में गौतम ऋषि कहते हैं कि दोनों पैरों का अभ्युक्षण करे। क्षालित करके स्पर्श करे। समस्त जलबिन्दु मस्तक पर देना चाहिये। घ्राणादिस्पर्श के विषय में मनु कहते हैं कि जल द्वारा प्रक्षालित करके तब स्पर्श करे।।३४।।

याज्ञवल्क्यः—

अन्तर्जानुः शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुखः।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥३५॥

अन्तर्जानुर्जानुद्वयमध्यस्थहस्तद्वयः। प्राक्—पूर्वमुखः।

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि पवित्र स्थान में पूर्वमुख अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठकर अन्तर्जानु हो द्विजगण ब्राह्मतीर्थ जल द्वारा सदा स्पर्श करें। अन्तर्जानु = दोनों जंघाओं के बीच हाथ करके। प्राक् = पूर्वमुख ।।३५।।

यमः—

रात्रावनीक्षितेनापि शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः।
उदकेनातुराणाञ्च तथोऽष्णेनोष्णपायिनाम् ॥३६॥

यमराज कहते हैं कि रात्रिकाल में अदृष्ट जल से आतुरगण की शुद्धि होती है तथा उष्ण जल से उनकी शुद्धि होती है, जो उष्ण जल पीते हैं।।३६।।

नाभिस्पर्शे व्यासः—

ततः स्पृशेन्नाभिदेशं पुनरपश्च संस्पृशेत्।

नाभिस्पर्श के सन्दर्भ में व्यासदेव कहते हैं कि कानों का स्पर्श करने के पश्चात् नाभिस्पर्श करे। तदनन्तर हाथ धोये।

हारीतः—

आर्द्रवासा जले कुर्यात् तर्पणाचमनं जपम्।
शुद्धवासाः स्थले कुर्यात् तर्पणाचमनं जपम् ॥३७॥

महर्षि हारीत कहते हैं कि जल में भीगे कपड़े पहने तर्पण, आचमन तथा जप करना कर्त्तव्य है। तत्पश्चात् जल से हाथ धोना चाहिये।।३७।।

अथाचमननिमित्तानि

निष्ठीवने तथाऽभ्यङ्गे तथा पादावनेजने।
उच्छिष्टस्य च सम्भाषादशुच्युपहतस्य च ॥३८॥
सन्देहेषु च सर्वेषु शिखां बद्ध्वा तथैव च।
विना यज्ञोपवीतेन नित्यमेवमुपस्पृशेत्।
उष्ट्रवायससंस्पर्शे दर्शने चान्त्यवासिनाम् ॥३९॥

अब आचमन के निमित्तादि को कहते हैं। वैधकर्मों में थूकना, तैल मर्दन, पैर धोना, जूठन का स्पर्श, अशुचि अथवा दूषित होने का सन्देह, ऊँट तथा कौवे का

स्पर्श, म्लेच्छादि का दर्शन—इन सबमें शिखा बन्धन करना चाहिये एवं नेत्रादि का स्पर्श तथा आचमन करना चाहिये।।३८-३९।।

अथ द्विराचमननिमित्तानि

स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्ते रथ्योपसर्जने।
आचान्तः पुनराचामेद् वासो विपरिधाय च ।।४०।।

अब दुबारा आचमन के निमित्तादि कहते हैं। स्नान करके, पान करके, हिचकी में, सोने पर, भोजन करने पर, दोनों सन्ध्याओं में आचमन के पश्चात् पुन: आचमन करना चाहिये (अर्थात् पुन: तीन आचमन)।।४०।।

ब्रह्मपुराणम्—

होमे भोजनकाले च सन्ध्ययोरुभयोरपि।
आचान्तः पुनराचामेदन्यत्रापि सकृत् सकृत् ।।४१।।

ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि हवन के समय, भोजन के समय, दोनों सन्ध्याओं में पुन: आचमन करना चाहिये। अन्य स्थान पर एक बार तीन आचमन करना ही उचित होता है।।४१।।

स्मृतिः—

क्षुते निष्ठीविते सुप्ते परिधानेऽश्रुमोचने।
कर्मस्थ एषु नाचामेद् दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।।४२।।
वातकर्मणि निष्ठीवे दन्ताश्लिष्टे तथाऽनृते।
क्षुते पतितसम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।।४३।।

स्मृति में कहा गया है कि (पूजादि) कर्म में लगा व्यक्ति हिचकी लेने पर, थूकने पर, उँघने पर, वस्त्र पहनने पर, आँसू पोछने पर आचमन न करे; केवल दाहिने कान का स्पर्श करे।

अधोवायु निकलने पर, थूकने पर, दाँत में कुछ लगा रहने पर, झूठ बोलने पर, हिचकी लेने पर, पतित से वार्त्ता करने पर दाहिने कान का स्पर्श करे।।४२-४३।।

मार्कण्डेयपुराणम्—

कुर्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम्।
कुर्वीतालम्भनञ्चापि दक्षिणश्रवणस्य च ।।४४।।

मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि उपरोक्त प्रकिया होने पर आचमन, गाय के पृष्ठ का स्पर्श, सूर्य का दर्शन अथवा दाहिने कान का स्पर्श करना चाहिये।।४४।।

ततो मूलमन्त्रेण अनिमेषरूपया दिव्यदृष्ट्यवलोकनाद् दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य अस्त्राय फड़िति तालत्रयेणाऽन्तरीक्षगान् विघ्नानुत्सार्य वामपार्ष्णिघातत्रयेण भौमान् विघ्नानुत्सार्य फड़िति सप्तधा जप्तान् विकिरानादाय—

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

इति विकिरेत् ॥४५॥

तत्पश्चात् मूल मन्त्र से अनिमेष रूप (बिना पलक झपकाये) दिव्य दृष्टि से देखते हुये दिव्य विघ्नसमूह को हटाकर 'अस्त्राय फट्' कहते हुये तीन बार ताल देकर अन्तरीक्षस्थ विघ्नों का निवारण करना चाहिये। तदनन्तर बाँईं एँडी के प्रहार से भौम विघ्नों का निवारण करके विकिर को फट् मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करके उसे लेकर 'ॐ अपसर्पन्तु' से लेकर 'शिवाज्ञया' तक पढ़ते हुये विकिर को चारो ओर फेंके।।४५।।

यथा शारदायाम्—

अनन्तरं देशिकेन्द्रो दिव्यदृष्ट्यवलोकनैः।
दिव्यानुत्सारयेद् विघ्नानस्त्रादेश्चान्तरीक्षगान् ॥४६॥

शारदातिलक में कहा है कि तदनन्तर (द्वारपूजादि के अनन्तर) श्रेष्ठ विद्वान् आचार्य स्वयं को देवस्वरूप चिन्तन करते हुये (अनिमेष) दिव्यदृष्टि से अवलोकन करते-करते दिव्य विघ्नों को हटावे। अस्त्र मन्त्र 'फट्' का उच्चारण करते हुये सामान्य जल छिड़ककर अन्तरीक्ष-स्थित विघ्नों को हटाये।।४६।।

पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमानिति विघ्नान्निवारयेत्।
ततोऽक्षतान् समादाय दक्षे नाराचमुद्रया ॥४७॥
प्रक्षिपेदस्त्रमन्त्रस्य गृहान्तर्विघ्नशान्तये।
अपसर्पन्तु ते भूता इति मन्त्रेण चादरात् ॥४८॥

तीन बार भूमि पर एँड़ी के प्रहार से मन्त्र पढ़ते-पढ़ते पृथ्वी के विघ्नों को हटाये। तदनन्तर गृह-स्थित विघ्नों की शान्ति के लिये दाहिनी हथेली पर रखे एवं 'फट्' मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित चावल द्वारा नाराच मुद्रा से उपरोक्त 'अपसर्पन्तु ते भूता' श्लोक पढ़कर उस चावल को चारो दिशा में फेंके।।४७-४८।।

सम्मोहनतन्त्रे—

विकिरान् विकिरेत् तत्र सप्तवारान् शराणुना ॥४९॥

शराणुना—अस्त्र मन्त्रेण।

सम्मोहन तन्त्र में कहते हैं कि विघ्ननाशार्थ 'फट्' मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित विकिर चारो दिशा में फेंकना होगा। शराणुना = अस्त्र मन्त्र 'फट्' से।।४९।।

शारदायाम्—

लाजचन्दनसिद्धार्थभस्मदूर्वाकुशाऽक्षताः ।
विकिरा इति सन्दिष्टाः सर्वविघ्नौघनाशकाः ।।५०।।

शारदातिलक तन्त्र में विकिर बताते हुये कहते हैं कि लावा, चन्दन, सफेद सरसों, यज्ञहवन की भस्म, दूर्वा, कुश तथा चालव के मिश्रण को विघ्ननाशक विकिर कहते हैं।।५०।।

ततो भूमौ त्रिकोणं विलिख्य 'ॐ आधारशक्त्यादिभ्यो नमः' इति तत् पूजयेत्, 'भूमौ त्रिकोणमालिख्याधारशक्त्यादि पूजयेत्' इति वचनात्। ततस्तत्रासनं संस्थाप्य 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम' इत्यासनं सम्पूज्य धृत्वा पठेत्। यथा—आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनपरिग्रहे विनियोगः।

ॐ पृथ्वि! त्वया धृता लोका देवि! त्वं विष्णुना धृता ।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ।। इति।

ततस्तत्रोपविशेत्। स्वस्तिकाद्यन्यतमक्रमेण। अथवा उपविश्य अथवा विघ्नानुत्सारयेत् ।।५१।।

तदनन्तर भूमि पर त्रिकोण बनाकर 'ॐ आधारशक्त्यादिभ्यो नमः' से त्रिकोण का पूजन करे; क्योंकि वचन है कि 'भूमि में त्रिकोण बनाकर आधारशक्ति आदि का पूजन करे'। तदनन्तर त्रिकोण पर आसन रखकर ऊपर लिखे 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र से आसन का पूजन करके कहे—'आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः श्रीकूर्मो देवता आसनपरिग्रहे विनियोगः'। तत्पश्चात् पृथ्वी की स्तुति करे—हे पृथ्वि! तुमने लोकसमूह को धारण किया है। हे देवि! तुमको विष्णु ने धारण किया है। तुम मुझे सर्वदा धारण करो। आसन को पवित्र करो। यह मन्त्र (श्लोक) पढ़ने के पश्चात् स्वस्तिकादि किसी आसनक्रम में उस पर साधक बैठ जाय अथवा आसन पर बैठकर विघ्नसमूह को भगाने का श्लोक पढ़े।।५१।।

यथा तन्त्रान्तरे—

आदौ विघ्नं समुत्सार्य पश्चादासनकल्पनम् ।
अथवाप्यासने स्थित्वा विघ्नमुत्सारयेत् सुधीः ।।५२।।

श्यामादौ तु विशेषो वक्ष्यते।

तन्त्रान्तर में भी कहते हैं कि सुधी साधक प्रथमतः विघ्नों को भगाकर (आगे का कार्य करे) अथवा आसन पर बैठकर विघ्नों को हटाये।।५२।।

अथासनम्

हंसपारमेश्वरे—

कम्बलं कोमलं कौशं दारदं कर्मसाधनम्।
एतेषामासनं ग्राह्यं चर्मासनं सुरेश्वरि ।।५३।।

हंसपारमेश्वर ग्रन्थ में कहा गया है कि कोमल कम्बल का आसन, कुशासन तथा लकड़ी के आसन—ये सभी आसन तथा चर्मासन (व्याघ्रचर्म, मृगचर्मादि आसन) ग्रहणीय होते हैं।।५३।।

लोम्नि चैव यदासीनस्तदा सर्वं विनश्यति।
लोमस्पर्शनमात्रेण सिद्धिहानिः प्रजायते ।।५४।।

रोयें से निर्मित आसन पर जो बैठते हैं, उनका सब कुछ नष्ट हो जाता है। उसके रोयें के स्पर्शमात्र से ही सिद्धि की हानि होती है।।५४।।

कामार्थं कम्बलं चैव श्रेष्ठञ्च रक्तकम्बलम्।
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षः श्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।।५५।।

काम्य कर्म के लिये कम्बल का आसन लेना चाहिये। उसमें भी लाल कम्बल श्रेष्ठ होता है। काले मृगचर्म पर सिद्धि प्राप्त होती है। व्याघ्र चर्मासन से मोक्ष तथा लक्ष्मी-प्राप्ति कही गयी है।।५५।।

कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा।
धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने ।।५६।।

कुश के आसन पर निःसन्दिग्ध रूप से मन्त्र सिद्ध होता है। लकड़ी के आसन पर मन्त्रादि जप से पृथ्वी पर उसे दुःख तथा दुर्भाग्य की प्राप्ति होती है।।५६।।

वंशासने दरिद्रः स्यात् पाषाणे व्याधिपीड़नम्।
तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः।
जपध्यानतपोहानिं वस्त्रासनं करोति हि ।।५७।।

बांस के आसन से दरिद्रता, पत्थर के आसन से रोगपीड़ा, तृणों के आसन से यशहानि, पत्तों के आसन से चित्तभ्रम तथा कपड़े का आसन जप, ध्यान, तपस्या की हानि करने वाला होता है।।५७।।

वस्त्रासनमिति केवलमेव निषिद्धम् 'वस्त्रासनं रोगहरमि'ति वचनात्।

'तथा मृद्वासने मन्त्री पटाजिनकुशोत्तरे' इति गौतमीयाच्च। अत्र मृद्वासनं सुखस्पर्शासनं, न तु पारिभाषिकम्, गौतमीयोक्तत्वात् ॥५८॥

वस्त्रासन के उल्लेख में केवल कपड़ों के आसन का निषेध है। यह भी वचन मिलता है कि वस्त्रासन रोग हरने वाला होता है। यह भी वचन है कि कुशासन पर चर्मासन, उस पर वस्त्रासन, उस पर (मृह) मुलायम आसन रख कर बैठे। यह गौतमीय तन्त्र का वचन है। यह मृदु (मृगचर्म) आसन है; कोमल आसन (पारिभाषिक शब्द) नहीं है।।५८।।

मत्स्यसूक्ते—

मृद्वचूड़कमासीनश्चान्येषु कोमलेषु वा।
विष्टरेषु समासीनः साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ॥५९॥

मत्स्यसूक्तानुसार मृदु तथा अचूड़क पर बैठे अथवा अन्य कोमल आसन अथवा विष्टरसमूह पर बैठकर उत्तम सिद्धि का साधन करे।।५९।।

अथ मृद्वचूड़कं कोमललक्षणम्। यथा श्रीक्रमे—

पञ्चवर्षान्तरं यावन्मृतं बालमचूड़कम्।
षण्मासानन्तरं यावद्दशमासाच्च पूर्वकम् ॥६०॥
गर्भच्युतं मृदुं बालं गर्भाष्टमपुरःसरम्।
एतत् कोमलमित्याहुः विष्टरेषु कुलेषु वा ॥६१॥
विष्टरेषु कुशेषु वेति उपविशेदित्यध्याहृत्यान्वयः।

पारिभाषिक शब्द मृदु, अचूड़क तथा कोमल आसनों का लक्षण अब आगे कहते हैं। जैसे श्रीक्रमशास्त्र में कहा गया है कि पाँच वर्ष की आयु के मृत बालक को 'अचूड़क' कहते हैं। छः से दस मास के पूर्व गर्भच्युत बालक (शव) का नाम 'मृदु' है। आठवें मास में गर्भच्युत 'बालक' के शव को कोमल कहा गया है। अथवा कुश के विष्टर (कुशासन) पर बैठे। 'विष्टरेषु कुशेषु वा' इस पद के साथ 'उपविशेत्' क्रिया का अध्याहार करके अन्वय करना चाहिये।।६०-६१।।

तथा नीलतन्त्रे—

अर्वाक् षण्मासतो गर्भच्युतमाहुर्मृदुं बुधाः।
चूड़ोपनयनैर्हीनं मृतमचूड़कं विदुः ॥६२॥
निवृत्तचूड़को बालो हीनोपनयनं पुमान्।
यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं विदुः ॥६३॥

निवृत्तचूड़कः—कृतचूडः। पञ्चमे वर्षे पूर्णे इत्यर्थः।

जैसे कि नीलतन्त्र में कहा गया है कि छः माह के पूर्व च्युत गर्भ को 'मृदु' कहते हैं। चूड़ाकरण तथा उपनयन-रहित अवस्था में मृत बालक को 'अचूड़क' कहा गया है। चूड़ाकरण तो हुआ है परन्तु उपनयन नहीं हुआ है, ऐसा बालक पाँच वर्ष की आयु पूर्ण होने के पूर्व जब मर जाता है तब उसे 'कोमल' कहा गया है।।६२-६३।।

तथा—

एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरस्रं समन्ततः।
विशुद्धे आसने कुर्यात् संस्कारं पूजनं ततः ।।६४।।

तन्त्र में कहा गया है कि आसन एक हाथ या दो हाथ का हो तथा चौकोर हो। विशुद्ध आसन पर बैठकर संस्कार करके पूजन करे।।६४।।

स्वतन्त्रे—

कम्बले लोहिते वापि कृष्णे वा व्याघ्रचर्मणि।
संन्यासी ब्रह्मचारी तु विशेत् कृष्णस्य चर्मणि ।।६५।।

स्वतन्त्र तन्त्र में कहा गया है कि कम्बल लोहित अथवा कृष्ण वर्ण का हो अथवा व्याघ्रचर्म हो; किन्तु ब्रह्मचारी एवं संन्यासी कृष्ण वर्ण मृगचर्म पर ही बैठे।।६५।।

योगिनीहृदये—

नादीक्षितो विशेज्जातू कृष्णाजिनासने गृही।
विशेद् यतिर्वनस्थश्च ब्रह्मचारी च भिक्षुकः ।।६६।।

योगिनीहृदय तन्त्र में कहते हैं कि जो दीक्षित नहीं है—ऐसा गृहस्थ कृष्णसार मृग के चर्म पर कभी न बैठे। उस पर वनवासी यती, ब्रह्मचारी तथा भिक्षुक ही बैठें।।६६।।

मत्स्यसूक्ते—

कृष्णसारं द्वीपिचर्म अचूडं कम्बलं तथा।
पीतं रक्तञ्च शुक्लञ्च आसनाय प्रकल्पयेत् ।।६७।।

मत्स्यसूक्तानुसार कृष्णसार मृग का चर्म, व्याघ्रचर्म, अचूड़ मृत बालक का चर्म एवं पीले, लाल तथा श्वेत कम्बल आसन के लिये उपयुक्त कहे गये हैं।।६७।।

कालीतन्त्रे—

मृतासनं विना देवि! यो जपेत् कालिकां नरः।
तावत्कालं नारकी स्याद् यावदाहूतसम्प्लवम् ।।६८।।

कालीतन्त्र में कहा गया है—हे देवि! जो व्यक्ति मृतक के आसन (मृतक व्यक्ति अचूड़ इत्यादि के चर्म का आसन) के ऊपर बैठे विना कालिका-मन्त्र का जप करता है, वह महाप्रलय-पर्यन्त नरकगामी होता है।।६८।।

आ सम्यक् प्रकारेण भूतानां सम्प्लवो यत्रेति व्युत्पत्त्या आहूतसम्प्लवपदेन महाप्रलय उच्यते । भकारे हकारत्वमार्षम् ॥६९॥

आ अर्थात् सम्यक् प्रकार से भूतसमूह का (पञ्चभूतों का) सम्प्लव ही महाप्रलय है। यहाँ 'भ' के स्थान पर 'ह' आर्ष है।।६९।।

तथा—

मृताभावे विष्टरञ्च शवरूपं प्रकल्पयेत् ।

विष्टरञ्च कुशशतेन वटुकरूपं निर्माय तत्र शवप्राणप्रतिष्ठां कुर्यादिति तान्त्रिकाः ॥७०॥

कहा गया है कि मृतक के अभाव में विष्टर आसन की शवरूप से कल्पना करे। १०० कुशों द्वारा आसन को शवरूप बनाकर उसमें शव की प्राणप्रतिष्ठा करे, ऐसा तान्त्रिक कहते हैं।।७०।।

निजासनन्तु देवासनापेक्षया नीचैः कर्तव्यम्। यथा—

नीचैरासनमासाद्य शुचिः प्रयतमानसः ।
अर्च्चयेच्चण्डिकां देवीं देवमन्यञ्च भैरव ॥७१॥

इति कालिकापुराणम्।

देवता के आसन की अपेक्षा अपना आसन नीचा रखना चाहिये। जैसे कालिकापुराण में कहा गया है कि हे भैरव! शुद्ध व्यक्ति संयत चित्त होकर देवता के आसन से अपना आसन नीचे की ओर बिछाकर अर्चना करे।।७१।।

अथ पूजादौ मुखनियमः

यथा नारदीये—

स्नातः शुक्लाम्बरधरं स्वाचान्तः पूर्वदिङ्मुखः ॥७२॥

इदन्तु विष्णुविषयम् । अन्यत्र तु निबन्धे—

उपविश्यासने मन्त्री प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥७३॥

अब पूजादि में साधक को अपना मुख किस दिशा की ओर रखना चाहिये, यह कहा जा रहा है। नारदीय में कहा गया है कि स्नान करके सफेद वस्त्र पहन कर आचमनादि करके पूर्वमुख करके आसन पर बैठे और आगे का कार्य करे। परन्तु यह वैष्णवोपासनार्थ है। अन्यत्र कहते हैं कि मन्त्रविज्ञ साधक पूर्वमुख अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख किये हुये आसन पर बैठे और पूजादि तथा मन्त्र-जपादि करे।।७२-७३।।

सारसमुच्चये च—

प्रागाननो धनददिग्वदनोऽथवापि
बद्धाञ्जलिर्गणपतिञ्च गुरूञ्च नत्वा ।।७४।।

सारसमुच्चय ग्रन्थ में कहा गया है कि पूर्व दिशा की ओर अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके अञ्जलिबद्ध होकर गणपति भगवान् तथा गुरु को प्रणाम करके पूजा-जपादि करना चाहिये।।७४।।

रात्रौ तु नायं नियमः। यथा स्मृतिः—

रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद् देवकार्यं सदैव हि ।।७५।।

किन्तु रात्रि के लिये नियम नहीं है। स्मृति में कहा गया है कि रात्रि में सदा उत्तर दिशा की ओर मुख करके कार्य करे।।७५।।

शिवपूजा तु सर्वदैवोत्तरामुखेन कार्या। यथा पूर्ववचनस्यार्द्धम्—

शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ।।७६।। इति।

किन्तु शिवपूजा तो सदैव उत्तर की ओर मुख करके ही करनी चाहिये। जैसे पूर्ववचन के शेषार्द्ध में कहा गया है कि शिवार्चन सदा पवित्र होकर उत्तरमुख होकर करना चाहये।।७६।।

अथ बीजन्तु—

न प्राचीमग्रतः शम्भोर्नोदीचिं शक्तिसंस्थिताम् ।
न प्रतीचिं यतः पृष्ठमतो दक्षं समाश्रयेत् ।।७७।।

कालिकापुराणे तु—

दिग्विभागे तु कौरवीदिक् शिवाप्रीतिदायिनी ।
तस्मात् तन्मुख आसीनः पूजयेच्चण्डिकां सदा ।।७८।।

शम्भु के आगे पूर्व दिशा का, शक्ति के आगे उत्तर तथा पश्चिम दिशा का आश्रय लेकर पूजा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यह उनका पृष्ठभाग होता है। अतः शक्ति के लिये दक्षिण का आश्रय लेना चाहिये।

कालिकापुराण के अनुसार विभिन्न दिशाओं में उत्तर दिशा भगवती शिवा देवी के लिये प्रीतिदायक है। अतः चण्डिका का पूजन सदा उत्तरमुख होकर करे।।७७-७८।।

ततः कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा वामकर्णोद्ध्र्वे ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परात्परगुरुभ्यो नमः। दक्षिणकर्णोद्ध्र्वे ॐ गणेशाय नमः, मूर्ध्नि मूलमुच्चार्य ॐ अमुकदेवतायै नमः इति यजेत् ।।७९।।

तदनन्तर अञ्जलिपुट से वाम कर्ण के ऊर्ध्व भाग में ॐ गुरुभ्यो नमः से लेकर परमगुरु तथा परात्पर गुरु तक को नमस्कार करके कान के ऊर्ध्व भाग में ॐ गणेशाय नमः से तथा मस्तक के ऊर्ध्व भाग में मूल मन्त्र (गुरुप्रदत्त मन्त्र) पढ़कर ॐ अमुक-देवतायै नमः (अमुक के स्थान पर मूलमन्त्र के देवता का नाम अथवा जिसकी साधना की जा रही है, उसका नाम लगाये) कहकर यजन करना चाहिये।।७९।।

कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा वामे गुरुत्रयं यजेत्।
गुरुञ्च परमादिञ्च परापरगुरुं तथा।
दक्षिणे च गणेशञ्च मूर्ध्नि देवं विभावयेत्॥८०॥

अब कहते हैं कि पूजक अञ्जलिबद्ध होकर वाम भाग में गुरु, परमगुरु तथा परात्पर गुरु को नमस्कार करे। दाहिने भाग में गणेश की तथा मस्तक के ऊर्ध्व में उपास्य देवता की भावना करे।।८०।।

ततः फड़िति गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य, दक्षिणमध्यमानामाभ्यां ऊर्ध्वोर्द्ध्वं तालत्रयं दत्त्वा, दक्षिणतर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कुर्यात्। ततो रमिति वह्निबीजेन जलधारया वह्निप्राकारं चिन्तयेत्॥८१॥

तदनन्तर 'फट्' मन्त्र से गन्ध-पुष्प द्वारा (जलमिश्रित) दोनों हाथ धोकर दक्षिण हस्त (दाहिने हाथ) की मध्यमा तथा अनामिका द्वारा ऊपर की ओर तीन ताली बजाये। दक्षिण हाथ की तर्जनी तथा अंगूठा द्वारा दश दिशाओं का बन्धन करे। तदनन्तर 'रं' बीजमन्त्र द्वारा अपने चारो ओर जलधारा में वह्नि (अग्नि) के प्राचीर का चिन्तन करे।।८१।।

अथ भूतशुद्धिः

स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा, सोऽहमिति मन्त्रेण हृदयस्थं दीपकलिकाकारं जीवात्मानं सुषुम्नाविवरवर्त्मना परमशिवे संयोज्य मूलाधारपद्मस्थां कुण्डलिनीं निद्राणां षट्चक्रभेदप्रक्रियया वक्ष्यमाणरूपां हुं इति त्रिकोण-मण्डलस्थाग्निशिखया सजागरां विधाय, हंसः इति मन्त्रेण उत्तोल्य, वक्ष्यमाणषट्चक्रभेदप्रक्रियया षट्चक्रभेदेन परमशिवे संयोज्य, पायुस्थमूलाधारगतपृथिवीं समुत्तोल्य, लिङ्गमूलस्थस्वाधिष्ठानगतजले सङ्गमय्य, तत्र लीनां विभाव्य, तया सह तज्जलमुत्तोल्य, नाभिमूलस्थ-मणिपूरगतवह्निरूपतेजसि सङ्गमय्य तत्र लीनं विचिन्त्य, तैः सह तं वायुमुत्तोल्य कण्ठदेशस्थविशुद्धाख्यपद्मगताकाशे सङ्गमय्य, तत्र लीनं विचिन्त्य तैः सह तमाकाशमुत्तोल्य भ्रूमध्यस्थाज्ञाचक्रगतमनसि सङ्गमय्य तत्र लीनं विचिन्त्य, मनो नादे लीनं विभाव्य, नादं सहस्रदलपद्ममध्य-गतबिन्दुरूपपरमशिवे लीनं विभावयेत्। तथा गन्धरसरूपस्पर्शशब्द-नासिकाजिह्वाचक्षुस्त्वक्श्रोत्रवाक्पाणिपादपायूपस्थप्रकृतिमनोबुद्ध्यहङ्कार-रूपतत्त्वानि च परमशिवे विलापयेत्। तत्त्वानि च पृथिव्यप्तेजोवाय्वा-काशानि पञ्चभूतानि गन्धादिकोनविंशतिश्चेति मिलित्वा चतुर्विंशतिः तैश्च शरीरमिति। अतो भूतानां देहभूतभूतानां शुद्धिर्भूतशुद्धिरुच्यते ॥१॥

अब भूतशुद्धि कहते हैं। अपनी गोद में दोनों करतल ऊपर की ओर करके (जैसे पद्मासन में रखते हैं) सोऽहं मन्त्र से हृदय-स्थित दीपकालिकाकार जीवात्मा को सुषुम्ना नाड़ी के छिद्र-पथ से परमशिव के साथ युक्त करके वक्ष्यमाण स्वरूपा मूलाधार कमल में स्थिता निद्रिता कुलकुण्डलिनी को 'हुं' मन्त्र पढ़ते हुये मूलाधारस्थ त्रिकोण मण्डलस्थ अग्निशिखा द्वारा जगाकर 'हंसः' मन्त्र द्वारा उसे ऊपर उठाकर वक्ष्यमाण षट्चक्रभेद प्रक्रिया से षट्चक्रभेदन द्वारा उसे परमशिव से संयुक्त करके गुह्य देशस्थ मूलाधारस्थ पृथ्वी तत्त्व को उठाकर स्वाधिष्ठान चक्र में उसे वहाँ स्थित जलतत्त्व से पृथ्वी को निमज्जित करके यह चिन्तन करे कि पृथ्वी तत्त्व अब जल तत्त्व में लीन हो गया है। अब पृथ्वी तत्त्वयुक्त उस जल को उत्तोलित करके मणिपूर-स्थित अग्नि-तत्त्व में उसे मिलाये और यह चिन्तन करे कि जलतत्त्व अब अग्नितत्त्व में लीन हो

गया है। अब उस तेजस्तत्त्व को वायुतत्त्व में (अनाहतस्थ वायुतत्त्व में) लीनरूप चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर कण्ठस्थ आकाश तत्त्व में इस वायु तत्त्व को ले जाकर यह चिन्तन करे कि वायु तत्त्व यहाँ आकाश तत्त्व में लीन हो गया है। अब (आज्ञा चक्रस्थ) मन को नाद में तथा नाद को सहस्रदल कमल के मध्यगत बिन्दुरूप परमशिव में लीन रूप से चिन्तन करे। इसी प्रकार गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द, नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, प्रकृति, मन, बुद्धि, अहंकारस्वरूप समस्त तत्त्वसमूह को परमशिव में विलीन करे। तत्त्व हैं— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा गन्धप्रभृति को मिलाकर १९; अतएव १९ + ५ महाभूत = २४ तत्त्व हुये। इस प्रकार से भूतसमूह की शुद्धि होती है।।१।।

अत्रायमस्माकं प्रपञ्चः—

पृथिव्यम्बुतेजोमरुद्व्योमरूपैः शरीरं कृतं पञ्चभिर्भाति भूतैः ।
अतो देहभूतेषु भूतेषु शुद्धिः परं कीर्त्तिता भूतशुद्धिः सुधीभिः ॥२॥

यहाँ ग्रन्थकार कहते हैं कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश द्वारा निर्मित शरीर प्रकाशमान है। अतएव देहस्वरूप भूतसमूह की श्रेष्ठ शुद्धि, जो विद्वानों के मत से सम्मत है, यहाँ कही गयी।।२।।

समाधाय षट्चक्रभेदप्रकारैः परस्मिन् शिवे कुण्डलीं योजयित्वा ।
स्वपायुस्थमूलाम्बुजस्थां धरित्रीं समुत्तोलयेदन्तरा वर्त्मनैव ॥३॥

समाहित होकर कुण्डलिनी देवी को जाग्रत करके षट्चक्र-भेदन द्वारा उनको परमशिव से युक्त करके अपने गुह्य देशस्थ पृथ्वी तत्त्व को आन्तर पथ में ऊपर उठाना चाहिये।।३।।

ततो लिङ्गमूलस्थलस्थाय्यधिष्ठानचक्रस्थनीरेषु तां संविलाप्य ।
तया सार्द्धमम्भः समुत्तोल्य नाभ्यम्बुजे पूरके वह्नितेजस्युदस्येत् ॥४॥

तदनन्तर लिङ्गमूल (उठायी गयी पृथ्वी (पृथ्वी तत्त्व) को) स्वाधिष्ठानस्थ जल तत्त्व में उस पृथ्वी तत्त्व को लीन करे और उस जल तत्त्व को मणिपूर (नाभिदेशस्थ) कमल में वह्निरूप तेज में स्थापित करे।।४।।

कृशानौ जलं लापयित्वा तमग्निं धरित्रीपयोभ्यामुदस्यन्निदध्यात् ।
हृदिस्थेऽम्बुजेऽनाहताख्ये समीरे महायोगयोगेन योगी कृतात्मा ॥५॥

उस अग्नि में जल को लीन करके उस जल तथा पृथ्वी-युक्त अग्नि को उठाकर कृतात्मा योगी महायोग की सहायता से हृदय-स्थित अनाहत कमलस्थ वायु में स्थापित करना चाहिये।।५।।

ततस्तत्र तेजो निलीनं विभाव्य त्रिभिः सार्द्धमुत्तोलयेद्वायुमाशु।
ततः कण्ठदेशे विशुद्धाख्यपद्मान्तराकाशमध्ये समीरं व्युदस्येत् ॥६॥

तदनन्तर उस वायु को इन तीन भूतों के साथ शीघ्रता से उठाकर कण्ठस्थ विशुद्ध पद्म के मध्य-स्थित आकाश तत्त्व में स्थापित करना चाहिये।।६।।

तदाकाशमेतैः समुत्तोल्य योगी भ्रुवोर्मध्य आज्ञासरोजान्तराले।
मनस्येव संलापयेत्तच्च नादे शिरःपद्मबिन्दुस्वरूपे शिवे तम् ॥७॥

योगी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु से युक्त इस आकाश को उत्तोलित करके भ्रूमध्य-स्थित आज्ञा चक्र के मध्य में स्थित मन में लीन करे। उस मन का लय नाद में करे तथा उस नाद को शिरस्थ बिन्दुस्वरूप शिव में लय करे।।७।।

तथा तत्र गन्धं रसं रूपधेयं वशी स्पर्शशब्दौ च नासञ्च जिह्वाम्।
तथाऽक्षित्वचं श्रोत्रवाक्पाणिपादं समायुज्य पायुं तथोपस्थसंज्ञम् ॥८॥
प्रकृत्या मनोबुद्ध्यहङ्कारमेकोनविंशानि तत्त्वानि देहात्मकानि।
मरुत्पूरणाधारणारेचनाभिः शरीरं विशोध्यानयेत्तानि तेषु ॥९॥

अब वहाँ गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, श्रोत्र, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, प्रकृति, मन, बुद्धि, अहंकार तथा देहात्मक १९ तत्त्वों का लय करके वायु का पूरण, धारण तथा रेचन करके शरीर का शोधन करे। उन तत्त्वसमूह को अपने-अपने स्थान में ले आये।।८-९।।

ततो दक्षिणनासां धृत्वा, यमिति वायुबीजं धूम्रवर्णं वामनासापुटे विचिन्त्य, प्राणायामविधिना तस्य षोडशवारजपेन वामे वायुना देहमापूर्य, नासापुटौ धृत्वा तस्य चतुःषष्टिवारजपेन कुम्भकं कृत्वा वक्ष्यमाणाकारेण वामकुक्षिस्थकृष्णवर्णपापपुरुषेण सह देहं संशोष्य तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन दक्षिणनासया वायुं रेचयेत् ॥१०॥

तदनन्तर दक्षिण नासा को बन्द कर (उँगली से) वाम नासापुट से 'य' वायुबीज द्वारा (श्वास खींचते) वायु बीज का धूम्रवर्ण चिन्तन करते हुये उस वायुबीज की भावना १६ बार करे (कि इसी बीजमन्त्र के साथ वायु वाम नासाछिद्र से भीतर जा रही है)। इस प्रकार वायु द्वारा (वाम नासिका से) शरीर को पूर्ण करके, दोनों नासापुटों को उँगली द्वारा बन्द करके ६४ बार वायुबीज की भावना करते-करते उसे रोककर कुम्भक करे और भावना करे कि बाँयीं कांख में स्थित काले रंग के पापपुरुष-सहित देह शुष्क हो रही है। अब उसी वायुबीज 'यं' की भावना ३२ बार जप द्वारा करके दाहिने नासिका

छिद्र से (बाँयाँ नासिका छिद्र उँगली से बन्द रखते हुये) रुकी वायु का रेचन करे अर्थात् साँस बाहर छोड़े।।१०।।

ततो दक्षिणनासापुटे रमिति वह्निबीजं रक्तवर्णं ध्यात्वा, तस्य षोडश-वारजपेन वायुना देहमापूर्य नासापुटौ धृत्वा चतुःषष्टिवारजपेन कुम्भकं कृत्वा, पापेन सह देहं दग्ध्वा, तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन वामनासया भस्मना सह वायुं रेचयेत् ॥११॥

अब उँगली से बाँई नासिका छिद्र को बन्द करके 'रं' वह्निबीज का रक्तवर्ण ध्यान करके उस 'रं' बीज की १६ बार भावना करते हुये दक्षिण नासिका से वायु भीतर खींच कर देह को भरे। अब उँगली से दोनों नासिकाछिद्र बन्द करके इसी 'रं' बीज की ६४ बार भावना करते हुये कुम्भक अवस्था में पापसहित देह को दग्ध करने की भावना करके उस दाहिनी नाक को बन्द करके ३२ बार 'रं' बीज की भावना करते हुये यह भावना करे कि वाम नासाछिद्र से देहभस्म-सहित वायु बाहर जा रही है, इस प्रकार वायु को वाम नासाछिद्र से बाहर छोड़े।।११।।

ततो वामनासिकायां ठमिति चन्द्रबीजं शुक्लवर्णं ध्यात्वा तस्य षोड़शवार-जपेन ललाटे चन्द्रं नीत्वा, नासापुटौ धृत्वा, वमिति वरुणबीजस्य शुक्ल-वर्णस्य चतुःषष्टिवारजपेन ललाटचन्द्राद्गलितसुधया मातृकावर्णात्मिकया समस्तदेहं विरचय्य, लमिति पृथिवीबीजस्य पीतवर्णस्य द्वात्रिंद्वारजपेन देहं सुदृढं विचिन्त्य दक्षिणेन वायुं रेचयेत्। ततो हंसः इति मन्त्रेण जीवं हृदयमानीय कुलकुण्डलिनीं पृथिव्यादीनि च यथास्थानमानयेत् ॥१२॥

तदनन्तर वाम नासिका में 'ठं' बीज का शुक्ल वर्ण ध्यान कर अब पूर्ववत् दाहिना नासाछिद्र उँगली से बन्द करके वाम-नासा से पूरक करते हुये १६ बार जप करते-करते (ठं मन्त्र का) श्वास खींचता जाय और भावना करे कि मन्त्रयुक्त श्वास को ललाटस्थ चन्द्र की भावना करके वहाँ ले जाये। अब दोनों नासिकाछिद्र उँगली से बन्द करके 'वं' शुक्लवर्ण वरुण बीज का ६४ बार कुम्भकावस्था में जप करते-करते यह भावना करे कि ललाटस्थ चन्द्रमण्डल से टपक रही सुधा मातृकावर्णस्वरूप द्वारा समस्त देह की रचना कर रही है। अब बाँयीं नाक बन्द करके दाहिने नासाछिद्र से 'लं' पीतवर्ण बीज का ३२ बार जप करते हुये (नासिका से निकल रही वायु के साथ जपते हुये) वायु बाहर त्यागे। तदनन्तर हंस मन्त्र द्वारा हृदय में जीव को लाकर (भावना करे) कुलकुण्डलिनी तथा पृथ्वी आदि समस्त तत्त्वों को उनके मूल स्थानों पर (जहाँ से ऊपर ले गया था) स्थापित करे।।१२।।

अङ्गुलिनियमो ज्ञानार्णवे—

भूतशुद्धिं ततः कुर्यात् प्राणायामक्रमेण च ॥१३॥ इति।

अथवा मात्रासंख्यया भूतशुद्धिः कार्या।

ज्ञानार्णव में अंगुलिनियम में कहा गया है कि अब क्रमशः भूतशुद्धि करे। अथवा मात्रासंख्या द्वारा भूतशुद्धि करे।।१३।।

तदुक्तं गौतमीये—

सुषुम्नावर्त्मना सोहऽमिति मन्त्रेण योजयेत्।
सहस्रारे शिवस्थाने परमात्मनि देशिकः ॥१४॥
धूम्रवर्णं ततो वायुबीजं षड्बिन्दुलाञ्छितम्।
पूरयेदिडया वायुं सुधीः षोडशमात्रया ॥१५॥

मन्त्रोपदेष्टा साधक 'सोहं' मन्त्र द्वारा सुषुम्ना पथ में शिरःस्थित शिवस्थान सहस्रदल कमल में परमात्मा को जीवात्मा से संयुक्त करे। तत्पश्चात् साधक छः बिन्दु से लांछित धूम्रवर्ण वायुबीज को इड़ा नाड़ी द्वारा १६ मात्रा में (१६ बार जपते हुये सांस अन्दर लेकर) पूरण करे।।१४-१५।।

मात्रया तु चतुःषष्ट्या कुम्भयेच्च सुषुम्नया।
द्वात्रिंशन्मात्रया मन्त्री रेचयेत् पिङ्गलाख्यया ॥१६॥

पूरक के अनन्तर सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ६४ मात्रा में कुम्भक करना चाहिये। तदनन्तर पिङ्गला नाड़ी द्वारा ३२ मात्रा में रेचक करना चाहिये।।१६।।

पूरयेदनया चैव सञ्चिन्त्य लीनमारुतम्।
रक्तवर्णं वह्निबीजं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम् ॥१७॥
तेन पूरकयोगेन मात्रया षोडशाख्यया।
चतुःषष्ट्या मात्रया च निर्दहेत् कुम्भकेन तु ॥१८॥

तदनन्तर पिङ्गला नाड़ी द्वारा रक्तवर्ण त्रिकोण स्वस्तिकयुक्त अग्निबीज (रं) का चिन्तन करते हुये १६ मात्रा में पूरक करे। तत्पश्चात् ६४ मात्रा में कुम्भक करते हुये पाप-पुरुष को दग्ध करे।।१७-१८।।

वामपार्श्वस्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम्।
ब्रह्महत्याशिरस्कञ्च स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् ॥१९॥
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम्।
तत्संसर्गिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ॥२०॥

उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलेपनम्।
खड्गचर्मधरं क्रूरमेवं कुक्षौ विचिन्तयेत्॥२१॥

वाम पार्श्व की कुक्षि (कांख) में अवस्थित इस पापपुरुष का कज्जल के समान काला रंग है, मस्तक ब्रह्महत्यारे के समान है, स्वर्ण की चोरी करने वाले के समान बाहु है, सुरापानरूप हृदय से वह युक्त है, गुरुपत्नी-गमनकारी के समान इसकी कमर है, गुरुपत्निगामी व्यक्ति का साथ करने ऐसा दोनों पैर है। अन्य पातकों से युक्त अंग-प्रत्यङ्ग वाले, उपपातकरूप रोम से युक्त, दाढ़ी-मूछ रक्तवर्ण के हैं, खड्ग-चर्मधारी क्रोधी—ऐसे पापपुरुष का बाँयें कांख में चिन्तन करे।।१९-२१।।

मूलधारोत्थितेनैव वह्निना निर्दहेच्च तम्।
एवं सन्दह्य परितो द्वात्रिंशन्मात्रया ततः।
भस्मना सहितं मन्त्री रेचयेदिडया पुनः॥२२॥

मूलाधार से उत्थित अग्नि द्वारा इस पापपुरुष को जलाये। ऐसे पापपुरुष को सर्वतोभाव से दग्ध करके मन्त्रज्ञ साधक ३२ मात्रा में 'यं' बीज का जप करते-करते इड़ा नाड़ी द्वारा वायु का पुन: रेचन करे।।२२।।

वामनाड्यां चन्द्रबीजं कुन्देन्द्वयुतसप्रभम्।
भालेन्दुबीजे संयोज्य ततः षोडशमात्रया॥२३॥
सुषुम्नाया चतुःषष्टिमात्रया तोयबीजकम्।
ध्यात्वाऽमृतमयीं वृष्टिं पञ्चाशद्वर्णरूपिणीम्॥२४॥
तया देहं विचिन्त्यैवं मनसा पिङ्गलाध्वना।
द्वात्रिंशन्मात्रया मन्त्री लंबीजेन दृढं नयेत्॥२५॥

तदनन्तर इड़ा नाड़ी में अयुत कुन्द तथा इन्दु के समान प्रभायुक्त 'ठं' चन्द्रबीज का १६ बार जप (पूरक में) करके उसे ललाटस्थ चन्द्रबीज से युक्त करके सुषुम्ना में जल (वरुण) बीज 'वं' के ६४ बार जप द्वारा (कुम्भक अवस्था में) अमृतमयी ५० वर्णमयी वृष्टि का ध्यान करके यह भावना करे कि इसी से देह की रचना है और देह की वर्णमयी चिन्तना करके पिङ्गला नाड़ी के रास्ते ३२ बार 'लं' बीज के जप द्वारा (रेचक स्थिति में) देह को दृढ़ करे।।२३-२५।।

स्वस्थाने हंसमन्त्रेण पुनस्तेनैव वर्त्मना।
जीवं तत्त्वानि चानीय स्वस्थाने स्थापयेत्ततः।
इति कृत्वा भूतशुद्धिं मातृकान्यासमाचरेत्॥२६॥

अब पुन: हंस मन्त्र द्वारा उसी मार्ग से (जिस मार्ग से ऊर्ध्वारोहण किया था) वापस

आकर जीव का स्थापन करे। तदनन्तर सभी तत्त्वों को लाकर अपने-अपने स्थान पर स्थापित करे। इस प्रकार भूतशूद्धि करके मातृका-न्यास करे।।२६।।

मात्रालक्षणञ्च—

वामजानूनि तद्धस्तभ्रामणं यावता भवेत्।
कालेन मात्रा सा ज्ञेया मुनिभिर्वेदपारगैः ॥२७॥

अब मात्रा का लक्षण कहा जा रहा है। जितने समय में वाम जानु पर वाम हाथ को एक बार फिराया जाता है, उतने समय को 'मात्रा' कहते हैं।।२७।।

शक्तिविषये तु हंस इति जीवादिकं परमशिवे योजयेत्। ततः आं सोऽहमिति स्वस्थानमानयेत्। 'सोऽहमेवं समाभाष्य जीवं हृदि समानयेदि'ति वचनात् ॥२८॥

किन्तु शक्ति-साधना में हंस मन्त्र से जीव को परमशिव के साथ संयुक्त करे। तदनन्तर 'आं सोहं' मन्त्र से जीव को अपने स्थान पर स्थापित करे; क्योंकि वचन है कि 'सोहं कहकर जीव को हृदय में ले आये'।।२८।।

मुखवृत्तं समुच्चार्य हंसन्तु विपरीतकम्।
उद्धरेत् परमेशानि! विद्येयं त्र्यक्षरी मता ॥२९॥
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोऽयं सर्वकर्माणि साधयेत्।
तेनैव विधिना देवि! स्थिरीकुर्यान्निजां तनूम् ॥३०॥

इति ज्ञानार्णववचनाच्च। मुखवृत्तं तत्स्थानन्यस्तव्यतया 'आं' बीजम् ॥३१॥

भगवान् कहते हैं—हे परमेश्वरि! मुखवृत्त (आं) को उच्चारण करके सोहं कहकर मन्त्रोद्धार होता है। यह आं सोऽहं तीन अक्षरों वाली विद्या है। यही है—प्राणप्रतिष्ठा का मन्त्र। इससे समस्त कर्म साधन करे। हे देवि! इस प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से अपनी देह को स्थिर करना चाहिये। इस प्रकार ज्ञानार्णव में कहा गया है। मुखवृत्त है 'आं' बीज का मुख में न्यास।।२९-३१।।

शूद्रविषये वाराहीतन्त्रे—

हंसाख्यं न स्मरेच्छूद्रो भूतशुद्धौ कथञ्चन।
स्मरणान्नरकं याति दीक्षा च विफला भवेत्।
जीवं तेजोमयं ध्यात्वा नमो मन्त्रेण योजयेत् ॥३२॥

शूद्र के सम्बन्ध में वाराही तन्त्र में कहा गया है कि शूद्र भूतशुद्धि में कदापि हंस नामक मन्त्र का स्मरण न करे; अन्यथा वह नरकगामी होता है तथा उसकी दीक्षा भी

विफल हो जाती है। उसे तो जीव को तेजोमय रूप से ध्यान करके नमो मन्त्र द्वारा परमशिव से युक्त करना चाहिये।।३२।।

विशुद्धेश्वरे—

शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनम्।
अव्ययब्रह्मसंयोगाद् भूतशुद्धिरियं मता ॥३३॥

विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि भूतसमूह के मध्य देहाकार में परिणत भूतसमूह के अव्यय ब्रह्म के संयोग में जो विशुद्धि है, उसे भूतशूद्धि कहते हैं।।३३।।

वाराहीये—

मूलाधारात्ततो जीवं ब्रह्ममार्गेण देशिकः।
हंसेन पुष्करस्थाने परमात्मनि योजयेत् ॥३४॥

ब्रह्ममार्ग = सुषुम्ना।

वाराही तन्त्रानुसार तदनन्तर 'हंस' इस मन्त्र द्वारा मूलाधार से सुषुम्ना नाड़ी से जीव को सहस्रार कमलस्थित परमात्मा से संयुक्त करे।।३४।।

संयोज्य जीवमथ दुर्गममध्यनाड़ीमार्गेण
पुष्करनिविष्टशिवे सुसूक्ष्मे ॥३५॥ इति।

त्रिपुरासारसमुच्चय में कहते हैं कि इसके पश्चात् जीव को दुर्गम मध्य नाड़ीमार्ग से सहस्रार पद्म-स्थित सूक्ष्म शिव के साथ संयुक्त करना चाहिये।।३५।।

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

अथवान्यप्रकारेण भूतशुद्धिर्विधीयते।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम् ॥३६॥
ऐश्वर्याष्टदलोपेतं परवैराग्यकर्णिकम्।
स्वीयहृत्कमलं ध्यायेत्प्रणवेन विकासितम् ॥३७॥
कृत्वा तत्कर्णिकासंस्थं प्रदीपकलिकानिभम्।
जीवात्मानं हृदि ध्यात्वा मूले संचिन्त्य कुण्डलीम्।
सुषुम्नावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत् ॥३८॥

पुरश्चरणचन्द्रिका में कहते हैं कि अन्य प्रकार से भूतशुद्धि कही जा रही है। अपने हृत्कमल के धर्मरूप मूल से समुद्भूत, ज्ञानरूप नाल में सुशोभित, अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यरूप दलयुक्त, परवैराग्यरूप कर्णिकायुक्त ध्यान करे। इस हृदयकमल को प्रणव द्वारा विकसित करके उस पद्मकर्णिका में संस्थित दीपकलिका-तुल्य जीवात्मा का

हृदय में ध्यान करके मूलाधार में कुण्डलिनी का चिन्तन करके सुषुम्ना मार्ग से जीवात्मा को सहस्रार में ले जाकर परमात्मा से जोड़े।।३६-३८।।

अथवा कल्पसूत्रोक्ता भूतशुद्धिः कार्या। यथा—नासापुटौ धृत्वा ॐ मूलशृङ्गाटाच्छिरःसुषुम्णापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा इति मूलाधारस्थकुलकुण्डलिन्या सह स्वहृदयस्थजीवं शिरस्थपरमशिवे योजयेत्।

अब कल्पसूत्रोक्त भूतशुद्धि कहते हैं। दोनों नासापुटों को उँगली से दबाकर ऊपर 'ॐ मूलशृंगाटाच्छिरःसुषुम्णापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा' मन्त्र से मूलाधारस्थ कुलकुण्डलिनी के साथ अपने हृदयस्थ जीव को शिरःस्थित परमशिव के साथ मिलित करे।

ॐ यं लिङ्गशरीरं शोषय शोषय स्वाहा—इति पापशरीरं शोषयेत्।

उपर्युक्त मन्त्र से पापमय लिंगशरीर का शोधन करे।

ॐ रं संकोचशरीरं दह दह स्वाहा—इति पापशरीरं दहेत्।

उपर्युक्त मन्त्र द्वारा पापशरीर को दग्ध करे।

ॐ परमशिव सुषुम्नापथेन मूलशृङ्गाटमुल्लसोल्लस ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हंसः सोऽहं स्वाहेति यथास्थानमानयेत्।

उपर्युक्त मन्त्र द्वारा जीवात्मा प्रभृति को अपने स्थान पर ले आये।

एतत् पाठादपि भूतशुद्धिर्भवति। नक्षत्रविद्यायां भूतशुद्धौ विशेषो वक्तव्यः ॥३९॥

इन मन्त्रों से भी भूतशुद्धि होती है। नक्षत्रविद्या में भूतशुद्धि के सम्बन्ध में विशेष रूप से कहा जायेगा।।३९।।

अथ मातृकान्यासः

अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्री छन्दो मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयोऽव्यक्तं कीलकं मातृकान्यासे विनियोगः॥४०॥

अङ्गन्यासः—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदि मातृका सरस्वतीदेवतायै नमः, गुह्ये व्यञ्जनेभ्यो बीजेभ्यो नमः, पादयोः स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः, सर्वाङ्गे अव्यक्ताय कीलकाय नमः।

ततः करन्यासौ—

अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्।
एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुं।
ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

एवं हृदयादिषु ॥४१॥

अब ऊपर लिखे मन्त्र से मातृका ऋष्यादि न्यास करके ऊपर लिखे मन्त्र से ही मातृका का करन्यास करे। इसी प्रकार हृदय, ललाट, चक्षु, शिखा तथा दोनों करतल में मातृका का अंगन्यास करे।।४०-४१।।

तथा च ज्ञानार्णवे—

अं आं मध्ये कवर्गन्तु इं ईं मध्ये चवर्गकम्।
उं ऊं मध्ये टवर्गन्तु एं ऐं मध्ये तवर्गकम् ॥४२॥
ओं औं मध्ये पवर्गन्तु बिन्दुयुक्तं न्यसेत्प्रिये।
अनुस्वारविसर्गान्तर्य-शवर्गौ सलक्षकौ ॥४३॥
हृदयञ्च शिरो देवि! शिखा च कवचं तथा।
नेत्रमस्त्रं न्यसेद् ङेन्तं नमः स्वाहा क्रमेण तु ॥४४॥
वषट् हुं वौषडन्तञ्च फडन्तं योजयेत् प्रिये।
षडङ्गोऽयं मातृकाया सर्वपापहरः सताम् ॥४५॥

भगवान् कहते हैं कि हे प्रिये! अं तथा आं के मध्य में कवर्ग, इं ईं के मध्य में चवर्ग, उं ऊं के मध्य में टवर्ग, एं ऐं के मध्य में तवर्ग, ओं औं के मध्य में बिन्दुयुक्त पवर्ग का न्यास करे। अनुस्वार तथा विसर्ग के मध्य में ल तथा क्ष-सहित ष तथा शवर्ग का न्यास करना चाहिये। हे देवि! इस न्यास से हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र को ङे विभक्त्यन्त करके नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् तथा फट् का योग क्रमशः अन्त में करता जाय।।४२-४५।।

अथान्तर्मात्रिका

तस्य ध्यानम्—

आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे कण्ठमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोड़शारे द्विदशदशदले द्वादशार्द्धे चतुष्के।
वासान्ते वालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हक्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥४६॥

तदनन्तर ऊपर लिखा मातृका का ध्यान करके अन्तर्मात्रिका का न्यास करे। कण्ठमूल के षोडशदल वाले कमल में अकारादि १६ स्वरों को बिन्दुयुक्त करके (अर्थात् सबके ऊपर बिन्दु लगाये, जैसे—अं) न्यास करे। हृदय के १२ दलों वाले कमल में ककारादि १२ व्यञ्जनों को बिन्दुयुक्त करके न्यास करे। नाभि के दशदल कमल में डकारादि दस वर्ण का बिन्दुयुक्त करके न्यास करे। लिंगमूल के षड्दल कमल में वकारादि छः वर्णों का बिन्दुयुक्त करके न्यास करे। मूलाधार के चतुर्दल कमल में लकारादि चार वर्णों को बिन्दुयुक्त करके न्यास करे। भ्रूमध्य के द्विदल कमल में ह तथा क्ष वर्णद्वय को बिन्दुयुक्त करके न्यास करे।।४६।।

तथा च ज्ञानार्णवे—

द्व्यष्टपत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान् षोडश विन्यसेत्।
द्वादशच्छदहृत्पद्मे कादीन् द्वादश विन्यसेत्।।४७।।

ज्ञानार्णव तन्त्र में कहा गया है कि कण्ठमूल में द्वि + अष्ट = १६ दल कमल में षोडश स्वरों का न्यास करे। द्वादशदल हृत्पद्म में ककारादि १२ वर्णों का न्यास किया जाता है।।४७।।

दशपत्राम्बुजे नाभौ डकारादीन् न्यसेद्दश।
षट्पत्रपद्मे लिङ्गस्थे वकारादीन् न्यसेच्च षट्।।४८।।
आधारे चतुरो वर्णान् न्यसेद् वादीन् चतुर्दले।
हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे द्विदले विन्यसेत् प्रिये।
इत्यन्तर्मातृकां न्यस्य सर्वाङ्गन्यासमाचरेत्।।४९।।

नाभि के दशदल कमल में डकारादि १० वर्ण का न्यास करना चाहिये। लिंगमूल के षड्दल कमल में वकारादि छः वर्ण का न्यास करे। मूलाधार के चतुर्दल कमल में लकारादि ४ वर्णों का न्यास करे। भगवान् कहते हैं कि हे प्रिये! भ्रूमध्यस्थ द्विदल कमल में ह तथा क्ष वर्ण का न्यास करे। इस प्रकार से अन्तर्मातृका का न्यास करके सर्वांग में बाह्य मातृका का न्यास करे।।४८-४९।।

अगस्त्यसंहितायां—

एकैकवर्णमेकैकपत्रान्ते विन्यसेत्प्रिये।
एवमन्तः प्रविन्यस्य मनसाऽतो बहिर्न्यसेत्।।५०।।

अगस्त्यसंहिता में भगवान् कहते हैं कि हे प्रिये! एक-एक पत्र के अन्त में एक-एक वर्ण का न्यास करे। इस प्रकार से मन ही मन आन्तर मातृका का न्यास करके तब बाह्य मातृका का न्यास करे।।५०।।

वैष्णवे तु—

एकैकं वर्णमुच्चार्य मूलाधाराच्छिरोऽन्तकम्।
नमोऽन्तमिति विन्यास आन्तरः परिकीर्त्तितः ॥५१॥

वैष्णव मन्त्र के सम्बन्ध में कहते हैं कि मूलाधार से शिर तक के सभी कमलों में अन्त में नमः लगाकर एक-एक वर्ण का उच्चारण करके जो न्यास होता है, वही आन्तर मातृका न्यास कहलाता है।।५१।।

मूलाधाराच्छिरोऽन्तकमिति यदुक्तं, तदेव विवृणोति अथान्तरित्यादिना ॥५२॥

ग्रन्थों में 'मूलाधार से शिर तक' जो कहा गया है, वही 'अन्तर्मातृका न्यास' शब्द द्वारा इस ग्रन्थ में बताया गया है।।५२।।

अथान्तर्मातृकान्यासो मूलाधारे चतुर्दले।
सुवर्णाभे वशषसचतुर्वर्णविभूषिते ॥५३॥
षड्दले वैद्युतनिभे स्वाधिष्ठानेऽनलत्विषि।
वभमैर्यरलैर्युक्ते वर्णैः षड्भिश्च सुव्रते ॥५४॥

अब मातृका न्यास कहते हैं। हे सुव्रते! मूलाधारस्थ सुवर्ण की आभा वाले व श ष स से विभूषित जो चतुर्दल पद्म है, वहाँ (इन वर्णों का) इनका तथा लिंगमूलस्थ विद्युत के समान प्रभायुक्त अग्नि-कान्तियुक्त व भ म य र ल—इनसे युक्त स्वाधिष्ठान चक्र में इन वर्णों का ध्यान करे।।५३-५४।।

मणिपूरे दशदले नीलजीमूतसन्निभे।
डादिफान्तदलैर्युक्ते बिन्दूद्भासितमस्तकैः ॥५५॥

नाभिमूलस्थ नीलमेघ की शोभा वाले ड ढ ण त थ द ध न प तथा फ वर्णयुक्त, जो कि मस्तक पर बिन्दुयुक्त है, ऐसे दश दल वाले मणिपूर में इन डादि फान्त (जो ड से प्रारम्भ होकर फ तक है) वर्णों का ध्यान करे।।५५।।

अनाहते द्वादशारे प्रवालरुचिसन्निभे।
कादिठान्तदलैर्युक्ते योगिनां हृदयङ्गमे ॥५६॥

हृदयस्थित प्रवाल की कान्ति से युक्त क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ—इन बारह वर्णों का योगिगण द्वारा मनोगम्य अनाहत पद्म में ध्यान करे।।५६।।

विशुद्धे षोडशदले धूम्राभे स्वरभूषिते।
आज्ञाचक्रे तु चन्द्राभे द्विदले हक्षलाञ्छिते ॥५७॥

कण्ठस्थ धूम्रवर्ण षोडश स्वरयुक्त विशुद्ध नामक षोडशदल कमल में अकारादि षोडश स्वर को तथा भ्रूमध्य में चन्द्रमा के समान वर्णयुक्त ह क्ष वर्ण से भूषित आज्ञा पद्म में ह-क्ष का ध्यान करे।।५७।।

सहस्रारे हिमनिभे सर्ववर्णविभूषिते ।
अकथादित्रिरेखात्महळक्षत्रयभूषिते ॥५८॥
तन्मध्ये परबिन्दुञ्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम् ।
एवं समाहितमना ध्यायेन्न्यासोऽयमान्तरः ॥५९॥

मस्तक में हिम (बर्फ) के समान सर्व वर्णविभूषित (जैसे वर्फ में लाल-नीली इत्यादि वर्ण-छवि सूर्य की किरणों में झलकती है) अकथादि रूप तीन रेखा स्वरूप ह ळ क्ष—इन तीन वर्णों से विभूषित सहस्रार पद्म के मध्य में वर्तमान सृष्टि-स्थिति-लयरूप परबिन्दु के समाहित होने का ध्यान करे। इस आन्तर न्यास को 'अर्धमातृका न्यास' कहा जाता है।।५८-५९।।

ततो बाह्यमातृकां ध्यायेत्। यथा—

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलां,
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ॥६०॥

तदनन्तर बाह्य मातृका का ध्यान करे। जैसे कि पचास वर्ण द्वारा विभक्त मुख, बाहु, मध्य तथा वक्षःस्थल, उज्वल मस्तक पर स्थित चन्द्रकला, अतिस्थूल उन्नत स्तनों वाली, दक्षिण ऊर्ध्व हस्तकमल द्वारा (ऊपरी दो हाथों में से दाहिने में) ज्ञान मुद्रा, दाहिने निचले हाथ में अक्षमाला, बाँयें ऊपरी हाथ में सुधा से पूर्ण कलश तथा बाँयें नीचे के हाथ में पुस्तकमुद्रा-धारिणी शुभ्र वर्ण वाली, तीन नेत्रों वाली, वस्त्र-आभूषण तथा माला से सुशोभित वाग्देवता (वाग्देवी) का आश्रय लेता हूँ।।६०।।

एवं ध्यात्वा न्यसेत्। यथा ललाटे—अं नमः अनामिकाभ्याम्। एवं मुखवृत्ते—आं तर्जनीमध्यमानामिकाभिः। चक्षुषोः—इं ईं वृद्धा-नामिकाभ्याम्। कर्णयोः—उं ऊं अंगुष्ठेन। नसोः—ऋं ॠं कनिष्ठाङ्गुष्ठा-भ्याम्। गण्डयोः—ऌं ॡं तर्जनीमध्यमानामिकाभिः। ओष्ठाधरयोः—एं ऐं मध्यमया। दन्तपङ्क्त्योः—ओं औं अनामिकया। ब्रह्मरन्ध्रे—अं मध्य-मया। मुखे—अः अनामिकामध्यमाभ्याम्। दक्षिणहस्तस्य मूलकूर्पर-मणिबन्धाङ्गुलिमूलाङ्गुल्यग्रेषु—कं खं गं घं ङं प्रत्येकं कनिष्ठानामिका-

मध्यमाभिः। वामहस्तस्य तेषु चू ताभिः। दक्षिणस्य पदस्य तेषु—टू ताभिः। वामपदस्य तेषु—तू ताभिः। पार्श्वयोः—पं फं ताभिः। पृष्ठे—बं ताभिः। नाभौ—भं कनिष्ठानामिकामध्यमाङ्गुष्ठाभिः। जठरे—मं सर्वाभिः। हृदये—यं तलेन। दक्षिणबाहुमूले—रं तेन। ककुदि—लं तेन। वामबाहुमूले—वं तेन। हृदादिदक्षिणकरे—शं तेन। हृदादिवामकरे—षं तेन। हृदादिदक्षिणपादे—सं तेन। हृदादिवामपादे—हं तेन। हृदाद्युदरे—ळं तेन। हृदादिमुखे—क्षं तेन ॥६१॥

इस प्रकार ध्यान करके न्यास करे। जैसे—ललाट में मध्यमा तथा अनामिका से अं नमः। इसी प्रकार मुख वृत्त में तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका द्वारा आं नमः। दोनों नेत्रों में वृद्धाङ्गुष्ठ तथा अनामिका से इं नमः तथा ईं नमः। दोनों कानों में अंगुष्ठ द्वारा उं नमः तथा ऊं नमः। दोनों नासिका में कनिष्ठा तथा अंगुष्ठ से ऋं नमः तथा ॠं नमः। दोनों गण्डस्थल में तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका से ऌं नमः तथा ॡं नमः। ओष्ठ में मध्यमा द्वारा एं नमः। अधर में मध्यमा द्वारा ऐं नमः। ऊपरी दाँतों में अनामिका द्वारा ओं नमः। नीचे के दाँतों में अनामिका द्वारा औं नमः। ब्रह्मरन्ध्र में मध्यमा से अं नमः। मुख में अनामिका तथा मध्यमा से अः नमः। दक्षिण हाथ के मूल में, केहुनी में, मणिबन्ध में, अंगुलियों के मूल में तथा आगे क्रमशः तर्जनी, अनामिका, मध्यमा द्वारा कं नमः खं नमः, गं नमः, घं नमः तथा ङं नमः। बाँयें हाथ में भी दक्षिण हाथ की तरह मूल में, केहुनी में, मणिबन्ध में, उँगलियों के मूल में तथा अग्रभाग में क्रमशः तर्जनी, अनामिका तथा मध्यमा द्वारा क्रमशः चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः तथा ञं नमः। दक्षिण पाद के पाँचों भाग में क्रमशः तर्जनी, अनामिका तथा मध्यमा द्वारा टं नमः, ठं नमः, डं नमः, ढं नमः तथा णं नमः। इसी प्रकार क्रमशः उन्हीं उँगलियों से वाम पाद के पाँचों भाग में तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः द्वारा; दक्षिण पार्श्व में (मात्र १ करना है, ५ नहीं) उन्हीं उँगली द्वारा पं नमः, वाम पार्श्व में फं नमः, पीठ में बं नमः, नाभि में कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा तथा अंगुष्ठ से भं नमः, पेट में सभी उँगलियों से मं नमः, हृदय में करतल से यं नमः, दक्षिण बाहुमूल में करतल से रं नमः, ककुद में (पीठ पर गर्दन के नीचे) करतल से लं नमः, वामबाहु के मूल में करतल से वं नमः, हृदय के दाहिनी ओर करतल से शं नमः, हृदय के बाँयीं ओर करतल से षं नमः, हृदयादि दक्षिण पाद में करतल से सं नमः, हृदयादि वाम पाद में करतल से हं नमः, हृदयादि उदर में करतल से ळं नमः, हृदयादि मुख में करतल से क्षं नमः से न्यास करे।।६१।।

सर्वत्र नमोऽन्तेन न्यसेत् ॥६२॥

सभी जगह वर्ण के अन्त में नमः लगाकर न्यास करना चाहिये।।६२।।

अङ्गुलिनियमो यथा तन्त्रे—

ललाटेऽनामिकामध्ये विन्यसेन्मुखपङ्कजे।
तर्जनीमध्यमानामा वृद्धानामे च नेत्रयोः ।।६३।।
अङ्गुष्ठकर्णयोर्न्यस्य कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ नसोः।
मध्यास्तिस्रो गण्डयोश्च मध्यमाञ्चोष्ठयोर्न्यसेत्।।६४।।

तन्त्रानुसार न्यास में उँगलियाँ किस प्रकार रहें, इस सम्बन्ध में कहते हैं कि ललाट में अनामिका तथा मध्यमा से न्यास करे। मुखकमल पर तर्जनी, मध्यमा तथा अंगुष्ठ से; नेत्रद्वय पर अंगुष्ठ तथा अनामिका से, कर्णद्वय पर अंगुष्ठ से, दोनों नासाछिद्रों पर कनिष्ठा तथा अंगुष्ठ से, दोनों गण्डस्थल पर तर्जनी, अनामिका तथा मध्यमा से एवं दोनों ओष्ठ पर मध्यमा से न्यास करे।।६३-६४।।

अनामां दन्तयोर्न्यस्य मध्यमामुत्तमाङ्गके।
मुखेऽनामां मध्यमाञ्च हस्ते पादे च पार्श्वयोः ।।६५।।
कनिष्ठानामिकामध्यास्तान्तु पृष्ठे च विन्यसेत्।
तां साङ्गुष्ठा नाभिदेशे सर्वाः कुक्षौ च विन्यसेत् ।।६६।।

दाँतों की दोनों पंक्तियों का अनामिका से, ब्रह्मरन्ध्र का मध्यमा से, मुखविवर (के बाहर) का अनामिका तथा मध्यमा से, दोनों हाथ, दोनों पैर एवं दोनों पार्श्व तथा पीठ का कनिष्ठा, अनामिका तथा मध्यमा से न्यास करे। नाभि का अंगुष्ठसहित उँगलियों से तथा कोख का समस्त उँगलियों से न्यास करे।।६५-६६।।

हृदये च तलं सर्वमंसयोश्च ककुत्स्थले।
हृत्पूर्वं हस्तपत्कुक्षिमुखेषु तलमेव च ।।६७।।
एताश्च मातृकामुद्राः क्रमेण परिकीर्त्तिताः।
अज्ञात्वा विन्यसेद्यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः ।।६८।।

हृदय का करतल से न्यास करे। ऐसे ही स्कन्ध, ककुत् स्थल, हृदयादि, दोनों पैर तथा कोख का भी न्यास करतल से करना चाहिये। इसे मातृकामुद्रा (यथाक्रम) कहा गया है। ज़ो इस मातृका मुद्रा को जाने विना न्यास करता है, उसका न्यास निष्फल होता है।।६७-६८।।

गौतमीये—

ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः।
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गास्यदोःपत्सन्ध्यग्रकेषु च ।।६९।।

पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेंऽसके।
ककुद्यंसे च हृत्पूर्वपाणिपादयुगे तथा।
जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान् यथाक्रमात् ॥७०॥

गौतमीय तन्त्र में (न्यास के सम्बन्ध में) कहते हैं कि ललाट, मुखवृत्त, दोनों नेत्र, दोनों कान, गण्डस्थलद्वय, दोनों ओठ, दोनों दन्तपंक्ति, मस्तक, मुख, हाथ-पैर का सन्धिस्थान (बाहुमूल, मणिबन्ध, अंगुलिमूल तथा उनका अग्रभाग), दोनों पार्श्व, पीठ, नाभि, उदर, हृदय, दाहिना कंधा, गर्दन, बाँयाँ कन्धा, हृदय से लेकर दो हाथ, दो पैर, पेट तथा मुख में यथाक्रम से मातृका वर्ण से न्यास करे।।६९-७०।।

अथ संहारमातृकान्यासः

अस्य ध्यानम्—

अक्षस्त्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां
वर्णेश्वरीं प्रणमतस्तनभारनम्राम् ॥७१॥

अब संहारमातृका न्यास का ध्यान कहते हैं। श्वेत कमल पर स्थित, स्तनभार से किंचित् झुकी, अरुण नेत्रों वाली, मस्तक पर अर्धचन्द्र से युक्त, त्रिनेत्रा, ऊपर वाले दाहिने हाथ में तीक्ष्ण परशु, नीचे वाले दाहिने हाथ में अक्षमाला, ऊपर वाले बाँयें हाथ में हरिण का शावक, नीचे वाले बाँयें हाथ में पुस्तक-मुद्राधारिणी वर्णेश्वरी देवी को प्रणाम करता हूँ।।७१।।

न्यासस्तु क्षकारादिरकारान्तः। यथा—क्षं नमः हृदादि मुखे इत्यादि ॥७२॥

क्षकार से अकार-पर्यन्त पूर्वोक्त विधि के अनुसार प्रत्येक वर्ण का न्यास करना चाहिये। जैसे हृदयादि मुखे क्षं नमः इत्यादि।।७२।।

अन्यच्च—

ओमाद्यन्तो नमोऽन्तो वा सबिन्दुर्बिन्दुवर्जितः।
पञ्चाशद्वर्णविन्यासः क्रमादुक्तो मनीषिभिः ॥७३॥

इति राघवभट्टः।

राघवभट्ट अन्य प्रकार से कहते हैं—मातृका वर्ण के आदि में 'ॐ' तथा अन्त में 'नमः' लगाकर सबिन्दु अथवा बिन्दुवर्जित पञ्चाशत् वर्ण का क्रम से न्यास करना चाहिये, यह मनीषीगण का सिद्धान्त है।।७३।।

अपरञ्च—

चतुर्द्धा मातृका प्रोक्ता केवला बिन्दुसंयुता।
सविसर्गा सोमया च रहस्यं शृणु कथ्यते ॥७४॥

अब अन्य प्रकार से मातृकान्यास कहते हैं। चार प्रकार की मातृका कही गयी है। केवल मातृका, २. अनुस्वारयुक्त मातृका, ३. विसर्गयुक्त मातृका, ४. अनुस्वार-विसर्गयुक्त ॐ सहित मातृका। अब इनका रहस्य सुनो।।७४।।

विद्याकरी केवला च सोमया भक्तिदायिनी।
पुत्रदा सविसर्गा तु सबिन्दुर्वित्तदायिनी ॥७५॥

केवलरूप प्रथम मातृका विद्या प्रदान करने वाली, द्वितीया अनुस्वारयुक्त मातृका धन प्रदान करने वाली, तृतीया विसर्गयुक्त मातृका पुत्र प्रदान करने वाली तथा चतुर्थी ॐ युक्त मातृका भक्ति देने वाली होती है।।७५।।

एतेन पञ्चदशषोडशस्वरयोर्न्यासे बिन्दुविसर्गास्तत्त्वं नास्ति, वैयर्थ्यादनुच्चा-र्यत्वाच्चेति शङ्का निरस्ता, अत्र सोमयत्वं कल्पकथनेन तादृशवर्णयोर-नुच्चार्यत्वेऽपि ध्यानयोग्यत्वमस्त्येवेति ॥७६॥

पञ्चदश और षोडश स्वरों के न्यास में बिन्दु तथा विसर्ग से अन्त नहीं होता है। जैसे अं तथा अः के पश्चात् अनुस्वार अथवा विसर्ग नहीं लगाया जायेगा। यहाँ यह शंका होती है कि इस प्रकार वह व्यर्थ तथा उच्चारण के अयोग्य तो नहीं हो जायेगा। इसका समाधान यह है कि यहाँ सोमयत्व कल्प कथित होने के कारण तादृश वर्ण अनुच्चार्य होने पर भी उसकी ध्यान-योग्यता है। जैसे अं तथा अः अर्थात् अं अथवा अं वर्ण अनुच्चार्य हैं, तथापि उनमें ध्यानयोग्यता है।।७६।।

श्रीविद्याविषये नवरत्नेश्वरे—

वाग्भवाद्या नमोऽन्ताश्च न्यस्तव्या मातृकाक्षराः।
श्रीविद्याविषये मन्त्री वाग्भवाद्यष्टसिद्धये ॥७७॥

मन्त्रज्ञ साधक आठो सिद्धियों के लिये मातृकावर्ण के प्रारम्भ में 'ऐं' एवं अन्त में 'नमः' लगाना चाहिये। जैसे—ऐं अं नमः, ऐं आं नमः, ऐं रं नमः आदि से मातृका न्यास करना चाहिये।।७७।।

यामले—

भूतशुद्धिलिपिन्यासौ विना यस्तु प्रपूजयेत्।
विपरीतफलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा ॥७८॥

यामलतन्त्र के अनुसार जो विना भूतशुद्धि तथा मातृकान्यास किये पूजन करते हैं, उन्हें देवता भी उसी प्रकार विपरीत फल देते हैं, जैसे कि भक्तिरहित व्यक्ति को पूजा का विपरीत फल मिलता है।।७८।।

सामान्यन्यासे अङ्गुलिनियमस्तु गौतमीये—

मनसा विन्यसेन्न्यासान् पुष्पेणैवाऽथवा मुने।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां वा चान्यथा विफलं भवेत् ।।७९।।

किन्तु गौतमीय तन्त्र में अंगुलि-न्यास का नियम अन्य प्रकार से कहते हैं। यथा—हे मुनिवर! मन ही मन न्यास करे अथवा पुष्प से न्यास करे, किंवा अंगुष्ठ तथा अनामिका (तत्त्वमुद्रा से) से न्यास करे। अन्यथा पूजनादि विफल होता है।।७९।।

विशेषन्यासे तु नायं नियमः। श्यामादिविद्यायां विशेषमातृकान्यासो वक्तव्यः।।८०।।

विशेष न्यास में यह नियम प्रयोज्य नहीं है। श्यामादि-साधना में विशेष मातृकान्यास कहा गया है।।८०।।

अथ प्राणायामः

तत्राङ्गुलिनियमो ज्ञानार्णवे—

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायामः स विज्ञेयः तर्जनीमध्यमे विना ।।८१।।

ज्ञानार्णवतन्त्र में प्राणायाम में अंगुलिनियम कहते हैं कि कनिष्ठा, अनामिका तथा अंगुष्ठ द्वारा नासापुटों को दबाना चाहिये। इसे ही प्राणायाम कहते हैं।।८१।।

प्राणायामस्तु द्विविधः सगर्भो निगर्भश्च यथा—

सगर्भो मन्त्रजापेन निगर्भो मात्रया भवेत् ।।८२।।

मात्रा भूतशुद्धावुक्ता।

प्राणायाम सगर्भ तथा निगर्भ के भेद से दो तरह का होता है। जैसे कहा भी है कि मन्त्रजप के साथ किया गया प्राणायाम सगर्भ प्राणायाम होता है। जहाँ मन्त्रजप के विना मात्रा (कालमान) से प्राणायाम करते हैं, वह निगर्भ प्राणायाम कहलाता है। मात्रा प्रकरण को भूतशुद्धि प्रकरण में बताया जा चुका है।।८२।।

कालीहृदये—

प्राणायामत्रयं कुर्यान्मूलेन प्रणवेन वा।
अथवा मन्त्रबीजेन यथोक्तविधिना सुधीः ।।८३।।

कालीहृदय तन्त्र में कहते हैं कि सुधी व्यक्ति को यथोक्त विधि से मूल मन्त्र से अथवा प्रणव द्वारा अथवा मन्त्रबीजों के द्वारा तीन बार प्राणायाम करना चाहिये।।८३।।

तस्य षोडशबारजपेन वामनासया वायुं पूरयेत्। ततस्तस्य चतुःषष्टिवार-जपेन वायुं कुम्भयेत्। ततस्तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन वायुं दक्षिणनासया रेचयेत्। पुनर्दक्षिणेनापूर्य द्वाभ्यां कुम्भयित्वा वामेन रेचयेत्। पुनर्वामेनापूर्य द्वाभ्यां कुम्भयित्वा दक्षिणेन रेचयेत्। एवं कृते प्राणायामत्रयं सिद्ध्यति। सकृत्कृतैः पूरककुम्भकरेचकैरेकैकप्राणायामस्य सिद्धत्वात् ॥८४॥

(दाहिनी नाक बन्द कर) उस मन्त्र को वाम नासिकाछिद्र से (एक ही बार के पूरक में) १६ बार मन ही मन जपते हुये भीतर वायु को खींचे। तदनन्तर दोनों नासिका को (यथाविधान) उंगलियों से बन्द करके कुम्भकावस्था में उस मन्त्र की भावना (मानसिक जप) ६४ बार करनी होगी। अब वाम नासिकाछिद्र को (यथाविधान) उँगलियों से बन्द करके (एक ही बार के रेचक में) उस मन्त्र की ३२ बार भावना करके दाहिनी नासिकाछिद्र से वायु को बाहर छोड़े। दूसरी बार दाहिनी नासिका द्वारा उसी प्रकार से वायु मन्त्रभावना (१६ बार) के साथ भीतर खींचे, जैसे पहले वाम नासिका से खींचा था। तदनन्तर पूर्वोक्त प्रकार से समन्त्र (मन्त्रसहित) कुम्भक करके अन्त में वाम नासिका द्वारा पूर्ववत् समन्त्र वायु का रेचन करे। पुनः अब उसी प्रकार वाम नासिका से समन्त्र वायु का पूरण करे। समन्त्र कुम्भक करे तथा समन्त्र दक्षिण नासिका द्वारा रेचक करे। इस प्रकार पूरक-कुम्भक तथा रेचक से एक बार प्राणायाम निष्पन्न होता है।।८४।।

सारसमुच्चये—

अमुना विधिना सुमनाः सततं मरुतो विपरीतसुसंयमनम्।
विपरीतमतो विदधीत बुधः पुनरेव तु तद्विपरीतकरम् ॥८५॥

सारसमुच्चय में कहते हैं कि संयतचित्त विद्वान् इस विधि के अनुसार वायु के सम्यक् संयमन से प्राणायाम करे। पहले अनुलोम करे, तदनन्तर उसके विपरीत (विलोम करे) अर्थात् पहले वाम नासिका से पूरक, तदनन्तर कुम्भक, तदनन्तर दाहिनी नासिका से रेचक करना अनुलोम है। तत्पश्चात् दक्षिण नासिका से पूरक, तदनन्तर कुम्भक, तत्पश्चात् वाम नासिका से रेचक—यह विलोम है।।८५।।

अथवा सजपः चतुःपूरकं, षोडश कुम्भकं अष्टौ रेचकं कुर्यात् ॥८६॥

अथवा जपसहित चार बार पूरक, १६ बार कुम्भक तथा ८ बार रेचक करे।।८६।।

तथा च तन्त्रान्तरे—

पूरेयत् षोडशभिर्वायुं धारयेत्तच्चतुर्गुणैः ।
रेचयेत् कुम्भकार्द्धेन अशक्त्या तत्तुरीयतः ।
तदशक्तौ तच्चतुर्थमेवं प्राणस्य संयमः ॥८७॥

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि १६ बार जप द्वारा पूरक प्राणायाम, ६४ बार जप द्वारा वायु का कुम्भक तथा उसके आधा अर्थात् ३२ बार जप द्वारा रेचक प्राणायाम करना चाहिये। अशक्त व्यक्ति चार बार जप द्वारा पूरक, १६ बार जप द्वारा कुम्भक तथा आठ बार जप द्वारा रेचक करे। इस प्रकार से प्राणायाम करना कर्त्तव्य है।।८७।।

अस्य नित्यता 'प्राणायामं विना मन्त्रं पूजने न हि योग्यता' इति तन्त्र-वचनात् ॥८८॥

प्राणायाम के विना मन्त्रजप तथा पूजा का अधिकार ही नहीं है। इसीलिये प्राणायाम की नित्यता (आवश्यक कर्त्तव्यरूप) है।।८९।।

गोपाले विशेषो वक्ष्यते। योगकरणे पुनर्मात्रया तावत्या प्राणायामः ॥८९॥

गोपाल-साधन के विषय में विशेष रूप से कहा जायेगा। अष्टाङ्ग योग के अन्तर्गत पूर्वोक्त परिमाण संख्या द्वारा प्राणायाम न करके संख्या-समसंख्यक मात्रा द्वारा प्राणायाम किया जाना कर्त्तव्य है।।८९।।

ताराप्रदीपे—

प्राणायामैः कृतैः शश्वन्नित्यं षोडशभिः पुनः ।
दैनन्दिनञ्च यत् पापं तत् सर्वं नश्यति ध्रुवम् ॥९०॥

जो दैनन्दिन पाप उत्पन्न होता है, वह सर्वदा नित्य किये जाने वाले १६ संख्यक प्राणायाम से निवृत्त हो जाता है। यह ताराप्रदीप ग्रन्थ में कहा गया है। (प्राणायाम = १ पूरक, कुम्भक तथा रेचक मिलाकर एक प्राणायाम। इस प्रकार १६ करना होगा)।।९०।।

परोपतापजं पापं परद्रव्यापहारजम् ।
परस्त्रीमैथुनोत्पन्नं प्राणायामैः शतैर्हरेत् ॥९१॥

साधक द्वारा दूसरों को पीड़ा पहुँचाना, दूसरे के धन का अपहरण, परस्त्रीगमन इत्यादि का पाप १०० प्राणायाम से समाप्त हो जाता है।।९१।।

महापातकजातानि ब्रह्महत्याकृतानि च ।
सर्वाण्येव प्रदह्यन्ते प्राणायामैश्चतुःशतैः ॥९२॥

महापातक से उत्पन्न पाप, ब्रह्महत्या-जनित पाप—यह सभी ४०० प्राणायाम द्वारा दग्ध हो जाता है।।९२।।

अथ पीठन्यासः

ॐ आधारशक्तये नमः। एवं प्रकृतये, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय, कल्पवृक्षाय—एतत् सर्वं हृदि। दक्षिणस्कन्धे—धर्माय। वामस्कन्धे—ज्ञानाय। वामोरौ—वैराग्याय। दक्षिणोरौ—ऐश्वर्याय। मुखे—अधर्माय। वामपार्श्वे—अज्ञानाय। नाभौ—अवैराग्याय। दक्षिणपार्श्वे—अनैश्वर्याय। पुनर्हृदि—अनन्ताय, पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, सं सत्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इति न्यसेत् ॥९३॥

अब पीठन्यास बताया जा रहा है। प्रथमतः हृदय में मूलोक्त (ऊपर लिखे) ॐ आधारशक्तये नमः इत्यादि मन्त्र का न्यास करे। दक्षिण स्कन्ध में ॐ धर्माय नमः, वामस्कन्ध में ॐ ज्ञानाय नमः, वाम ऊरु में ॐ वैराग्याय नमः, दक्षिण ऊरु में ॐ ऐश्वर्याय नमः, मुख में ॐ अधर्माय नमः, वाम पार्श्व में ॐ अज्ञानाय नमः, नाभि में ॐ अवैराग्याय नमः, दक्षिण पार्श्व में ॐ अनैश्वर्याय नमः—इस प्रकार न्यास करके पुनः हृदय में ऊपर लिखे अनुसार अनन्त से लेकर ज्ञानात्मने नमः-पर्यन्त न्यास करे।।९३।।

यथा शारदायाम्—

अंसोरुयुग्मयोर्विद्वान् प्रादक्षिण्येन देशिकः।
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं क्रमतः सुधी।
मुखपार्श्वनाभिपार्श्वेष्वधर्मादीन् प्रकल्पयेत् ॥९४॥

पुनः शारदातिलक में कहते हैं कि मन्त्रोपदेष्टा पण्डित क्रमानुसार आधारशक्ति-प्रभृति का न्यास करके दक्षिणावर्त्त क्रम से दो स्कन्ध तथा दो ऊरु में अर्थात् दक्षिण स्कन्ध से लेकर दक्षिण ऊरु-पर्यन्त चार स्थानों पर क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य का न्यास करे। तदनन्तर दक्षिणावर्त्त क्रम से मुख, वाम पार्श्व, नाभि तथा दक्षिण पार्श्व में यथाक्रमेण अधर्म-प्रभृति (अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य) का न्यास करे।।९४।।

पुनः शारदायाम्—

अनन्तं हृदये पद्मं तस्मिन् सूर्येन्दुपावकान्।
एषु स्वस्वकलां न्यस्य नामाद्यक्षरपूर्वतः।
सत्त्वादीन् त्रिगुणान्न्यस्य तथैवात्र गुरूत्तमः ॥९५॥

आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमेव च।
ज्ञानात्मानं प्रविन्यस्य न्यसेत् पीठमनुस्ततः ॥९६॥

एषां पौर्वापर्यप्रमाणं पीठपूजावसरे वक्तव्यम्।

तीन मण्डलों (सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल तथा अग्निमण्डल) में नाम के आदि अक्षर के साथ अपनी-अपनी कला का न्यास करे अर्थात् प्रथमत: 'अं' बीज से सूर्यमण्डल का न्यास करके उस स्थान में नाम के आदि में स्थित क-डादि अक्षर के साथ लगाये। जैसे—ॐ कं डं तपिन्यै नम:। इस प्रकार से तपिन्यादि (सूर्य की) द्वादश कला का न्यास करे। इसी प्रकार ॐ अं अमृतायै नम: (चन्द्रमा की कला) इत्यादि से चन्द्र की १६ कला का एवं ॐ षं धूम्रार्चिषे नम: इत्यादि प्रकार से अग्नि की १० कला का न्यास करे। इसी प्रकार नाम के आदि अक्षर-सहित ॐ सत्त्वाय नम: इत्यादि प्रकार से तीनों गुणों का न्यास करे। श्रेष्ठ गुरु हृदय में इसी प्रकार से ॐ आत्मने नम: इत्यादि प्रकार से आत्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा का न्यास करके उसके पश्चात् पद्म के आगे के अष्टदल में और मध्य में नौ पीठशक्ति का न्यास करे। इन सबका पौर्वापर्य प्रमाण पीठपूजा का वर्णन करते समय (इसी ग्रन्थ में) बताया जायेगा।।९५-९६।।

ततो हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु तत्तत् कल्पोक्तपीठशक्तिर्मध्ये पीठमनूंश्च न्यसेत् ॥९७॥

विश्वसारे—

ओमादित्वं ङेयुतञ्च नमोऽन्तञ्च यथास्थिति।
विधिना विन्यसेत् पूर्वं शङ्करस्य वचो यथा॥९८॥

एतद्वचनं चतुर्थीनम:पदनियतन्यासमात्रे प्रणवादित्वविधायकम्। तेन कराङ्गन्यासमातृकान्यासवर्णन्यासादौ नास्य विषयत्वम् ॥९९॥

तत्पश्चात् पद्म के पूर्वादि केशर में (पूर्वादि दिशा के केशरों में) उन-उन देवता की पीठशक्ति तथा मध्य में पीठमन्त्रों का न्यास करे। विश्वसार तन्त्र में कहते हैं कि चतुर्थी विभक्ति-युक्त ओं नम: अन्त जैसे स्थित है, उसी प्रकार ओंकार को आदि में रखकर विधिपूर्वक शंकर के वचनानुसार न्यास करे।

यह वचन चतुर्थी विभक्ति ओं नम: नियत (णन्त) न्यास मात्र में आदि में प्रणवदान का विधायक है। अत: करन्यास, अङ्गन्यास, मातृकान्यास, वर्णन्यासादि इसका विषय नहीं है अर्थात् इन सभी न्यास के आदि में ॐकार नहीं देना चाहिये।।९७-९९।।

अथ ऋष्यादिन्यासः

तन्त्रे—

महेश्वरमुखाज्ज्ञात्वा यः साक्षात्तपसा मनूम्।
संसाधयति शुद्धात्मा स तस्य ऋषिरीरितः।
गुरुत्वान्मस्तके चास्य न्यासस्तु परिकीर्त्तितः ॥१॥

अब ऋष्यादि न्यास कहते हैं। तन्त्र में ऋषि का यह लक्षण है—जो प्रथमतः तपस्या द्वारा महेश्वर के मुख से मन्त्र जानकर उस मन्त्र को सिद्ध करते हैं, वे विशुद्धात्मा व्यक्ति ही उस मन्त्र के ऋषि होते हैं। ऋषि को ही उस मन्त्र का गुरु भी कहते हैं (अर्थात् जो उस मन्त्र की दीक्षा दे सके); अतः उन ऋषि का उस मन्त्र में न्यास कहा जाता है।।१।।

सर्वेषां मन्त्रतत्त्वानां छादनाच्छन्द उच्यते।
अक्षरत्वात्परत्वाच्च मुखे छन्दः समीरितम् ॥२॥

जो मन्त्र के तत्त्वों का आच्छादन करे, वह छन्द होता है। छन्दःस्वरूप अक्षर मुख से उच्चरित होता है और वह उसी प्रकार श्रेष्ठ होता है, जैसे मनुष्य का मस्तक उसके शरीर में सर्वश्रेष्ठ होता है। इसीलिये छन्दोन्यास मुख में किया जाता है।।२।।

सर्वेषामेव जन्तूनां भाषणात् प्रेरणात्तथा।
हृदयाम्भोजमध्यस्था देवता तत्र तां न्यसेत् ॥३॥

हृदयकमल में अवस्थित देवता समस्त प्राण का प्रेरण तथा भाषण (उच्चारण) कराते हैं; क्योंकि उनके प्रेरण से ही प्राण मुख से शब्दरूपेण उच्चरित होता है; इसीलिये देवता का न्यास हृदय में होता है।।३।।

ऋषिच्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रः फलभाग्भवेत्।
दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम् ॥४॥

जो ऋषि, छन्द तथा देवता को नहीं जानता, उसे मन्त्र का फल नहीं मिलता। जो विनियोग नहीं जानता, उसके पास मन्त्र दुर्बल हो जाता है।।४।।

तन्त्रान्तरे—

ऋषिर्न्यसेन्मूर्ध्नि देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे।

देवतां हृदये चैव बीजन्तु गुह्यदेशके।
शक्तिस्तु पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत्॥५॥

अन्य तन्त्र में कहा है कि मस्तक में ऋषि का न्यास करे। मुखकमल में छन्द का न्यास करे। हृदय में देवता का, गुह्य में मन्त्रबीज का, दोनों पाद (पैर) में मन्त्र की शक्ति का तथा सर्वाङ्ग में कीलक का न्यास करे।।५।।

ततस्तत्तन्मन्त्रोक्तन्यासान् कुर्यात्। यथा कुलार्णवे—

आगमोक्तेन विधिना नित्यं न्यासं करोति यः।
देवताभावमाप्नोति मन्त्रसिद्धिः प्रजायते॥६॥
यो न्यासकवचच्छन्नो मन्त्रं जपति तं प्रिये।
विघ्नाः दृष्ट्वा पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः॥७॥

तदनन्तर ऋष्यादि न्यास करने के उपरान्त उन पूज्य देवताओं का न्यास करे। कुलार्णव तन्त्र में कहते हैं कि जो व्यक्ति आगम-कथित विधि के अनुसार सर्वदा न्यास करता है, उसे देवस्वरूप की प्राप्ति होती है एवं मन्त्रसिद्धि भी मिलती है।

भगवान् कहते हैं—हे प्रिये! जो व्यक्ति (आगमोक्त) न्यास तथा कवच द्वारा आवृत (सुरक्षित) होकर मन्त्र-जप करता है, उसे देखकर विघ्न वैसे ही भाग जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर हाथी पलायन कर जाते हैं।।६-७।।

अकृत्वा न्यासजालं यो मूढत्वात्प्रजपेन्मनूम्।
सर्वविघ्नैः प्रबाध्यः स्याद् व्याघ्रैर्मृगशिशुर्यथा॥८॥

जो व्यक्ति मूढता के कारण विना न्यास किये मन्त्र-जप करता है, वह उसी प्रकार विघ्नों से पीड़ित होता है, जैसे हरिण का बच्चा व्याघ्र को देखकर पीड़ित होता है।।८।।

करन्यासप्रमाणन्तु यामले—

अङ्गुलीव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च॥९॥

सामान्यपूजायां वक्ष्यते। तत्र मन्त्रश्चाङ्गन्यासमन्त्रवद् गृह्यः, षडङ्ग-कर्त्तव्यात्वाविशेषादिति। अङ्गन्यासे अङ्गुलिनियमस्तु—'त्रिद्वेकदशकत्रिद्विसंख्याया शैलसम्भवे!। अङ्गुलीनामि'ति वचनात्। इति सर्वसाधारणम्॥१०॥

तत्पश्चात् करन्यास करना चाहिये। यामल के अनुसार अङ्गुलिन्यास तथा व्यापक न्यास और हृदयादि न्यास कर्त्तव्य है। सामान्य पूजा में यह न्यास कहा गया है।

अंगन्यास में अंगुलि-नियम बताते हुये भगवान् कहते हैं—हे शैलपुत्रि! अंगुलि

में से तीन, दो, एक, दश, तीन तथा दो द्वारा (हृदय-प्रभृति यथास्थान में) न्यास करे। यह नियम सर्वसाधारण है।।९-१०।।

यामले—

हृदयं मध्यमानामातर्जनीभिः स्मृतं शिवः ।
मध्यमातर्जनीभ्यां स्यादङ्गुष्ठेन शिखा स्मृता ।।११।।
दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम् ।
प्रोक्ताङ्गुलिभ्यामन्त्रं स्यादङ्गक्लृप्तिरियं मता ।।१२।।

तिसृभिस्तर्जनीमध्यमानामाभिः।

यामल में अंगुलिनियम कहते हैं—मध्यमा, अनामा तथा तर्जनी द्वारा हृदयन्यास; मध्यमा तथा तर्जनी से शिरोन्यास एवं अंगुष्ठ से शिखान्यास करना चाहिये।

दश अंगुलि से कवच न्यास, मध्यमा-तर्जनी तथा अनामिका से नेत्रन्यास एवं तर्जनी और मध्यमा से अंगन्यास होता है। इसे अंगन्यास कहते हैं।।११-१२।।

तर्जनीमध्यमानामा प्रोक्ता नेत्रत्रये क्रमात् ।
यदि नेत्रद्वयं प्रोक्तं तदा तर्जनीमध्यमे ।।१३।।

इति भट्टधृतवचनात्।

राघवभट्ट कहते हैं कि तीनों नेत्रों के अंगुलिन्यास में यथाक्रमेण तर्जनी, मध्यमा, अनामिका का उपयोग होता है। जहाँ दो नेत्रों की बात कही गयी है, वहाँ नेत्र के अंगुलिन्यास में तर्जनी तथा मध्यमा का उपयोग करना चाहिये।।१३।।

हृदयादिषु विन्यसेदङ्गमन्त्रांस्ततः सुधीः ।
हृदयाय नमः पूर्वं शिरसे वह्निवल्लभा ।।१४।।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम् ।
नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमात् ।
षडङ्गमन्त्रानित्युक्तान् षडङ्गेषु नियोजयेत् ।।१५।।
पञ्चाङ्गानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रमनुं त्यजेत् ।
अङ्गहीनस्य मन्त्रस्य स्वेनैवाङ्गानि कल्पयेत्।।१६।।

इति शारदावचनात् ।

शारदातिलक ग्रन्थ में कहा गया है कि तदनन्तर सुधी साधक हृदय, मस्तक, शिखा, बाहुद्वय, नेत्रत्रय तथा करतल में अंगन्यास मन्त्रों का न्यास करे। इसमें पहले हृदयमन्त्र है—हृदयाय नमः। मस्तक का मन्त्र है—शिरसे स्वाहा। शिखा का मन्त्र

है—शिखायै वषट्। कवच-मन्त्र है—कवचाय हुं। नेत्र का मन्त्र है—नेत्रत्रयाय वौषट्। अस्त्रमन्त्र है—अस्त्राय फट्। इस क्रम से उक्त षडङ्ग मन्त्रों का हृदयादि छः अंगों में क्रमशः न्यास करे।

जिस मन्त्र के पाँच अंग हैं, उसमें नेत्रमन्त्र का त्याग करे (अर्थात् नेत्रन्यास न करे)। जिस मन्त्र में देवता का अंगमन्त्र नहीं है, वहाँ अपने अंगमन्त्र की कल्पना करे (अपने नामबीज द्वारा अंगमन्त्र की कल्पना करे)।।१४-१६।।

अत्र ह्रस्वनिर्देशान्न्यासे कवचाय हुमिति सर्वत्र ह्रस्वो निर्देश्यः। विचारयिष्यते चेदमधिकं नक्षत्रविद्याप्रकरणे ॥१७॥

इस अंगन्यास मन्त्र में 'हुम्' रूप से ह्रस्व मात्रा का प्रयोग है। अतः सर्वत्र ह्रस्व का ही निर्देश होगा। नक्षत्रविद्या प्रकरण में इसे विस्तार से कहा जायेगा। विष्णुमन्त्र के विषय में अंगन्यास में इस अंगुलिनियम को कहा जा रहा है।।१७।।

अनङ्गुष्ठा ऋजवो हस्तशाखा भवेन्मुद्रा हृदये शीर्षके च।
अधोऽङ्गुष्ठा खलु मुष्टिः शिखायां करद्वन्द्वाङ्गुलयोर्वर्मणि स्युः ॥१८॥
नाराचमुष्ट्युद्धतबाहुयुग्मकाङ्गुष्ठतर्जन्युदितो ध्वनिस्तु।
विष्वग्विषक्तः कथिताऽस्त्रमुद्रा यत्राक्षिणी तर्जनीमध्यमे च।
नेत्रत्रयं यत्र भवेदनामा षडङ्गमुद्रा कथिता यथावत् ॥१९॥

हृदय तथा मस्तक के अंगन्यास में अंगुष्ठ-सहित सरल कराङ्गुलि मुद्रा होगी। शिखा के न्यास में अधोङ्गुष्ठ मुष्टि बनाकर मस्तक के चारो ओर तर्जनी तथा अंगुष्ठ से चुटकी बजाना होगा। जहाँ उपास्य देवता के दो नेत्र हैं, वहाँ उपासक अपने नेत्रों का न्यास तर्जनी तथा मध्यमा से करे। जहाँ उपास्य देवता को त्रिनेत्र हैं, वहाँ उपासक तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका से न्यास करे। यही षड़ङ्ग मुद्रा कही गयी है।।१८-१९।।

ततो व्यापकन्यासं नवधा सप्तधा पञ्चधा त्रिधा वा कुर्यात्। 'नवधा सप्तधा वापि मूलेन पञ्चधा त्रिधा' इति भैरवतन्त्रवचनात्। नवधाकरणे शिरस्तः पादान्तं पादतः शिरोऽन्तम्। एवं चतुर्धा सप्तधाकरणे तादृशम्। त्रिधा पञ्चधाकरणे तादृशम्। द्विधा त्रिधाकरणे तादृशमेकधा हृदादिमुखान्तन्तु शेषे एकधा सर्वत्रैव। शतधाकरणे तु तादृशं पञ्चाशद्वारं हृदादिमुखान्तं नास्तीति व्यापकन्यासः ॥२०॥

तत्पश्चात् नौ बार अथवा सात बार, पाँच बार अथवा तीन बार व्यापक न्यास करना चाहिये, जैसा कि भैरवतन्त्र में कहा गया है। नौ बार व्यापक न्यास जहाँ हो, वहाँ शिर से पादान्त तक तथा पादान्त से शिर के अन्तिम भाग तक न्यास करे (यह एक न्यास

हुआ)। इसी प्रकार चार बार अथवा सात बार करना चाहिये। तीन बार तथा पाँच बार तक में भी यही नियम है। दो अथवा तीन बार करने में भी यही नियम है। इसी तरह एक बार (सर्वान्त में) हृदय से मुख-पर्यन्त न्यास करे। जहाँ १०० बार न्यास करना हो, वहाँ इस प्रकार ५० बार व्यापक न्यास किया जाना चाहिये। हृदय से मुखान्त तक का न्यास व्यापक न्यास नहीं होता।।२०।।

ततस्तत्तत् कल्पोक्तमुद्रां प्रदर्श्य ध्यानं कृत्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा हृदये मूलदेवतां मानसैरुपचारैः पूजयेत्। यथा सनत्कुमारीये—'अकृत्वा मानसं यागं न कुर्याद् बहिरर्चनम्' इति ॥२१॥

तदनन्तर उस-उस प्रकार से कल्पोक्त मुद्रा प्रदर्शित करके ध्यान करे। अपने मस्तक पर पुष्प चढ़ाकर अपने हृदय में मूल देवता का मानस उपचार द्वारा पूजन करे। सनत्कुमारीय तन्त्र में कहा भी गया है कि विना मानस पूजन किये बाह्य पूजन नहीं करना चाहिये।।२१।।

तत्प्रकारस्तु हृत्पद्ममध्ये देवीं विभाव्य कुण्डलिनीपात्रस्थेन सहस्रारामृतस्थेन पाद्यं देव्याश्चरणे दद्यात्। ततो मनोरूपमर्घ्यं दत्त्वा सहस्रदलपद्मभृङ्गारगलित-परामृतजलेनाचमनीयं मुखे। पञ्चविंशतितत्त्वेन गन्धं दद्यात्। ततः अहिंसां विज्ञानं क्षमां दयाममलोभममोहममात्सर्यममायामनहङ्कारमरागमद्वेष-मिन्द्रियाणि दश च इत्येतानि पुष्पाणि दद्यात्। ततो वायुं धूपं तेजोरूपं दीपं अम्बरात्मकं चामरं सूर्यात्मकं दर्पणं चन्द्रात्मकं छत्रं नक्षत्रात्मकं मेखलाम् आनन्दात्मकमुज्ज्वलहारं अनाहतध्वनिमयीं घण्टां निवेद्य सुधारसाम्बुधिं मांसपर्वतञ्च दद्यात् ॥२२॥

उस मानस पूजा को कहते हैं। हृदय कमल के मध्य में देवी की भावना करके कुण्डलिनीरूप पात्रस्थित सहस्रार से क्षरित अमृतरूप पाद्य (जल) देवी के चरणों में प्रदान करे। तदनन्तर अपने मन की अर्घ्यरूप से कल्पना करके अर्घ्यदान करे और सहस्रदल पद्म से क्षरित परामृत जल द्वारा आचमन करे (कल्पना करे)। चौबीस तत्त्वों को (साधक-देहस्थित तत्त्व) भगवती को समर्पित करे। इसके अनन्तर अहिंसा, विज्ञान, क्षमा, दया, अलोभ, अमोह, अमात्सर्य, अमाया, अनहंकार, अराग, अद्वेष तथा १० इन्द्रियों को पुष्परूपेण देवी को अर्पित करना चाहिये। इसके पश्चात् वायु को धूपरूप से, तेज को दीपरूप से, आकाश को चामररूप से, सूर्य को दर्पणरूप से, चन्द्र को छत्ररूप से, नक्षत्र को करधनीरूप से, आनन्द को उज्ज्वल हाररूप से, अनाहत ध्वनि को घण्टारूप से भगवती को निवेदित करके मनःकल्पित सुधारस को अम्बुधिरूप से प्रदान करते हुये एवं मांसपर्वत प्रदान करे।।२२।।

ततश्च—

मनोनर्त्तकसत्तालैः शृङ्गारादिरसोत्तरैः।
नृत्यगीतैश्च वाद्यैश्च तोषयेत् परमेश्वरीम्॥२३॥

तदनन्तर मनोरूप नर्त्तक (कल्पना करके) के उत्तम तालसमूह के साथ-साथ, शृङ्गारादि रसपूर्ण नृत्य, गीत तथा वाद्यों से देवी परमेश्वरी को सन्तुष्ट करे।।२३।।

एवं सम्पूज्य मानसं जपं कृत्वा मनसैव समर्पयेत्। मानसपूजायां नैवेद्यं न देयम्। यथा शारदायां—'विना नैवेद्यगन्धाद्यैरुपचारैः समर्चयेत्'। इति मानसपूजा॥२४॥

इस प्रकार मानस पूजन-जप करके उस सबका मन ही मन देवी को समर्पण करे। इस पूजन में नैवेद्य नहीं देना चाहिये। शारदातिलक में कहा है कि मानसपूजा में विना नैवेद्य-गन्धादि के उपचार समर्पित करना चाहिये। यही मानस पूजा होती है।।२४।।

अथार्घ्यस्थापनम्

तत्र पात्रनियमः तन्त्रान्तरे—

पात्रं काञ्चनकाचरुप्यजनितं मुक्ताकलापोद्भवं
विश्वामित्रमयञ्च कामदमिदं हैमं प्रियं स्फाटिकम्।
ताम्रं प्रीतिदभीष्टसिद्धिजनकं श्रीनारिकेलोद्भवं
कालापं स्फुटमन्त्रसिद्धिजनकं मुक्तिप्रदं मौक्तिकम्॥२५॥

अब विशेष अर्घ्य-स्थापन बताया जाता है। तन्त्रान्तर में इसका पात्रनियम इस प्रकार है—काञ्चन, काच, चाँदी-निर्मित पात्र, मुक्ताकलापकृत पात्र, कामप्रद विश्वामित्र पात्र (नारियल), स्वर्णपात्र, स्फटिक पात्र एवं ताँबा का पात्र प्रसन्नता एवं इष्टसिद्धि का जनक; नारियल पात्र (नारियल पात्र दो बार कहा गया) प्रत्यक्ष मन्त्रसिद्धि प्रदान करने वाला एवं मुक्ता का पात्र मुक्ति प्रदान करने वाला होता है।।२५।।

नवरत्ने च—

नरपात्रं महेशानि! विज्ञेयञ्चोत्तमोत्तमम्।
नारिकेलाभिधं देवि! ज्ञेयञ्चोत्तमकल्पकम्॥२६॥
रत्नपात्रञ्च सुश्रोणि! ज्ञेयञ्चोत्तममध्यमम्।
मध्यमोत्तमकं विश्वं ब्रह्मवृक्षजमेव च।
कल्पं सुमध्यमं प्रोक्तं मृण्मयं कल्पमाधमम्॥२७॥

नवरत्न ग्रन्थ में भगवान् कहते हैं—हे देवि महेशानि सुश्रोणि! नरपात्र (नरमुण्ड) सर्वोत्तम है। नारिकेल का पात्र उत्तम है। रत्नपात्र उत्तम में मध्यम (कुछ कम) है।

पलाश का पात्र उससे भी कम उत्तम है एवं मिट्टी का पात्र अधम है।।२६-२७।।

वश्याकर्षणकर्माणि हेमपात्रेषु शोभने! ।
शान्तिके पौष्टिके चापि राजतं कारयेत्प्रिये ॥२८॥
लौहपात्रं विजानीयान्मारणोच्चाटने तथा ।
स्तम्भकार्येषु पाषाणं विद्वेषे लौहमृण्मयम् ॥२९॥

भगवान् कहते हैं कि हे शोभने! हे प्रिये! वश्यकर्म (वशीकरण) तथा आकर्षण कर्म में हेमपात्र (स्वर्णपात्र) में विशेषार्घ्य-स्थापन किया जाता है। मारण तथा उच्चाटण कार्य में विशेषार्घ्य का लौहपात्र में स्थापन किया जाता है। स्तम्भन कार्य में पाषाणपात्र में तथा विद्वेषण कार्य में लौह पात्र अथवा मिट्टी के पात्र में विशेषार्घ्य-स्थापन करना चाहिये।।२८-२९।।

सर्वकार्येषु कर्त्तव्यं विश्वामित्रञ्च सुव्रते! ।
कुलोत्सादनकार्येषु काचपात्रं विशिष्यते ॥३०॥

हे सुव्रते! समस्त कार्य में विश्वामित्र पात्र (नारिकेल) में विशेषार्घ्य स्थापित करना चाहिये। किसी के कुल का छेदन करने के कार्य में काचपात्र का विशेष रूप से उपयोग करना चाहिये।।३०।।

कांस्यपात्रं विजानीयान्मन्त्राराधनकर्मणि ।
नरपात्रस्तु गृह्णीयाद् भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३१॥
दृष्ट्वाऽर्घ्यपात्रं देवेशि! ब्रह्माद्याः देवताः सदा ।
नृत्यन्ति सर्वे योगिन्यः प्रीताः सिद्धिं ददत्यपि ॥३२॥

मन्त्राराधन कर्म में कांस्यपात्र प्रशस्त माना गया है। भुक्ति तथा मुक्ति की कामना में भुक्ति (भोग) तथा मोक्ष देने वाला नरकपाल पात्र उपयोग में लाना चाहिये। हे देवेशि! ब्रह्मा आदि अर्घ्यपात्र को देखकर (प्रसन्न हो) नृत्यरत हो जाते हैं एवं समस्त योगिनीगण प्रसन्न होकर सिद्धि प्रदान करती हैं।।३१-३२।।

गौतमीये—

ताम्रपात्रन्तु विप्रर्षे! विष्णोरतिप्रियं मतम् ।
तत्रैव सर्वपात्राणां मुख्यः शङ्खः प्रकीर्त्तितः ॥३३॥
मृत्पात्रञ्च तथा प्रोक्तं स्वर्णं वा राजतं तथा ।
पञ्चपात्रं हरेः शुद्धं नान्यत्तत्र नियोजयेत् ॥३४॥

गौतमीय तन्त्र में भगवान् कहते हैं कि हे विप्र! ताम्रपात्र विष्णु को अत्यन्त प्रिय

है। अर्घ्य-स्थापन के लिये समस्त पात्रों में शङ्खपात्र मुख्य कहा गया है। मिट्टी का पात्र, स्वर्णपात्र अथवा चाँदी का पात्र भी अर्घ्य-स्थापनार्थ मुख्य कहा गया है।।३३-३४।।

अर्घ्यस्य त्रीणि पात्राणि पाद्यस्यापि त्रयं भवेत्।
तथैवाचमनीयानि पात्राणि च विभागशः।
तथा करणदौर्बल्यादेकमेकं प्रशस्यते ॥३५॥

गौतमीय तन्त्र में पात्र के सम्बन्ध में कहते हैं कि अर्घ्य के तीन पात्र होते हैं। पाद्य के भी तीन पात्र होते हैं। आचमनीय पात्र भी विभाग-क्रम से अलग-अलग होते हैं। यदि इस प्रकार से अलग-अलग पात्र न कर सके तब एक ही पात्र में भी समस्त कृत्य किया जा सकता है।।३५।।

किन्तु सामान्यार्घ्यविशेषार्घ्यद्वयस्यावश्यकत्वम् ॥३६॥

किन्तु सामान्य अर्घ्य तथा विशेष अर्घ्य के लिये अलग-अलग पात्र (दो पात्र) लेना आवश्यक है।।३६।।

यथा नवरत्नेश्वरे—

एकपात्रं न कर्त्तव्यं यदि साक्षान्महेश्वरः।
मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति आपदश्च पदे पदे।
इह लोके दरिद्रः स्यान्मृते च पशुतां व्रजेत् ॥३७॥

जैसे नवरत्नेश्वर ग्रन्थ में कहते हैं कि यदि साधक साक्षात् महेश्वर ही क्यों न हों, तथापि उनको भी एक अर्घ्य पात्र से काम नहीं लेना चाहिये। इससे मन्त्र प्रतिकूल होकर चले जाते हैं। प्रत्येक पग-पग पर आपत्ति आती है। इस लोक में दरिद्रता आती है और मृत्यु के अनन्तर पशुत्व प्राप्त होता है।।३७।।

पुरश्चरणचन्द्रिकायां—

एकस्मिन्नथवा पात्रे पाद्यादीनि प्रकल्पयेत्।

इति तु पात्रान्तराप्राप्तौ। तथा—

सर्वत्रैव प्रशस्तोऽजः शिवसूर्यार्चनं विना।

अब्जः = शङ्खः। कालिकापुराणे–'आसनञ्चार्घ्यपात्रञ्च भग्नमासादयेन्न यत्' ॥३८॥

पुरश्चरणचन्द्रिका में कहते हैं कि एक पात्र में पाद्य-प्रभृति स्थापन करे; किन्तु अन्य पात्र की अप्राप्ति के समय ऐसा करे (जहाँ अन्य पात्र हो, वहाँ एक पात्र से काम न ले)। राघव भट्ट के वचनानुसार शिव तथा सूर्य-पूजा के अतिरिक्त समस्त पूजनादि में

शङ्ख में अर्घ्य-स्थापन करे। कालिकापुराण में कहा है कि जो आसन तथा अर्घ्यपात्र छिन्न तथा भग्न हो, उसकी पूजन में स्थापना नहीं करनी चाहिये।।३८।।

अथ स्थापनपरिपाटी

स्ववामे भूमौ त्रिकोणमण्डलं कृत्वा, तदुपरि त्रिपदिकामारोप्य, फडिति शङ्खं प्रक्षाल्य, तदुपरि संस्थाप्य नमः इति मन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतदूर्वादि तत्र निक्षिप्य, तत् पात्रं विमलजलेन क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं इति विलोमातृकावर्णैर्मूलेन च पूरयेत्। मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः इति त्रिपदिकायां, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इति शङ्खे, ऊं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जले सम्पूज्य, ॐ गङ्गे चेत्यादिना अङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात् तीर्थमावाह्य अमुक इहावह इहावह इह तिष्ठ इह तिष्ठ इति स्वहृदयाद् देवतां तत्रावाह्य, हुमिति तर्जनी-भ्यामवगुण्ठ्य, वषडिति गालिनीमुद्रां प्रदर्श्य, वौषडिति तज्जलं वीक्ष्य, पुनरङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य, गन्धपुष्पाभ्यां देवतां सम्पूज्य, तदुपरि मत्स्य-मुद्रयाच्छाद्य मूलमन्त्रमष्टधा जपेत् ॥३९॥

अब विशेषार्घ्य-स्थापना की परिपाटी कही जाती है। अपने बाँयीं ओर भूमि पर एक त्रिकोण मण्डल बनाकर उसके ऊपर त्रिपदिका (तिपाई) स्थापित करे। 'फट्' मन्त्र द्वारा शङ्ख को धोकर उसे त्रिपदिका पर रखकर 'नमः' कहकर उस पर गन्ध, पुष्प, दूर्वा, अक्षत प्रभृति छोड़े। अब उस शङ्ख को उपरोक्त मन्त्र क्षं से लेकर अं तक (विपरीत मातृका) पढ़कर विमल जल से भरे। उस समय अं के पश्चात् अपने मूल मन्त्र को भी पढ़ना चाहिये। अब उस तिपाई-शङ्ख तथा उसमें के जल का पूजन करे; जैसे—'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' से तिपाई का, 'अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' से शङ्ख का एवं 'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' से शङ्ख के जल का पूजन करे। तत्पश्चात् 'ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु' कहते हुये अंकुशमुद्रा से सूर्यमण्डल से तीर्थ का आवाहन करके 'ॐ अमुक (अमुक के स्थान पर देवता का नाम लेना चाहिये) इहावह इहावह इह तिष्ठ इह तिष्ठ' कहकर अपने हृदय से देवता का वहाँ (जहाँ शङ्खपात्र है) आवाहन करके 'हुं' मन्त्र से तर्जनी का अवगुण्ठन करके 'वषट्' मन्त्र से गालिनी मुद्रा दिखाकर 'वौषट्' मन्त्र से शङ्खपात्रस्थ जल को देखकर पुनः वहाँ स्थापित देवता के अंगमन्त्र द्वारा सकलीकरण करके गन्ध-पुष्प से देवता की पूजा

करके उनका मत्स्य मुद्रा से आच्छादन करते हुये मूल मन्त्र का आठ बार जप करे।।३९।।

ततो धेनुमुद्रां प्रदर्श्यास्त्रेण तेन संरक्ष्य तद्दक्षिणे पाद्यं आचमनीयञ्च संस्थाप्यार्घ्यस्य किञ्चिज्जलं प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य, तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्च मूलेन त्रिरभ्युक्ष्य पीठस्योत्तरे गुरुपङ्क्तीः पूजयेत्। यथा— वायव्यादीशपर्यन्तं ॐ गुरुभ्यो नमः। एवं परमगुरुभ्यः परापरगुरुभ्यः परमेष्ठिगुरुभ्यः। त्रिपुरादौ तु विशेषगुरुपूजा वक्तव्या। ततः पीठमध्ये ॐ आधारशक्तये नमः। एवं प्रकृतये, कूर्माय, शेषाय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय, कल्पवृक्षाय। अग्निकोणे—धर्माय, निर्ऋतिवाय्वीशानकोणेषु ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय। पूर्वादिचतुर्दिक्षु—अधर्माय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अनैश्वर्याय। मध्ये—अनन्तादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं सम्पूज्य, पूर्वादि-केशरेषु मध्येषु च तत्तत्कल्पोक्तपीठशक्तिः सम्पूज्य, मध्ये पीठमनूं पूज-येत् ।।४०।।

तदनन्तर धेनुमुद्रा प्रदर्शित कर 'फट्' मन्त्र से रक्षा करके उसके (शंखपीठ के) दक्षिण में पाद्य तथा आचमनीय स्थापित करके अर्घ्य का कुछ जल का प्रोक्षणी पात्र में निक्षेप करे (प्रोक्षणीपात्र जल छोड़ने के लिये ताँबे की छोटी थाली जैसा होता है)। उस जल को स्वयं तथा पूजा की सामग्री पर मूल मन्त्र से तीन बार छिड़क कर पीठ के उत्तर में गुरुपंक्ति का पूजन करना चाहिये अर्थात् वायु कोण से प्रारम्भ करके ईशान कोण तक यह कहता जाय—ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परा-परगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः।

त्रिपुराप्रभृति की उपासना में विशेष गुरुपूजा होती है, जिसे (प्रसंग आने पर) कहा जायेगा। गुरुपंक्ति-पूजन के अनन्तर पीठ में ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ प्रकृतये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ श्वेतद्वीपाय नमः, ॐ मणिमण्डपाय नमः, ॐ मणिवेदिकायै नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः पर्यन्त कहकर पूजा करे। तदनन्तर अग्निकोण में ॐ धर्माय नमः, नैर्ऋत्य कोण में ॐ ज्ञानाय नमः, वायुकोण में ॐ वैराग्याय नमः तथा ईशान कोण में ॐ ऐश्वर्याय नमः कहकर पूजन करे। पूर्व दिशा में ॐ अधर्माय नमः, पश्चिम में ॐ अज्ञानाय नमः, उत्तर में अवैराग्याय नमः, दक्षिण में अनैश्वर्याय नमः कहकर पूजन करना चाहिये। इसके पश्चात् हृदय में ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय

नम:, ॐ अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नम:, ॐ डं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नम:, ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम:, ॐ सं सत्त्वाय नम:, ॐ रं रजसे नम:, ॐ तं तमसे नम:, ॐ आं आत्मने नम:, ॐ अं अन्तरात्मने नम:, ॐ पं परमात्मने नम:, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नम: मन्त्र से पूजन करके (यहाँ ऊपर इस प्रकरण में हृदय में पूजन कहा जा रहा है, परन्तु मूल में 'मध्ये' लिखा है, जिसका तात्पर्य देहमध्य हृदय अथवा शङ्खपीठ के मध्य में भी हो सकता है। इसका सम्यक् विचार गुरुगण ही कर सकते हैं) पूर्वादि केशरसमूह तथा मध्य में उस कल्प में कही गयी पीठशक्ति का पूजन करे। मध्य पीठ में मन्त्र का पूजन करे।।४०।।

दीपिकायां—

वायव्याशादीशपर्यन्तमर्च्या पीठस्योद्गगौरवीपङ्क्तिरादौ
पूज्यान्यत्राप्यम्बिकेय: कराब्जै: पाशं दन्तं सृण्यभीती दधान: ।
आरभ्याधारशक्त्याद्यमरचरणपाऽवध्यतो मध्यभागे
धर्मादीन् वह्निरक्ष:पवनशिवगतान् दिक्ष्वधर्मादिकांश्च ।।४१।।
मध्ये शेषाब्जबिम्बत्रितयगुणगणात्मव्रजं केशराणाम्
मध्ये मध्ये च शक्तीर्नव समभियजेत्पीठमन्त्रेण भूय: ।।४२।।

दीपिका में कहा गया है कि प्रथमत: पीठ के उत्तर में वायु कोण से लेकर ईशान कोण-पर्यन्त गुरुपंक्तिसमूह का पूजन करना चाहिये। अन्यत्र भी करस्थ पद्म, पाश, दन्त, सृणि, अभय मुद्राधारी अम्बिकेश (श्रीगणेश) पूज्य हैं। अब पीठ के मध्य-स्थित आधारशक्ति-प्रभृति से आरम्भ करके कल्पवृक्ष-पर्यन्त पूजा करनी होगी। अग्नि कोण, निर्ऋतिकोण, वायुकोण तथा ईशान कोण में धर्मादि का तथा पूर्वादि दिक् समूह में अधर्मादि का पूजन करना चाहिये। पीठमध्य में अनन्त (शेष), अब्ज (पद्म), बिम्बत्रितय (सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल तथा अग्निमण्डल) का, सत्व रज: तम: गुण का एवं आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा का पूजन करना चाहिये। केशर के बीच में पुन: पीठमन्त्र के साथ नवशक्ति का पूजन करे।।४१-४२।।

अमरचरणप:—कल्पवृक्ष:। अब्ज—पद्मम्। विम्बत्रितयं सूर्यसोमाग्नि-मण्डलात्मकम्। गुणगणं—सत्वादिकम्। आत्मब्रजं—आत्मचतुष्टयम्। तारादिविद्यायान्तु विशेषो वक्तव्य: ।।४३।।

अमरचरणप: = कल्पवृक्ष। अब्ज—कमल। विम्बत्रितय = सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल। गुणगण—सत्व, रज, तम गुण। आत्मब्रज = आत्मा—अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा। तारादि-पूजन के विषय में आगे कहा जायेगा।।४३।।

पूर्वादिदिङ्नियमस्तु यामले—

पूज्यपूजकयोर्मध्यं प्राचीति कीर्त्यते बुधैः ।
तद्दक्षिणं दक्षिणं स्यादुत्तरं चोत्तरं मतम् ।
पृष्ठन्तु पश्चिमं ज्ञेयं सर्वत्रैवं प्रयोजयेत् ।।४४।।

पूजा में पूर्वादि दिशा के नियम के सम्बन्ध में यामल में कहा गया है कि पूज्य तथा पूजक के मध्य देश को पूर्व दिक् कहते हैं। उसके दाहिने को दक्षिण तथा वाम भाग को उत्तर दिशा और पीठ की ओर पश्चिम कहते हैं। सर्वत्र इसी नियम को मानना चाहिये।।४४।।

शाम्भवीये—

स्वसन्मुखो भवेत् प्राची देवीपृष्ठन्तु पश्चिमम् ।
सव्यन्तु दक्षिणं विद्याद् दक्षिणं सव्यमेव च ।।४५।।

सव्यं—वामम्। उत्तरमिति यावत्।

शाम्भवीय में कहा है कि साधक के सम्मुख का भाग पूर्व, देवी का पृष्ठभाग पश्चिम, साधक के बाँयें हाथ का भाग दक्षिण तथा उसके दाहिने हाथ की ओर का भाग उत्तर होता है।।४५।।

ततः पुनर्ध्यात्वा यन्त्रादावावाहयेत्। यथा मूलमन्त्रमुच्चारयन् अमुक इहावह इहावह, इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि, इह सन्निरुध्यस्व, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण इत्यावाहनादिकं कृत्वा, हुमित्यवगुण्ठ्य, देवताङ्गे षडङ्गन्यासं कृत्वा, वमिति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, परमीकरणमुद्रया परमीकरणं कुर्यात् ।।४६।।

तदनन्तर पुनः ध्यान करके यन्त्रादि में आवाहन करे। जैसे मूल मन्त्र का उच्चारण करते-करते यह आवाहन मन्त्र पढ़े—ॐ अमुक (देवता का नाम अमुक के स्थान पर) इहावह इहावह इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण'। तत्पश्चात् 'हुं' मन्त्र से अवगुण्ठन करके देवता का षडङ्ग न्यास करे। 'वं' मन्त्र से धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण करके परमीकरण मुद्रा द्वारा परमीकरण करना चाहिये।।४६।।

यथा आगमकल्पद्रुमे—

मूलमन्त्रं समुच्चार्य सुषुम्नावर्त्मना सुधीः ।
आनीय तेजः स्वस्थानान्नासिकारन्ध्रनिर्गतम् ।।४७।।

करस्थमातृकाम्भोजे चैतन्यं पुष्पसञ्चये।
संयोज्य यन्त्रमध्ये तत् संस्थाप्यावाहयेत्ततः ॥४८॥

आगमकल्पद्रुम ग्रन्थ में कहा है कि सुधी व्यक्ति मूल मन्त्र का उच्चारण करके सुषुम्ना मार्ग से चैतन्यस्वरूप तेज को लाकर नासिकाछिद्र से निर्गत उस तेज को हाथ में रखे मातृका पद्मरूप पुष्पसमूह में संयुक्त करके पूज्य यन्त्र के मध्य में उस पुष्पसमूह को स्थापित करे; तत्पश्चात् आवाहनादि कृत्य करे।।४७-४८।।

कालिकापुराणे—

रक्तपुष्पं गृहीत्वा तु कराभ्यां पाणिकच्छपम्।
बद्ध्वा पश्चात्ततः कुर्याद् दहनप्लवनादिकम् ॥४९॥
वामहस्तस्य तर्जन्या दक्षिणस्य कनिष्ठया।
तथा दक्षिणतर्जन्या वामाङ्गुष्ठेन योजयेत् ॥५०॥
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः।
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥५१॥

कालिकापुराण में कहते हैं कि दोनों हाथों में लाल पुष्प लेकर कूर्ममुद्रा में उन्हें बाँधे और तदनन्तर दहन-प्लवनादिक क्रिया करे। दाहिनी हथेली की कनिष्ठा उँगली के साथ बाँईं हथेली की तर्जनी का तथा बाँईं हथेली के अंगूठे के साथ दाहिनी हथेली की तर्जनी का संयोग करे। दाहिने अंगूठे को ऊँचा करे। दाहिनी हथेली के पीछे के भाग में बाँयीं हथेली की मध्यमादि तीन उँगलियों को युक्त करे।।४९-५१।।

वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा।
अधोमुखे तु ते कुर्याद् दक्षिणस्य करस्य च ॥५२॥
कूर्मपृष्ठसमं कुर्याद् दक्षिणस्य च हस्ततः।
एवं बन्धं सदा सिद्धिं ददाति पाणिकच्छपम्॥५३॥

बाँयीं हथेली के पितृतीर्थ को दक्षिण हाथ की मध्यमा तथा अनामिका के अधोमुख संयुक्त करे। दाहिनी हथेली को कछुये की पीठ के समान बनाये। इस प्रकार से कूर्ममुद्रा बना ले। इससे सर्वसिद्धि प्राप्त होती है।।५२-५३।।

कुर्यात्तु हृदयासन्ने निमील्य नयनद्वयम्।
समकायशिरोग्रीवं कृत्वा स्थिरतमो बुधः।
ध्यानं समारभेद् देव्यां दाहप्लवनपूर्वकम् ॥५४॥

पण्डित साधक देह, मस्तक तथा ग्रीवा को सम करके स्थिर हो दोनों नेत्रों को

बन्द करके कूर्ममुद्रा से बद्ध हाथ को हृदय के निकट लाये एवं दहन-प्लवनपूर्वक देवी का ध्यान आरम्भ करे।।५४।।

दाहप्लवनपूर्वकमिति पृथिवीं जले जलं तेजसि तेजो वायौ वायुमाकाशे इति क्रमेण तत्त्वैः सह स्वहृदयासन्नदेवतानयनपूर्वकमित्यर्थः ॥५५॥

दाह-प्लवन का अर्थ है कि पृथ्वी को जल में, जल को तेज में, तेज को वायु में, वायु को आकाश में और इसी क्रम से समस्त तत्त्वसमूह (कुल २४ तत्त्व) को लीन करते-करते अपने हृदय में आसन्न देवता लाये (अर्थात् सब देवता में लीन करे)। आवाहनादि प्रसंग को मुद्रा प्रकरण में कहा जायेगा।।५५।।

अविशेषे यन्त्रनियमस्तु मत्स्यसूक्ते—

अनुक्तकल्पे यन्त्रन्तु लिखेत्पद्मं दलाष्टकम्।
षट्कोणकर्णिकं तत्र वेदद्वारोपशोभितम् ॥५६॥

सर्वदेवताओं के साधारण यन्त्र-निर्माण को मत्स्यसूक्त में कहते हैं कि अनुक्त कल्प अर्थात् विशेष रूप से न कहे गये अष्टदल वाले कमल का अंकन करे। उस कमल की कर्णिका षट्कोणाकृति हो और वह चार द्वारों के द्वारा शोभित भी हो।।५६।।

अथ यन्त्रं धृत्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। सा यथा शारदायाम्—

पाशाङ्कुशपुटा शक्तिर्वाणी बिन्दुविभूषिता।
याद्याः सप्त सकारान्ता व्योमसत्येन्दुसंयुतम् ॥५७॥
तदन्ते हंसमन्त्रः स्यात्ततोऽमुष्यपदं वदेत्।
प्राणा इति वदेत्पश्चादिह प्राणास्ततः परम् ॥५८॥

अब यन्त्र-धारण करके प्राणप्रतिष्ठा करे। शारदातिलक में प्राणप्रतिष्ठा के विषय में कहते हैं कि शक्तिबीज (ह्रीं), पाशबीज (आं) तथा अंकुशबीज (क्रों) द्वारा पुटित होगी। वाणी (य) बिन्दु-विभूषित हो। य र ल व श ष स—ये सातो बिन्दुयुक्त हों। व्योम (ह) सत्य (ओ) तथा बिन्दु से संयुक्त हो। उसके अन्त में हंस मन्त्र हो। तदनन्तर 'अमुष्य' पद तत्पश्चात् 'प्राणा' तत्पश्चात् 'इह प्राणा' लगाये।।५७-५८।।

अमुष्य जीव इह च स्थितोऽमुष्यपदं वदेत्।
सर्वेन्द्रियाण्यमुष्यन्ते वाङ्मनश्चक्षुरन्ततः ॥५९॥
श्रोत्रघ्राणपदे प्राणा इहागत्य सुखं चिरम्।
तिष्ठन्त्वग्निवधूरन्ते प्राणमन्त्रोऽयमीरितः ॥६०॥

तत्पश्चात् 'अमुष्य जीव' तथा 'इह' लगाये। तदनन्तर 'अमुष्य' कहे। तदनन्तर

'सर्वेन्द्रियाणि अमुष्य' पद के अन्त में 'वाङ्मनश्चक्षुः स्वाहा' कहे। यह प्राणमन्त्र कहा गया है।।५९-६०।।

प्रत्यमुष्यपदात् पूर्वं पाशादीनि नियोजयेत्।
प्रयोगेषु समाख्यातः प्राणमन्त्रो मनीषिभिः ।।६१।।

प्रति अमुष्य पद के पूर्व ॐ आं से हंस पर्यन्त पाशादि का प्रयोग करना चाहिये। प्राणप्रतिष्ठा में मनीषीगण द्वारा यही प्राणमन्त्र कहा गया है।।६१।।

अस्यार्थः—वाणी यकारः, 'यो वाणी वसुधा वायु'रिति शासनात्। याद्या इति उद्धृतयकारमादाय सप्त, न तु तद्भिन्नं पृथग्बीजमपि पृथग् उद्धारस्तु सप्तानामपि सबिन्दुताख्यापनाय। अन्यत्रापि—अङ्कुशवाण्य-नलावनिवरुणबीजानी'त्युक्तम्। अत्र बीजत्वेन सर्वेषां सबिन्दुत्वमिति राघवभट्टः। केचित् तु वाणी बिन्दुविभूषिता इति सविसर्गपदं याद्या इत्यस्य विशेषणम्, तत्र वाणी नादः 'अर्द्धमात्रा कला वाणी नादोऽर्द्धेन्दुः सदाशिवः' इति शासनात् ।।६२।।

इन श्लोकों का तात्पर्य है वाणी = य, क्योंकि य, वाणी, वसुधा, वायु—ऐसा कोषग्रन्थ में कहा गया है। याद्या = अर्थात् उद्धृत 'य'कार को लेकर सात। उससे पृथक् यं बीज नहीं है। पृथक् उद्धार किन्तु सात का सबिन्दुत्व बताने के लिये। अंकुश (क्रों), वायुबीज (यं), अग्निबीज (रं), पृथ्वीबीज (लं), वरुणबीज (वं) यह कहा गया है। राघवभट्ट का कथन है कि यहाँ 'य' आदि बीज (सभी) बिन्दुयुक्त होंगे। किसी-किसी का मत है कि 'वाणी बिन्दुविभूषिता' यह है सविसर्ग पद। यह 'याद्या' का विशेषण है। यहाँ वाणी है—नाद। इसलिये कोषग्रन्थ के अनुसार अर्द्धमात्रा, कला, वाणी, नाद, अर्द्धेन्दु तथा सदाशिव वाणी का अर्थ है। व्योम = हकार। इन्दु = बिन्दु, सत्य—ओंकार, इससे 'हों' होता है।।६२।।

प्रपञ्चसारेऽपि 'पाशङ्कुशान्तरितशक्तिमनुं पुरस्तादुच्चार्य यादिवसुवर्णगुणं सहंसम्' इत्युक्तम्। तत्र गुणमित्यनेन होमिति पद्मपादाचार्यैर्व्याख्यातम्। अग्निवधुः स्वाहा। तेन आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों हंसः अमुष्य प्राणा इह प्राणा। आमित्यादि अमुष्य जीव इह स्थितः। आमित्यादि अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि। आमित्यादि अमुष्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा इति मन्त्रः ।।६३।।

प्रपञ्चसार में यह कहा है कि पाश तथा अंकुश से पुटित शक्ति बीज के पूर्व सहंस (हंस मन्त्र के साथ) 'यादि' रूप आठ वर्ण तथा गुण का उच्चारण करे। यहाँ

पद्मपादाचार्य की व्याख्या के अनुसार 'गुणम्' पद से 'हों' का तात्पर्य है। अग्निवधु = स्वाहा। अतः यह मन्त्र होता है—आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों हंसः अमुष्य प्राणा इह प्राणाः। आमित्यादि अमुष्य जीव इह स्थितः। आमित्यादि अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि। आमित्यादि अमुष्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।।६३।।

नारायणीयतन्त्रे—

अदःपदं हि यद्रूपं यत्र मन्त्रेऽभिदृश्यते।
साध्याभिधानं तद्रूपं तत्र स्थाने नियोजयेत् ।।६४।।

नारायणीय तन्त्र में कहते हैं कि जिस मन्त्र में अदस् शब्द की जो विभक्ति का रूप (अमुष्य) देखा जाता है, वहाँ (उपासनीय देवता) साध्य के नाम की विभक्ति का रूप प्रयोग करे। जैसे—नारायणस्य, शिवस्य, श्रीभगवद् दुर्गायाः इत्यादि।।६४।।

ततो यथाशक्ति पुष्पपर्यन्तमुपचारान् तत्तन्मन्त्रेण षडङ्गेन पूजयेत्। ततो मूर्द्धहृद्गुह्यपादसर्वाङ्गेषु मूलेन पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा तत्तत् कल्पोक्तावरणानि पूजयेत्।

इसके पश्चात् (प्रारम्भ में) यथाशक्ति पुष्पपर्यन्त उपचारों को उन-उन पूजनीय देवताओं को (मन्त्र से) देकर उनका षडङ्ग पूजन करे। तदनन्तर मस्तक, हृदय, गुह्य, पाद तथा सर्वांग को मूल मन्त्र से पाँच बार पुष्पाञ्जलि देकर देवता के साथ कल्पोक्त (विधान) में कहे आवरण देवता-समूह का पूजन करे।

अथ धूपादिविसर्जनान्तं कर्म

तत्रादौ धूपमुत्सृज्य ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति पुष्पाक्षतैर्घण्टां सम्पूज्य, वामहस्तेन तां वादयन् तत्तन्मन्त्रेण नीचैर्धूपं दद्यात्, दृष्टिपर्यन्तं दीपम्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा, नैवेद्यं फडिति संप्रोक्ष्य, चक्रमुद्रयाऽभिरक्ष्य, तदुपरि मूलमष्टधा जप्त्वा धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य मूलमुच्चार्य दद्यात्। ततः पुनराचमनीयं दत्त्वा ताम्बूलं दद्यात्। सर्वमुपचारमर्घ्यजलेनैवोत्सृज्य दद्यात् ।।६५।।

तत्पश्चात् धूप से लेकर विसर्जन-पर्यन्त का कृत्य कहते हैं। प्रथमतः धूप दे। 'ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा' मन्त्र से गन्ध-पुष्प-अक्षत से घण्टापूजन करके बाँयें हाथ से उसे बजाते-बजाते उन-उन पूजनीय देवताओं को मन्त्र के साथ नीचे की ओर धूप देना चाहिये और नीचे से लगाकर जहाँ देवता के नेत्र (की कल्पना किया है)-पर्यन्त धूप तीन बार देकर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे (यह मूल मन्त्र से करे)। अब नैवेद्य का प्रोक्षण 'फट्' मन्त्र से करके उसका चक्रमुद्रा से रक्षण करना होगा। नैवेद्य पर मूल

मन्त्र का आठ बार जप कर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करते हुये मूल मन्त्र का उच्चारण करे। पुन: आचमन प्रदान करने के उपरान्त ताम्बूल अर्पण करे। समस्त उपचारों को अर्घ्यमन्त्र से प्रदान करना होता है।।६५।।

यत्तोयमर्घ्यपात्रस्य तन्निधाय निवेदयेत्।
अन्यतोयैस्तदुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ।
न गृह्णाति महादेवी दत्तं विधिशतैरपि ।।६६।।

इति वचनात्। वैष्णवे तु नैवेद्ये विशेषो वाच्यः।

अर्घ्य के लिये कहा गया है कि उसमें स्थित जल द्वारा प्रोक्षण करके तब (उपचारों का) निवेदन करना चाहिये। अर्घ्यपात्र में स्थित जल के अतिरिक्त अन्य पात्र-स्थित जल अथवा अन्य जल द्वारा प्रदान करने पर सैकड़ों विधानों द्वारा दिये जाने पर भी देवी उसे ग्रहण नहीं करती। विष्णु-पूजनार्थ नैवेद्य की जो विधि है, उसे बाद में कहा जायेगा।।६६।।

ततः सपरिवारदेवतां गन्धादिभिरभ्यर्च्य, नृत्यगीतैः सन्तोष्य, जय-जयेत्युक्त्वा विशेषार्घ्यं दत्त्वा मूलेन पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। ततश्चुलुकोदकमादाय ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्कृतं यदुक्तं यत् स्मृतं मया सर्वं तद् ब्रह्मार्पणमस्तु स्वाहा, ॐ मां मदीयं च सकलं अमुकदेवतायै समर्पये ॐ तत्सत्—इत्यात्मानं समर्पयेत्।।६७।।

तत्पश्चात् सपरिवार (देवता के परिवार) देवता की गन्धादि से अर्चना करके नृत्य-गीत द्वारा देवता को सन्तोष प्रदान कर 'जय जय' के उद्घोष से विशेष अर्घ्य प्रदान कर मूल मन्त्र द्वारा पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। तत्पश्चात् एक चुल्लू जल लेकर 'ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत् स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् कृतं यदुक्तं यत् स्मृतं मया सर्वं तद् ब्रह्मार्पणमस्तु स्वाहा, ॐ मां मदीयं च सकलं अमुकदेवतायै समर्पये ॐ तत्सत्' कहकर आत्म-समर्पण करे (अमुक के स्थान पर देवता का नाम देना चाहिये)।।६७।।

तदुक्तं—

इतः पूर्वमिति प्रोच्य प्राणबुद्धीति चोच्चरेत्।
देहधर्माधिकारतो जाग्रत् स्वप्नसुषुप्ति च ।।६८।।
अवस्थासु मनसा वाचा सम्प्रोच्य कर्मणेति च।
हस्ताभ्यामथ पद्भ्यान्तु तथोदरेण संस्मरेत् ।।६९।।

शिश्ना यत् कृतमिति यदुक्तं यत् स्मृतं मया।
सर्वमित्यपि तद् ब्रह्मार्पणमस्त्वग्निवल्लभा ॥७०॥
प्रणवं मां मदीयञ्च सकलं साध्यदेवताम्।
अहन्तां समर्पये तारं तत्सदात्मार्पणे मनुः ॥७१॥

अब आत्म-समर्पण मन्त्र कहा जाता है। 'इतः पूर्वं' कहकर 'प्राणबुद्धि' कहे। तदनन्तर 'देहधर्माधिकारतो जाग्रत् स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा' कहकर 'कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्याम् उदरेण' कहे। तत्पश्चात् 'शिश्ना यत् कृतं' कहकर 'यदुक्तं यत् स्मृतं मया सर्वं' कहकर 'तद् ब्रह्मार्पणमस्तु स्वाहा' कहना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ मां मदीयञ्च सकलं' कहे। इसके पश्चात् ङे विभक्तियुक्त साध्य देवता अर्थात् 'अमुकदेवतायै समर्पये ॐ तत्सत्' यह आत्मसमर्पण मन्त्र है। यथा—इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्कृतं यदुक्तं यत्स्मृते मया सर्वं तद् ब्रह्मार्पणमस्तु स्वाहा ॐ मां मदीयञ्च सकलं अमुकदेवतायै समर्पये ॐ तत्सत्।।६८-७१।।

श्यामारहस्ये—नमस्कारानन्तरं वा आत्मसमर्पणम्। ततोऽष्टोत्तरसहस्रं शतं वा जप्त्वा;

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणाऽस्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिते ॥७२॥
इति देवस्य दक्षिणे देव्या वामहस्ते जपं समर्पयेत्।
देवस्य दक्षिणे हस्ते पुष्पाक्षतजलैः सहः।
जपं समर्पयेद् देव्या वामहस्ते विचक्षणः ॥७३॥

इति वचनात्।

श्यामारहस्य ग्रन्थानुसार नमस्कार के अनन्तर आत्मसमर्पण करना कर्त्तव्य है। १००८ अथवा १०८ बार जप करके (देवता के मन्त्र का जप) इस मन्त्र से (जो ऊपर 'ॐ गुह्याति' से लेकर 'त्वयि स्थिते' तक लिखा है) देवता के दाहिने हाथ में, जहाँ उपास्य देवी हो, वहाँ उनके बाँयें हाथ में जप-समर्पण करे।

विद्वान् साधक पुष्प, अक्षत तथा जल को देवता के दाहिने हाथ में तथा जहाँ उपास्य देवी हों वहाँ उनके बाँयें हाथ में देकर जप-समर्पण करे।।७२-७३।।

देवीविषये गोपप्रीति देवीति च वचनात्। स्थित इत्यस्याध्याहृते जपे विशेषणतया युक्तार्थत्वान्न पदान्तेरोहः सम्बोध्यविशेषणत्वं वैयर्थ्यादिति

ध्येयम्। तत् आलतिकां दत्त्वा प्रणमेत्। अतो देवताङ्गे आवरणानि विलाप्य, क्षमस्वेति विसर्जनं कुर्यात् ।।७४।।

देवी के सम्बन्ध में जहाँ 'गोप्ता' कहा गया है (७२ नम्बर के आख्यान में) वहाँ 'गोप्त्री' और 'देवी' कहे (अर्थात् देवता के लिये वह श्लोक जैसे लिखा है, वैसे ही उच्चारण करे; परन्तु देवी जहाँ पूजित हों वहा 'गोप्ता' हटाकर 'गोप्त्री' और जहाँ 'देव' है, वहाँ 'देवी कहे)। 'स्थिते' यह पद (उक्त ७२वें श्लोक का) अध्याहृत जप में अर्थ को युक्तियुक्त करता है। इसलिये अन्य पद का अध्याहार नहीं होगा। सम्बोध्य देवता का विशेषण होने पर व्यर्थ हो जाता, यह विचार करना चाहिये। तत्पश्चात् आलता समर्पित करके स्तुतिपाठ के पश्चात् प्रणाम निवेदन करे। तदनन्तर देवता के अंग में आवरण देवता को विलीन करने की भावना करके 'क्षमस्व' (क्षमा करें) का उच्चारण करके विसर्जन करे।।७४।।

शक्तिविषये कालिकापुराणम्—

योनिमुद्रां ततः पश्चाद् दर्शयित्वा विसर्जयेत् ।।७५।। इति।
त्रिवारं दर्शयेदग्रे मूलमन्त्रेण साधकः ।
तां मुद्रां शिरसि न्यस्य मण्डलं विन्यसेत्ततः ।
उदके तरुमूले वा निर्माल्यं सन्त्यजेत्सुधीः ।।७६।। इति च।

कालिकापुराण में शक्ति-विसर्जन की विधि इस प्रकार से कही गयी है—योनिमुद्रा प्रदर्शित करके विसर्जन करे। साधक पहले मूल मन्त्र पढ़ते हुये तीन बार योनिमुद्रा प्रदर्शित करके मस्तक पर उस मुद्रा की स्थापना करके त्रिकोण मण्डल में निर्माल्य स्थापित कर दे। अब उस निर्माल्य (देवता पर चढ़े पुष्पादि) का विसर्जन पेड़ की जड़ में अथवा जल में करे।।७५-७६।।

ततः संहारमुद्रया तत्तेजः सार्द्धं हृदयमानयेत्। तन्त्रे—

निधाय देवतां पश्चात् स्वीयहृत्सरसीरुहे ।
सुषुम्नावर्त्मना पुष्पमाघ्रायोद्वासयेत्ततः ।।७७।।

योद्वासयेत् = त्यागं कुर्यात्।

तदनन्तर संहार मुद्रा द्वारा पुष्प के माध्यम से उस तेज को (जो साधना से देवता में अनुभूत हुआ) अपने हृदय में स्थापित करे। तन्त्र के अनुसार (पूजा के) पुष्प को सूंध कर सुषुम्ना नाड़ी के पथ से (यह अनुभव करता हुआ कि देवता इसी प्राण वायु के साथ तेजरूपेण हृदयपद्म पर जा रहे हैं) अपने हृदय कमल पर स्थापन करे तथा हथेली में रखे पुष्पादि का विसर्जन करे।।७७।।

तत ऐशान्यां दिशि मण्डलं निर्माय पूजयेत् यथा—वैष्णवोपासनायां ॐ विष्वक्सेनाय नमः, शाक्तोपासनायां ॐ शेषिकायै नमः, शैवोपासनायां ॐ चण्डेश्वराय नमः, सूर्योपासनायां ॐ तेजश्चण्डाय नमः, गणेशोपासनायां ॐ उच्छिष्टणेशाय नम इति ॥७८॥

तत्पश्चात् ईशान दिशा में मण्डल बनाकर वहाँ निर्माल्य द्वारा पूजन करे। जैसे वैष्णव उपासना में—ॐ विष्वक्सेनाय नमः। शक्ति उपासना में— शेषिकायै नमः। शैव में—चण्डेश्वराय नमः। सूर्य में—तेजश्चण्डाय नमः। गणेश उपासना में—उच्छिष्टगणेशाय नमः।।७८।।

तथा च—

विष्वक्सेनः स्मृतो विष्णोस्तेजश्चण्डो विवस्वतः।

तथा विमलेन्द्रनिबन्धे—

सूर्ये गणपतावुग्रे शाक्ते शैवेऽथ वैष्णवे।
तेजश्चण्डमथोच्छिष्टसोजमुच्छिष्टपूर्विकाम ।
चाण्डालीं शेषिकां चण्डं विष्वक्सेनं क्रमाद्यजेत् ॥७९॥

और भी कहा गया है कि विष्णु के चण्ड हैं—विष्वक्सेन। सूर्य के तेजश्चण्ड। विमलचन्द्र निबन्ध में कहते हैं कि सूर्य के चण्ड = तेजश्चण्ड, गणपति के चण्ड = उच्छिष्ट सोज (उच्छिष्ट गणेश), उग्रा के चण्ड = उच्छिष्ट चाण्डालि, शक्ति के चण्ड = शेषिका, विष्णु के चण्ड = विष्वक्सेन की पूजा करे।।७९।।

उग्रे—कालिकादौ। उना शिवेन सह वर्त्तते सोः दुर्गा तज्जो गणेशः उच्छिष्टगणेश इत्यर्थः। ततः पादोदकं पीत्वा, नैवेद्यं तत्तद्देवताभक्तेभ्यो दत्त्वा, शेषं स्वयं स्वीकृत्य, यथासुखं विहरेदिति ॥८०॥

तत्पश्चात् चरणामृत का पान करके देवता के भक्तों को नैवेद्य बांट कर बचा नैवेद्य स्वयं खाकर सुखपूर्वक विचरण करना चाहिये।।८०।।

पूजासमाप्ताविमं कालिकापुराणीयमन्त्रं पठेत्—

ॐ यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः॥८१॥

पूजा समाप्त होने पर कालिकापुराण के मूलोक्त मन्त्र को पढ़े, जिसका अर्थ है कि यज्ञ का छिद्र, तप तथा इस पूजा का जो छिद्र है, वह भास्कर के प्रभाव से छिद्ररहित हो जाय।।८१।।

मत्स्यसूक्ते—

अनिवेद्य न भुञ्जीत मत्स्यमांसादिकञ्च यत्।
अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥८२॥

विष्णोरित्युपलक्षणम्।

मत्स्यसूक्त में कहा गया है कि मत्स्य-मांसादि किसी भी खाद्य को निवेदन किये बिना खाना नहीं चाहिये। जिसे विष्णु को निवेदित नहीं किया, वह अन्न विष्ठा है और जल मूत्र के समान है। यहाँ विष्णु का तात्पर्य केवल विष्णु से ही नहीं है; अपितु प्रत्येक के अपने उपास्य को निवेदन करने के लिये कहा गया है।।८२।।

तन्त्रान्तरे—

निर्माल्यं शिरसा धार्यं सर्वाङ्गे चानुलेपनम्।
नैवेद्यञ्चोपभुञ्जीथ दत्त्वा तद्भक्तिशालिने ॥८३॥

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि निर्माल्य को मस्तक पर धारण करके समस्त अंगों में लेपन करना चाहिये। देवता के भक्तों को नैवेद्य का वितरण करके बचे नैवेद्य का स्वयं उपभोग करना चाहिये।।८३।।

देवतार्चाविशिष्टं यत् सलिलं शङ्खमध्यगम्।
अङ्गे लग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥८४॥

इति सामान्याहःकृत्यविधिः।

देवता की अर्चना के पश्चात् शङ्ख में बचे जल को अपने अंग पर लपेटने से मनुष्यगण ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार सामान्य रूप से अहःकृत्य समाप्त होता है।।८४।।

अथ सामान्यार्घ्यम्

यथा—त्रिकोणवृत्तभूविम्बं विलिख्य 'ॐ आधारशक्तये नमः' इति सम्पूज्य, फड़िति पात्रं प्रक्षाल्य, साधारपात्रं तत्र निधाय, नमः इति जलेनापूर्य, अङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात् 'ॐ गङ्गे चे'ति तीर्थमावाह्य, प्रणवेन गन्धादीन्निक्षिप्य, धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, ओमित्यष्टधा दशधा वा जपेत् ॥८५॥

अब सामान्य अर्घ्य के विषय में कहते हैं। बाँयीं ओर भूमि में त्रिकोण, वृत्त तथा चतुरस्र मण्डल का अङ्कन करके वहाँ 'ॐ आधारशक्तये नमः' मन्त्र से पूजन करके 'फट्' कहकर पात्र को धोकर आधारसहित उस पात्र को वहाँ स्थापित करे। 'नमः'

कहते हुये पात्र को जलपूर्ण करे। अब अंकुश मुद्रा दिखलाते हुये सूर्यमण्डल से इस मन्त्र द्वारा तीर्थ का उस जल में आवाहन करे—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

अब प्रणव का जप करते-करते उस पर गन्धादि छिड़ककर धेनुमुद्रा दिखाते हुये १० या ८ बार प्रणव का जप करे।।८५।।

गौतमीये च—

अस्त्रेण पात्रं संशोध्य हृन्मन्त्रेण प्रपूरयेत्।
निक्षिपेत् तीर्थमावाह्य गन्धादीन् प्रणवेन तु ॥८६॥
दर्शयेद् धेनुमुद्रां वै मन्त्रतन्त्रविशारदः।
मन्त्रयेत् प्रणवेनैव सामान्यार्घ्यमिदं स्मृतम् ॥८७॥

गौतमीय तन्त्रानुसार 'फट्' मन्त्र से पात्र-शोधन करके 'नमः' मन्त्र से जल भरे। तीर्थावाहन करके प्रणव जपते हुये गन्धादि छिड़के। मन्त्रज्ञाता साधक धेनुमुद्रा प्रदर्शित करते हुये प्रणव का जप करते हुये जल को अभिमन्त्रित करे। यही सामान्यार्घ्य है।।८६-८७।।

तथा च तन्त्रे—

त्रिकोणवृत्तभूबिम्बं मण्डलं रचयेत्ततः।
आधारशक्तिं सम्पूज्य तत्राधारं विनिक्षिपेत् ॥८८॥

और भी—तन्त्र में कहा गया है कि त्रिकोण, वृत्त तथा भूविम्ब (चतुरस्र) की रचना करे। तदनन्तर आधारशक्ति का पूजन करके वहाँ अर्घ्य को आधार पर स्थापन करे।।८८।।

हृन्मन्त्रो नमः। प्रणवजपस्त्वष्टधा कार्यः, विशेषार्घ्ये तथा दर्शनात्। शक्त्यादौ तु दशधा प्रणवजपस्तदर्घ्यं तथा दर्शनात्। अर्घ्यमधिकृत्य यथा भैरवतन्त्रे—

पात्रं तोयैः प्रपूर्याथ प्रणवं दशधा जपेत् ॥८९॥

हृन्मत्र है—नमः। आठ बार प्रणव-जप कर्त्तव्य है। यही विशेषार्घ्य में भी कहा जाता है। शक्ति-साधना में दश बार प्रणव का जप करे। शास्त्र में उनके अर्घ्य में भी यही कहा गया है। जैसा कि भैरवतन्त्र में कहते हैं कि पात्र को जल द्वारा पूरित करके दश बार प्रणव का जप करे।।८९।।

अथाष्टादशोपचाराः

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च भूषणानि च सर्वशः ॥९०॥
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमन्नञ्च दर्पणम्।
माल्यानुलेपनञ्चैव नमस्कारविसर्जने।
अष्टादशोपचारैस्तु मन्त्री पूजां समाचरेत्॥९१॥

अब अष्टादश (१८) उपचार कहा जा रहा है। आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत (यज्ञोपवीत), सभी प्रकार के आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दर्पण, माला तथा सुगन्धित लेपन, नमस्कार तथा विसर्जन—मन्त्रज्ञ साधक को इन अट्ठारह उपचारों द्वारा पूजा करनी चाहिये।।९०-९१।।

अथ षोडशोपचाराः

पाद्यमर्घ्यं तथाचामं स्नानं वसनभूषणे।
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याचमनं ततः ॥९२॥
ताम्बूलमर्चनास्तोत्रं दर्पणञ्च नमस्क्रिया।
प्रयोजयेत् प्रपूजायामुपचारास्तु षोडश ॥९३॥

अब षोडशोपचार कहते हैं—पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन (नैवेद्य के उपरान्त का आचमन), ताम्बूल, अर्चना, स्तोत्र, पाठ, दर्पण-प्रदर्शन, नमस्कार। उत्तम पूजा हेतु इन १६ उपचारों का निर्देश किया गया है।।९२-९३।।

अथवा—

आसनं पाद्यमर्घ्यञ्च ततोऽन्वाचमनीयकम्।
मधुपर्कः स्नानजलं वस्त्रं भूषणचन्दने ॥९४॥
पुष्पं धूपञ्च दीपञ्च नेत्राञ्जनमतः परम्।
नैवेद्याचमनीये तु प्रदक्षिणनमस्कृतिः।
एते षोड़श निर्दिष्टा उपचाराः शिवार्चने ॥९५॥

अथवा आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नानजल, वस्त्र तथा उत्तरीय, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नेत्रों का अञ्जन, नैवेद्य, आचमन (नैवेद्य के पश्चात् का आचमन), प्रदक्षिणा, नमस्कार। भगवान् शिव की अर्चना में इन १६ उपचारों का निर्देश किया गया है।।९४-९५।।

विष्णौ तु—

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
इत्याञ्जनेन रहितमुपचारन्तु षोड़शम् ॥९६॥

किन्तु वैष्णव उपासना में अञ्जनरहित आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन-प्रभृति ६ उपचार कहे गये हैं।।९६।।

अथ दशोपचाराः

पाद्यमर्घ्यं तथाचामं मधुपर्काचमनं तथा।
गन्धाद्याः नैवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् ॥९७॥

अब दशोपचार कहा जा रहा है। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य—ये क्रमशः दशोपचार होते हैं।।९७।।

अथ पञ्चोपचाराः

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च।
पञ्चोपचारमुद्दिष्टं मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः।
अभावे गन्धपुष्पाद्या तदभावे तु भक्तितः ॥९८॥

अब पञ्चोपचार कहा जाता है। तन्त्रज्ञाता मुनिगण गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य को पञ्चोपचार कहते हैं। पञ्चोपचार के अभाव में गन्ध, पुष्प द्वारा अथवा इन दोनों के भी अभाव में मात्र भक्ति द्वारा भी पूजा विहित है।।९८।।

राघवभट्टधृतवचनन्तु—

सर्वोपचारवस्तूनामभावे भावनैव हि।
निर्मलेनोदकेनाथ पूर्णतेत्याह नारदः ॥९९॥

राघवभट्ट द्वारा उद्धृत वचन है कि समस्त उपचार वस्तु के अभाव में भावना ही श्रेष्ठ उपचार है अथवा निर्मल जल से ही पूर्णता सम्पादित हो जाती है। यह नारद ऋषि का कथन है।।९९।।

●

अथ मणिमुक्तादिद्रव्याणां निर्माल्यकालः

योगिनीतन्त्रे—

मणिमुक्तासुवर्णाणि देवदत्तानि यानि वै।
न निर्माल्यं द्वादशाब्दं ताम्रपात्रं तथैव च ॥१॥

अब मणि-मुक्तादि द्रव्य का निर्माल्यकाल कहते हैं। योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि देवता के उद्देश्य से प्रदत्त जो समस्त मणि, मुक्ता तथा स्वर्ण हैं, वे १२ वर्ष तक निर्माल्य नहीं होते। ताम्रपात्र भी १२ वर्ष-पर्यन्त निर्माल्य नहीं होता।।१।।

पटी शाटी च षण्मासं नैवेद्यं दत्तमात्रतः।
मोदकं कृषरञ्चैव यामार्द्धेन महेश्वरि! ॥२॥

रेशम-निर्मित साड़ी छः मास में निर्माल्य हो जाती है और नैवेद्य निवेदन करने-मात्र से ही निर्माल्य हो जाता है। भगवान् कहते हैं—हे महेश्वरि! मोदक तथा खिचड़ी आधे प्रहर में निर्माल्य हो जाते हैं।।२।।

मस्तकं रुधिरञ्चैवमहोरात्रेण पार्वति!।
मुहूर्त्तं दधि दुग्धञ्च आज्यं यामेन शाङ्करि! ॥३॥

भगवान् कहते हैं कि हे पार्वति! मस्तक (बलि द्वारा प्रदत्त) तथा रक्त एक रात्रि में, दधि तथा दूध मुहूर्त्तमात्र में एवं घृत एक प्रहर में निर्माल्य हो जाता है।।३।।

पट्टवस्त्रं त्रिमासाच्च यज्ञसूत्रमहः स्मृतम्।
यावदुष्णं भवेदन्नं परमान्नं तथैव च ॥४॥

पट्ट वस्त्र तीन मास में एवं जनेऊ एक दिन में निर्माल्य हो जाता है। हे शाङ्करि! अन्न तथा परमान्न जब तक गर्म रहता है तब तक निर्माल्य नहीं होता।।४।।

करवीरमहोरात्रं बिल्वपत्रं तथैव च।
जवा रक्तञ्च माध्यञ्च निर्माल्यं सार्द्धयामके ॥५॥
मालां वै करवीरस्य पद्मस्य विल्वकस्य च।
यामार्द्धेन महेशानि! ताम्बूलं दत्तमात्रतः ॥६॥

कनेर का फूल तथा बिल्वपत्र अहोरात्र में एवं लाल जपाकुसुम तथा कुन्दपुष्प डेढ़

प्रहर में निर्माल्य हो जाते हैं। कनेर की माला, कमल की माला तथा बेलपत्र की माला आधे प्रहर में निर्माल्य हो जाती है तथा ताम्बूल निवेदन-मात्र से निर्माल्य हो जाता है।।५-६।।

निर्माल्यञ्चैव दाडिम्बं तथा बिल्वफलं प्रिये! ।
सौगन्धिकञ्च कदलीं प्रयत्नेन नियोजयेत् ।।७।।

हे प्रिये! अनार का फल तथा बेल का फल दानमात्र से ही निर्माल्य हो जाता है। सौगन्धिक (श्वेत उत्पल) तथा केला यत्नपूर्वक प्रदान करना चाहिये।।७।।

अथासनम्

तत्तु आयससीसककांस्यातिरिक्ततैजसं पाषाणमयं पुष्पमयं दारुमयं वस्त्रमयं चर्ममयं कुशमयं वा पुरो निधाय मूलमुच्चार्य इदमासनं ॐ अमुकदेवतायै नमः इति दद्यात्। एवमन्यत्रापि ।।८।।

अब आसन कहते हैं। लौह, सीसा तथा कांसा को छोड़कर तैजस, पाषाणमय, पुष्पमय, लकड़ी का, कपड़े का, चर्म का अथवा कुश का आसन सामने रखकर प्रोक्षण प्रभृति करके मूल मन्त्र कहते हुये कहे 'इदमासनं अमुकदेवतायै नमः' (अमुक के स्थान पर देवता का नाम कहे) कहकर प्रदान करना चाहिये। अन्य स्थल पर भी आसन-दान की यही विधि है।।८।।

यथा—

आदौ मन्त्रं समुच्चार्य पश्चाद् देयं समुच्चरेत् ।
सम्प्रदानं तदन्ते तु त्यागार्थकपदस्ततः ।
एवं क्रमेण देवेशि! उपचारान् प्रकल्पयेत् ।।९।।

पहले मन्त्र का उच्चारण करके उपचार द्रव्यों का (पूजा में दिये द्रव्यों का) नामोच्चार करना चाहिये। तत्पश्चात् देवता का चतुर्थी विभक्तियुक्त नाम लेना चाहिये। इसके पश्चात् त्यागार्थक 'नमः' 'स्वाहा' प्रभृति शब्द का उच्चारण करे। भगवान् कहते हैं कि हे देवेशि! इस क्रम से उपचारों को समर्पित करना चाहिये।।९।।

कालिकापुराणे—

आसनञ्चार्घ्यपात्रञ्च भग्नमासादयेन्न तत् ।।१०।।

कालिकापुराण में कहते हैं—जो आसन तथा अर्घ्यपात्र भग्न अथवा छिन्न हो, उसे दान के लिये नहीं रखना चाहिये।।१०।।

अथ पाद्यम्

तत्तु श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्तायुक्तं जलं केवलजलं वा षडङ्गुलादन्यूने

षड्विंशत्यङ्गुलादनधिके तैजसपात्रे शङ्खे वा कृत्वा पूर्ववत् देवतापादाब्जयोर्दद्यात्। यथा शारदायाम्—

पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् ॥११॥

अब पाद्य के विषय में कहते हैं। श्यामा घास, दूर्वा, कमल तथा अपराजिता पुष्प- युक्त जल अथवा केवल जल जो छः अंगुल से छोटा न हो तथा २६ अंगुल से बड़ा न हो ऐसे तैजस पात्र से अथवा शङ्ख द्वारा उस जल को पूर्ववत् उत्सर्गादि द्वारा देवता के चरण कमल पर प्रदान करे। जैसा कि शारदातिलक ग्रन्थ में कहते हैं कि श्यामा घास, दूर्वा, कमल तथा अपराजिता-मिश्रित जल को पाद्य कहा जाता है।।११।।

विष्णुक्रान्ता—अपराजिता। श्यामाकादियुक्तं जलमिति शेषः ॥१२॥

विष्णुक्रान्ता अपराजिता है। श्यामा घास आदि से युक्त जल पाद्य कहा जाता है।।१२।।

अथार्घ्यम्

सौवर्णादिपात्रे शङ्खे वा गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वायुक्तजलात्मकमर्घ्यं कृत्वा स्वाहान्तमन्त्रेणोत्सृज्य देवस्य शिरसि दद्यात्। वैष्णवे तु अर्घ्यादिक्रमेण पूजेति वदन्ति ॥१३॥

अब अर्घ्य कहते हैं। सुवर्ण के पात्र में अथवा शङ्ख में गन्ध, पुष्प, अक्षत, जौ, कुशाग्र (कुशा का अग्रभाग), तिल, सफेद सरसों तथा दूर्वायुक्त जलात्मक अर्घ्य संयोजित करके (इस ग्रन्थ में पहले कहे गये अर्घ्य मन्त्र) स्वाहान्त मन्त्र पढ़ते हुये देवता के मस्तक पर प्रदान करे; किन्तु विष्णु-पूजन में प्रथमतः अर्घ्य से पूजन करे, यह कहा गया है।।१३।।

अर्घ्यप्रमाणन्तु शारदायाम्—

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः ।
सदूर्वैः सर्वदेवानामर्घ्यमेतदुदीरितम् ॥१४॥

गन्धादियुक्तं जलमितिशेषः।

अर्घ्य के विषय में शारदातिलक में कहते हैं कि दूर्वा-सहित गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव (जौ), कुशाग्र, तिल तथा सफेद सरसों से युक्त जल से समस्त देवगण को अर्घ्य प्रदान करे।।१४।।

अथाचमनीयम्

जातीलवङ्गकक्कोलान्वितजलं तैजसपात्रे शङ्खे वा निधाय, स्वधान्तमन्त्रेण उत्सृज्य वदने दद्यात्। 'जातीलवङ्गकक्कोलैर्जलमाचनीयकमि'ति वचनात् ॥१५॥

अब आचमन कहा जाता है। जातीफल (जायफल), लौंग, कक्कोल को घिसकर जल में डालकर उसे तैजस पात्र अथवा शङ्ख में रखकर स्वधा से अन्त होने वाले मन्त्र को पढ़कर मुख में प्रदान करे; क्योंकि यह वचन है कि जायफल, लौंग तथा कक्कोल- युक्त जल से आचमन करे।।१५।।

केचित्तु—'स्वधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकमि'त्यत्र सुधेति पाठं कल्पयन्तः सुधाशब्दस्यामृतवाचकत्वादमृतशब्दस्य च जलवाचकत्वादि-दमाचमनीयं वमिति प्रयोगः। तथा—'मधुपर्कं मुखे दद्याज्जलमन्त्रेण देशिकः' इति तन्त्रान्तर-वचनात्॥१६॥

कोई-कोई विद्वान् 'स्वधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम्' के स्थान पर 'सुधामन्त्रेण' की कल्पना करके तथा 'सुधा' पद को अमृतवाचक मानकर एवं अमृत को जलवाचक कहकर 'इदम् आचमनीयं वं' (जल के बीजमन्त्र 'वं') का प्रयोग करते हैं। इसीलिये तन्त्रान्तर में वचन है कि जल के मन्त्र (वं) से मुख में मधुपर्क प्रदान करना चाहिये।।१६।।

न चैतन्मधुपर्कमात्रपरमिति वाच्यम्,

सुधाऽणुना ततः कुर्यान्मधुपर्कं मुखाम्बुजे।
तेनैव मनुना कुर्यादद्भिराचमनीयकम् ॥१७॥

इति वचनात् 'वारुणेन च मन्त्रेण दद्यादाचमनीयकमि'ति वचनाच्च इति वदन्ति।

यह वचन मात्र मधुपर्कपरक है, ऐसा नहीं कह सकते। इसीलिये कहा है कि तत्पश्चात् सुधामन्त्र से मुखकमल में मधुपर्क प्रदान करे एवं उसी सुधामन्त्र से ही जल द्वारा आचमन करे। यह भी वचन है कि वारुण मन्त्र (वं) द्वारा आचमन प्रदान करे।।१७।।

परे तु वारुणबीजबोधकं वचनं शूद्रविषयम्, स्वधोच्चारणानधिकारादिति व्याचख्युः। इच्छाविकल्प इत्यन्ये। मैथिलास्तु स्वधामन्त्रेणेत्यत्र स् वकारं पाठमनूमेनिरे न सुकारं, वकारस्य त्यागाबोधकत्वात्। साम्प्रदायिकास्तु-त्यागार्थकस्वाहाशब्देनार्घ्यदानात् तत् समभिव्याहृताचमनीयदानेऽपित्या-गार्थकशब्दस्य युक्तत्वात् स्वधामन्त्रो युज्यते, न तु वमिति। तथा च नमः स्वाहा स्वधा वौषडिति यथाक्रममभिधानम्। जलमन्त्रेण इति वचनन्तु प्रमाणशून्यं, तेनाचमनीयं स्वधेति वक्तव्यम् ॥१८॥

अन्य लोग यह व्याख्या करते हैं कि वारुण बीज-बोधक वचन शूद्रों के लिये है; क्योंकि उन्हें स्वधा का उच्चारण करने का अधिकार नहीं है (इसीलिये स्वधा के स्थान पर उनके लिये 'वं' का प्रयोग बताया गया है)। अन्य लोगों का मत है कि यह इच्छाविकल्प है अर्थात् वचन में स्वधा तथा सुधा दोनों हैं, दोनों के रहने के कारण इच्छानुसार स्वधा अथवा सुधामन्त्र दोनों कह सकते हैं। मैथिली विद्वान् 'स्वधामन्त्रेण' के स्थान पर स्वकार (अर्थात् वकार के साथ) पाठ का अनुमोदन करते हैं (अर्थात् वं), वे सुकार पाठ का अनुमोदन नहीं करते। अतः सुधा शब्द प्राप्त से वकार त्याग का बोधक नहीं है। साम्प्रदायिक गण कहते हैं कि त्यागार्थक स्वाहा शब्द द्वारा अर्घ्यदान विहित होने के कारण उसके समभिव्याहृत आचमनीय दान भी त्यागार्थक शब्द (नमः) प्रयोग से युक्त होने के कारण स्वधा मन्त्र समीचीन है। 'वं' का प्रयोग समीचीन नहीं है। इसीलिये नमः, स्वाहा, स्वधा, वौषट् यथाक्रमेण कहा गया है। 'जलमन्त्रेण' वचन प्रमाणशून्य है। अतः 'आचमनीयं स्वधा' यही उचित है।।१८।।

तथा च सोमशम्भुः—

स्वधेत्याचमनीयञ्च त्रिवारं मुखपङ्कजे।
स्वधेति मधुपर्कञ्च पुनराचमनीयकम् ॥१९॥

इति प्राहुः।

सोमशम्भु भी यही कहते हैं कि 'स्वधा' के द्वारा तीन बार मुख में आचमन देना होगा। 'स्वधा' कहकर मधुपर्क तथा पुनः आचमन प्रदान करना चाहिये।।१९।।

अन्ये तु 'जलमन्त्रेण देशिक' इत्यत्र 'वारुणेन च बीजेने'त्यत्र च सहार्थे तृतीयां वदन्त इदमाचमनीयं वं अमुकदेवतायै स्वधेत्येवमनुमन्यन्ते ॥२०॥

अन्य लोग कहते हैं कि 'जलमन्त्रेण देशिकः' यहाँ तथा 'वारुणेन च बीजेन' यहाँ भी तृतीया है; अतः 'इदम् आचमनीयं वं अमुकदेवतायै स्वधा' इस प्रकार के प्रयोग का अनुमोदन किया जाता है।।२०।।

अथ मधुपर्कः

स च घृतदधिमधुयोगाद् भवति। तथा च—

आज्यं दधिमधुन्मिश्रं मधुपर्कं विदुर्बुधाः ॥२१॥

कालिकापुराणे—

यदि सर्पिर्जलक्षौद्रसिताभिश्चैव पञ्चभिः।
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवौघतुष्टये ॥२२॥

अब मधुपर्क बताते हैं। यह दधि, घृत तथा मधु को मिलाकर बनता है। तभी कहते हैं कि घृत, दधि तथा मधु के योग से मधुपर्क बनता है। कालिकापुराण में कहा गया है कि समस्त देवताओं की सन्तुष्टि के लिये दधि, घृत, जल तथा मधु एवं शर्करा द्वारा मिश्रित वस्तु ही मधुपर्क होता है।।२१-२२।।

जलन्तु सर्वतः स्वल्पं सितादधिघृतं समम्।
सर्वेषामधिकं क्षौद्रं मधुपर्के प्रयोजयेत्।
तं दद्यात्कांस्यपात्रेण रौक्मश्वेततरेण वा ॥२३॥

सबकी अपेक्षा जल कम मात्रा में; शर्करा, घृत, दधि समान मात्रा में तथा सबकी अपेक्षा अधिक मात्रा में मधु मिलाने से मधुपर्क तैयार होता है। कांस्य पात्र, स्वर्ण पात्र अथवा चाँदी के पात्र में अथवा अन्य पात्र में मधुपर्क प्रदान करना चाहिये।।२३।।

श्वेत—रौप्यं। स्वधान्तेन मुखे दद्यात्। आचमनीयं पूर्ववत्। इदं स्नानजलं निवेदयामि। पुनराचमनीयम्। वस्त्रं नमोमन्त्रेण देयम्। उत्तरीयवस्त्रञ्च। तच्च निर्दशमलिनजीर्णछिन्नगात्रालिङ्गिताखुजग्धचन्द्रातपध्वजाद्यन्यसूची-विद्धचिरोषितोप्तकेशविधौतश्लेष्ममूत्रादिदूषितान्यद् ग्राह्यम् ॥२४॥

श्वेत = रौप्य, चाँदी। मधुपर्क को स्वधान्त (स्वधा शब्द से अन्त होने वाले) मन्त्र द्वारा मुख में प्रदान करना चाहिये। पूर्ववत् आचमन प्रदान करना चाहिये। 'इदं स्नान जलं निवेदयामि' कहकर स्नानार्थ जल प्रदान करे। पुनः आचमन करे। नमोन्त (नमः से अन्त होने वाले) मन्त्र द्वारा वस्त्र प्रदान करे। उत्तरीय-दान भी नमोन्त मन्त्र से होना चाहिये। वस्त्रादि तथा उत्तरीय वस्त्र कदापि छिद्रयुक्त, मलिन, जीर्ण, कटा-फटा, पहना हुआ, चूहे का काटा, चन्द्रातप, ध्वजभिन्न, सूई से सिला, अत्यन्त पुराना, रोमा वाला, धोवी का धोया, श्लेष्मा अथवा मूत्र आदि लगा नहीं होना चाहिये।।२४।।

गात्रालिङ्गितकं जीर्णं श्लेष्ममूत्रादिदूषितम्।
चिरोषितोप्तकेशञ्च सूचीविद्धं विधौतकम् ॥२५॥
निर्दशं मलिनञ्चाखू जग्धं छिन्नं परं त्यजेत्।
चन्द्रातपध्वजादौ तु सूचीविद्धं न दुष्यति ॥२६॥

पहना हुआ, जीर्ण, श्लेष्मा-मूत्रादि से दूषित, अति पुरातन, रोयांदार, सूई से सिला, धोबी से धुला, छिद्रयुक्त, मलिन, चूहा से काटा, कटा-फटा नहीं देना चाहिये। चन्द्रातप तथा ध्वजादि वस्त्र सूई से सिला होने पर भी दूषित नहीं होता।।२५-२६।।

आचमनीयं यज्ञोपवीतं नमः। एषोऽलङ्कारो नमः।

आचमन तथा यज्ञोपवीत दान में भी मन्त्र के अन्त में नमः लगाये। जैसे आचमनीयं नमः, एष अलङ्कारो नमः।

अथ गन्धः

स च नमोऽन्तेन देयः। निबन्धे—'गन्ध चन्दनकर्पूरकालागुरुभिरीरितः। चूर्णीकृतघृष्टदाहाकर्षितसम्मर्दजरसकस्तूरीमृगसम्भूतेति पञ्चविधान्यतमो वा कुङ्कुमागुरुकस्तूरीकर्पूरचतुःसमसाधितो वा। गन्धाष्टकमपि दद्यात् ॥२७॥

गन्ध भी नमोऽन्त मन्त्र से प्रदान करना चाहिये। निबन्ध में कहते हैं कि चन्दन, कपूर तथा काला अगरु मिलकर गन्ध कहलाते हैं। यह गन्ध चूर्ण बनाकर, घिसकर, जलाकर, मलकर रस निकालकर अथवा कस्तूरी (हिरण की)—इन पाँच प्रकार की वस्तु को मिलाकर बनता है। अथवा कुङ्कुम, अगरु, कस्तूरी तथा कपूर को समान मात्रा में मिलाकर गन्ध कहा गया है। गन्धाष्टक भी दे सकते हैं।।२७।।

यथा शारदायाम्—

गन्धाष्टकन्तु त्रिविधं शक्तिविष्णुशिवात्मकम्।
चन्दनागुरुकर्पूरचोरकुङ्कुमरोचना।
जटामांसी कपियुता शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः ॥२८॥
चन्दनागुरुह्रीबेरकुष्ठकुङ्कुमसेरुकाः।
जटामांसी मूरमिति विष्णोर्गन्धाष्टकं स्मृतम् ॥२९॥
चन्दनागुरुकर्पूरतमालजलकुङ्कुमम्।
कुसीदं कुष्ठसंयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं स्मृतम् ॥३०॥

ह्रीवेरं = बाला। चोरः = कृष्णसाठी। कपिः = इसे बंगाल में गाँठिया कहते हैं। जैसे शारदातिलक में कहा गया है कि (शक्ति-साधना, विष्णु तथा शिव-साधना में) शक्ति, विष्णु तथा शिवस्वरूप गन्धाष्टक तीन प्रकार का होता है। चन्दन, कपूर, अगुरु, कृष्णसाठी, कुङ्कुम, रोचना तथा गाठिया एवं जटामासी—इसे शक्तिगन्धाष्टक कहा गया है। चन्दन, अगुरु, बाला, कूठ, कुङ्कुम, सेरुक, जटामासी, देवदारु को विष्णु-गन्धाष्टक कहा गया है एवं चन्दन, अगुरु, कपूर, तमाल, बाला, कुङ्कुम, कुसीद तथा कूठ को शैव गन्धाष्टक कहा गया है।

सेरुक = शतवीरा मूल। मूरं = देवदारु। कुसीद = लाल चन्दन।।२८-३०।।

अथ पुष्पम्

तत्तु वौषडन्तेन दद्यात् ॥३१॥

कुशपुष्पसमिद्वारि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत्।
शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन् व्रजत्यधः ॥३२॥

अब पुष्प के विषय में कहते हैं। इन्हें वौषड् से अन्त होने वाले मन्त्र द्वारा अर्पित करना चाहिये। कुश, पुष्प, समिधा तथा जल को ब्राह्मण स्वयं लाये। शूद्र द्वारा लाये तथा खरीद कर लाये गये पुष्पसमूह से पूजादि करने से अधोदेशगामी होना पड़ता है।।३१-३२।।

अत्र विशेषः—

आदाय मूल्यं विक्रेता दीयते स्वेच्छयैव यत्।
अयाचमानो गृह्णीयाद् वीरक्रय उदाहृतः ॥३३॥
वीरक्रयाहृतैः पुष्पैः कर्म कुर्वन् न दुष्यति।
मालाकारैः स्वदासैश्च आहृते नास्ति दूषणम् ॥३४॥

और भी कहा गया है कि यदि विक्रेता मूल्य लेकर स्वेच्छा से पुष्प देता है एवं खरीददार (कम मूल्य में) अधिक न चाहकर उसे ग्रहण करता है तो इसे 'वीरक्रय' कहते हैं। वीरक्रय युक्ति से लाया गया पुष्प पूजाकर्म में प्रयुक्त होने पर दोष नहीं लगता। माली द्वारा लाये तथा अपने नौकर-चाकर द्वारा लाये पुष्प से भी दोष नहीं होता।।३३-३४।।

तथा—

देवतानां हि पूजार्थं पुष्पचौर्यं न दुष्यति।
विप्रस्यारामतोऽन्यत्र तथा पुष्पोपजीविनः ॥३५॥

और भी कहा गया है कि देवताओं के पूजनार्थ चुराया गया पुष्प भी दोषपूर्ण नहीं होता। जो पुष्प बेचकर जीविका चलाते हैं, उनको छोड़कर तथा ब्राह्मण के बाग को छोड़कर अन्य स्थान से पुष्प चोरी करने से कोई दोष नहीं होता (यह केवल पूजार्थ चोरी के सम्बन्ध में कहा गया है)।।३५।।

यामले—

नाक्षतैरर्चयेद् विष्णुं न तुलस्या विनायकम्।
न दूर्वया यजेद् दुर्गां बिल्वपत्रैर्दिवाकरम्।
उन्मत्तमर्कपुष्पञ्च विष्णोर्वर्ज्यं सदा बुधैः ॥३६॥

यामल के अनुसार अक्षत से विष्णु का, तुलसी द्वारा गणेश का तथा दूब से दुर्गा का पूजन नहीं करना चाहिये। बिल्वपत्र से सूर्य की तथा धतूरा एवं मदार के पुष्प से विष्णु की अर्चना विद्वानों को कभी नहीं करनी चाहिये।।३६।।

गौतमीये—

न रक्तचन्दनं जातु गृह्णीयाद् रक्तपुष्पकम्।
बिल्वपत्रैस्तत्कुसुमैर्नार्चयेद् देवकीसुतम्॥३७॥

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि विष्णु-पूजन में लाल चन्दन तथा लाल पुष्प कभी भी नहीं चढ़ाना चाहिये। कृष्ण की अर्चना बिल्वपत्र तथा बिल्वफूल से नहीं करनी चाहिये।।३७।।

यत्तु—

कमले करवीरे द्वे तुलस्यौ जातिकेतके।
नागकेशरपारन्तीकह्लारं चम्पकोत्पले॥३८॥
नन्द्यावर्त्तञ्च यूथी च मल्लिका नवमल्लिका।
कुन्दं मन्दारकञ्चैव सौगन्धिकञ्च केशरम्।
कुरुण्टाशोकसर्जानि बिल्वञ्च मुनिपुष्पकम्॥३९॥
पत्रमामलकं शुद्धं कर्णिकारं पलाशजम्।
एतान्यन्यानि पुष्पाणि यथालाभं समर्चयेत्॥४०॥

इति यद् बिल्वपत्रविधानं, तद् विहितपुष्पाभावे।

और भी कहते हैं कि श्वेत तथा लाल पद्म एवं कनेर, काली तथा हरी तुलसी, चमेली, केतकी, नागकेशर, पारन्ती लता के फूल, कल्हार, चम्पा, उत्पल, नन्द्यावर्त्त, जूही, मल्लिका, नवमल्लिका (मालती), कुन्द, मन्दार, सौगन्धिक, नागकेशर, कुरुण्ट (पीत आँवला-पुष्प), शालपुष्प, बेल का फल, बक का फूल, आमला के पत्ते, कर्णिका पुष्प (सौंदाली पुष्प), पलाश के शुद्ध पत्ते तथा फूल—इन पुष्पों से तथा अन्य जो पुष्प पाये जाते हैं, उनसे पूजन करना चाहिये।।३८-४०।।

उपरोक्त वचनों में जो बिल्वपत्र का विधान किया गया है, वह विहित पुष्प के न मिलने की स्थिति के लिये है।

तन्त्रान्तरे—

देवीनामर्कमन्दारावादित्ये तगरं तथा।
गणेशाय च सूर्याय रक्तपुष्पमतिप्रियम्॥४१॥
शिवे कुन्दं मदन्तीञ्च यूथीं बन्धूककेतके।
जवां रक्तां त्रिसन्ध्ये द्वे मालतीं केतकी तथा॥४२॥

अन्य तन्त्र में कहा गया है कि देवी को अर्क तथा मन्दारपुष्प, सूर्य को तगर का पुष्प और गणेश एवं सूर्य को रक्त पुष्प अति प्रिय हैं। शिव की पूजा में कुन्द,

वनमल्लिका, जूही, बन्धूक, केतकी, लाल जवाकुसुम, दो त्रिसन्ध्या (दुमुटी, जो सफेद तथा लाल दोनों होती है), मालती, केतकी का उपयोग वर्जित है।।४१-४२।।

यत्तु—

एकेन करवीरेण सितेनाऽप्यसितेन वा।
स भवेन्मुक्तिभोगी यो हरिं वा हरमर्चयेत् ।।४३।।

इति वचनं तत्रासितपदेन देशान्तरप्रसिद्धं कृष्णवर्णकरवीरमुक्तम्।

और भी कहा गया है कि जो हरि अथवा हर की श्वेत अथवा अश्वेत एक भी कनेर द्वारा अर्चना करते हैं, वे मुक्ति पा जाते हैं। यहाँ 'असित' पद से देशान्तर में प्रसिद्ध कृष्णवर्ण करवीर (कनेर) का उल्लेख किया गया है।।४३।।

तथा—

उग्रगन्धमगन्धञ्च कृमिकेशादिदूषितम्।
अशुद्धपात्रप्राण्यङ्गवासोभिर्कुत्सितात्मभिः ।।४४।।
आनीतं नार्पयेच्छम्भोः प्रमादादपि दोषकृत्।
वासोभिः सम्भृतैर्नीतं मतिमान्नार्चयेच्छिवे ।।४५।।

'शिव' इत्युपलक्षणम्।

इसी प्रकार और भी कहा गया है कि अधिक गन्ध वाले अथवा गन्धहीन पुष्प से, कृमि-केशादि से दूषित पुष्प से, अशुद्ध पात्र, अशुद्ध अंग तथा हाथ अथवा अशुद्ध वस्त्र में लाये पुष्प से, कुत्सित चित्त वाले व्यक्ति द्वारा लाये पुष्प से प्रमादवशात् भी शिव की अर्चना करने से दोष की प्राप्ति होती है। भगवान् कहते हैं—हे शिवे! जो ढाकने का वस्त्र है, उसमें लाये पुष्प को बुद्धिमान व्यक्ति को कदापि पूजार्थ ग्रहण नहीं करना चाहिये।।४४-४५।।

तथा—

कलिकाभिस्तथा त्याज्यं विना चम्पकपङ्कजैः।
शुष्कैश्च नार्चयेद् विष्णुं पुष्पैः पत्रैः फलैरपि ।।४६।।

और भी कहा गया है कि चम्पा तथा कमल के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुष्प की कली नहीं चढ़ानी चाहिये। सूखे फल तथा पुष्प से विष्णु की अर्चना कदापि नहीं करनी चाहिये।।४६।।

स्नात्वानीतैः पर्युषितैर्याचितैः कृष्णवर्णकैः।
स्वयं विकाशितैः पुष्पैः स्वयञ्च पतितैर्भुवि।
वर्जयेत् बृहतीपुष्पमगन्धञ्च विशेषतः ।।४७।।

स्वयं विकाशितैः पुरुषेण स्वयं विकाशितैः ।

स्नान के पश्चात् लाये पुष्प से, बासी, माँगे गये पुष्प से, काले पुष्प से, स्वयं विकासित पुष्प से, भूमि में स्वयं गिरे पुष्प से पूजा नहीं करनी चाहिये। बृहती पुष्प तथा गन्धहीन पुष्प का भी वर्जन करना चाहिये। स्वयं विकाशितैः का अर्थ है कि किसी ने जिस कली को अपने हाथों में लेकर उसकी पंखुड़ियों को फैलाया हो; स्वयं प्रकृति द्वारा जो विकासित न हो।।४७।।

तथा—

त्रिपत्रन्यूनकुसुमैर्नार्चयेत्तु कदाचन ।
भूगतं चाङ्गसंस्पृष्टं केशकीटादिदूषितम् ।।४८।।
कुसुमं पाटलञ्चैव शिरीषं परिवर्जयेत् ।
भूगतं वर्जयेत्पुष्पं शेफालीं बकुलं विना ।।४९।।

जमीन पर पतित (गिरे) पुष्प, पैर तथा अन्य (हाथ को छोड़कर) अंगों से छूये पुष्प, बाल तथा कीटादि से दूषित पुष्प, कुसुम, पाटल तथा शिरीष के पुष्प पूजा में वर्जित हैं। शेफाली तथा बकुलपुष्प यदि जमीन पर पेड़ से गिरे हों तो उनका प्रयोग किया जा सकता है; लेकिन अन्य जमीन पर गिरे पुष्प वर्जित हैं।।४८-४९।।

तथा—

बिल्वस्य खादिरस्यैव तथा धात्र्या दलस्य च ।
तमालस्य च पद्मस्य छिन्नं भिन्नं न दुष्यति ।।५०।।

इसी प्रकार बिल्व पत्र, खदिर का पत्र, आँवला का पत्ता, तमालपत्र तथा कमल का पत्ता छिन्न-भिन्न होने पर भी दोषयुक्त नहीं माना जाता।।५०।।

गौतमीये—

मलिनं भूमिसंस्पृष्टं कृमिकेशादिदूषितम् ।
पर्युषितानि पुष्पाणि वर्जयेद् देवतार्चने ।।५१।।

गौतमीय तन्त्र में कहा है कि देवता-पूजन में मलिन, भूमि पर गिरा, कृमि-कीटादि से दूषित एवं बासी पुष्प का वर्जन करना चाहिये।।५१।।

तिष्ठेद् दिनत्रयं शुद्धं पद्ममामलकं तथा ।
तुलसी सर्वदा शुद्धा तथा बिल्वदलानि च ।
दिनैकं करवीराणि योग्यानि च तपोधन ।।५२।।

हे तपोधन! कमल तथा आमलक तीन दिन तक शुद्ध रहते हैं। तुलसी सर्वदा

शुद्ध रहती है। बिल्वपत्र तथा कनेर मात्र एक दिन पूजन-योग्य रहते हैं।।५२।।

ज्ञानार्णवे—

पुष्पैः पर्युषितैर्देवि! नार्चयेत् स्वर्णजैरपि।
निर्माल्यभूतैः कुसमैरुच्छिष्टैः परमेश्वरि! ।।५३।।

ज्ञानार्णव तन्त्र में भगवान् कहते हैं—हे परमेश्वरि! बासी पुष्पों से पूजन नहीं करना चाहिये। हे देवि! निर्माल्य हो गये स्वर्णकृत पुष्प द्वारा तथा जूठे पुष्पसमूह से पूजा करना सर्वथा वर्जित है।।५३।।

त्रिपुरामधिकृत्य वाराहीये—

पलाशकाशकुसुमैर्नार्चयेद् दूरतस्त्यजेत्।
धात्रीतमालजैः पत्रैस्तुलसीद्वितयैस्तथा।
पूजनात्पातकी तु स्याल्लग्नैश्चापि प्रियं हरेत् ।।५४।।

पलाशपुष्प से त्रिपुरा की अर्चना वर्जित है। उसे दूर से ही त्याग देना चाहिये। इसी प्रकार आँवला तथा तमाल एवं कृष्ण-श्वेत तुलसी से भी पूजा करने से साधक पातकी हो जाता है। शरीर से छू गये पुष्प से पूजन करने पर ऐश्वर्य की हानि होती है।।५४।।

तथा—

त्रिपुरापूजने वर्ज्या तुलसी सर्वदा बुधैः।
तुलसीगन्धमाघ्राय क्रुद्धा भवति सुन्दरी ।।५५।।

कहा गया है कि त्रिपुरा की पूजा में तुलसी सर्वदा वर्जित है। त्रिपुरसुन्दरी तुलसी की गन्ध से भी क्रोधित हो जाती हैं।।५५।।

कौलावलीये—

रक्तमाध्यं श्वेतदूर्वां नीलकण्ठं कुरुण्टकम्।
न दद्याच्च महादेव्यै यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।।५६।।

कौलावली ग्रन्थ में कहा गया है कि यदि अपना कल्याण चाहिये तो रक्तवर्ण कुन्द, सफेद दूब, नीलकण्ठ, कुरन्टक (झिण्टीफूल बंगाल में कहते हैं) से कदापि महादेवी का पूजन नहीं करना चाहिये।।५६।।

योगिनीतन्त्रे देवीमधिकृत्य—

झिण्टीपुष्पेण पीतेन पीतेन तगरेण च।
श्वेतोड्रेन च पुष्पेण वर्जयेत् पूजनं सदा ।।५७।।

तुलस्यौ द्वे च मन्दारे कह्लारजतमालजैः ।
नार्च्चयेत महालक्ष्मीं कुशकाशोद्भवेन च ।।५८।।

योगिनीतन्त्र में कहते हैं कि पीले झिण्टी पुष्प, पीले तगर, श्वेत जवापुष्प द्वारा कभी भी पूजा न करे (देवी की पूजा)। पूजा में दोनों प्रकार की तुलसी, दोनों प्रकार के मन्दार भी वर्जनीय हैं। कल्हार से उत्पन्न, तमाल से उत्पन्न, कुशा से उत्पन्न तथा कास से उत्पन्न पुष्प से महालक्ष्मी की अर्चना वर्जित कही गयी है।।५७-५८।।

तथा सर्वमधिकृत्य—

बकुलस्य त्वशोकस्य अर्जुनस्य च वर्जयेत् ।
पूजयेद् वृन्तवर्जेन सवृन्तेन च वर्जयेत् ।।५९।।

समस्त देवी-पूजनार्थ भगवान् कहते हैं कि हे महेश्वरि! बकुल, अशोक एवं अर्जुनपुष्प को, जिनमें वृन्त हो पूजा में नहीं लेना चाहिये। यदि ये वृन्तरहित हों तब इनका उपयोग पूजनार्थ कर सकते हैं।।५९।।

विष्णुक्रान्ता जवा नागकेसरं नागवल्लभम् ।
बन्धूकञ्चैव मन्दारं सवृन्तेन समर्चयेत् ।।६०।।
न स्पृशेद् वृन्तवर्जञ्च भूगतञ्च न संस्पृशेत् ।
शेफालीबकुले भद्रे! भूगते च समर्पयेत् ।।६१।।

भगवान् कहते हैं कि हे भद्रे! वृन्तयुत बन्धूक एवं मन्दार से पूजन करना चाहिये। वृन्तवर्जित होने पर इनको छूना भी मना है। यदि ये भूमि पर गिरे हों तो इनका स्पर्श न करे। लेकिन यदि शेफाली अथवा बकुलपुष्प भूमि पर भी गिरे हों तो भी उनका उपयोग किया जा सकता है।।६०-६१।।

माल्वरं भूगतं देयं तस्य काष्ठस्य चन्दनम् ।
बिल्वस्य मूलकं वर्ज्यं कमल्याः पत्रकं तथा ।।६२।।

भूमि पर गिरे बिल्वपत्र से पूजन विहित है। बेल की लकड़ी का चन्दन भी पूजनार्थ प्रयोग किया जा सकता है। बेल की जड़ तथा केला के पत्ते का वर्जन करना चाहिये।।६२।।

तथा नक्षत्रविद्यादौ मत्स्यसूक्ते—

पुष्पश्रेष्ठं कोकनदं बन्धूकं शतपत्रकम् ।
बर्बराद्वितयञ्चैव कर्णिकारद्वयं तथा ।।६३।।
बकमन्दारचूतानि करवीराणि शस्यते ।
मल्लिकाद्वितयं जाती क्षौमपुष्पं जयन्तिकाम् ।।६४।।

बिल्वपत्रं कुरबकं मुनिपुष्पञ्च केशरम्।
वासन्तीद्वितयञ्चैव काशपुष्पं मरूबकम्।
दमनञ्च लवङ्गञ्च यूथीं शेफालिकां तथा॥६५॥

नक्षत्रविद्या के विषय में इसी प्रकार से मत्स्यसूक्त में कहा गया है कि कोकनद, बन्धूक, शतदल पुष्प, दोनों प्रकार की बर्बरा तथा दोनों प्रकार की कर्णिका भी पूजनादि में श्रेष्ठ हैं।

बक, मन्दार, आम के पुष्प तथा करवीर (कनेर) के फूल भी पूजनादि हेतु ग्रहण करने योग्य हैं। दोनों प्रकार की मल्लिका, चमेली, अतसी के फूल, जयन्तिका, बेलपत्र, लाल आमला, मुनिपुष्प, नागकेशर पुष्प, दोनों प्रकार की माधवीलता के पुष्प, काश के पुष्प, मरुवक (मदना), दमन, लौंग, चमेली, शेफालिका के पुष्प पूजनार्थ प्रशस्त होते हैं।।६४-६५।।

सुगन्धिश्वेतलौहित्यकुसुमैरर्चयेद् दलैः।
बिल्वैर्मरुबकाद्यैश्च तुलसीदलवर्जितैः॥६६॥

सुगन्धित रक्तवर्ण तथा श्वेत पुष्प से अर्चना करनी चाहिये। तुलसी दल को देवी-पूजा में वर्जित माना गया है। बिल्व पत्र तथा मदना के पत्तों से भी पूजा करने में कोई दोष नहीं है।।६६।।

'यद्यपि तुलसीवर्जिता पूजा न जातु फलदा भवेदि'ति, तथापि तन्नियमन्तु न त्रिपुरादौ॥६७॥

यद्यपि तुलसी-रहिता पूजा कभी भी फलप्रदा नहीं होती'—यह वचन है, किन्तु यह नियम शक्तिमार्ग की पूजा हेतु नहीं है।।६७।।

भैरवी सुन्दरी काली ब्रह्मविघ्नविवस्वताम्।
तुलसीवर्जिता पूजा सा पूजाऽविफला भवेत्॥६८॥

अविफला सफलेत्यर्थः।

भैरवी, त्रिपुरसुन्दरी, काली, ब्रह्मा, गणेश तथा सूर्य की पूजा में तुलसी वर्जित है। इनकी तुलसी-रहित पूजा ही सफल होती है।।६८।।

भैरव्यादिपूजायां तुलसी सर्वदैव वर्ज्या, पूर्ववचनात्। इतरासान्तु पूजायां तदसत्त्वे सत्त्वे वा न कश्चिद् विशेषः। 'नाक्षतैरर्चयेद् विष्णुमि'ति तु पुष्पाभावे अतिदेशप्राप्तस्य तण्डुलस्य निषेधपरम्॥६९॥

पूर्व वचन के अनुसार भैरवी-प्रभृति की पूजा में तुलसी सर्वदा वर्जित है। अन्य

देवीगण की पूजा में तुलसी रहे अथवा न रहे—ऐसा कोई विशेष उल्लेख नहीं है। 'नाक्षतैरर्चयेद् विष्णुम्' इस नियमानुसार पुष्प के अभाव में भी उनके पूजन में अक्षत का निषेध है।।६९।।

तथा च—

पुष्पाभावे जलेनापि दूर्वया तण्डुलेन च।
नित्यपूजा प्रकर्त्तव्या भक्तिभावेन सुन्दरि ।।७०।।

न त्वर्घ्यादिनिषेधपरम्।

गन्धपुष्पाक्षतं यवकुशाग्रतिलसर्षपैः।
सदूर्वैः सर्वदेवानामेतदर्घ्यमुदीरितम् ।।७१।।

इत्यनेनाक्षतस्याऽर्घ्यघटकत्वात्।

भगवान् कहते हैं—हे सुन्दरि! जहाँ पुष्प न मिलें वहाँ जल से, दूर्वा से अथवा अक्षत से ही भक्ति-भाव से पूजन करना चाहिये।

उपर्युक्त नियम अर्घ्यादि में निषेधपरक नहीं है। क्योंकि कहा गया है कि दूर्वा के साथ गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुशाग्र, तिल, सरसों-युक्त जल से समस्त देवता का अर्घ्य दिया जाना चाहिये। यत: अक्षत को भी अर्घ्य का ही घटक माना गया है।।७०-७१।।

एवं 'न दूर्वया यजेद् दुर्गामि'त्यपि पुष्पाभावे तन्मात्रकरणकदुर्गापूजाया निषेधकम्, न तु दूर्वाघटितपूजाया अपि ।।७२।।

इसी प्रकार यह भी वचन है कि दूर्वा से दुर्गा की अर्चना न करे। इस वचन से दूर्वा से दुर्गा-पूजा का निषेध है; किन्तु दूर्वायुक्त अन्य उपचार द्वारा दुर्गा की पूजा का निषेध नहीं है, जैसे कि अर्घ्य में दूर्वा रहती ही है।।७२।।

तथा च—

विना वै दूर्वया देवि! पूजा नास्तीह कर्हिचित्।
तस्माद् दूर्वा ग्रहीतव्या यतः सर्वमयी शिवे ।।७३।।

इत्युक्तत्वात्।

इसी कारण तन्त्र में कहते हैं कि हे देवि! किसी भी समय में यहाँ दूर्वा के विना पूजन नहीं होता। हे देवि! क्योंकि दूर्वा सर्वमयी है। अतएव पूजा में दूर्वा का ग्रहण अवश्य करना चाहिये।।७३।।

तथा राघवभट्टः—

सर्वैः पुष्पैः सदा पूजा विहिताऽविहितैरपि।
कर्त्तव्या सर्वदेवानां भक्तियोगोऽत्र कारणम् ।।७४।।

राघवभट्ट कहते हैं कि विहित तथा अविहित पुष्पों द्वारा समस्त देवताओं का पूजन करे। भक्तियोग में अविहित पुष्प (निषिद्ध पुष्प) द्वारा भी पूजा की जा सकती है।।७४।।

तन्त्रान्तरे—

देवीपूजा सदा कार्या जलजैः स्थलजैरपि।
विहिताविहितैर्वापि भक्तियुक्तेन चेतसा ।।७५।।

इदन्तु विहितपुष्पाभावे अत्यन्तभक्तिविषयम्।

अन्य तन्त्र में भी कहा गया है कि भक्तियुक्त चित्त से विहित अथवा अविहित जल में उत्पन्न और पृथ्वी में उत्पन्न पुष्पों द्वारा सर्वदा देवी-पूजन करे।

किन्तु यह विहित पुष्प के अभाव में जो अविहित पुष्प के उपयोग की स्वीकृति है, वह अत्यन्त भक्ति की स्थिति के लिये है। अत्यन्त भक्तिभाव-युक्त ही अविहित का उपयोग विहित पुष्प के अभाव में कर सकते हैं।।७५।।

कालीतन्त्रे—

अपामार्गैश्च भृङ्गैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः ।।७६।।

मुण्डमालातन्त्रे—

धुस्तूराशोकबकुलश्वेतकृष्णाऽपराजिता ।।७७।।

इत्यादि देयपुष्पे पुष्पनियमः ।

कालीतन्त्र में कहा गया है कि तुलसी-रहित सुन्दर शुद्ध अपामार्ग (चिड़चिड़ा) अथवा भृङ्गराज-पुष्प से पूजन करे। मुण्डमाला तन्त्र में कहते हैं कि धतूरा, अशोक, बकुल एवं सफेद तथा श्याम अपराजिता से पूजा करे।।७६-७७।।

कालिकापुराणे—

रक्तपद्मसहस्रेण यो मालां सम्प्रयच्छति।
भक्तियुक्तो महादेव्यै तस्य पुण्यफलं शृणु ।।७८।।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च।
स्थित्वा मम पुरे श्रीमांस्ततो राजा क्षितौ भवेत् ।।७९।।

कालिकापुराण में कहा गया है कि जो भक्तियुक्त होकर १००० लाल कमलों से रचित माला महादेवी को प्रदान करता है, उसका फल सुनो। देवी कहती हैं— वह श्रीमान् व्यक्ति कोटिकल्प सहस्र वर्षों तक मेरे पुर में (लोक में) रहकर सैकड़ों करोड़ों कल्पों तक पृथ्वी पर राजा होकर रहता है।।७८-७९।।

पत्रेषु बिल्वपत्रन्तु देवीप्रीतिकरं परम्।
तत्सहस्रकृता माला पूर्ववत्फलदा भवेत् ॥८०॥

पत्रों में से बिल्वपत्र देवी को अति प्रिय है। जो १००० बिल्वपत्र की माला बनाकर देवी को पहनाता है, वह उनका अतिप्रिय हो जाता है। उसे वही फल प्राप्त होता है, जो ऊपर श्लोक में कहा गया है।।८०।।

किञ्चातिबहुनोक्तेन सामान्येनेदमुच्यते।
उक्तानुक्तैस्तथा पुष्पैर्जलजैः स्थलजैस्तथा ॥८१॥
पत्रैः सर्वैर्यथालाभं सर्वौषधिगणैरपि।
वनजैः सर्वपुष्पैश्च पत्रैरपि शिवां यजेत् ॥८२॥

अत्यन्त अधिक बोलने या कहने से कोई लाभ नहीं होगा। अतः सामान्य रूप से (संक्षेप में) कहता हूँ कि शास्त्र में बताये गये विहित अथवा अविहित, जल में उत्पन्न अथवा पृथ्वी पर उत्पन्न पुष्प द्वारा, समस्त पत्तों द्वारा अथवा जहाँ जिस तरह की औषधि मिले, वन में मिले समस्त पुष्पों से देवी का पूजन करना चाहिये।।८१-८२।।

पूजयेत् परमेशानीं पुष्पाभावे तु पत्रकैः।
पत्राणामप्यभावे तु तृणगुल्मौषधादिभिः ॥८३॥
औषधीनामभावे तु तत्फलैरपि पूजयेत्।
अक्षतैर्वा जलैर्वापि तदभावेऽपि सर्षपैः।
सितैस्तस्याप्यलाभे तु मानसीं भक्तिमाचरेत् ॥८४॥

पुष्प के अभाव में पत्तों से भी परमेश्वरी का पूजन किया जा सकता है। जहाँ पत्ते भी न हों वहाँ तृण, गुल्म तथा औषधियों से पूजन करे। जहाँ यह सब भी न मिलें, वहाँ पर फल से पूजन किया जा सकता है। उसके भी अभाव में अक्षत, जल किंवा श्वेत सरसों से पूजन करे। यह सब भी न प्राप्त होने पर मानस भक्ति का आश्रय लेकर भावना से पूजन करना चाहिये।।८३-८४।।

वाजिदन्तकपत्रैश्च पुष्पौघैरपि चण्डिकाम्।
तुलसीकुसुमैः पत्रैरर्चयेच्छ्रीविवृद्धये ॥८५॥

(कुछ न मिलने पर) वासक पुष्प-पत्र से, तुलसी के पुष्प तथा पत्ते से श्रीवृद्धि के लिये चण्डिका का पूजन करना चाहिये।।८५।।

तन्त्रान्तरे—

दत्ते चैकजवापुष्पे पट्टवस्त्रफलं लभेत्।
ब्रह्महत्यादिकं पापं तत्क्षणान्नश्यति ध्रुवम् ॥८६॥

अन्य तन्त्र में कहा गया है कि देवी को एक जवापुष्प अर्पित करने-मात्र से रेशमी वस्त्र अर्पण करने का फल मिलता है। और अर्पण करने वाले के ब्रह्महत्यादि पाप निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं।।८६।।

मत्स्यसूक्ते—

द्रोणञ्च बन्धुजीवञ्च सरस्वत्यै न दापयेत्।
महालक्ष्म्यै तु तुलसीं झिण्टिकां काञ्चनं तथा ।।८७।।

मत्स्यसूक्त में कहते हैं कि दोना का पुष्प (तुलसी ऐसा पौधा) एवं बन्धुजीव का पुष्प सरस्वती को न चढ़ाये। इसी प्रकार महालक्ष्मी पर तुलसी, झिण्टिका तथा कचनार का पुष्प नहीं चढ़ाना चाहिये।।८७।।

मत्स्यपुराणे—

बिल्वपत्रञ्च माध्यञ्च तमालामलकीदलम्।
कह्लारं तुलसीं चैव पद्मञ्च मुनिपुष्पकम्।
एतत्पर्युषितं न स्याद्यच्चान्यत्कलिकात्मकम् ।।८८।।
माध्यं कुन्दम्, मुनिपुष्पं बकपुष्पम्।

मत्स्यपुराण में कहा है कि बिल्वपत्र, कुन्द, तमालपत्र, आमलकी-पत्र, कह्लार, तुलसी, पद्म, मुनिपुष्प बासी नहीं होते। साथ ही जो कलिका (कली के आकार वाले) पुष्प हैं (मकुल आदि), वे भी बासी नहीं होते।।८८।।

स्कान्दे—

शुष्काण्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य सदैव हि ।।८९।।

दातव्यमिति शेषः।

स्कन्द पुराण के अनुसार बेलपत्र यदि सूख भी जाय, फिर भी उसे चढ़ाया जा सकता है।।८९।।

कालिकापुराणे—

पुष्पञ्च कृमिसंयुक्तं विशीर्णं भग्नमृद्गतम्।
सकेशं मूषिकाधूतं यत्नेन परिवर्जयेत् ।।९०।।

कालिकापुराण के अनुसार कृमियुक्त, विशीर्ण, भग्न, मिट्टी में गिरा, केशयुक्त, चूहे द्वारा काटा गया पुष्प पूजा में यत्नपूर्वक त्याज्य है।।९०।।

याचितं परकीयञ्च तथा पर्युषितञ्च यत्।
अङ्गस्पृष्टं पदा स्पृष्टं यत्नेन परिवर्जयेत् ।।९१।।

याचना से मांग कर लाया गया, दूसरे का, बासी, देह से छुआ हुआ, पैर से दबा जो पुष्प है, उसे भी त्याग देना चाहिये।।९१।।

भविष्ये—

धुस्तूरकैस्तु यो लिङ्गं सकृत् पूजयति नरः।
स गोलक्षफलं प्राप्य शिवलोके महीयते।।९२।।
बिल्वपत्रैरखण्डैश्च यो लिङ्गं पूजयेत् सकृत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते।।९३।।

भविष्य पुराण में कहा गया है कि जो धतूरा के फूल से शिवलिंग की एक बार भी पूजा कर देता है, वह लाखों गोदान का फल पाकर शिवलोक में पूजित होता है। जो मनुष्य अखण्ड बिल्वपत्र से शिवलिंग का एक बार भी पूजन करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर शिवलोक में पूजित होता है।।९२-९३।।

अन्यत्रापि—

अर्कपुष्पे तथैकस्मिन् शिवाय विनिवेदिते।
दश दत्त्वा सुवर्णस्य तत्फलं समवाप्नुयात्।।९४।।
अर्कपुष्पसहस्रेभ्यः करवीरं प्रशस्यते।
करवीरसहस्रेभ्यो बिल्वपत्रं विशिष्यते।।९५।।
बिल्वपत्रसहस्रेभ्यो द्रोणपुष्पं विशिष्यते।
द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यो ह्यपामार्गो विशिष्यते।।९६।।

अन्यत्र भी कहा है कि मदार का पुष्प शिव पर चढ़ाने से दस बार सोना-दान का फल मिलता है। एक हजार अर्कपुष्प (मदार) से एक करवीर (कनेर) अधिक फलदायक होता है। १००० कनेर से एक बेलपत्र अधिक प्रशस्त है। १००० बेलपत्र से अधिक प्रशस्त है एक द्रोणपुष्प एवं एक हजार द्रोणपुष्प से अधिक फलदायक है एक अपामार्ग (चिड़चिड़ा)।।९४-९६।।

अपामार्गसहस्रेभ्यः कुशपुष्पं विशिष्यते।
कुशपुष्पसहस्रेभ्यः एकं धुस्तूरकं वरम्।
धुस्तूरकसहस्रेभ्यः शमीपुष्पं विशिष्यते।।९७।।

एक सहस्र अपामार्ग से एक कुशपुष्प श्रेष्ठ है। ऐसे ही एक हजार कुशपुष्प से १ धतूरा का पुष्प श्रेष्ठ है। १००० धतूरा की तुलना में एक शमीपुष्प को महत्त्वपूर्ण माना गया है।।९७।।

तथा—

नीरजस्य च विश्वस्य तुलस्या दलमेव च।
न दूष्येच्छिन्नभिन्नञ्च जातिपुष्पञ्च शाङ्करि ॥९८॥

और भगवान् कहते हैं कि हे शाङ्करि! नीरज पद्म, बिल्व पत्र, तुलसी पत्र तथा मालती पुष्प छिन्न होने पर भी दोषयुक्त नहीं होते।।९८।।

पुष्पादिदाने तु विशेषः—

पुष्पं वा यदि वा पत्रं सर्वं नष्टमधोमुखम्।
दुःखदं तत्समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम्।
अधोमुखं फलं नष्टं पुष्पाञ्जलिविधौ न च ॥९९॥

पुष्प-समर्पण के विषय में कहा गया है कि यदि पुष्प अथवा पत्ता अधोमुखी है, तब उसे पूजार्थ ग्रहण न करे। वे दुःखप्रद होते हैं (अर्थात् यह भी तात्पर्य है कि उन्हें उलटा न चढ़ाये)। वे जैसे वृक्षादि पर उत्पन्न होते हैं, वैसे ही चढ़ाने चाहिये। अधोमुख (उलटा) करके फल भी न चढ़ाये। पुष्पाञ्जलि में भी अधोमुख स्थिति में पत्र तथा पुष्प नहीं रखना चाहिये।।९९।।

अथ धूपः

अथ धूपः—तच्च भूमिघटासनेतरशोभनपात्रे स्थापितं सुगन्धं निस्तापं अनतिव्यापकं नीचैर्दद्यात् ॥१॥

अब धूप के विषय में बताया जा रहा है। भूमि, घट तथा आसन के अलावा अन्य शोभन पात्र में स्थापित (अग्नि पर) सुगन्धपूर्ण, निस्ताप, जो अधिक व्यापक न हो, उस धूप को देवता के नीचे प्रदान करना चाहिये।।१।।

निबन्धे—

सगुग्गुल्वगुरूशीरशर्करामधुचन्दनैः।
धूपयेदाज्यसंमिश्रैर्नीचैर्देवस्य देशिकः ॥२॥

देशिकः—पूजाकर्त्ता। अयं सप्ताङ्गः।

निबन्ध में कहा गया है कि पूजाकर्त्ता को घी-मिश्रित गुग्गुल, अगुरु, उशीर, चीनी, मधु तथा चन्दन को मिलाकर (अग्नि पर छोड़कर) देवता के नीचे धूप देना चाहिये। यह धूप सप्ताङ्ग होता है।।२।।

सिताज्यमधुसम्मिश्रं गुग्गुल्वगुरुचन्दनम्।
षडङ्गधूपमेतत् तु सर्वदेवप्रियं सदा ॥३॥

अन्य तन्त्र में कहा गया है कि चीनी, घी, मधु, गुग्गुलु, अगुरु तथा चन्दन-मिश्रित घटक को षड़ङ्ग धूप कहते हैं, जो सभी देवगण को सदा प्रिय होता है।।३।।

तथा तन्त्रान्तरे—

रोगरोगहररोगदकेशाः सुरतरुजतुलघुपत्रविशेषाः।
वक्रविवर्जितवारिदमुद्रा धूपवर्त्तिरिह सुन्दरि! भद्रा ॥४॥

भगवान कहते हैं—हे सुन्दरि! रोग (कूट), रोगहर (हर्रे), रोगद (गुड़), केश (जटामांसी), सुरतरु (देवदारु), जतु (लाख), लघुपत्र (तेजपत्ता), विशेष (अगुरु), वक्रविवर्जित (सादी लकड़ी), वारिदमुद्रा (मोथा)—इनके घटक से धूप बनाकर देवता को देने से यह धूप लोककल्याणप्रद हो जाता है।।४।।

रोगादयस्तु कूड़हरीतकीगुड़जटामासीदेवदारुजत्वगुरुतेजपत्रसरलमुस्तकाः। अयं दशाङ्गः ॥५॥

रोगादि हैं—कूठ, हरीतकी, गुड़, जटामासी, देवदारु, जतु, अगुरु, तेजपत्ता, सरल तथा मोथा। यह दशाङ्ग धूप होता है।।५।।

मधुमुस्तं घृतं गन्धो गुग्गुल्वगुरुशैलजम्।
सरलं सिह्लसिद्धार्थैः दशाङ्गो धूप इष्यते ॥६॥

अयमपि दशाङ्गः।

मधु, मोथा, घृत, चन्दन, गुग्गुलू, अगरु, शिलाजीत, सरल (लकड़ी), सिह्ल (गन्धद्रव्य विशेष), शिलाजीत तथा सिद्धार्थ से भी दशांग धूप बनता है।।६।।

तथा—

गुग्गुलुं सरलं दारुपत्रं मयलयसम्भवम्।
ह्रीवेरमगुरुं कुष्ठं गुडं सर्जरसं घनम् ॥७॥
हरीकतीं नखीं लाक्षां जटामांसीञ्च शैलजम्।
षोडशाङ्गं विदुर्धूपं दैवे पैत्र्ये च कर्मणि ॥८॥

और भी कहा गया है कि गुग्गुलू, सरल, देवदारु, तेजपत्ता, चन्दन, बाला, अगरु, कूठ, गुड़, धूना, मोथा, हरीतकी, नखी, लाख, जटामासी, शिलाजीत की धूप देव तथा पितृकार्य में देना चाहिये। यह षोडशांग धूप होता है।।७-८।।

अथ दीपः

तैजसादिनिर्मितदीपवृक्षे तैजसं दारवं दर्भगर्भं सूत्रमवामशाणजां वादरीं कोषोद्भवां तूलमयीं वा कर्पूरगर्भां वर्त्तिकां दक्षिणावर्त्तवलितां निधाय,

तत्र घृतं तिलतैलं सार्षपं फलनिर्यासभवं वा स्नेहं निक्षिप्य तत्र नेत्राह्लादकरं चतुरङ्गुलानधिकं तापवर्जितं सुशिखं शब्दवर्जितं निर्धूममनतिह्रस्वं दीपं निर्वर्त्य स्वदक्षिणे नमोऽन्तेनोत्सृज्य दृष्टिपर्यन्तं दद्यात् ॥९॥

अब दीप के सम्बन्ध में कहा जा रहा है। तैजसादि-निर्मित दीपवृक्ष (दीपक के स्थान में) तैजस, लकड़ी से निर्मित, मिट्टी से निर्मित, नारियल से निर्मित, हरिताल से निर्मित दीपक स्थापित करके उसमें पद्मसूत्र से निर्मित शण-भिन्न तन्तु (सन के धागे के अतिरिक्त), वादर सूत रेशम अथवा रुई से दक्षिणावर्त्त क्रम से बनाई गयी कर्पूर से लिपटी बत्ती बनाकर घृत, तिलतेल, सरसों का तैल अथवा फल से निकले तैल को उस दीपक पात्र में भरे (कोई भी तैलादि भरे) और उसमें नेत्रों को तृप्ति देने वाले, चार अंगुल से अधिक बड़ी नहीं, तापरहित, उत्तम शिखायुक्त, शब्दरहित, विना अधिक धूँये वाली कुछ बत्ती खिसकाकर कम ज्वाला करके अपने दाहिने स्थापित करे और नमः से समाप्त होने वाले मन्त्र से उसे समर्पित करके ऐसे स्थान पर रखे, जो देवता की दृष्टि के सामने हो।।९।।

यथा—

वर्त्त्या कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा।
आरोप्य दर्शयेद् दीपानुच्चैः सौरभशालिनः ॥१०॥

इति शारदा। शाणं जीर्णं मलिनं कृतोपभागं कोषजं रोमजं वा वस्त्रं दीपवर्त्तौ न दद्यात्। घृतादिस्नेहमपि मिश्रीकृत्य न दद्यात्। इदमञ्जनं नमः ॥११॥

कर्पूरगर्भ वार्तिका को घृत या तिलतैल से भिंगोकर सौरभयुक्त दीपसमूह को ऊपर की ओर दिखाये। शारदातिलक में कहा है कि जीर्ण तथा मलिन, सन की बनी, पहले उपयोग में लाये सूत से अथवा रेशमी सूत के वस्त्र से दीप की बत्ती न बनाये। घृतादि चिकनाई में मीस कर भी बत्ती न बनाये। 'इदमञ्जनं नमः' मन्त्र से अञ्जन प्रदान करना चाहिये।।१०-११।।

कालिकापुराणे—

विधवा नाञ्जनं कुर्यान्महामायार्थमुत्तमम्।
नादत्ते त्वञ्जनं देवी वैष्णवी विधवाकृतम् ॥१२॥
न मृत्पात्रे योजयेत्तु साधको नेत्ररञ्जनम्।
न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रे विहिताञ्जनैः ॥१३॥

कालिकापुराण में कहा गया है कि विधवा स्त्री महामाया के लिये उत्तम अञ्जन

न बनाये। वैष्णवी देवी विधवा-प्रदत्त अञ्जन ग्रहण नहीं करती। साधक मिट्टी के पात्र में अञ्जन न बनाये। मिट्टी के पात्र में काजल (अञ्जन) बनाने से पूजन का फल नहीं मिलता।।१२-१३।।

अथ नैवेद्यम्

तत्तु बहुविधं सौवर्णादिपात्रे प्रस्तरे पद्मपत्रे सर्वालाभे हस्तनिर्मितमृत्पात्रे निधाय नमोऽन्तेन दद्यात् ॥१४॥

अब नैवेद्य कहते हैं। अनेक प्रकार के सुवर्णादि पात्र में, प्रस्तर में, पद्मपत्र में, यदि यह भी न मिले तब हाथ से बने मिट्टी के पात्र में 'नमः' से अन्त होने वाले मन्त्र से नैवेद्य समर्पित करना चाहिये।।१४।।

आगमकल्पद्रुमे—

हैरण्यं राजतं कांस्यं ताम्रं मृण्मयमेव वा।
पालाशं श्रीहरेः पात्रं नैवेद्यं कल्पयेद् बुधः ॥१५॥

आगमकल्पद्रुम के अनुसार विद्वान् पूजक सोने, चाँदी, कांसा, ताँबा, मिट्टी के पात्र में अथवा पलाशपत्र पर श्री हरि को नैवेद्यादि का निवेदन करे।।१५।।

गौतमीये—

स्वर्णे वा ताम्रपात्रे वा रौप्ये वा पङ्कजे दले ॥१६॥ इति।

गौतमीय तन्त्रानुसार स्वर्ण, ताम्र, चाँदी के पात्र में अथवा कमलपत्र पर नैवेद्य प्रदान करना चाहिये।।१६।।

कालिकापुराणे—

मोदकैर्गजवक्त्रञ्च हविषा तोषयेद् हरिम्।
तौर्यत्रिकैश्च नियमैः शङ्करं तोषयेद् हरम्।
चण्डिकां बलिदानेन तोषयेत्साधकः सदा ॥१७॥

कालिकापुराण के अनुसार साधक गणेश जी को सदैव लड्डुओं से सन्तुष्ट करे। श्रीहरि हवि द्वारा प्रसन्न होते हैं। नियमतः नृत्य, गीत, वाद्य से श्री शंकर प्रसन्न हो जाते हैं। चण्डिका देवी बलिदान से प्रसन्न होती हैं।।१७।।

विशेषस्तु नृसिंहपुराणे—

तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरा।
स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम् ॥१८॥

नैवेद्य के सम्बन्ध में नृसिंहपुराण में कहा गया है कि उपचारों के अनन्तर पूजा

के बीच-बीच में जल भी देना चाहिये। स्नान, वस्त्र तथा नैवेद्य प्रदान के समय आचमन प्रदान करना चाहिये।।१८।।

गन्धादिदाने विशेषस्तु तन्त्रान्तरे—

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरङ्गुल्यग्रेण पार्वति।
दद्याच्च विमलं गन्धं मूलमन्त्रेण साधकः ॥१९॥
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यान्तु चक्रे पुष्पं निवेदयेत्।
यथा गन्धं तथा देवि! धूपं दद्याद्विचक्षणः ॥२०॥
मध्यमानामिकाभ्यान्तु मध्यपर्वणि देशिकः।
अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि! धृत्वा धूपं निवेदयेत्।
उत्तोलनं त्रिधा कृत्वा गायत्र्या मूलयोगतः ॥२१॥

गन्धादि प्रदान करने के विषय में अन्य तन्त्र में कहा गया है कि हे पार्वति! साधक को मूल मन्त्र पढ़ते हुये अंगुष्ठ, अनामिका तथा मध्यमा के अग्रभाग से विमल गन्ध प्रदान करना चाहिये।

हे देवि! शालग्राम शिला पर अंगुष्ठ तथा तर्जनी द्वारा पुष्प देना चाहिये। विचक्षण साधक जैसे गन्ध प्रदान करता है, उसी प्रकार से धूप भी प्रदान करे। हे देवेशि! पूजक मध्यमा और अनामिका के मध्य पर्व से तथा अंगूठा के अग्रभाग से (धूपपात्र पकड़कर) धूप प्रदान करे। तीन बार ऊपर उठाकर गायत्री और मूल मन्त्र द्वारा (जप द्वारा) धूपदान करना चाहिये।।१९-२१।।

तथा—

धूपभाजनमन्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य हृदाणुना।
अस्त्रेण पूजितां घण्टां वादयन् सगुणं दहेत् ॥२२॥
तत्त्वाख्यमुद्रया देवि! नैवेद्यन्तु निवेदयेत्।
मूलेनाचमनं दद्यात् ताम्बूलं तत्त्वमुद्रया ॥२३॥

और भी कहते हैं कि धूपपात्र को प्रोक्षण 'फट्' मन्त्र से करके 'नमः' मन्त्र से अर्चना करके तथा 'फट्' मन्त्र से घण्टा का पूजन करके उसे बजाते-बजाते सगुण अर्थात् गुग्गुलु से धूप जलाये अर्थात् धूपदान करे। अब तत्त्वमुद्रा द्वारा नैवेद्य का निवेदन करने के उपरान्त मूल मन्त्र से आचमन प्रदान करके तत्त्वमुद्रा द्वारा ताम्बूल अर्पण करे।।२२-२३।।

तथा—

ततः समर्पयेद् धूपं घण्टावाद्यजयस्वनैः ॥२४॥

तदनन्तर घण्टा बजाते हुये और जय का उच्चारण करते हुये धूप-समर्पण करना चाहिये।।२४।।

तथा—

जयध्वनि ततो मन्त्रमातः स्वाहेत्युदीर्य च।
अभ्यर्च्य वादयेद् घण्टां मधुपैर्धूपयेत्ततः ।।२५।।

यह भी कहा गया है जयध्वनि के अनन्तर 'मन्त्रमातः स्वाहा' मन्त्र से अर्थात् 'ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा' से घण्टा का पूजन करके उसे बजाना चाहिये। तदनन्तर धूप समर्पित करना चाहिये।।२५।।

तन्त्रे—

न भूमौ वितरेद् धूपं नासने न घटे तथा ।।२६।।

तन्त्र में कहा गया है कि भूमि पर, आसन पर अथवा घट पर रखकर धूप का निवेदन करना वर्जित है।।२६।।

गौतमीये—

उत्तार्य दृष्टिपर्यन्तं घण्टां वामदिशि स्थिताम्।
वादयन् वामहस्तेन दक्षहस्तेन चार्पयेत् ।।२७।।

गौतमीयतन्त्र में कहा गया है कि बाँयीं ओर स्थित घण्टा को बाँयें हाथ से बजाते हुये जहाँ तक दृष्टि जाय, दीप उठाकर दाहिने हाथ से उसका अर्पण करना चाहिये।।२७।।

यामले—

दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो वा न वामतः।
वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे।
नैवेद्यं दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठतः ।।२८।।

यामल में कहा गया है कि दीप दाहिनी ओर रखे, उसे सामने अथवा बाँयीं ओर नहीं रखना चाहिये। इसी प्रकार बाँयीं ओर धूप देना चाहिये। दक्षिण की ओर अथवा आगे की ओर धूप देना विहित नहीं है। नैवेद्य को दाहिनी ओर प्रदान करना चाहिये; सामने अथवा देवता के पीछे प्रदान नहीं करना चाहिये।।२८।।

नैवेद्यं निवेदनीयभक्ष्यम्। वामदक्षिणभागन्तु देवताया एव, न तु साधकस्य। 'धूपदीपौ सुभोज्यञ्च देवताग्रे निवेदयेत्' इति दर्शनात्। घृतयुक्तं दक्षिणे, तैलयुक्तं वामे। एवं सिता वर्त्तिश्चेद् दक्षिणे, रक्ता चेद् वामे, सम्मुखे तु न नियमः। एवं पक्वं दक्षिणे आमान्नं वामे। 'पक्वञ्च देवता वामे आमान्नं चैव दक्षिणे' इति साम्प्रदायिकाः।।२९।।

नैवेद्य अर्थात् निवेदनीय भक्ष्य। वाम तथा दक्षिण भाग से तात्पर्य है—देवता के वाम तथा दक्षिण, साधक के नहीं। क्योंकि यह वचन भी है कि धूप-दीप-नैवेद्य देवता के आगे प्रदान करे। घृतयुक्त दीप दाहिने तथा तेलयुक्त दीप वाम भाग में रखे। लाल बत्ती-युक्त दीपक वाम भाग में रखे। सामने रखने का नियम नहीं है। पका नैवेद्य बाँयीं ओर तथा आमात्र नैवेद्य देवता के दाहिनी ओर रखना चाहिये। साम्प्रदायिक गण यही कहते हैं।।२९।।

तथा यामले—

दीपं घृतयुतं दक्षे तैलयुक्तञ्च वामतः।
दक्षिणे च सितवर्त्तिर्वामतो रक्तवर्त्तिका ।।३०।।
पक्वापक्वविभेदेन नैवेद्येष्विति संस्थितिः।
पुरतो नियमो नास्ति दीपनैवेद्ययोः क्वचित् ।।३१।।

यामल में भी कहा गया है कि घृतयुक्त दीप को दाहिने तथा तैलयुक्त दीप को बाँयें रखना चाहिये। सादी बत्ती का दीप दाहिने तथा लाल बत्ती का दीप वाम भाग में रखना चाहिये। पके नैवेद्य (भोजनादि) एवं अपक्व (फल इत्यादि, दही इत्यादि) नैवेद्य के लिये भी यही नियम है। अर्थात् पका नैवेद्य दाहिने तथा कच्चा वाम भाग में रखना चाहिये। कभी भी दीप एवं नैवेद्य सामने नहीं रखना चाहिये, क्योंकि ऐसा नियम नहीं है।।३०-३१।।

सर्वमुपकरणमर्घ्याम्भसोत्सृज्य देयम्। यथा कालिकापुराणे—

यद् दीयते च देवेभ्यो गन्धपुष्पादिकं तथा।
अर्घ्यपात्रस्थितैस्तोयैरभिषिच्य तदुत्सृजेत् ।।३२।।

समस्त उपकरण अर्घ्यजल द्वारा उत्सर्ग कर देना चाहिये। कालिकापुराण में कहते हैं कि गन्ध, पुष्पादि समस्त उपचार देवता को प्रदान करने के पूर्व उनका अर्घ्यपात्र के जल से उत्सर्ग करना चाहिये।।३२।।

●

अथोपचारपरिभाषा

गौतमीये—

परिभाषामथो वक्ष्ये उपचारविधौ हरेः।
द्रव्याणां यावती संख्या पात्राणां द्रव्यसङ्गतिः ॥१॥
हाटकं राजतं ताम्रमारकूटमृदादिना।
उपचारविधावेतत् द्रव्यमाहुर्मनीषिणः ॥२॥
आसने पञ्चपुष्पाणि स्वागते षट्चतुःपलम्।
जलं श्यामकदूर्वाजविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् ॥३॥
पादञ्चार्घ्यजलं तावद् गन्धपुष्पाक्षतं यवाः।
दूर्वांस्तिलांश्च चत्वारः कुशाग्रश्वेतसर्षपाः ॥४॥

अब उपचारों की परिभाषा कहते हैं। गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि द्रव्य की जो संख्या है, पात्र की जो संख्या है उतना ही द्रव्य का परिमाण हो अर्थात् पात्र-परिमाण। यही उपचार कहा जाता है। मनीषीगण आसन उपचार विधि में पीतल, मिट्टी के साथ सुवर्ण, रजत, ताम्र को भी कहते हैं अर्थात् इनसे निर्मित पात्र को ग्रहण करना चाहिये। पाँच पुष्पों से स्वागत उपचार करना चाहिये। सोलह तोला जल, श्यामा घास, दूर्वा, कमल तथा अपराजिता को पाद्य कहा जाता है। अर्घ्य में इतना ही जल, गन्ध, पुष्प, अक्षत, जौ, दूर्वा, तिल तथा कुशाग्र एवं सफेद सरसों छोड़ना चाहिये। इन्हें ही अर्घ्य कहते हैं।।१-४।।

जातीफलं लवङ्गं कङ्कोलं तोयञ्च षट्पलम्।
प्रोक्तमाचमनं कांस्ये मधुपर्कं घृतं मधू।
दध्ना सह पलैकन्तु शुद्धं वारि तथाचमे ॥५॥
परिमाणन्तु पञ्चाशत्पलं स्नानार्थमम्भसः।
निर्मलेनोदकेनाऽथ सर्वत्र परिपूर्णता ॥६॥

जायफल, लौंग, कक्कोल तथा छना जल आचमन कहा गया है। काँसे के पात्र में घी, मधु, दही तथा एक पल जल के घटक को मधुपर्क कहते हैं। आचमन में शुद्ध जल लेना चाहिये। स्नानार्थ पचास पल अर्थात् २०० तोला जल विहित है। निर्मल जल से स्नान की परिपूर्णता होती है।।५-६।।

मलिनं गर्हितं सर्वं त्यजेत्पूजाविधौ हरेः।
वितस्तिमात्रमधिकं वासो युग्मन्तु नूतनम् ॥७॥
सुवर्णाभरणान्येव मुक्तारत्नयुतानि च।
चन्दनागुरुकर्पूरपङ्कगन्धः पलावधिः ॥८॥

श्री हरि की पूजा में मलिन तथा निन्दित कपड़े न पहने! वितस्ति परिमाण से अधिक को नूतन वस्त्रद्वय कहा गया है। मुक्ता रत्नयुक्त सुवर्ण के आभरण ही आभरण हैं। एक पल पर्यन्त चन्दन, अगुरु, कपूर का पङ्क ही गन्ध है।।७-८।।

नानाविधानि पुष्पाणि पञ्चाशदधिकानि च।
कांस्यादिनिर्मिते पात्रे धूपे गुग्गुलू कर्षभाक् ॥९॥
यावद् भक्ष्यं भवेत् पुंसस्तावद् दद्याज्जनार्दने।
नैवेद्यं विविधं वस्तु भक्ष्यादिकं चतुर्विधम् ॥१०॥

पचास की संख्या से अधिक नाना प्रकार के पुष्प ही पुष्प उपचार हैं। कांस्यादि निर्मित पात्र में एक तोला गुग्गुलु को धूप कहा गया है। एक व्यक्ति जितना भोजन ग्रहण करता है, उतनी मात्रा में नैवेद्य श्री जनार्दन को देना चाहिये। विविध वस्तु तथा भक्ष्य, भोज्य, लेह्य तथा पेय युक्त नैवेद्य प्रदान करना चाहिये।।९-१०।।

कर्पूरादियुतं वर्त्तिः सा च कार्पासनिर्मिता।
सप्तावृत्त्या सुसंयुक्तो दीपः स्याच्चतुरङ्गुलः ॥११॥
शिलापिष्टं वन्दनायां सप्तधावर्त्तयेन्नरः।
कार्यं ताम्रादिपात्रे तत् प्रीतये हरि मेधसः ॥१२॥

दीप की बत्ती कर्पूरादि से युक्त हो तथा कपास की रुई से निर्मित हो। सात बार फेरा देकर (आवृत्ति) बाँटकर चार अंगुल की बत्ती को दीप (अग्नियुक्त) कहते हैं। वन्दना में मानव को उसे सात बार घुमाना चाहिये। हरि की प्रसन्नता के लिये ताँबे के पात्र में उसे रखना चाहिये।।११-१२।।

दूर्वाक्षतप्रमाणन्तु विज्ञेयन्तु शताधिकम्।
उत्तमोऽयं विधिः प्रोक्ता विभवे सति सर्वदा ॥१३॥

दूर्वा तथा अक्षत का परिमाण शताधिक होना चाहिये। उपचार की यही विधि कही गई है। समर्थ व्यक्ति को इस विधि का सर्वदा पालन करना चाहिये।।१३।।

एषामभावे सर्वेषां यथाशक्त्या तु पूजयेत्।
अनुकल्पं विवर्जेच्च द्रव्याणां विभवे सति ॥१४॥

इन सबके अभाव में यथाशक्ति जो जुटा सके, उससे पूजन करना चाहिये। समर्थ व्यक्ति को द्रव्यसमूह के अनुकल्प का परित्याग करना चाहिये। अनुकल्प = उस वस्तु के स्थान पर अन्य वस्तु का प्रयोग। जैसे श्मशान का अनुकल्प है—चारपाई, जिसे मूंज से बीना गया हो। इत्यादि।।१४।।

अथ प्रदक्षिणनमस्कारौ

कालिकापुराणे—

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः।
दर्शयेद् दक्षिणं पार्श्वं मनसापि च दक्षिणम्।
त्रिधा च वेष्टयेत्सम्यक् देवतायाः प्रदक्षिणम् ।।१५।।

अब प्रदक्षिणा तथा नमस्कार कहते हैं। कालिकापुराण में कहा गया है कि पूजक नतमस्तक होकर तथा मन ही मन दाहिने होकर दाहिना हाथ प्रसारित करके दाहिना पार्श्व दिखलाये। देवता का तीन बार सम्यक् प्रकार से वेष्टन करे। यही प्रदक्षिणा कही जाती है।।१५।।

अष्टोत्तरशतं यस्तु देव्याः कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
स सर्वकाममासाद्य पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ।।१६।।

जो देवी की १०८ प्रदक्षिणा करता है, वह सभी काम्य विषय प्राप्त कर लेता है और अन्त में उसे मोक्ष मिलता है।।१६।।

एकहस्तप्रणामश्च एकं वापि प्रदक्षिणम्।
अकाले दर्शनं विष्णोर्हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।।१७।।

एक हाथ से प्रणाम तथा एक बार की प्रदक्षिणा तथा अकाल (सही समय में नहीं) में विष्णु-दर्शन पूर्वकृत पुण्य का नाश करता है।।१७।।

कायिको वाचिकश्चैव मानसस्त्रिविधः पुनः।
नमस्कारः श्रुतस्तज्ज्ञैरुत्तमाधममध्यमः ।।१८।।

विद्वान् कायिक, वाचिक तथा मानसिक तीन प्रकार के नमस्कार का वर्णन करते हैं, जो उत्तम, मध्यम तथा अधम तीन प्रकार के कहे जाते हैं।।१८।।

जानुभ्यामवनीं गत्वा शिरसा स्पृश्य मेदिनीम्।
क्रियते यो नमस्कार उत्तमः कायिकस्तु सः ।।१९।।

दोनों जानु द्वारा समस्त शरीर को पृथ्वी पर लगाकर मस्तक से पृथ्वी का सम्यक् स्पर्श करके जो नमस्कार होता है, वह उत्तम कायिक नमस्कार कहलाता है।।१९।।

जानुभ्याञ्च क्षितिं स्पृष्ट्वा शिरसा स्पृश्य मेदिनीम्।
क्रियते यो नमस्कारो मध्यमः कायिकस्तु सः ॥२०॥

जानुद्वय द्वारा जमीन को छूकर मस्तक से पृथ्वी का सम्यक् रूपेण स्पर्श करके जो नमस्कार होता है, वह मध्यम कायिक नमस्कार होता है।।२०।।

पुटीकृत्य करौ शीर्षे दीयते यद् यथा तथा।
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्यां क्षितिं सोऽधम उच्यते ॥२१॥

जानु तथा मस्तक से पृथ्वी का स्पर्श किये विना हाथ जोड़कर मस्तक नीचे करके जैसे-तैसे किया गया नमस्कार कायिक अधम नमस्कार कहा गया है।।२१।।

या स्वयं गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्यां नमस्कृतिः।
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकस्तूत्तमस्तु सः ॥२२॥

स्वयं भक्तियुक्त चित्त से गद्य-पद्यघटित (स्वरचित) वाक्यों से जो नमस्कार किया जाता है, वह वाचिक उत्तम नमस्कार कहलाता है।।२२।।

पौराणिकैर्वैदिकैर्वा मन्त्रैर्या क्रियते नतिः।
स मध्यमो नमस्कारो भवेद्वाचनिकः सदा ॥२३॥

पौराणिक या वैदिक मन्त्रों (तथा स्तोत्रों) से किया जो नमस्कार है, उसे मध्यम वाचनिक नमस्कार कहा गया है।।२३।।

यत्तु मानुषवाक्येन नमनं क्रियते सदा।
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु पुत्रकौ ॥२४॥

हे पुत्रद्वय! मनुष्य-रचित वाक्यों से जो नमस्कार करता है, वह नमस्कार वाचिक अधम नमस्कार कहलाता है।।२४।।

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।
वचसा मनसा चेति प्रणामाऽष्टाङ्ग ईरितः ॥२५॥

दोनों पैर, दोनों हाथ, दोनों जानु, वक्ष, मस्तक, नेत्र, वाणी तथा मन—इन आठ अंगों द्वारा जो प्रणाम होता है, उसे अष्टाङ्ग प्रणाम कहते हैं।।२५।।

बाहुभ्याञ्चैव जानुभ्यां शिरसा वचसा दृशा।
पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमौ ॥२६॥

बाहुद्वय, जानुद्वय, मस्तक, वाणी तथा नेत्र द्वारा जो प्रणाम किया जाता है, वह पञ्चाङ्ग प्रणाम होता है। अष्टाङ्ग तथा पञ्चाङ्ग प्रणाम पूजा में सर्वश्रेष्ठ होते हैं।।२६।।

भूमौ निपत्य यः कुर्यात् कृष्णेऽष्टाङ्गनतिं सुधीः।
सहस्रजन्मजं पापं त्यक्त्वा वैकुण्ठमाप्नुयात्॥२७॥
वेदविद्भ्यो धरां दत्त्वा यत् फलं लभते नरः।
तत्फलं लभते भक्त्या कृष्णे कृत्वा प्रदक्षिणम्॥२८॥

कृष्ण इत्युलक्षणम्।

जो व्यक्ति भूमि पर गिरकर कृष्ण को साष्टाङ्ग प्रणाम करता है, उसका सहस्र जन्मों का पाप-ताप दग्ध हो जाता है और उसे वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। मानव वेद के ज्ञाता ब्राह्मण को भूमिदान करके जो फल प्राप्त करता है, भक्तिपूर्ण हो कृष्ण की प्रदक्षिणा से भी वही फल मिलता है। यहाँ पर कृष्ण समस्त देवताओं का उपलक्षक है।।२७-२८।।

विश्वसारे—

शङ्खहस्तेन सर्वत्र प्रदक्षिणं प्रकीर्त्तितम्॥२९॥

विश्वसार तन्त्र में कहते हैं कि सर्वत्र हाथ में शङ्ख लेकर ही प्रदक्षिणा करनी चाहिये।।२९।।

नतिविशेषस्तु यामले—

त्रिकोणाकारा सर्वत्र नतिः शक्तेः समीरिता।
दक्षिणाद् वायवीं गत्वा दिशं तस्माच्च शाम्भवीम्।
ततश्च दक्षिणां गत्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत्॥३०॥

यामल तन्त्र में प्रणाम के विषय में कहा गया है कि शक्ति के लिये सर्वत्र त्रिकोणाकार प्रणाम का विधान है। वह इस प्रकार है—देवता के दक्षिण से वायुकोण-पर्यन्त जाकर वहाँ से ईशान कोण-पर्यन्त जाय। इसके पश्चात् दक्षिण की ओर जाकर त्रिकोणवत् नमस्कार करे।।३०।।

अर्द्धचन्द्रं महेशस्य पृष्ठतश्च समीरिता।
शिवप्रदक्षिणे मन्त्री अर्द्धचन्द्रक्रमेण तु।
सव्यासव्यक्रमेणैव सोमसूत्रं न लङ्घयेत्॥३१॥

महेश्वर के पृष्ठभाग में अर्द्धचन्द्राकार प्रदक्षिणा तथा नमस्कार कहा गया है। इसमें मन्त्रज्ञ साधक वाम तथा दक्षिण क्रम से अर्द्धचन्द्र क्रम से प्रदक्षिणा करे। सोमसूत्र का लङ्घन न करे।।३१।।

सोमसूत्र—जल निकलने का स्थान (जहाँ से प्रतिमा पर चढ़ाया जल निकलता है।)

कालिकापुराणे—

त्रिकोणमथ षट्कोणमर्द्धचन्द्रं प्रदक्षिणम्।
दण्डमष्टाङ्गमुग्रञ्च सप्तधा नतिलक्षणम्॥३२॥

त्रिकोण नमस्कार, षट्कोण नमस्कार, अर्द्धचन्द्र नमस्कार, प्रदक्षिण नमस्कार, दण्ड नमस्कार, अष्टाङ्ग नमस्कार तथा उग्र नमस्कार—इस प्रकार से सात प्रकार के नमस्कार कहे गये हैं।।३२।।

ऐशानी वाथ कौवेरी दिक्कामाख्यप्रपूजने।
प्रशस्ता स्थण्डिलादौ च सर्वमूर्त्तेस्तु सर्वतः॥३३॥

कामाख्या की पूजा में ऐशानी दिक् अथवा कौवेरी दिक् प्रशस्त कही गई है। स्थण्डिलादि सर्वत्र सर्वमूर्त्ति अग्नि की अग्रिम पूजा भी प्रशस्त है।।३३।।

त्रिकोणादिव्यवस्था तु यदि पूर्वमुखो यजेत्।
पश्चिमाच्छाम्भवीं गत्वा व्यवस्थां निर्दिशेत्तथा॥३४॥

अब त्रिकोणादि प्रणाम की व्यवस्था कहते है। यदि पूर्वमुख होकर पूजा करते हैं तब पश्चिम शाम्भवी (ऐशानी) दिक् में जाकर उस प्रकार की व्यवस्था का निर्देश करे अर्थात् ईशान से अग्निकोण जाकर पुनः वहाँ से ईशान तक आने से त्रिकोण प्रणाम सम्पन्न होता है।।३४।।

यदोत्तरामुखः कुर्यात् साधको देवपूजनम्।
तदा याम्यात्तु वायव्यां गत्वा कुर्यात्तु संस्थितिम्॥३५॥
दक्षिणाद्वायवीं गत्वा दिशं तस्माच्च शाम्भवीम्।
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत्।
त्रिकोणाख्यो नमस्कारस्त्रिपुराप्रीतिदायकः॥३६॥

जब साधक उत्तरमुख होकर पूजा करे तब साधक दक्षिण (याम्य) से वायुकोण (वायवी दिक्) पर्यन्त जाकर अवस्थान करे। दक्षिण दिक् से वायवी दिक् जाकर वहाँ से शाम्भवी (ऐशानी) दिक् पर्यन्त जाकर उस स्थान से दक्षिण जाकर त्रिकोणवत् किया गया जो नमस्कार होता है, वह त्रिपुरा को प्रसन्न करता है।।३५-३६।।

दक्षिणाद्वायवीं गत्वा वायव्याच्छाम्भवीं तथा।
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा तां त्यक्त्वाऽग्नौ प्रविश्य च॥३७॥
अग्नितो राक्षसीं गत्वा ततश्चाप्युत्तरां दिशम्।
उत्तराच्च तथाग्नेयीं भ्रमणं द्वित्रिकोणवत्।
षट्कोणोऽयं नमस्कारः प्रीतिदः शिवदुर्गयोः॥३८॥

दक्षिण से वायुकोण तक तथा वहाँ से शाम्भवी दिक् (ऐशानी दिक्) की ओर जाकर उस स्थान से दक्षिण जाकर उसका त्याग करके अग्निकोण में प्रवेश करके वहाँ से राक्षसी (नैर्ऋत्य) कोण जाकर वहाँ से उत्तर जाय; पुनः अग्निकोण जाकर (इस षट्कोण भ्रमण के पश्चात्) जो नमस्कार होता है, उसे षट्कोण नमस्कार कहा गया है। यह शिव तथा दुर्गा को अतिशय प्रिय है।।३७-३८।।

दक्षिणाद्वायवीं गत्वा तस्माद् वावृत्य दक्षिणाम्।
गत्वा योऽसौ नमस्कारः सोऽर्द्धचन्द्रः प्रकीर्त्तितः ।।३९।।

दक्षिण से वायुकोण तक जाकर उस वायुकोण से वापस आकर दक्षिण दिक् जाकर जो नमस्कार होता है, उसे अर्द्धचन्द्र नमस्कार कहा गया है।।३९।।

सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा वर्त्तुलाकृति साधकः।
नमस्कारः कथ्यतेऽसौ प्रदक्षिण इति द्विजैः ।।४०।।

साधक एक बार वर्त्तुलाकर प्रदक्षिणा करके जो नमस्कार करते हैं, वह प्रदक्षिण नमस्कार कहलाता है।।४०।।

त्यक्त्वा स्वमासनस्थानं पश्चाद् गत्वा नमस्कृतिः।
प्रदक्षिणं विना या तु निपत्य भुवि दण्डवत्।
दण्ड इत्युच्यते देवैः सर्वदेवौघतुष्टिदः ।।४१।।

अपना आसन-स्थान त्याग करके पश्चात् जाकर विना प्रदक्षिणा किये भूमि पर दण्डवत् होकर जो नमस्कार किया जाता है, उसे देवताओं ने दण्डवत् प्रणाम कहा है। उससे समस्त देवगण को सन्तुष्टि मिलती है।।४१।।

पूर्ववद् दण्डवद् भूमौ निपत्य हृदयेन तु।
चिबुकेन मुखेनाथ नासया त्वनिकेन च ।।४२।।
ब्रह्मरन्ध्रेण कर्णाभ्यां यद्भूमिस्पर्शनं क्रमात्।
तदष्टाङ्गमिति प्रोक्तः नमस्कारो मनीषिभिः ।।४३।।

(श्लोक ४१ के अनुसार) पूर्ववत् दण्डवत् होकर हृदय, चिबुक, मुख, नासिका, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र तथा दोनों कानों से क्रमशः भूमिस्पर्श कराने को मुनिगण अष्टाङ्ग प्रणाम कहते हैं।।४२-४३।।

प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा साधको वर्त्तुलाकृतिः।
ब्रह्मरन्ध्रेण संस्पर्शः क्षितैर्यस्य नमस्कृतः।
स उग्र इति देवौघैरुच्यते विष्णुभक्तिदः ।।४४।।

साधक वर्तुलाकार तीन प्रदक्षिणा करके जो नमस्कार करता है और उस समय ब्रह्मरन्ध्र को भूमि से स्पर्श कराता है, ऐसा नमस्कार उग्र नमस्कार कहलाता है। यह विष्णु की भक्ति प्रदान करने वाला होता है।।४४।।

नदानां सागरो यद्वद् द्विपदां ब्राह्मणो यथा।
नदीनां जाह्नवी यादृग् देवानामिव चक्रधृक्।
नमस्कारेषु सर्वेषु तथैवोग्रः प्रशस्यते ॥४५॥
त्रिकोणाद्यैर्नमस्कारैः कृतावेव तु भक्तितः।
चतुर्वर्गं लभेद् भक्त्या न चिरादेव साधकः ॥४६॥

जैसे नदसमूह में सागर श्रेष्ठ है, द्विजों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, नदी में गंगा श्रेष्ठ है, वैसे ही समस्त नमस्कारों में उग्र नमस्कार श्रेष्ठ है। भक्तिपूर्वक त्रिकोणादि नमस्कार करने से साधक भक्ति के बल से शीघ्रता से चतुर्वर्ग की प्राप्ति करता है।।४५-४६।।

अथ नैमित्तिकाद्यकरणे प्रायश्चित्तम्

गौतमीये—

यद्यत् कर्मणि वैगुण्यं नित्यनैमित्तिके तथा।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं मूलञ्चायुतमेव च ॥४७॥

नित्ये सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं नैमित्तिके तथायुतम्। इति विष्णोः ॥४८॥

अब नैमित्तिक कार्य न करने का प्रायश्चित्त कहा जा रहा है। गौतमीय तन्त्र में कहते हैं—जिस-जिस नित्य तथा नैमित्तिक कर्म में वैगुण्य की उत्पत्ति होती है, उस नित्य कर्म में मूल मन्त्र का १००० एवं नैमित्तिक कर्म हेतु १०००० जप करना चाहिये। वैगुण्य = अंगहानि, कर्म के किसी अंग को सम्पन्न न करना। विष्णुसंहिता के अनुसार भी नित्य कर्म के वैगुण्य में १००० जप तथा नैमित्तिक कर्म के वैगुण्य में १०००० जप करना चाहिये।।४७-४८।।

अन्यत्र तु—

नित्यातिक्रमदोषाणां शान्त्यै विद्यां शतं जपेत्।
नैमित्तिकादिक्रमेण सहस्रं प्रजपेन्मनूम् ॥४९॥

अन्यत्र भी कहा गया है कि नित्य कर्म के किसी अंग को सम्पन्न किये विना उसे छोड़ कर आगे की प्रक्रिया करने के अतिक्रमण-जनित अपराध की शान्ति हेतु १०० जप तथा नैमित्तिकादि में ऐसी स्थिति में १००० जप करना चाहिये।।४९।।

पापसङ्करे तु—

सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते।
प्रायश्चित्तन्तु तत्रोक्तमयुतं मन्त्रजापतः ॥५०॥

पाप का संक्रमण होने की स्थिति में कहते हैं कि समस्त पापों का संकर होने पर १०००० मन्त्रजप से उसका प्रायश्चित्त सम्पन्न हो जाता है।।५०।।

पूजा च पञ्चधा गौतम्युक्ता, अभिगमनोपादानयोगस्वाध्यायेज्याभेदात्। तत्राभिगमनं देवतास्थानमार्जनोपलेपननिर्माल्यदूरीकरणात्मकम्। उपादानन्तु गन्धपुष्पादिसञ्चयात्मकम्। योगः स्वदेवस्य स्वात्मत्वेन भावना। स्वाध्यायो मन्त्रार्थसन्धानपूर्वको जपः सूक्तस्तोत्रादिपाठश्च। इज्या स्वदेवस्य यथार्थतः पूजनम् ॥५१॥

अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय तथा इज्या भेदरूप गौतमीय तन्त्रोक्त पूजा के पाँच प्रकार हैं। उनमें अभिगमन है—देवता का स्थान साफ करना तथा निर्माल्यादि हटाना। उपादान—भक्त द्वारा गन्ध-पुष्पादि लाना। योग—अपने उपास्य देवता को अपने आत्मस्वरूप का अनुभव करना। स्वाध्याय—मन्त्रार्थ-सन्धानार्थ जप, ग्रन्थादि स्तोत्रादि का पाठ। इज्या—अपने इष्ट देवता की यथार्थ पूजा।।५१।।

●

अथ शुद्धयः

गृहोपसर्पणञ्चैव तथानुगमनं हरेः ।
भक्त्या प्रदक्षिणञ्चैव पादयोः शोधनं स्मृतम् ॥१॥
पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्तैरुत्तोलनं हरेः ।
करयोः सर्वसन्धीनामियं शुद्धिर्विशिष्यते ॥२॥

अब शुद्धि कहते हैं। देवगृह का उपगमन, हरि का अनुगमन एवं भक्ति के साथ प्रदक्षिणा ही पादद्वय का शोधन कहा जाता है। श्रीहरि की पूजा के लिये भक्तगण द्वारा पत्र-पुष्पादि का जो चयन है, वही दोनों हाथों तथा समस्त सन्धियों की शुद्धि कही गई है अर्थात् पुष्पादि का चयन ही दोनों हाथों तथा सन्धियों की शुद्धि का कारक है।।२।।

तन्नामकीर्त्तनञ्चैव गुणानामपि कीर्त्तनम् ।
भक्त्या श्रीकृष्णदेवस्य वचसः शुद्धिरिष्यते ॥३॥

भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णदेव के नाम का कीर्त्तन तथा गुणों का गायन ही वाणी की शुद्धि कही गई है।।३।।

तत्कथाश्रवणञ्चैव तस्योत्सवनिरीक्षणम् ।
श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते ॥४॥

उनकी कथा का श्रवण, उनके उत्सवों का निरीक्षण साधक के कान तथा नेत्रद्वय की सम्यक् शुद्धि करता है।।४।।

पादोदकस्य निर्माल्यं मालानामपि धारणम् ।
उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरेः पुनः ॥५॥

श्रीहरि के चरणामृत का पान तथा उसे मस्तक पर धारण करना, निर्माल्य तथा माला को धारण करना—यह व्यक्ति के मस्तक की शुद्धि करता है।।५।।

आघ्राणं गन्धपुष्पादेर्निर्माल्यस्य तपोधन ।
विशुद्धिं स्यादन्तरस्य घ्राणस्यापि विधीयते ॥६॥

हरेरित्याद्युपलक्षणम्।

हे तपोधन! गन्ध-पुष्पादि को सूंघना तथा निर्माल्य को सूंघना—इसने घ्राणेन्द्रिय शुद्ध हो जाती है।।६।।

यहाँ पर हरि समस्त देवताओं का उपलक्षक है।

वैष्णवस्तु—

ललाटे च गदां कुर्यान्मूर्ध्नि चापं शरांस्तथा।
नन्दकञ्चैव हृन्मध्ये शङ्खं चक्रं भुजद्वये।।७।।
शङ्खचक्रान्वितो विप्रः श्मशाने म्रियते यदि।
प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य गौतम।।८।।

वैष्णव गण के विषय में कहते हैं कि ललाट पर गदा का अंकन करे, मस्तक पर धनुष-बाण का, हृदय में नन्दक का एवं बाहुद्वय में शङ्ख, चक्र का अंकन करे।

हे गौतम! यदि शङ्ख-चक्रयुक्त व्यक्ति श्मशान में (निषिद्ध स्थान में) भी मरता है, तब भी उसे वही गति प्राप्त होती है, जो प्रयाग-जैसे तीर्थ में मरने पर मिलती है।।७-८।।

अथापराधाः

अथापराधा द्वात्रिंशत्। यथा तन्त्रान्तरे—

यानैर्वा पादुकाभिर्वा यानं भगवतो गृहे।
देवोत्सवेऽसेवा च अप्रणामस्तदग्रतः।।९।।
उच्छिष्टे चैव चाशौचे भगवद्वन्दनादिकम्।
एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात्प्रदक्षिणम्।।१०।।
पादप्रसारणञ्चाग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम्।
शयनं भक्षणञ्चापि मिथ्याभाषणमेव च।।११।।
उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः।
निग्रहानुग्रहो चैव स्त्रीषु च क्रूरभाषणम्।।१२।।
कम्बलावरणञ्चैव परनिन्दा परस्तुतिः।
अश्लीलभाषणञ्चैव अधोवायुविमोक्षणम्।।१३।।
शक्तौ गौणोपचारस्तु अनिवेदितभक्षणम्।
तत्तत्कालोद्भवानाञ्च फलादीनामनर्पणम्।।१४।।
विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनस्य च।
स्पष्टीकृत्यासनञ्चैव परनिन्दा परस्तुतिः।।१५।।
गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा।
अपराधा इमे विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्त्तिताः।।१६।।

विष्णोरित्युपलक्षणम्।

अब ३२ प्रकार के अपराध कहे जा रहे हैं। भगवान् के गृह में सवारी अथवा पादुका पहनकर जाना, देवोत्सव में सेवा न करना, भगवान् को प्रणाम न करना, गन्दी अवस्था अथवा अशौच में भी भगवान् की (प्रतिमादि के पास जाकर) वन्दना करना, एक हाथ से प्रणाम, सामने की ओर प्रदक्षिणा, उनके आगे पैर फैलाना, वस्त्रादि द्वारा पीठ तथा जानु बाँधना, देवता के आगे सोना, सामने खाना खाना, झूठ बोलना, देवता के आगे जोरों से बातचीत, वहाँ वाचालता करना, रोना, लड़ना, प्रहार करना, अनुकूलता दिखलाना, देवता के सामने महिलाओं से कड़े वाक्य बोलना, कम्बल ओढ़ना, दूसरे की बुराई करना, दूसरों की प्रशंसा करना, अश्लील बातें कहना, अधोवायु छोड़ना, सामर्थ्य रहने पर भी असमर्थता दिखलाकर सामान्य उपचार से पूजनादि करना, विना निवेदित किये खाना, ऋतुफल प्रदान न करना (जो उस मौसम में होते हैं), खाने से बचे व्यञ्जनों को निवेदित करना, फैलकर बैठना, एक की निन्दा द्वारा दूसरे की प्रशंसा करना, गुरु की प्रशंसा में चुप रहना, अपनी प्रशंसा, देवता की निन्दा—विष्णु-सेवा में इन सबको अपराध माना गया है।।९-१६।।

यहाँ विष्णु उपलक्षण है। अर्थात् यह नियम सभी देवताओं के लिये है।

अथ वाद्यम्

योगिनीतन्त्रे—

शिवागारे झल्लकञ्च सूर्यागारे च शङ्खकम्।
दुर्गागारे वंशीवाद्यं मधुरीञ्च न वादयेत्॥१७॥

झल्लकं = करताल, जो कांसा से बनता है।

अब वाद्य कहते हैं। योगिनीहृदय तन्त्रमतानुसार शिवमन्दिर में करताल, सूर्यमन्दिर में शङ्ख एवं दुर्गामन्दिर में वंशी तथा मधुरी न बजाये।।१७।।

मत्स्यपुराणे—

गीतवादित्रनिर्घोषं देवस्याग्रे च कारयेत्।
घण्टा भवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयी यतः॥१८॥

मत्स्यपुराण में कहा गया है कि देवता के आगे गीत तथा वाद्ययन्त्र बजाये। इनमें अशक्त होने पर घण्टा बजाये। घण्टा को सर्ववाद्यमय कहते हैं।।१८।।

गौतमीये—

शालग्रामशिला तोयमपीत्वा यस्तु मस्तके।
प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स निगद्यते॥१९॥

विष्णोः पादोदकं पीतं कोटिजन्माघनाशनम्।
तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ बिन्दुनिपातनात्॥२०॥

गौतमीय तन्त्रानुसार शालग्राम शिला का जल (चरणामृत) न पीकर सिर पर लगाने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है (अर्थात् यह जल पहले पीना चाहिये तब शिर पर लगाना चाहिये)। विष्णु का चरणामृत पीने से करोड़ों जन्म का पाप नष्ट होता है। इसे एक बिन्दु भी पृथ्वी पर गिराने से पहले की तुलना में आठ गुणित पाप होता है।।१९-२०।।

सनत्कुमारीये—

केशवाग्रे नृत्यगीतं यः करोति कलौ नरः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति नित्यशः॥२१॥

सनत्कुमारीय तन्त्र में कहा गया है कि जो मनुष्य कलियुग में केशव के सामने नृत्य-गीत करता है, वह पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।।२१।।

वाशिष्ठे—

केशवाग्रे नृत्यगीतं न करोति हरेर्दिने।
वह्निना किं न दग्धोऽसौ गतः किं न रसातलम्॥२२॥

वशिष्ठ कहते हैं कि जो हरि के दिन (पर्व के दिन) केशव के आगे नृत्य-गीत नहीं करता, उसका सब कुछ पापरूप अग्नि द्वारा नष्ट हो जाता है। उसे पाताल से भी अध:पतन की स्थिति में जाना होता है।।२२।।

अथ योगाङ्गासनानि

यथा—

पद्मासनं स्वस्तिकाख्यं भद्रं वज्रासनं तथा।
वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम्॥२३॥

अब योगासन कहते हैं। पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वीरासन—ये आसन-पञ्चक क्रमानुसार कहे गये हैं।।२३।।

ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक् पादतले उभे।
अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः।
पद्मासनमिदं प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम्॥२४॥

दोनों ऊरु के ऊपर दोनों चरणतलों को सम्यक् रूप से स्थापित करके व्युत्क्रम अर्थात् वाम हस्त द्वारा दक्षिण पैर का अंगूठा तथा दक्षिण हस्त द्वारा वाम पैर का

अंगूठा पकड़े। योगीगण के हृदय को अच्छा लगने वाला यह आसन 'पद्मासन' कहा गया है।।२४।।

जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायो विशेद् योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥२५॥

जानु तथा ऊरु के बीच दोनों पादतल को सम्यक् रूप से स्थापित करके अर्थात् दक्षिण जानु तथा दक्षिण ऊरु के बीच वाम पादतल तथा वाम जानु तथा ऊरु के बीच दक्षिण पादतल रखकर योगी ऋजुकाय होकर बैठे इसे तो 'स्वस्तिकासन' कहा गया है।।२५।।

सीमान्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम्।
वृषणाधः पार्श्वपादौ पाणिभ्यां परिबन्धयेत्।
भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः पूर्वकल्पितम् ॥२६॥

(अण्डकोष और गुह्य के मध्यवर्ती) सीवनी की ऊर्ध्वरेखा के दोनों पार्श्व में दोनों पादों का दोनों गुल्फ अर्थात् वाम पार्श्व पर दक्षिण गुल्फ और दक्षिण पार्श्व पर वाम गुल्फ स्थिर रूप से स्थापित करके अण्डकोष के अधोभाग में दोनों पादद्वय की पार्ष्णि स्थापित करके पूर्ववत् हस्तद्वय के द्वारा दोनों पैरों के अंगुष्ठ को फँसाकर पकड़े। इसे 'भद्रासन' कहते हैं।।२६।।

ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गुली।
करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ॥२७॥

अपने ऊरुमूल में क्रमशः दोनों पैरों को स्थापित करे। जानुओं के ऊपर अपने सम्मुख अंगुलियों के साथ हस्तद्वय को स्थापित करे। इसे उत्तम 'वज्रासन' कहा गया है।।२७।।

एकपादमधः कृत्वा विन्यस्योरौ तथेतरम्।
ऋजुकायो विशेन्मन्त्री वीरासनमितीरितम् ॥२८॥

एक पैर को नीचे करके दूसरे पैर को उसके ऊरु पर स्थापित करके योगी ऋजुकाय होकर जब बैठे तो यह 'वीरासन' कहलाता है।।२८।।

विशेष—पाठकगण कोई भी आसन पुस्तक पढ़कर न करें, योग्य गुरु से शिक्षा लेकर आसन ग्रहण करें।

●

अथ धारणयन्त्राणि

अथ घटार्गलयन्त्रम्

आलिख्याऽष्टदिगर्गलान्युदरगं पाशादिकं त्र्यक्षरं
कोष्ठेष्वङ्गमनून् परेषु विलिखेदष्टार्णमन्त्रद्वयम्।
अच्पूर्वापरषट्कयुग्लयवरान् व्योमासनानर्गले-
ष्वालिख्येन्द्रजलाधिपादगुणशः पङ्क्तिद्वयं तत्परम् ॥१॥

अब धारण करने वाले यन्त्रों का वर्णन करते हैं। सर्वप्रथम घटार्गल यन्त्र कहा जाता है। आठो ओर अर्गला बनाकर पाशादि तीन (आं ह्रीं क्रों) को उदरमध्यगत (मध्य के वृत्तगत) करे। तदनन्तर कोष्ठों में अंगमन्त्र लिखे। अन्य कोष्ठों में अष्टार्ण (आठ अक्षरों वाले) मन्त्र लिखे। अब पूर्वादि (पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके) अर्गलसमूह में अर्थात् पूर्वादि अर्गलाओं में गुणशः अर्थात् तीन-तीन अक्षर क्रम से दो पंक्ति में व्योमासन (अर्थात् व्योम 'ह' की अवस्थिति जिन-जिन वर्ण में है) अच् के पूर्वषट्क अ आ इ ई उ ऊ तथा अपर षट्क ए ऐ ओ औ अं अः युक्त ल य व र वर्णों को अर्थात् ह्लं ह्लां ह्लिं इत्यादि रूप से लिखे।।१।।

कोष्ठेष्वष्टयुगार्णमात्मसहितां युग्मस्वरान्तर्गतां,
मायां केसरगां दलेषु विलिखेन्मूलं त्रिपङ्क्तिक्रमात्।
त्रिःपाशाङ्कुशवेष्टितञ्च लिपिभिर्वित्तं क्रमाद्युत्क्रमात्
पद्मस्थेन घटेन पङ्कजमुखेनावेष्टितं तद्बहिः ॥२॥

तदनन्तर तदन्तरालवर्त्ती दुन्दुभी के समान दो-दो कोष्ठ में षोडशाक्षर मन्त्रद्वय के अक्षरों को लिखकर अष्टदल पद्म के केशरसमूह में बिन्दुयुक्त अ तथा आ (अं आं) के मध्य में आत्मबीजद्वय (हंसद्वय) सहित माया (इं) को लिखे। पत्रसमूह के अधः में तीन पंक्तिक्रम में पाश तथा अंकुश क्रम में (अनुलोम) तथा उत्क्रम (विलोम) में मातृका से वेष्टित मूल वर्ण को लिखे। उसके मध्य के पद्म के बाहरी भाग की प्रथम पंक्ति में मूल मन्त्र को पाश तथा अंकुश द्वारा, उसके बाहरी भाग की द्वितीय पंक्ति में मूल मन्त्र को अनुलोम मातृका द्वारा तथा तृतीय पंक्ति में मूल मन्त्र को विलोम मातृका से वेष्टित करे। उसके बाहरी भाग में ऊर्ध्वमुखी कमल की कर्णिका में स्थित पंकजमुख घट से अधोमुख पद्मवत् उसे आवेष्टित करे।।२।।

घटार्गलमिदं यन्त्रं मन्त्रिणां प्राभृतं मतम्।
पाशश्रीशक्तिकन्दर्पकामशक्तीन्दिराङ्कुशाः ॥३॥
प्रथमोऽष्टाक्षरो मन्त्रस्ततः कामिनि! रञ्जिनि!।
स्वाहान्तोऽष्टाक्षरः सद्भिरपरः कीर्त्तितो मनुः ॥४॥
ह्रीं गौरि! रुद्रदयिते! योगेश्वरि! सवर्म फट्।
द्विठान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः सद्भिरुदीरितः ॥५॥

इस यन्त्र को मन्त्रदीक्षित व्यक्ति को दिया गया उपहार कहा जाता है। यन्त्र में लिखा जाने वाला अष्टार्ण मन्त्र है—आं (पाश), श्रीं ह्रीं (शक्ति), क्लीं (कन्दर्प कामबीज), क्लीं (काम), ह्रीं (शक्ति), श्रीं (इन्द्रिराबीज), क्रों (अंकुश)। ये आठ प्रथम अष्टाक्षर मन्त्र हैं। अब 'कामिनि रञ्जिनि स्वाहा' ये आठ अपर द्वितीय अष्टाक्षर मन्त्र को पण्डित गण ने कहा है। अब षोडशाक्षर मन्त्र कहते हैं, जिसे यन्त्र में लिखा जाता है। 'ह्रीं गौरि! रुद्रदयिते! हुं फट् स्वाहा'। यह साधक गण द्वारा कहा गया है।।३-५।।

एषामर्थः—अष्टदिगर्गलानि अष्टदिक्षु अर्गलान्यर्गलाकारत्वेन रेखायां द्वयं द्वयं, अर्गलाकारश्च रेखाद्वयेन भवति। तथा च पूर्वतः पश्चिमान्तं दक्षिणात् उत्तरान्तं आग्नेय्या वायव्यान्तं ऐशान्या नैर्ऋत्यन्तं रेखाया द्वयं द्वयमित्यष्टासु दिक्षु गतान्यर्गलानि विलिख्य, उदरगमर्गलचतुष्कमध्य-लिखितवृत्तगतं पाशमायाङ्कुशात्मकबीजत्रयं विलिखेत्। कोष्ठेषु अर्गलद्वयसंयोगस्थलाष्टकमिलितस्याष्टदिगवकाशवदर्न्तभागस्य वृत्तान्तर-स्यान्तर्गताष्टस्थानेषु अङ्गमनून् नमः स्वाहेति मनून् लिखेत्। लिखनन्तु अङ्गावरणपूजावदग्निशासुरवायुषु मध्ये दिक्षु च। लिखनन्तु सर्वत्रैव कर्णिकाभिमुख्येन। तथा चाग्नौ नमः, ईशाने स्वाहा, नैर्ऋते वषट्, वायौ हुं, मध्ये वौषट्, दिक्षु फट्। न त्वङ्गमनूपदेन ह्रां हृदयाय नमः इत्याद्यङ्गमनवो ग्राह्याः विनिगमकाभावेन मन्त्रविशेषाङ्गस्यादङ्गस्य दुर्वचत्वात्। परेष्विति। तद्बहिरर्गलद्वयसंयोगस्थलाष्टकमिलितस्य षोडशा-वकाशवदन्तर्भागस्य वृत्तान्तरस्य मध्यस्थषोडशस्थलेषु वक्ष्यमाणमष्टाक्षर-मन्त्रद्वयं लिखेत् ॥६॥

अब श्लोकों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत है। अष्टदिगर्गलानि का अर्थ है—इन्द्रादि आठ दिक् के अर्गलसमूह। अर्गला के आकारस्वरूप दो-दो रेखा। अर्गलाकार दो-दो रेखाओं से बनता है। पूर्व से पश्चिम तक, दक्षिण से उत्तर तक, अग्निकोण से वायुकोण तक और ईशान से नैर्ऋत्य कोण तक दो-दो रेखा खींचे। इस प्रकार आठो

दिशागत अर्गला अंकित करके (उदरगत) चार अर्गला के बीच में बने वृत्त में पाश, माया तथा अंकुश (आं ह्रीं क्रों) बीज लिखे। कोष्ठों में अर्थात् अर्गलद्वय के संगमस्थल के आठ स्थल में आठ दिशाओं के बीच की खाली जगह में बने मध्यवर्ती वृत्त में नम: स्वाहा इत्यादि अंगमन्त्र लिखे। आवरणपूजा के समान अग्निकोण, ईशानकोण, नैर्ऋत्यकोण तथा वायुकोण में, मध्य तथा दिक्समूह में यही मन्त्र लिखना चाहिये। कर्णिका के अभिमुख यही लिखा जायेगा। जैसे अग्निकोण में नम:, ईशानकोण में स्वाहा, नैर्ऋत्य कोण में वषट्, वायुकोण में हुं, मध्य के अग्रभाग में वौषट् तथा चारो दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) के कोष्ठों में फट् अंकित किया जाय। यहाँ जहाँ अंगमन्त्र लिखना कहा गया है, वहाँ 'ह्रां हृदयाय नम:' इस प्रकार से नहीं लिखा जायेगा। विनियोग न रहने के कारण मन्त्रविशेष का अंगमन्त्र निरूपणीय नहीं रहता। 'परेषु' अर्थात् प्रथम वृत्त के बहिर्भाग में अर्गलाद्वय के आठ संगम स्थल में मिलित १६ अवकाश (खाली स्थान) युक्त अन्तर्भाग के मध्यवर्त्ती वृत्तान्तर के अन्तर्गत (मध्यवर्ती) १६ स्थलों में अष्टाक्षर मन्त्रद्वय के अक्षर लिखे।।६।।

तत्रायं क्रमः—अग्निकोणादितः कोणाष्टके प्रथमाष्टाक्षरस्यैकाक्षरं विलिख्य, पूर्वादिदिक्षु द्वितीयाष्टाक्षरस्यैकैकं लिखेत्। तथा चाग्नौ—आकारः। दिशि—मिकारः। कोणे—श्रीबीजम्। दिशि—निकारः। कोणे—मायाबीजमित्यादि क्रमः ।।७।।

यहाँ लेखन का क्रम बताया जा रहा है। अग्निकोणादि से लेकर आठ कोणों में प्रथम अष्टाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षर को लिखकर पूर्वादि दिक् समूह के द्वितीय अष्टाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षर को लिखे। जैसे अग्निकोण में 'आं'कार। दिशाओं में 'मि'कार। कोण में श्रीबीज। दिशाओं में 'नि'कार। कोणों में मायाबीज 'ह्रीं' इत्यादि क्रम से लिखे।।७।।

अच् पूर्वेति। अचः पूर्वषट्कं षष्ठस्वरान्तम्, अपरषट्कमेकादश-स्वरादिविसर्गान्तं, नपुंसकचतुष्कत्यागात् तदयुक्तान् व्योम आकाशबीजं नादबिन्दुमन्धकाररूपं तदासनीभूतान् तदधःस्थानित्यर्थः। अर्द्धर्चादित्वा-दासनस्य पुंस्त्वं, न तु तत्र बहुब्रीहिः, सकलशिष्टविरोधात्, यवलाधस्थ-हकारसंयोगस्य विरलप्रयोगाच्च। तथा च तादृशान् लयवरान्, इन्द्रादि पूर्वादि। जलाधिपादि वरुणादि च यथा स्यात्तथा गुणशस्त्रयस्त्रयः क्रमेण पङ्क्तिद्वयं कृत्वा तत् परं तमूर्द्ध्वं वृत्तान्तरे मध्ये विलिख्येत्यन्वयः। तेन पूर्वस्मिन् प्रथमपङ्क्तौ ह्लं ह्लां ह्लिं। द्वितीयपङ्क्तौ ह्लीं ह्लुं ह्लूं इति। पश्चिमे प्रथमपङ्क्तौ ह्लें ह्लैं ह्लों, द्वितीयपङ्क्तौ ह्लौं ह्लं ह्लः इति।

'अच् पूर्व' का अर्थ है—अच् वर्ण के प्रथम छ: अर्थात् अ से लेकर ऊ तक (अ आ इ ई उ ऊ)। नपुंसक चार वर्ण (ऋ ॠ ऌ ॡ) का त्याग करने से बचे ए ऐ ओ औ अं अ: पहले वाले पूर्वषट्क हैं, जो अ से ऊ तक हैं। यह ए ऐ ओ औ अं अ: अपरषट्क कहा जाता है। यह दोनों मिलाकर व्योमासन है। व्योम आकाशबीज, अन्धकाररूप नाद बिन्दु तथा 'तदासनीभूत' अर्थात् 'उससे नीचे' यह अर्थ है। अर्द्धर्चादि गण में पठित होने के कारण आसन शब्द पुंल्लिङ्ग है। व्योमासन पद में बहुव्रीहि समास नहीं है। अत: वह समस्त शिष्ट प्रयोग के विरुद्ध है तथा य व ल प्रभृति के अध:स्थ 'ह'कार का प्रयोग विरल है। अतएव हकार के 'अच्' षट्कद्वय-युक्त ल य व र वर्णों को 'पूर्वादि जलाधिपादि' अर्थात् वरुणादि दिक् की ओर 'गुणश:' अर्थात् तीन-तीन वर्णों की दो-दो पंक्ति करे। तदनन्तर पूर्व की प्रथम पंक्ति में ह्लं ह्लां ह्लिं, द्वितीय पंक्ति में ह्लीं ह्लु ह्लू लिखे। पश्चिम की प्रथम पंक्ति में ह्लें ह्लैं ह्लों लिखे और इसी की द्वितीय पंक्ति में ह्लौं ह्लं ह्ल: अंकित करे। अग्निकोण की प्रथम पंक्ति में ह्यं ह्यां ह्यिं, द्वितीय पंक्ति में ह्यीं ह्यु ह्यू अंकित करे। वायुकोण की प्रथम पंक्ति में ह्यें ह्यैं ह्यों एवं द्वितीय पंक्ति में ह्यौं ह्यं ह्य: अंकित करना चाहिये। ऐसे ही अन्यान्य स्थल में भी करना चाहिये (यह उदाहरणार्थ लिखा गया है)।।८।।

कोष्ठेष्विति। तदूर्ध्वदत्तवृत्तान्तरमध्यस्थषोडशकोष्ठेष्वित्यर्थः। अष्टयुगार्णं वक्ष्यमाणषोडशाक्षरमन्त्रस्याष्टद्वयवर्णं षोडशवर्णान् विलिखेत्। आत्म-सहितामिति। आत्मा हंसः इत्यक्षरद्वयं, ताभ्यां सहितामुभयतः संयुक्तां मायां केवलचतुर्थस्वरविशिष्टां युग्मस्वरान्तर्गतां कृत्वा केशरगतां लिखेत्। तथा च षोडशाक्षरलिखनादूर्ध्वं वृत्तं विलिख्य तदूर्ध्वं चतुरर्गला-नामुभयतः षोडशदलानि विलिख्य, दलमूलेषु अं हंसः ईं हसः आं, इं हंसः ईं हंसः ईं, उं हंसः ईं हंसः ऊं, एं हंसः ईं हंसः ऐं इत्यादिक्रमेण मध्ये ईकारं विलिख्य, केशरद्वयत्वेनोभयतस्त्रीन् त्रीन् वर्णान् लिखेत्। दलेष्विति। केशरादूर्ध्वं मूलं पाशमायाङ्कुशात्मकबीजत्रयं पङ्क्तित्रयेण त्रिर्लिखेत्। ततः पत्रोर्ध्वदेशेषु पाशाङ्कुशाभ्यां त्रिर्वेष्टयेत्। तदूर्ध्वं क्रमोत्क्रमात् लिपिर्मातृकावर्णैरिकधैव वीतं वेष्टितम्। अत्र मातृका केवलैक-पञ्चाशद्वर्णरूपा। तत्तु विशिष्टमष्टदलपद्मोपरिस्थेनाऽष्टदलपद्ममुखेन घटा-कारेण वेष्टनेन वृत्ताकारेण बहिरावेष्टितमिति ॥९॥

कोष्ठेषु पद का अर्थ है—उसके ऊर्ध्व में दिये वृत्तान्तर के मध्य के १६ कोष्ठ। 'अष्टयुगार्णं' वक्ष्यमाण षोडशाक्षर मन्त्र के अष्टद्वय (दो आठ-आठ) वर्ण अर्थात् १६ वर्ण लिखे। आत्मसंहिता का अर्थ है—आत्मा है हंस:रूपी दो अक्षर। दोनों ओर हंस:

संयुक्त माया को अर्थात् केवल चतुर्थ स्वर को युग्म स्वर के अन्तर्गत कर केशरसमूह में लिखे। इस प्रकार १६ मन्त्राक्षर लिखने के अनन्तर वृत्त बनाकर उसके ऊर्ध्व में चार अर्गलाओं के दोनों ओर १६ दल बनाकर दलों के मूल में अं हसः ईं हंसः आं, इं हंसः ईं हंसः ईं, उं हंसः ईं हंसः ऊं, एं हंसः ईं हंसः ऐं इत्यादि क्रमानुसार दो हंसः के बीच में ईं लिखकर केशर के द्वित्व के लिये दोनों ओर तीन-तीन वर्ण लिखे। 'दलेषु' का तात्पर्य है कि केशर के ऊर्ध्व में मूल तथा पाश, माया, अंकुशरूप बीजत्रय तीन पंक्तियों में तीन बार लिखे। तत्पश्चात् पत्र के ऊर्ध्वदेश समूह को पाश तथा अंकुश (मन्त्रों से) तीन बार वेष्टित करे (घेरे)। उसके ऊर्ध्व में अनुलोम तथा विलोम रूप से अर्थात् मातृका वर्णसमूह द्वारा एक बार ही वेष्टित करे। यहाँ केवल एकपञ्चाशत् वर्णरूपा मातृका है। यह विशिष्ट मन्त्र अष्टदल कमल के ऊपर अवस्थित पद्ममुख घटाकार वेष्टन द्वारा वृत्ताकार रूप में आवेष्टित होगा।।९।।

लेख्यमन्त्रानाह—पाशेत्यादिना। शक्तिर्माया। इन्दिरा लक्ष्मीः। रञ्जिनीति तृतीयस्वरमध्यम्। वर्म ह्रस्वम् ॥१०॥

इति भुवनेश्वर्या घटार्गलाख्ययन्त्रम्

पाश इत्यादि से लिखे जाने वाले मन्त्रों को कहा गया है। शक्ति = माया। इन्दिरा = लक्ष्मी। रञ्जिनी = तृतीय स्वर के मध्य। वर्म = ह्रस्व स्वर।

अथ त्वरितायन्त्रम्

तारे हुं विलिखेत् सरोजकुहरे साध्याभिधानान्वितं
मन्त्रार्णान् वसुसंख्यकान् वसुदलेष्वालिख्य तद्बाह्यतः।
शक्त्या त्रिः परिवेष्टितं घटगतं पद्मस्थमब्जाननं
यन्त्रं वश्यकरं ग्रहादिभयहृल्लक्ष्मीप्रदं कीर्त्तितम् ॥११॥

अब त्वरिता यन्त्र कहते हैं। अष्टदल कमल की कर्णिका में प्रणव के बीच में साध्य का नाम तथा 'हुं' लिखे। त्वरिता मन्त्र भी मायाद्वय, प्रणव तथा वर्मभिन्न अवशिष्ट खे च छे क्षः स्त्रीं हुं क्षेः फट् को पद्म के आठो पत्रों पर लिखकर उसके बाहरी भाग को शक्तिबीज द्वारा तीन बार वेष्टन करे। पद्ममुख घट की तरह और ऊर्ध्वमुख पद्म के ऊपर निहित यह यन्त्र वश्यकर होता है, साथ ही ग्रहादि भय का निवारण करने वाला, लक्ष्मी देने वाला तथा कीर्त्ति देने वाला कहा गया है।।११।।

अस्यार्थः—सरोजकुहरे कर्णिकायां तारे प्रणवाभ्यन्तरे संसाध्यं ह्रस्ववर्म लिखेत्। ततो वृत्तोपरि अष्टौ दलानि विलिख्य तेषु मन्त्रस्याष्टाऽक्षराणि लिखेत्। तथाच त्वरितामन्त्रे द्वादशाक्षरास्तस्य तारवर्मणी लिखिते मायया

वेष्टितव्यमिति परिशेषादष्टाक्षराः खे इत्यादयो लेख्याः। शक्त्या माया-बीजेन। त्रिस्त्रिधा। घटगतं घटाकारं वृत्तमध्यस्थम्। अब्जाननं पद्म-मुखम्॥१२॥

इति त्वरितायन्त्रम्

अब त्वरिता यन्त्र कहते हैं। सरोजकुहरे—अष्टदल कमल की कर्णिका में। प्रणव के अन्दर साध्य के नाम के साथ ह्रस्व वर्म (हुं) लिखे। तत्पश्चात् वृत्त के ऊपर अष्टदल बनाकर उनमें मन्त्र के आठ अक्षर लिखे। इसके पश्चात् त्वरिता मन्त्र के बारह अक्षर लिखे। उसके मध्य की कर्णिका पर तार (ॐ) तथा वर्म (हुं) लिखकर उसे माया (ह्रीं) द्वारा वेष्टित करके 'खे च छे क्षः हुं क्षे फट्' इन आठ अक्षरों को आठो दलों में लिखे। उसके बाहर शक्ति मायाबीज द्वारा तीन बार वेष्टन करना होगा। षट्गत—घटाकर वृत्त के मध्य। अर्थात् ऊर्ध्वमुख पद्मकर्णिकास्थ पद्ममुख घट के ऊपर निहित यह यन्त्र भय हटाने वाला, लक्ष्मी देने वाला तथा कीर्ति देने वाला होता है।।१२।।

विन्ध्यवासिनीयन्त्रम्

पद्मं भानुदलान्वितं प्रविलिखेत् तत्कर्णिकायां पुन-
स्तारं शक्तिगबीजसाध्यसहितं तत्केशरेषु क्रमात्।
मर्दिन्या मनुसम्भवान् युगलशो वर्णान् पुनः पत्रगान्
मन्त्रार्णान् गुणशो निधाय विलिखेदन्त्यं ददन्त्ये दले॥१३॥

मन्त्रञ्च—उत्तिष्ठ पुरुषि! किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा॥१४॥

एक बारह दल वाला कमल अंकित करे। पुनः उसकी कर्णिका में मायाबीज के अन्तर्गत साध्य-सहित प्रणव लिखे अर्थात् कर्णिका में ॐ लिखकर ह्रीं लिखकर साध्य का नाम लिखे। उसके केशरसमूह में क्रमशः महिषमर्दिनी के मूल मन्त्र के वर्णों को दो-दो करके लिखना चाहिये। पत्रसमूह में मूल मन्त्र के वर्णों को तीन-तीन करके लिखे और शेष बचे एक वर्ण को अन्तिम बारहवें दल में अंकित करे। यन्त्र पर लिखा मन्त्र है—उत्तिष्ठ पुरुषि! कि स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा।।१३-१४।।

मातृकावर्णसंबीजं भूपुरद्वयमध्यगम्।
यन्त्रञ्च विन्ध्यवासिन्याः प्रोक्तं सर्वसमृद्धिदम्॥१५॥
रक्षाकरं विशेषेण क्षुद्रभूतादिनाशनम्।
राज्यदं भ्रष्टराज्यानां वश्यदं वश्यमिच्छताम्॥१६॥

मातृका वर्णों से आवेष्टित एवं भूपुरद्वय के मध्यगत विन्ध्यवासिनी का यह यन्त्र सभी प्रकार की समृद्धि देने वाला है। यह रक्षा करने वाला होने के साथ-साथ क्षुद्र भूतादि का नाशक है। राज्यभ्रष्ट राजा इससे राज्य प्राप्त करता है। वशीकरण चाहने वाले के लिये यह वश्यप्रद है।।१५-१६।।

सुतार्थिनञ्च सुतदं रोगिणां रोगशान्तिदम्।
बहुना किमिहोक्तेन यन्त्रं तत् कामदं नृणाम्॥१७॥

यह पुत्रार्थी को पुत्र देने वाला एवं रोगियों को रोग से शान्ति देने वाला है। इस यन्त्र की प्रशंसा में अधिक क्या कहें। यह यन्त्र कामप्रद मणि के समान है।।१७।।

अस्यार्थः—भानुदलान्वितं = द्वादशदलम्। शक्तिगबीजसाध्यसहितं शक्तिबीजगतसाध्यवर्णयुक्तम्। तथा च कर्णिकामध्ये प्रणवं मायाञ्च लिखेत्। तत्र मायामध्ये साध्यं लिखेत्। केशरेषु महिषमर्दिनीमन्त्रवर्णानां द्वयं द्वयम्। तथाच कर्णिकाबहिर्वृत्तं, तदुपरि द्विद्विकेशरस्थानीयत्वेन त्रिधा पठिताष्टाक्षरमहिषमर्दिनीमन्त्रस्य पूर्वादितो द्वौ द्वौ वर्णौ लिखेत्। पुनर्वृत्तं विलिख्य तद्बहिर्द्वादशपत्रेषु उत्तिष्ठेत्यादिमन्त्रस्य त्रीन् त्रीन् वर्णान् लिखेत्। अन्त्यं तृतीयं 'हा'वर्णं द्वादशदले लिखेत्। तेन तत्र वर्ण-चतुष्कम्॥१८॥

इति विन्ध्यवासिनीयन्त्रम्

भानुदलान्वितं = द्वादशदल कमल बनाये, उसकी कर्णिका में मायाबीज ह्रीं लगाये अर्थात् ॐ लिखकर ह्रीं लिखे तब साध्य का नाम लिखे। पद्म के केशर में क्रमशः महिषमर्दिनी के मूल मन्त्र के वर्णों को दो-दो करके लिखे। अब कर्णिका के बहिर्भाग का जो वृत्त है, उसके दो-दो को केशर-स्थानीय मानकर तीन बार पठित महिषमर्दिनी मन्त्र पूर्व दिशा से दो-दो मन्त्राक्षर प्रत्येक केशर पर लिखे। अन्त्य वर्ण २४वें केशर पर लिखे। इस प्रकार अन्तिम केशर पर दो पहले लिखे, अक्षर के साथ यह तीसरा भी अंकित हो जायेगा। अब पुनः वृत्त बनाकर उसके बाहरी भाग में १२ पत्र बनाकर उनमें प्रत्येक पत्र पर ऊपर लिखे मन्त्र में से तीन-तीन अक्षर लिखता जाय, जो मन्त्र ऊपर श्लोक १४ में लिखा है। अन्त में जो एक वर्ण 'हा' बच जायेगा, उसे बारहवें दल पर लिखे। इस प्रकार बारहवें दल पर चार वर्ण होगा।।१८।।

अथ कालीयन्त्रम्

यामले—

आद्यं बीज समाध्यं प्रथमवसुगृहे तद्बहिश्चाष्टकोणे
पूर्वाद्यं चाष्टबीजं तदनु वसुगृहद्वन्द्वके बीजषट्कम्।

किञ्जल्कं तं स्वराढ्यं वसुदलविवरे स्वाहया बीजषट्कं
कूर्चाभ्यामेव वीतं क्षितिगृहयुगयोरन्तरे यन्त्रराजम् ॥१९॥

अब कालीयन्त्र कहा जा रहा है। यामल में कहा गया है कि पहले वसुगृह के मध्य के त्रिकोण में साध्य के नाम के साथ आद्य बीज 'क्रीं' का अंकन करे।

उसके बहिर्भाग के आठ कोणों में पूर्व आद्य बीज के आठ बीज लिखे। तत्पश्चात् वसुगृहों में छः बीज लिखे। उसके बाहरी भाग में अष्टदल बनाकर पद्म के आठ केसरों को दो-दो स्वर-वर्ण से युक्त करे। वसुदल के मध्य में स्वाहा के साथ छः बीज लिखना होगा। परस्पर व्यतिभेदी भूगृहद्वय के मध्य के यन्त्रराज को दो-दो कूर्चबीज द्वारा वेष्टित करे।।१९।।

देवीबीजत्रयं तत् प्रतिदिशमपरं शक्तिबीजद्वयं तत्।
कोणे कोणे लिखेद्यस्त्रिजगति स गुरुः शङ्करस्यापि विष्णोः ॥२०॥

जो प्रत्येक दिशा में (यन्त्र के) इस देवीबीजत्रय को तथा उसके कोणों में अन्य शक्तिबीजद्वय को लिखता है, वह तीनों लोकों में शंकर तथा विष्णु का भी गुरु हो जाता है।।२०।।

आद्यबीजं निजबीजम्। प्रथमवसुगृहे मध्यस्थत्रिकोणे। अष्टबीजमिति। पूर्वादिकोणेषु अष्टौ बीजानि अर्थात् द्वाविंशत्यक्षरमन्त्रराजस्य प्रथमादि-सप्तबीजानि शेषसप्तकस्य प्रथमञ्चेत्यष्टौ। ततः षट्कोणेषु शेषषट्कं अर्थात् मन्त्रराजस्य। तथाच प्रथमं त्रिकोणमेकं विलिख्य तद्बहिश्चतुरस्रद्वयं तथा लिखेत्, यथा पूर्वादिदिक्षु कोणं पतन्ति। तेषु बीजाष्टकं लेख्यम्। वसुगृहं त्रिकोणम्, तद्व्यये षट्कोणे निजबीजानि षट् अर्थात् शेषभृतानि मन्त्रराजस्य। ततः क्षितिगृहयुगयोर्वलयाकारवेष्टनद्वयन्तरे मध्यकिञ्जल्कं लिखेत्। तत् स्वराढ्यं षोडशस्वरात्मकम्। वसुदलेति। निजबीजशिष्टं शेषदलयोः स्वाहेति वर्णद्वयम्। ततः कूर्चाभ्यां कूर्चमयपङ्क्तिद्वयेन वीतं वेष्टितम्। तथा चादौ ससाध्यनिजबीजगर्भं त्रिकोणम्। ततः पूर्वादिचतुरस्रद्वयं सबीजकोणाष्टकवत्। ततः षट्कोणं बीजषट्कवत्। ततो वृत्तं ततोऽष्टदल-पद्मम्। अष्टदलमूलेषु द्वाभ्यां द्वाभ्यां स्वराभ्यां द्वौ द्वौ केशरौ। दलेषु बीज-षट्कं स्वाहा चेत्येताष्टाक्षराणि। तद्बहिः कूर्चात्मकपङ्क्तिभ्यां वेष्टनम्। ततो भूपुरद्वयस्य मध्ये मन्त्रराजं पूर्वादिचतुर्दिक्षु निजबीजस्य त्रयं त्रयं कोणेषु मायाबीजस्य द्वयं द्वयम् ॥२१॥

इति कालीयन्त्रम्

अब श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत है। निजबीज (क्रीं)। प्रथमवसुगृहे अर्थात् त्रिकोण में। अष्टबीज अर्थात् पूर्वादि कोण में आठ बीज। अर्थात् २२ अक्षरों वाले मन्त्रराज के प्रथम सात बीज तथा शेष सप्तक का प्रथम बीज—ये आठ बीज लिखे। तदनन्तर षट्कोण में शेषषट्क लिखे अर्थात् बाईस अक्षरात्मक यन्त्रराज के शेष छ:। इस प्रकार प्रथम एक त्रिकोण बनाकर उसके बाहर दो चतुरस्त्र इस प्रकार आड़ा बनाये, जिससे आठो दिशाओं की ओर अष्टकोण की सृष्टि हो जाय। इनमें आठ बीज लिखे। तदनन्तर ऊपर लिखे षट्कोण में शेष बचे छ: बीज लिखे। अब दोनों चतुरस्त्र में वलयाकार वेष्टनद्वय द्वारा किंजल्क लिखे। उसमें सोलह स्वरों में से दो-दो को एक-एक दल में लिखना चाहिये। 'वसुदलविवरे' का अर्थ है कि निज बीज क्रीं-सहित शेष दो दलों में स्वाहा लिखे अर्थात् एक में 'स्वा' दूसरे में 'हा' लिखे। तदनन्तर कूर्च द्वारा अर्थात् कूर्चमय पंक्ति से उसे वेष्टित करे। यह हुआ—साध्य-सहित निजबीजगर्भ त्रिकोण। अब पूर्वादि चतुरस्त्रद्वय बीजयुक्त कोणादि विशिष्ट हो गये। तत्पश्चात् छ: कोण भी बीजषट्क-युक्त हुये। तत्पश्चात् वृत्त होगा। तदनन्तर अष्टदल कमल होगा। अष्टदल के मूल समूह में दो-दो स्वरवर्ण-युक्त दो-दो केशर होंगे। दलसमूह के छ: बीज तथा स्वाहा—ये आठ बीज हैं। उसके बहिर्भाग में कूर्चबीजरूप पंक्तिद्वय द्वारा वेष्टन होगा। तत्पश्चात् भूपुरद्वय के मध्य में यन्त्रराज के पूर्व आदि चारो दिशाओं में 'क्रीं' तीन-तीन तथा कोणसमूह में मायाबीज दो-दो लिखे। इस प्रकार यह कालीयन्त्र का वर्णन समाप्त होता है।।२१।।

अथ महालक्ष्मीयन्त्रम्

वेदादिस्थितसाध्यनामयुगलः श्रीशक्तिमारान्वितं
किञ्जल्केषु दिनेशपत्रविलसन्मन्त्राक्षरं तद्बहिः।
पद्मं व्यञ्जनकेशरं स्वरलसत् पत्राष्टयुग्मं धरा-
विम्बाभ्यां वषडन्तया त्वरितया यन्त्रं लिखेद्वेष्टितम्॥२२॥

अब महालक्ष्मी यन्त्र कहा जा रहा है। बारह दल का एक कमल बनाये। इस कमल की कर्णिका में प्रणव लिखे और साध्य तथा साधक का नाम लिखे। इस कमल के दो किंजल्क को श्रीबीज, शक्तिबीज तथा कामबीज से युक्त करे। प्रथम किंजल्क में श्रीबीज तथा शक्तिबीज, द्वितीय किंजल्क में कामबीज तथा श्रीबीज, तृतीय किंजल्क में शक्तिबीज तथा कामबीज—इस क्रम से अंकित करे। इसी प्रकार अपर किंजल्क भी इन्हीं बीजद्वय से युक्त हो गये। इस पद्म के बारह पत्रों को मन्त्र के बारह अक्षरों द्वारा युक्त करे अर्थात् 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः जगत्प्रसूत्यै नमः' इस द्वादश अक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षर को एक-एक पत्र पर लिखा जाय। इस द्वादश दल पद्म के बाहरी भाग

का पद्म ककारादि दो-दो व्यञ्जनयुक्त ३२ केशरयुक्त होगा। केशर दो-दो हैं; अतः एक-एक केशर में दो-दो व्यञ्जन वर्ण लिखा जायेगा। इस प्रकार यह पद्म षोडश स्वर-विशिष्ट तथा षोडश पत्र-विशिष्ट होगा। इस पद्म का 'वषट्' से अन्त होने वाले मन्त्र से वेष्टन करे अर्थात् 'ॐ ह्रीं ह्लं खे च छे क्षः स्त्री हुं क्षे ह्रीं वषट्' इस त्वरिता मन्त्र द्वारा वेष्टन करके परस्पर व्यतिभेदी (एक-दूसरे को काटने वाले) दो भूबिम्ब (भूपुर) द्वारा वेष्टित यन्त्र लिखे।।२२।।

भूपुरद्वयकोणेषु हक्षौ लेख्यौ पुनः पुनः।
महालक्ष्मीयन्त्रमिदं सर्वैश्वर्यफलप्रदम् ।।२३।।

भूपुरद्वय के कोणसमूह में आठ बार ह-क्ष लिखे। तब यह समस्त ऐश्वर्य तथा सर्वफलप्रद महालक्ष्मी यन्त्र निष्पन्न होता है।।२३।।

अस्यार्थः—वेदादिः प्रणवस्तत्स्थं साध्यनाम यत्र पद्मे तत्। अर्थात् कर्णिकायां प्रणवमध्ये साध्यं लेख्यम्। किञ्जल्केषु युगशो द्विशः श्रीशक्तिमारान्वितम्। आद्ये किञ्जल्के श्रीशक्ती, परे मारश्रियौ, तत्परे शक्तिमाराविति सम्प्रदायविदः। तेन बीजत्रयस्याऽष्टावृत्तयः ।।२४।।

इस श्लोक का अर्थ है कि वेदादि प्रणव, उस प्रणव के मध्य में जो पद्म है, वही है—वेदादि-स्थित साध्य नाम पद्म। अर्थात् कर्णिका में प्रणव के साथ साध्य तथा साध्य के नाम अंकित करे। पद्म श्रीबीज, शक्तिबीज तथा कामबीज के द्वारा अन्वित केशर से युक्त होगा। प्रथम केशर में श्री तथा शक्ति, द्वितीय में कामबीज तथा श्री, उसके बाद के केशर में शक्ति तथा कामबीज होता है—ऐसा साम्प्रदायिक कहते हैं। इसमें इन बीजत्रय की आठ बार आवृत्ति होती है।।२४।।

अन्ये तु युगश्चतुर्वारं श्रीशक्तिमारान्वितम् तेनैकैकं बीजं द्विरावृत्तं, केशरेषु श्रीं श्रीं इति लिखेत्। द्विरावृत्तन्तु केशरद्विसवृत्तमिति। पुनः कीदृक्? दिनेशपत्रेषु द्वादशपत्रेषु विलसन्ति मन्त्राक्षराणि यत्र। पुनः कीदृशम्? बहिर्व्यञ्जनकेशरं व्यञ्जनानि ककारादीनि केशरेषु यत्र। अत्र सर्वत्र दलादिलिखनं ज्ञेयम्, केशराणां द्वित्वाद् व्यञ्जनद्वयमेकैकस्मिन् केशरे लेख्यमिति। हक्षौ तु भूपूरद्वयकोणेषु लेख्यौ। पुनः कीदृक्? स्वरैर्लसत् पत्राष्टयुग्मं षोड़शपत्रं यस्मिन् तत्। धराबिम्बाभ्यां परस्पर-विभिन्नाभ्यां वेष्टितम्, त्वरितया सहेति सम्बन्धः। तेन त्वरितया संवेष्ट्य पश्चात् ताभ्यां वेष्टयेदिति। कीदृश्या त्वरितया? तदाह—वषडन्तयेति। तत्र फट्कारस्थाने वषट्कार इति सम्प्रदायः। अन्ये तु वषट्कार-

मधिकमाहुः, शस्त्रादिवषडन्तया त्वरितयेति वक्ष्यमाणत्वात् हक्षाविति अष्टधावृत्ताविति ॥२५॥

इति महालक्ष्मीयन्त्रम्

अन्य विद्वान् कहते हैं कि युगशः अर्थात् चार बार श्री, शक्ति, मार (काम) द्वारा अधिक होगा। उसमें एक-एक बीज दो बार दुहराया जायेगा। ऐसी स्थिति में केशरों में श्रीं श्रीं यह लिखे। केशर दो-दो हैं; अतएव बीज को भी दो-दो बार लिखना पड़ेगा। पद्म किस प्रकार का है? द्वादश पत्रों वाला मन्त्राक्षर से शोभायमान जो पद्म है, वह 'दिनेशपत्रविलसत्'। मन्त्राक्षर पुनः किस प्रकार के हैं? वे हैं—वहिर्व्यंजन केशर। ककारादि व्यञ्जन वर्ण जिस पद्म के केशर हैं, वह पद्म। यहाँ सर्वत्र दलादि में ही लेखन करना चाहिये। केशरसमूह दो हैं; अतएव एक-एक केशर में दो-दो व्यञ्जन लिखे। ह तथा क्ष को भूपुरद्वय के कोण में लिखे। पुनः पद्म कैसा है? अब यह स्वरसमूह द्वारा शोभायमान पत्राष्टद्वयरूप है (१६ दल वाला)। यह पद्म स्वरों से शोभायमान पत्राष्टकद्वय (षोड़शपत्रयुक्त)-विशिष्ट है। यह पद्म परस्परतः भिन्न दो भूपुरों द्वारा घिरा हुआ (वेष्टित) है। इसका सम्बन्ध त्वरिता से है। उसे त्वरिता मन्त्र के द्वारा प्रथम वेष्टन करके तत्पश्चात् इन दो भूपुरों द्वारा वेष्टित किया गया है। किस प्रकार के त्वरिता मन्त्र से वेष्टन किया गया? जिसके अन्त में वषट् लगा है, ऐसे त्वरिता मन्त्र द्वारा वेष्टित है। सम्प्रदाय वाले कहते हैं कि त्वरिता मन्त्र के अन्त में 'फट्' के स्थान पर वषट् लगा है। किसी का मत है कि फट् के पश्चात् वषट् अधिक है; क्योंकि 'शस्त्रादि वषड़न्तया त्वरितया' शस्त्रादि वषट् अन्त त्वरिता मन्त्र द्वारा—इस प्रकार का कथन भी है। ह क्ष को आठ बार आवृत्ति में लिखे।।२५।।

अथ त्रैपुरयन्त्रः

मध्याद्यं नवयोनिषु प्रविलिखेद् बीजानि वर्णांस्त्रिशो
गायत्र्याः पुनरष्टपत्रविवरेष्वालिख्य लिप्यावृतम्।
भूबिम्बद्वितयेन मन्मथयुजा कोणेषु संवेष्टितं
यन्त्रं त्रैपुरमीरितं त्रिभुवनप्रक्षोभकं श्रीप्रदम् ॥२६॥

अब त्रैपुर यन्त्र कहते हैं। एक अष्टदल कमल के केशर को नवयोनि में अंकित करे। इसमें प्रदक्षिण क्रम से इस तरीके से बीजों को लिखना है, जिससे मध्य में आद्य बीज रहे अर्थात् मध्ययोनि में आदि बीज 'ह्स्रैं' लिखकर प्रदक्षिणक्रम से द्वितीय बीज ह्स्क्ल्रीं लिखकर ह्सौः बीज के वर्णों को लिखे। इस प्रकार से प्रदक्षिण क्रम से तीन बीज लिखकर मन्त्र की तीन बार आवृत्ति होगी। पुनः आठ पत्रों के एक-एक पत्र

में त्रिपुरा गायत्री के तीन-तीन वर्ण लिखकर मात्रिका वर्ण से वेष्टित होगा। परस्पर विपरीत भूपुरद्वय के कोण में त्रिपुरा का मन्मथ बीज लिखकर इस भूपुरद्वय द्वारा वेष्टन करे। इस त्रिपुरा यन्त्र को त्रिभुवन का प्रक्षोभक तथा लक्ष्मीप्रद कहते हैं।।२६।।

गायत्री तु—

मन्मथं त्रिपुरादेवि! विद्महे पदमुच्चरेत्।
उक्त्वा कामेश्वरीपदं प्रवदेदथ धीमहि ॥२७॥
तदन्ते प्रवदेद्भूयस्तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्।
गायत्र्येषा समाख्याता त्रैपुरी सर्वकामदा ॥२८॥

यन्त्र में इस गायत्री को लिखना होता है—प्रथमतः 'क्लीं' (मन्मथ बीज), तत्पश्चात् कहे 'त्रिपुरादेवि विद्महे'। तत्पश्चात् 'कामेश्वरि' तथा 'धीमहि' कहे। इसके अनन्तर 'तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्' कहे। यह गायत्री है—क्लीं त्रिपुरादेवि! विद्महे कामेश्वरि! धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्'। यह सर्वकामप्रदा त्रिपुरा गायत्री कही गई है।।२७-२८।।

अन्यच्च—

वह्नेर्गेहयुगान्तरस्थमदने मायां लिखेद् वाग्भवं
षट्कोणेष्वथ सन्धिषु प्रविलिखेद् हुङ्कारमावेष्टयेत्।
स्त्रीबीजेन समीरितं त्रिभुवनप्रक्षोभणं त्रैपुरं
यन्त्रं पञ्चमनोभवात्मकमिदं सौन्दर्यसम्पत्प्रदम् ॥२९॥

इति त्रिपुरायन्त्रद्वयम्

अब अन्य प्रकार का त्रिपुरा यन्त्र कहा जा रहा है। षट्कोण के मध्यस्थ क्लीं तथा ह्रीं लिखे। षट्कोण की उत्तर दिशा में वृत्तमध्य में वाग्भवबीज (ऐं) लिखे। सन्धिसमूह में 'हुं' लिखे। उसे स्त्रीं बीज से आवेष्टित करे अर्थात् समस्त स्त्रीं बीज के मध्य में लिखे। त्रिभुवन-प्रक्षोभक, सर्व सम्पत्तिप्रद त्रिपुरायन्त्र पंचमनोभव-स्वरूप कहा गया है।।२९।।

अथ गणेशयन्त्रम्

बीजं षट्कोणमध्ये स्फुरदनलपुरे तारगं दिक्षु लक्ष्मीं
मायाकन्दर्पभूमिस्तदनु रसपुटेष्वालिखेद् बीजषट्कम्।
तत्सन्धिस्वङ्गमन्त्रान् वसुदलकमले मूलमन्त्रस्य वर्णान्
शिष्टान् पत्रेषु विद्वान् विलिखतु गुणशश्चान्त्यमन्त्ये पलाशे ॥३०॥
आवीतं लिपिभिः क्रमोत्क्रमवशात् पाशाङ्कुशाभ्यामपि
क्षागे हद्वितयेन वेष्टितमिदं यन्त्रं गणाधीशितुः।

लाक्षाकुङ्कुमरोचनामृगमदैर्भूर्जोदरे हेम्नि वा
संलिख्याऽभिवहन् लभेत सकलैः सम्प्रार्थितं सम्पदम् ॥३१॥

इति गणेशयन्त्रम्

अब गणेशयन्त्र कहते हैं। विद्वान् व्यक्ति एक अष्टदल कमल की कर्णिका के षट्कोण में उज्ज्वल त्रिकोण में प्रणव के साथ 'गं' (गणपति बीज) लिखे। त्रिकोण के बाहरी भाग में अग्रादि क्रम से दिक् समूह में लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं) कन्दर्पबीज (क्लीं) तथा भूबीज (ग्लौं) लिखे। उसके पश्चत् छः कोणों में मन्त्र के आदिगत छः बीज लिखना चाहिये। उस अग्रादि षट्कोण के सन्धिसमूह में महागणपति के छः अंगमन्त्र लिखना चाहिये। अष्टदल के पत्रों में मूल मन्त्र के बाकी वर्णों को तीन-तीन करके प्रत्येक पत्र पर लिखकर आठवें पत्ते पर एक वर्ण लिखे। तदनन्तर अष्टदल कमल को अनुलोम तथा विलोमरूप मातृका वर्णों से वेष्टित करे। उसके पश्चात् पाश तथा अंकुश (मन्त्रों) से वेष्टित करे। तदनन्तर वह भूपुर द्वारा वेष्टित होकर गणपति का धारण करने वाला यन्त्र होता है। उत्तम सोने के पत्र पर अथवा भूर्जपत्र पर लाक्षा, कुंकुम, गोरोचन तथा कस्तूरी से लिखकर इसे धारण करने से सबको प्रार्थित सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।।३०-३१।।

अथ श्रीरामयन्त्रम्

तारं मध्ये विलिखतु मनुं षट्सु कोणेषु सन्धि-
ष्वङ्गं माया स्मरमपि लिखेत् कोणगण्डेषु पश्चात्।
किञ्जल्केषु स्वरगणमथो पत्रमध्येषु माला-
मन्त्रस्यार्णान् गुहमुखमितानष्टमे पञ्चवर्णान् ॥३२॥

अब राम का धारण यन्त्र कहते हैं। अष्टदल कमल की कर्णिका में साध्य, साधक तथा कर्म के सहित प्रणव लिखे (साध्य तथा साधक का नाम लिखे)। छः कोणों में षड़क्षर मन्त्र के छः अक्षर लिखे। छः सन्धियों में छः अंगमन्त्र लिखे। कोण के कपोलसमूह में एक साथ मायाबीज (ह्रीं) तथा कामबीज (क्लीं) लिखे। तदनन्तर किंजल्कसमूह में १६ स्वर अंकित करे, अब एक-एक पत्र में राम के मालामन्त्र के अन्तर्गत वाले छः वर्णों को लिखना चाहिये। अष्टपत्रों में पाँच वर्ण लिखे।।३२।।

दशाक्षरेण संवेष्ट्य कादिवर्णैश्च भूपुरे।
दिग्विदिक्षु लिखेद् बीजे नरसिंहवराहयोः ॥३३॥

राम के दशाक्षर मन्त्र के द्वारा तथा कादि वर्णसमूह के द्वारा वेष्टन करके भूपुर दिशा तथा विदिक् (दूसरी दिशा) में नरसिंह तथा वराहबीज लिखना चाहिये।।३३।।

नमो भगवते ब्रूयाच्चतुर्थ्या रघुनन्दनम्।
रक्षोघ्नविशदायान्ते मधुरादि समीरयेत्॥३४॥
प्रसन्नवदनायेति पश्चादमिततेजसे।
बालाय पश्चाद्रामाय विष्णवे तदनन्तरम्।
प्रणमामि नमोऽन्तोऽयं मालामनुरुदीरितः॥३५॥

इति श्रीरामयन्त्रम्

राम का मालामन्त्र कहते हैं। प्रथमतः 'ॐ नमो भगवते' का उच्चारण करे। तदनन्तर चतुर्थी विभक्ति के साथ रघुनन्दन अर्थात् 'रघुनन्दनाय' कहे। तदनन्तर 'रक्षोघ्नविशदाय' शब्द के अन्त में 'मधुरप्रसन्नवदनाय' लगाये। तत्पश्चात् 'अमिततेजसे बलाय' लगाकर 'रामाय विष्णवे' कहे। अब अन्त में 'नमः' लगाना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्रोद्धार होता है—ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः। यह राम का मालामन्त्र है।।३४-३५।।

विशेष—ग्रन्थकार ने ऊपर उद्धृत राम के दशाक्षर मन्त्र का उल्लेख नहीं किया है; शारदातिलक के अनुसार वह मन्त्र है—हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा।

अथ श्रीनृसिंहयन्त्रम्

बीजं साध्यसमन्वितं प्रविलिखेन्मध्येषु पत्रेष्वथो
मन्त्रार्णान् श्रुतिशो विभज्य विलिखेल्लिप्या बहिर्वेष्टयेत्।
बाह्ये कोणगबीजवर्णवसुधागेहद्वयेनावृतं
यन्त्रं क्षुद्रविषग्रहामयरिपुप्रध्वंसनं श्रीप्रदम्॥३६॥

इति श्रीनृसिंहयन्त्रम्

अब नृसिंह यन्त्र कहते हैं। अष्टदल पद्म की कर्णिका में नृसिंह बीज (क्ष्रौं) लिखकर कमल के आठों पत्र पर मन्त्रवर्ण का चार-चार विभाग करके लिखे। इन पत्रों के बाहरी भाग को मातृका से आवेष्टित करे। मातृका मण्डल के बाहरी भाग में परस्पर एक-दूसरे से विरुद्ध (परस्परतः व्यतिभेदी) दो भूपुर बनाये, इनके कोणों में नृसिंह बीजयुक्त करके इन भूपुरद्वय से यन्त्र को घेरे। यह यन्त्र क्षुद्र बाधा, सर्पादि-विष, ग्रहदोष, रोग तथा शत्रुनाशक और लक्ष्मीप्रद है।।३६।।

अथ श्रीगोपालयन्त्रम्

पिण्डं मूलेन वीतं दहनपुरयुगे कोणराजत्षडर्णं
कुर्यात्पद्मं दशार्णस्फुरितदशदलं कामबीजेन वीतम्।

पद्मं किञ्जल्कसंस्थं स्वरविकृतिदलं प्रोल्लसत्षोडशार्णं
किञ्जल्कं व्यञ्जनाढ्यं विकृतियुगदलेष्वर्पितानुष्टुबर्णम् ।।३७।।

अब गोपाल यन्त्र कहते हैं। षट्कोण में पिण्डबीज (ग्लौं) को मूल मन्त्र से वेष्टित करके लिखे। इस षट्कोण के छः कोणों को छः वर्णों से भूषित करे। तदनन्तर एक पद्म बनाये। इसके दस दलों को दस वर्णों से शोभित करे तथा इसे कामबीज (क्लीं) से वेष्टित करे। अब एक षोडशदल कमल बनाये। इसके १६ केशरों को १६ स्वरों से युक्त करना चाहिये। दोनों स्थलों पर केसरों में एक-एक वर्ण लिखे। तदनन्तर ३२ दल का कमल अंकित करे। उसके किंजल्क व्यञ्जन वर्णों से अंकित हों तथा उनमें अनुष्टुप् वर्ण अंकित करे।।३७।।

पाशाङ्कुशाभ्यामावीतं क्षोणीपुरयुगास्त्रिषु ।
अष्टाक्षरेण लसितं यन्त्रं गोपालदैवतम् ।
धर्मार्थकामफलदं सर्वरक्षाकरं स्मृतम् ।।३८।।

पाश तथा अङ्कुश (बीजों) द्वारा वेष्टित परस्पर विभेदी भूपुरद्वय के कोणों में ८ अक्षरों द्वारा उल्लसित यह यन्त्र धर्म, अर्थ, कामरूप फल देने वाला तथा समस्त प्रकार से रक्षा करने वाला कहा गया है।।३८।।

पञ्चान्तको धरेरस्थो मनुबिन्दुविभूषितः ।
पिण्डबीजमिदं प्रोक्तं सर्वरक्षाकरं परम् ।
स्मरः कृष्णाय ठद्वन्द्वं षड्वर्णो मनुरीरितः ।।३९।।

अब पिण्डबीज बताते हैं। पञ्चान्तक ग को धरा अर्थात् 'ल' तथा 'इर' अर्थात् 'य' से युक्त करके 'औ' तथा बिन्दु-अनुस्वार लगाया जाता है तब 'ग्लौं' बीज का उद्धार होता है। यह श्रेष्ठ सर्वरक्षाकर बीज है। अब यन्त्र में लिखे षड़क्षर मन्त्र को कहा जा रहा है। कामबीज (क्लीं) तथा कृष्णाय तदनन्तर स्वाहा कहने पर 'क्लीं कृष्णाय स्वाहा' मन्त्र का उद्धार होता है। यह गोपाल का षड़क्षर मन्त्र है।।३९।।

गोपीजनान्ते प्रवदेद् वल्लभायाग्निवल्लभाम् ।
अयं दशाक्षरो मन्त्रो दृष्टादृष्टफलप्रदः ।।४०।।

यन्त्र में कहे गये दशाक्षर मन्त्र को कहते हैं। गोपीजन के अन्त में वल्लभाय तथा स्वाहा (अग्निवल्लभा) कहे। अब मन्त्रोद्धार होता है—गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। यह दृष्ट तथा अदृष्ट फलप्रद है।।४०।।

प्रणवं हृदयं कृष्णं ङेन्तमुक्त्वा ततः परम् ।

तादृशं देवकीपुत्रं हुं फट् स्वाहासमन्वितम्।
षोडशाक्षरमन्त्रोऽयं गोविन्दस्य समीरितः ।।४१।।

अब यन्त्र में कहे गये षोड़शाक्षर मन्त्र को कहा जाता है। प्रणव (ॐ), हृदय (नमः) तथा चतुर्थी विभक्त्यन्त कृष्ण को अर्थात् 'कृष्णाय' कहकर उसी प्रकार चतुर्थी विभक्त्यन्त 'देवकीपुत्राय' को 'ॐ फट् स्वाहा' से विभूषित करे। अब मन्त्रोद्धार होता है—ॐ नमः कृष्णाय देवकीपुत्राय हुं फट् स्वाहा। यह गोपाल का षोडशाक्षर मन्त्र कहा गया है।।४१।।

पिण्डं रतिपतेर्बीजं नमो भगवते ततः।
नन्दपुत्राय बालादिवपुषे श्यामलाय च ।।४२।।
गोपीजनपदस्यान्ते वल्लभाय द्विठावधिः।
अनुष्टुब्मन्त्र आख्यातो गोपालस्य जगत्पतेः।
अनङ्गः कृष्णगोविन्दौ ङेन्तावष्टाक्षरो मनूः ।।४३।।

इति गोपालयन्त्रम्

प्रथमतः पिण्डबीज, उसके पश्चात् कामबीज लगाकर 'नमो भगवते नन्दपुत्राय' तत्पश्चात् 'बाल' एवं उसके अन्त में 'वपुषे' लगाना चाहिये। अब 'श्यामलाय' तथा 'गोपीजन' के अन्त में 'वल्लभाय' लगाये। यह द्विठावधि अर्थान्त स्वाहान्त हो। अब मन्त्रोद्धार होता है—ग्लौं क्लीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालवपुषे श्यामलाय गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा। यह जगत्पति गोपाल का अनुष्टुप् मन्त्र है।

अब यन्त्र में लिखा जाने गोविन्द का अष्टाक्षर मन्त्र कहते हैं। पहले कामबीज 'क्लीं' लगाकर चतुर्थी विभक्त्यन्त कृष्ण तथा गोविन्द अर्थात् 'कृष्णाय गोविन्दाय' कहे। यह गोविन्द का अष्टाक्षर मन्त्र 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय' होता है।।४२-४३।।

अथ देवकीपुत्रकृष्णयन्त्रम्

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदग्विधिवदभिलिखेत्स्पष्टरेखाचतुष्कं
कोणोद्यच्छूलयुक्तं वलययुगयुतं मध्यपूर्वं तदन्तम्।
श्लोकस्यार्णान् पुरस्ताद्वसुदलविवरेष्वष्टवर्णान् लिखित्वा
तद्बाह्ये द्वादशार्णैस्तदनुपरिवृतं देवकीपुत्रयन्त्रम् ।।४४।।

अब देवकीपुत्र कृष्ण का यन्त्र कहते हैं। विधिपूर्वक पूर्व-पश्चिम की ओर दो रेखा तथा उत्तर-दक्षिण की ओर दो रेखा खींच कर दोनों को मिलाकर स्पष्ट चार रेखा करे। मध्य कोष्ठ कोण के बाहरी भाग में चार कर्णसूत्र अंकित करने पर वह शूलाकार बनेगा। उससे चारो रेखा के कोण शूलयुक्त हो जायेंगे। उसे वलययुक्त करे। उसमें

एक वृत्त रेखाग्रस्पर्शी होगा। द्वितीय वृत्त के मध्य कोष्ठ से प्रथम वृत्त का अन्तराल रहेगा। मध्यादि तथा मध्यान्त कोष्ठ अर्थात् मध्यकोष्ठ से श्लोकमन्त्र के वर्णों को लिखना प्रारम्भ करके मध्य कोष्ठ की समाप्ति-पर्यन्त लिखे। अब मध्य कोष्ठ के बाहरी भाग के आठ पत्रों में पूर्वोक्त आठ वर्णों को लिखकर द्वितीय वृत्त के बाहरी भाग में वासुदेव के मन्त्र वर्ण द्वारा वृत्ताकार वेष्टित अंकित करे। ही है—देवकीपुत्र कृष्ण का यन्त्र।।४४।।

तं सूकी देवदेव तं तं देवे वरतो रतम्।
तं रतो रूढतो ख्यातं तं ख्यातं देवकीसुतम्।।४५।।
लिखितं भूर्जपत्रादौ यन्त्रमेतद् यथाविधि।
विधृतं बाहुना नित्यं सर्वकामफलप्रदम्।।४६।।

यन्त्र का मन्त्र कहते हैं—तं सूकी देवदेव तं तं देवे वरतो रतम्। तं रतो रूढ़तो ख्यातं तं ख्यातं देवकीसुतम्। सर्वकामप्रदायक इस यन्त्र को भोजपत्र, ताम्र, रजत, स्वर्णपत्र पर यथाविधि लिखकर बाहु में सदा धारण करने से यह समस्त कामनाओं को देने वाला होता है।।४५-४६।।

पलाशवृक्षफलके लिखितं साधु साधितम्।
गोस्थाने लिखनेदेतद् गवां वृद्धिर्भवेत् सदा।।४७।।

इति श्रीकृष्णयन्त्रम्

पलाशवृक्ष के तख्त पर यथायथ भाव से लिखित यन्त्र का संस्कार करके गौशाला में रखने से गोवृद्धि होती है।।४७।।

विशेष—मन्त्रों को क्रम से लिखना चाहिये। इस वर्णन से किसी भी यन्त्र के सम्बन्ध में लेखनप्रणाली का संकेतमात्र मिलता है। अत एव वस्तुस्थिति स्पष्ट नहीं हो सकती। इसलिये परम्परागत ज्ञानसम्पन्न गुरु के सान्निध्य में ही यन्त्र-निर्माणादि कार्य करना चाहिये।

अथ शिवयन्त्रम्

आदौ षट्कोणं लिखेत्। तन्मध्ये साध्ययुक्तं प्रासादबीजं विलिख्य, षट्कोणेषु सम्प्रणवपञ्चाक्षरवर्णाम् विवरेषु नमः इत्यादि षडङ्गमन्त्रान् विलिख्य, तद्बहि पञ्चदलानि विरचय्य तेषु ॐ ईशानाय नमः, ॐ तत्पुरुषाय नमः, ॐ अघोराय नमः, ॐ सद्योजाताय नमः, ॐ वाम-देवाय नमः इति पञ्चमन्त्रान् प्रागादिक्रमतो लिखेत्। तद्बहिरष्टदलानि तेषु मातृकाष्टवर्णान् प्रागादिक्रमेण लिखित्वा तद्बहिर्वृत्तं लिखेत्। तच्च त्र्यम्बकमन्त्रेण वेष्टयेत्। एतद्धारणात् सर्वसिद्धिः।।४८।।

इति शिवयन्त्रम्

अब शिवयन्त्र कहते हैं। प्रथमतः एक षट्कोण बनाये। उसमें साध्ययुक्त प्रासादबीज लिखकर छः कोणों में पञ्चाक्षर मन्त्र के पाँच वर्ण तथा कोण के छः विवरों में ईशान कोण से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से ॐ हृदयाय नमः, नं शिरसे स्वाहा, मं शिखायै वषट्, शिं कवचाय हुं, वां नेत्रत्रयाय वौषट्, यः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्—यह छः अंगमन्त्र लिखकर इस षट्कोण के बहिर्भाग में पाँच दल बनाकर ॐ ईशानाय नमः, ॐ तत्पुरुषाय नमः, ॐ अघोराय नमः, ॐ सद्योजाताय नमः, ॐ वामदेवाय नमः—इस मन्त्रों को पूर्वादिक्रम से लिखे। उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर इस दलसमूह में ॐ ईशानाय नमः, ॐ तत्पुरुषाय नमः, ॐ अघोराय नमः, ॐ सद्योजाताय नमः, ॐ वामदेवाय नमः को पूर्वादि क्रम अर्थात् पूर्व दिशा से लिखना प्रारम्भ करे। उसके बाहरी भाग में कमल बनाकर मातृका के अष्टवर्ण के एक-एक वर्ण को लिखे (यह भी पूर्वादि क्रम से लिखे)। इस वृत्त को त्र्यम्बक मन्त्र से आवेष्टित करे। इसको धारण करने से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है।।४८।।

अथ मृत्युञ्जययन्त्रम्

मध्ये साध्याक्षराढ्यं ध्रुवमपि विलिखेन्मध्यगं दिग्दलेषु
कोणेष्वस्त्यां मदनोस्तत्क्षितिभवनमध्ये दिक्षु चन्द्रं विदिक्षु।
टान्तं यन्त्रं तदुक्तं सकलभयहरं क्ष्वेडभूतापमृत्यू
व्याधिव्यामोहदुःखप्रशमनमुदितं श्रीप्रदं कीर्त्तिदायि ।।४९।।

इति मृत्युञ्जययन्त्रम्

अब मृत्युञ्जय धारण यन्त्र कहा जाता है। पद्म की कर्णिका में साध्य नामयुक्त प्रणव लिखना चाहिये। मन्त्र के मध्य के वर्ण 'जूं' को दिग्दलस्थ करे अर्थात् दिग्दलसमूह में मन्त्र के मध्यवर्ण 'जूं' को लिखे। कोण दलसमूह में मन्त्र के अन्त्य अक्षर 'सः' को लिखे। अब भूपुर बनाये। बहिर्भाग के दिक्समूह में चन्द्रबीज 'ठं' लिखे तथा विदिक्समूह में 'ट' के बाद आने वाला वर्ण 'ठ' लिखे। यह यन्त्र समस्त भय को समाप्त करने वाला, विष, भूत, अकाल मृत्यु, रोग, मोह तथा दुःख-शान्तिप्रद, श्रीप्रद और कीर्त्तिप्रद कहा गया है।।४९।।

अथ तारायन्त्रम्

अथ शान्तिकादौ तारायाः धारणयन्त्रं फेत्कारीये—

योनियुग्मे लिखेन्मन्त्रं मन्त्री हेमशलाकया।
क्लीबहीनान् दीर्घवर्णान् षट्कोणे विलिखेत्ततः ।।५०।।
अष्टपत्रेष्वष्टवर्णान् तद्बहिर्भूपुरद्वयम्।
अष्टवज्रं भूपुरे च विलिख्य साधकोत्तमः ।।५१।।

सुवर्णपट्टभूर्जे वा रूप्ये वाप्यथ सुव्रते।
विलिखेद् हेमलेखन्या गन्धाष्टकसमन्वितम्।
दूर्वाकाण्डेन वा लेख्यं कुशमूलेन वा पुनः ॥५२॥

अब शान्तिकादि में ताराधारण यन्त्र कहते हैं। फेत्कारी तन्त्र के अनुसार मन्त्रज्ञ साधक स्वर्ण की शलाका से योनियुग्म में मन्त्र लिखे। तदनन्तर छः कोणों में क्लीबहीन दीर्घ वर्णसमूह को लिखे। उसके आठ पत्रों में आठ वर्ण लिखे। उसके बाहर भूपुर (दो संख्यक) बनाये और भूपुर में आठ वज्र बनाये।

भगवान् कहते हैं—हे सुव्रते! सुवर्ण के पत्र पर, भोजपत्र अथवा चाँदी के पत्र पर सुवर्ण की लेखनी से गन्धाष्टक-समन्वित घोल से यह यन्त्र लिखना चाहिये। दूर्वा के तिनके अथवा कुशा की जड़ से इसे लिखा जा सकता है।।५०-५२।।

एकवीरतन्त्रे—

वेष्टितं पीतवस्त्रेण जतूना परिवेष्टयेत्।
बध्नीयात् पट्टसूत्रेण शिशूनां कण्ठभूषणम् ॥५३॥
स्त्रीणां वामभुजे चैवमन्येषां दक्षिणे भुजे।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं निर्धनो दक्षिणे भुजे ॥५४॥
इमां रक्षां पुरा बद्ध्वा ज्ञानार्थं गौतमादिभिः।
प्रत्यर्थं पार्थिवैश्चान्यैः संग्रामे जयकाङ्क्षिभिः ॥५५॥

एकवीरा कल्पतन्त्र में कहा गया है कि इस यन्त्र को पीले वस्त्र से आवेष्टित करे। तत्पश्चात् उसे जतु (गाला) द्वारा परिवेष्टित करे। रेशमी सूत से बांधे। यह शिशु का कण्ठभूषण होता है।

स्त्री के वाम बाहु में तथा अन्य के दाहिने बाहु में यह यन्त्र बांधना चाहिये। वन्ध्या को भी इससे पुत्र की प्राप्ति हो जाती है।

गौतमादि ऋषियों ने ज्ञानलाभार्थ इस यन्त्र (रक्षा यन्त्र) को प्राप्त किया था। बाद में विजय चाहने वाले राजाओं ने प्रार्थित विषय के लिये इसे प्राप्त किया था।।५३-५५।।

अस्यार्थः—योनियुग्मे षट्कोणे। तन्मध्ये हेमशलाकादिना भूर्जपत्रादौ रक्तचन्दनागुरुकर्पूरकृष्णशठीकुङ्कुमगोरोचनाजटामांसीगाठिआलेति प्रसिद्धगन्धाष्टकं समांशं विधाय, तेन पङ्क्तिक्रमेण मूलमन्त्रं लिखित्वा तस्य हल्लेखारेफमध्ये अमुकस्य रक्षां कुरु कुरु अमुक्याः शुभं पुत्रमुत्पा-दयतु वा अस्य ज्ञानं कुरु कुरु इत्यादि साध्यं विलिख्य, षट्कोणे क्लीबभिन्नान् दीर्घवर्णान् आ ई ऊ ऐ औ अः इत्येकैकं लिखेत्। तदुक्तम्—

स्वराणां मध्यगं यच्च तच्चतुष्कं नपुंसकम् ॥५६॥ इति।

इन श्लोकों का अर्थ है—योनियुग्म = षट्कोण। उसमें स्वर्णशलाकादि से भोजपत्र, स्वर्णपत्र, चाँदी के पत्र इत्यादि पर रक्त चन्दन, अगुरु, कर्पूर, काली शुण्ठी, कुङ्कुम, गोरोचन, जटामांसी तथा गठिआल की स्याही से मूल मन्त्र लिखे। तदनन्तर ह्रीं बीज तथा रेफ के बीच 'अमुकस्य रक्षां कुरु कुरु अमुक्याः शुभं पुत्रमुत्पादयतु वा अस्य ज्ञानं कुरु कुरु' इत्यादि साध्य लिखकर छः कोणों में नपुंसक वर्णों के अतिरिक्त दीर्घ वर्ण जैसे—आ, ई, ऊ, ऐ औ अं अः को एक-एक में लिखे। कहा भी गया है कि स्वरसमूह में जो चार वर्ण ऋ ॠ ऌ ॡ हैं, वे नपुंसक वर्ण होते हैं।।५६।।

अष्टपत्रेष्वष्टवर्णान् ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहेति लिखेत्। तदुक्तम्—

वाग्भवं कुलदेवीञ्च तारकं वाग्भवं तथा।
हृल्लेखा चास्त्रमन्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनुः।
अष्टाक्षरा मनुः प्रोक्ता मन्त्राणां सार ईरितः ॥५७॥

आठ पत्रों में 'ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा' यह लिखे। वाग्भव (ऐं), कुलदेवी (ह्रीं), तारक (ॐ), वाग्भव (ऐं), हृल्लेखा (ह्रीं), अस्त्रमन्त्र (फट्), अन्त में वह्निजाया (स्वाहा)। यह अष्टाक्षर मन्त्र है।।५७।।

अथ यन्त्रलिखनद्रव्यम्

काश्मीररोचनालाक्षामृगेभमदचन्दनैः।
विलखेद्धेमलेखन्या यन्त्राणि तानि देशिकः ॥५८॥
भूमिस्पृष्टं शवस्पृष्टं दग्धं निर्माल्यसङ्गतम्।
विदीर्णं लङ्घितं मन्त्री यन्त्रं नैव च धारयेत् ॥५९॥
सौवर्णे राजते पात्रे भूर्जे वा सम्यगालिखेत्।
अथवा ताम्रपट्टे वा गुटिकीकृत्य धारयेत् ॥६०॥
यावज्जीवं सुवर्णे स्याद्रौप्यं विंशतिवार्षिकम्।
भूर्जे द्वादशवर्षाणि तदर्द्धं ताम्रपट्टके ॥६१॥

अब यन्त्र लिखने के द्रव्य के सम्बन्ध में कहा जा रहा है। साधक सुवर्ण की शलाका से कुङ्कुम (काश्मीर), गोरोचन, लाख, कस्तूरी (मृगमद) तथा गजमद (उन्मत्त हाथी के मस्तक से गिर रहा मद) तथा चन्दन द्वारा स्याही बनाकर इन यन्त्रों को लिखे।

साधक भूमि पर गिरे, दूसरे के द्वारा छूये, जले, निर्माल्य से स्पर्श कराये हुये, विदीर्ण अथवा लांघे गये यन्त्र को धारण न करे। यन्त्र को सुवर्णपत्र, चाँदी का पत्र, भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र पर यथाविधि सुन्दर रूप से लिखे तथा गुटिका बनाकर धारण

करे। सुवर्ण-लिखित यन्त्र जीवन-पर्यन्त शक्तिसम्पन्न रहता है। चाँदी का यन्त्र २० वर्ष-पर्यन्त, भोजपत्र पर अंकित यन्त्र १२ वर्ष तक तथा ताम्रपत्र पर अंकित यन्त्र छः वर्ष-पर्यन्त शक्तिमान रहता है; तदनन्तर फलदायक नहीं रहता।।५८-६१।।

अथ संक्षेपतः सर्वदेवनित्यपूजा

यामले—

आदावृष्यादिविन्यासः करशुद्धिस्ततः परम्।
अङ्गुलीव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च ॥६२॥
तालत्रयञ्च दिग्बन्धः प्राणायामस्ततः परम्।
ध्यानं पूजा जपश्चेति सर्वतन्त्रेष्वयं क्रमः ॥६३॥

अब संक्षेप में सभी देवों की नित्य पूजा का क्रम कहते हैं। यामल में कहते हैं कि प्रथमतः ऋष्यादि न्यास, तत्पश्चात् करशुद्धि करके कराङ्गन्यास, व्यापक न्यास, तालत्रय, दिग्बन्धन, प्राणायाम, ध्यान, पूजा तथा जप करना चाहिये। यह तन्त्रानुसारी क्रम है।।६२-६३।।

पूजा तु मूलदेवताया एव। अत्र मातृकान्यासोऽप्यावश्यकः। यथा—

जपार्थं सर्वमन्त्राणां विन्यासञ्च लिपेर्विना।
कृतं तन्निष्फलं विद्यात्तस्मादादौ लिपिं न्यसेत् ॥६४॥ इति।

संक्षेप पूजा मूल देवता की ही करे। इसमें मातृका न्यास भी आवश्यक है। कहते हैं कि मातृका न्यास (लिपिविन्यास) समस्त मन्त्र-जपार्थ आवश्यक है। इसके विना जपकर्म फल नहीं देते। अतएव सर्वप्रथम इसे करे।।६४।।

अथ पञ्चायतनीपूजा

यामले—

भवानीन्तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत्।
आग्नेय्यां पञ्चवक्त्रञ्च नैर्ऋत्यां गणनायकम्।
वायव्यां तपनञ्चैव पूजाक्रम उदाहृतः ॥१॥
यदा तु मध्ये गोविन्दमैशान्यां शङ्करं यजेत्।
आग्नेय्यां गणनाथञ्च नैर्ऋत्यां तपनं तथा।
वायव्यामम्बिकाञ्चैव भोगमोक्षैकभूमिकाम् ॥२॥

अब पञ्चायतनी पूजा कहते हैं। यामल में कहा गया है कि भवानी की पूजा मध्य में करे। अच्युत की पूजा ईशान कोण में करनी चाहिये। आग्नेय कोण में पञ्चवक्त्र तथा नैर्ऋत्य कोण में गणनायक का एवं वायुकोण में तपन का पूजन करना चाहिये। यही पूजा का क्रम कहा गया है।

जब मध्य में गोविन्द की पूजा करनी हो तब ईशान कोण में शंकर की, अग्निकोण में गणेश की, नैर्ऋत्य कोण में तपन की तथा वायु कोण में भोग एवं मोक्ष देने वाली अम्बिका का पूजन करे।।१-२।।

शङ्करन्तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत्।
आग्नेय्यां तपनञ्चैव नैर्ऋत्यां गणनायकम्।
वायव्यां पार्वतीञ्चैव स्वर्गमोक्षप्रदायिनीम् ॥३॥

जब मध्य में शंकर का पूजन करना हो तब ईशान में अच्युत की, अग्निकोण में तपन (सूर्य) की, नैर्ऋत्य कोण में गणेश की तथा वायुकोण में स्वर्ग एवं मोक्ष देने वाली पार्वती का पूजन करे।।३।।

आदित्यञ्च यदा मध्ये ऐशान्यां शङ्करं यजेत्।
वायव्यामम्बिकां देवीं स्वर्गसाधनभूमिकाम् ॥४॥

जब आदित्य की पूजा मध्य में करनी हो तब ईशान कोण में शंकर का पूजन करे तथा वायव्य में उन अम्बिका देवी का पूजन करे, जो स्वर्ग का साधन कराती हैं।।४।।

गणनाथं यदा मध्ये ऐशान्यां केशवं यजेत्।
आग्नेय्यामीश्वरञ्चैव नैर्ऋत्यां तपनं तथा।
वायव्यां पार्वतीञ्चैव पूजयेन्मोक्षसाधनीम् ॥५॥

जब मध्य में गणेश का पूजन करना हो तब ईशान कोण में केशव का, अग्निकोण में ईश्वर का, नैर्ऋत्य कोण में सूर्य का तथा वायुकोण में मोक्षसाधनी पार्वती का पूजन करना चाहिये।।५।।

एतदकरणे दोषमाह—

स्वस्थानवर्जिता देवा दुःखशोकभयप्रदा ॥६॥

ऐसा न करने का दोष यह है कि देवताओं की विहित स्थान पर पूजा न होने से दुःख, शोक तथा भय की स्थिति आती है।।६।।

तथा गणेशविमर्शिन्याम्—

शम्भौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शङ्करे-
भास्येनागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः।
देव्यां विष्णुहरैकदन्तरवयो लम्बोदरेऽजेश्वरे
नार्याः शङ्करभागतोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु ते हानिदाः ॥७॥

गणेशविमर्शिनी ग्रन्थ में यह कहा है कि मध्य में महादेव की पूजा करनी हो तो ईशानादि चार कोणों में यथाक्रम से विष्णु, सूर्य, गणेश तथा देवी पार्वती का पूजन करे (इन = सूर्य, हरम् = गणेश)। मध्य में हरि की पूजा करने पर ईशानादि चार कोणों में क्रमशः यथाक्रम से शंकर, इभास्य (हस्तिमुख गणेश), इन (सूर्य), अगसुता (पार्वती) का पूजन करना चाहिये। यदि मध्य में हरि की पूजा करनी हो तब ईशानादि चार कोणों में यथाक्रम से हर, गणेश, (अज) विष्णु तथा अम्बिका की स्थापना करके पूजा करे। मध्य में पार्वती की स्थापना करने पर ईशानादि चतुष्कोणों में यथाक्रम विष्णु, हर, गणेश तथा सूर्य की स्थापना करके पूजनादि करे। मध्य में गणपति की स्थापना-पूजा करने पर ईशानादि चतुष्कोणों में यथाक्रम से विष्णु, महादेव, सूर्य तथा आर्या (दुर्गा) का पूजन विहित है। शंकर के स्थान पर शंकर की पूजा होने पर (अर्थात् जहाँ जिस देवता का स्थान कहा गया है, वहीं पर उनकी पूजा करने पर) वह अति सुखप्रद होती है और स्थान का व्यतिक्रम करने पर वह नुकसान देने लगती है।।७।।

यत्तु रामार्चनचन्द्रिकायां गौतमीये च—

देवाग्रे स्वस्य चैवाग्रे प्राची प्रोक्ता मनीषिभिः।
तस्याग्नेयं गणेशानं सूर्यं नैर्ऋतकोणके।
वायवे चाम्बिकामीशमीशाने हरिपूजने ॥८॥

रामार्चनचन्द्रिका तथा गौतमीय तन्त्र में कहते हैं कि देवता के आगे तथा अपने आगे की दिशा (पूजनार्थ) पूर्व दिशा कही जाती है। इसी प्रकार से मध्य में हरि की पूजा में उनके आग्नेय कोण में गणेश की, नैर्ऋत्य कोण में सूर्य की, वायु कोण में अम्बिका की तथा ईशान कोण में ईश (शिव) की स्थापना करके पूजन करना चाहिये।।८।।

तथा—

पञ्चात्मिकायां दीक्षायां गणेशादीन् क्रमाद्यजेत्।
यदा तु मध्ये गोविन्दमाग्नेय्यां गणनायकम् ॥९॥
नैर्ऋत्यां हंसमभ्यर्च्य वायव्यामर्चयेच्छिवाम्।
ऐशान्यां शङ्करञ्चैव भोगमोक्षफलाप्तये ॥१०॥

इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि पञ्चात्मिका दीक्षा में गणेशादि का क्रम से पूजन करना चाहिये। जब भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिये गोविन्द का पूजन (मध्य में) किया जाय तब उनके साथ (उस फल के लाभार्थ) अग्निकोण में गणेश की, नैर्ऋत्य कोण में हंस की अर्चना करे और वायुकोण में शिवा एवं ईशान कोण में शंकर की स्थापना करके अर्चना करनी चाहिये।।९-१०।।

इत्यङ्गदेवतापूजने आग्नेयादौ गणेशादिपूजनमुक्तम्, तद् रामगोपालविषयम्। वस्तुतो वैकल्पिकमिति साम्प्रदायिकाः ॥११॥

अंगदेवताओं की पूजा में कोणों में जिन गणेशादि देवताओं का पूजन कहा गया है, वह राम तथा गोपाल पूजन-विषयक उक्ति है। साम्प्रदायिकगण कहते हैं कि वास्तव में यह वैकल्पिक व्यवस्था है।।११।।

एतेषां पूजनञ्च गौतमीये—

गन्धादिभिरथाभ्यर्च्य षडङ्गार्चनमेव च।
विंशं कृत्वा जपेन्मन्त्रं नमस्कृत्य समापयेत् ॥१२॥

इनके (अंगदेवताओं के) पूजनार्थ गौतमीय तन्त्र में कहा है कि इन्हें गन्धादि अर्पण करके षड़ङ्ग पूजन करे। बीस बार जप करके नमस्कार द्वारा पूजा समाप्त करे।।१२।।

अङ्गदेवतापूजाकालन्तु पीठपूजानन्तरम्। यथा सनत्कुमारतन्त्रे—

पीठस्यार्चनमङ्गदेवयजनं प्राणप्रतिष्ठां तथा।
आह्वानं निजमुद्रिकाविरचनं ध्यानं प्रभोर्पूजनम् ॥१३॥

पीठपूजा (मध्य देवता) का पूजन करके अंगदेवताओं का पूजन करना चाहिये। जैसे सनत्कुमार तन्त्र में कहते हैं कि पीठ की अर्चना, अंगदेवता की अर्चना, प्राणप्रतिष्ठा, आवाहन, पूजादेवताओं की मुद्रा-रचना, ध्यान तथा प्रधान देवता की पूजा आवश्यक कर्त्तव्य है।।१३।।

अङ्गदेवाश्च चत्वारः। एकस्य प्रधानत्वात्, न तु परिवाराणामप्यङ्गत्वम्। यत्तु—

देवे पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा अङ्गदेवान् समर्चयेत्।

तत्तु प्रतिष्ठितयन्त्रादिविषयम्। तत्र सतताधिष्ठितमूलदेवतापूजनात् प्रागन्य-पूजनस्यायोगात्। प्रतिष्ठितयन्त्रातिरिक्ताधारे पूजायान्तु कुलावल्यां—

एकपीठे पृथक्पूजा विना यन्त्रं करोति यः।
अङ्गाङ्गित्वं परित्यज्य देवताशापमाप्नुयात् ॥१४॥

अंगदेवता चार हैं, जिनमें एक प्रधान होता है। परिवार के लोग देवता के अंगदेवता नहीं होते। कहा भी है कि देवता को पुष्पाञ्जलि देकर अंगदेवों की अर्चना करे। किन्तु यह प्रतिष्ठित यन्त्रों के लिये कहा गया है। वहाँ सर्वदा अधिष्ठित मूल देवता की पूजा के पहले अन्य देव की पूजा न करे। कुलावली में कहा है कि अंग तथा अंगीभाव का परित्याग करके यन्त्रों के अतिरिक्त जो पृथक् पूजा करता है, उसे देवता का शाप प्राप्त होता है।।१४।।

तथा च तत्राङ्गपूजनान्तरमङ्गिपूजेति लभ्यते। एवञ्च—

आवाह्य देवतामन्यामर्चयंस्त्वन्यदेवताम्।
उभाभ्यां लभते शापं मन्त्री तरणदुर्मतिः ॥१५॥

इति यदभिहितम्, तदावाहितदेवतापूजनात् प्रागन्यदेवतापूजननिषेधार्थ-कमिति। सर्वेषामङ्गमन्त्राणां सिद्धादिविचारो नास्ति। तथा च—

सिद्धादिशोधनं नैषामङ्गत्वे सति राजवत् ॥१६॥

अतएव यहाँ 'अंगपूजा के पश्चात् ही अंगी प्रधान देवता का पूजन' यह ज्ञात होता है, इसीलिये कहते हैं कि देवता का आवाहन करके अन्य देवता का पूजन करने से संसार-सागर से पार होने के स्थान पर उस दुर्मति को दोनों ही देवताओं का अभिशाप प्राप्त होता है।

यह जो आवाहन द्वारा आवाहित देवताओं के लिये कहा गया है कि आवाहन करके अन्य का पूजन न करे। लेकिन अंगदेवता के मन्त्रसमूह के लिये यह विचार नहीं है। कहा गया है कि जैसे राजा के सहचरों को राजा जैसा सम्मान नहीं दिया जाता, उसी प्रकार अंगदेवताओं के लिये भी सिद्धादि विचार नहीं किया जाता।।१५-१६।।

श्यामादौ तु पञ्चायतनाभावः। यथा रुद्रयामले—

श्यामायां भैरवीताराच्छिन्नमस्तासु भैरवि!।
मञ्जुघोषे तथा रौद्रे पञ्चाङ्गं नश्यते बुधैः ॥१७॥
उपविद्यासु सर्वासु षट्कर्मादिषु साधने।
नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नात्राङ्गादिप्रपूजनम् ॥१८॥

श्यामादि की साधन में पञ्चायतन नहीं होता। रुद्रयामल में कहा भी गया है— हे भैरवि! श्यामा, भैरवी, तारा, छिन्नमस्ता, मञ्जुघोष तथा रुद्र के सम्बन्ध में पण्डितगण पञ्चाङ्ग (पञ्चायतन) की इच्छा नहीं करते।

इन समस्त उपविद्याओं में तथा षट्कर्म-साधन में सिद्धादि की आवश्यकता भी नहीं होती एवं इन सबमें अंगादि पूजन भी नहीं होते।।१७-१८।।

तत्त्वसारे—

उपविद्यासु सर्वासु तथा प्रयोगसाधने।
दीक्षां विनैव कर्त्तव्यमुपदेशः सदैव हि ॥१९॥

इति पञ्चायतनी पूजा

तत्त्वसार के अनुसार समस्त उपविद्याओं में तथा प्रयोग-साधन में दीक्षा के विना ही सर्वदा उपदेश दिया जा सकता है।।१९।।

अथ नैमित्तिकविधिः

यथा स्वतन्त्रतन्त्रे—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सापेक्षं पूर्वपूर्वतः ।
अन्यथा चेद्भवेदित्थं करोत्यापत्परस्परम् ॥२०॥

अब नैमित्तिक-विधि कहते हैं। स्वतन्त्र तन्त्र में कहा है कि कर्म तीन प्रकार के होते हैं—नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य। नैमित्तिक कर्म नित्यकर्म-सापेक्ष है और काम्य कर्म नित्य तथा नैमित्तिक कर्म-सापेक्ष है। इनमें से यदि कोई भी अन्यथा (त्रुटिपूर्ण) हो जाता है, तब वे परस्पर आपत्ति की सृष्टि करते हैं।।२०।।

तथा नीलतन्त्रे—

नित्यार्चनरतो मन्त्री कुर्यान्नैमित्तिकार्चनम् ।
नैमित्तिकार्चने सिद्धः कुर्यात्काम्यमखण्डितम् ॥२१॥

नीलतन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रज्ञ साधक नित्य पूजन में लगा रहकर नैमित्तिक पूजन करता रहे। नैमित्तिक पूजा सिद्ध हो जाने पर अखण्डित काम्य कर्म करे।।२१।।

विशेष—नैमित्तिक पूजा सिद्ध हो जाने पर देवता की कृपा से काम्य कर्म विघ्नरहित अखण्डित रूप से सिद्ध होते हैं।

गौतमीये—

प्रणवद्वयमध्यस्थं जपेदयुतसंख्यया ।
त्रिरात्रजपमात्रेण बृहस्पतिसमो भवेत् ।
व्याख्याता सर्वशास्त्राणां वेदानामपि जायते ॥२२॥

गौतमीय तन्त्र में कहते हैं कि मन्त्र को प्रणव के बीच में करके (अर्थात् मन्त्र के पहले प्रणव लगाये तथा अन्त में भी लगाये) मन्त्र का १०००० जप करे। इस प्रकार तीन रात जप करने-मात्र से साधक बृहस्पति के समान हो जाता है। साथ ही वह समस्त शास्त्रों का तथा वेद का व्याख्याता भी हो जाता है।।२२।।

रविवारेऽश्वत्थमूले जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
भूयो भूयो भवेच्छान्तिर्जीवेदष्टोत्तरं शतम् ।
तस्य शान्तिर्भवेन्नूनं यमुद्दिश्य कृता क्रिया ॥२३॥

रविवार को पीपल के मूल (जड़) पर बैठकर १०८ मन्त्र-जप करे। इससे पुनः पुनः शान्ति प्राप्त होती है और १०८ वर्ष की आयु प्राप्त होती है। जिस इच्छा को लेकर जप किया जाता है, उसमें अवश्य ही शान्ति प्राप्त होती है (अर्थात् कृतकार्य सम्पन्न होता है)।।२३।।

मासमात्रं निर्मलैरंशुकैः कृष्णमभ्यर्च्य पापान्मुच्यते। पट्टवस्त्रेण पूजने सम्पत्तिः। विद्रुमेण त्रैलोक्यं वशम्, माणिक्यैः सार्वभौमसमता, पद्मरागैः राजत्वम् ॥२४॥

एक मास तक निर्मल स्वच्छ वस्त्र पहनकर कृष्ण भगवान् की अर्चना करने से पापों से छुटकारा मिलता है। रेशमी वस्त्र से पूजन करने से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। विद्रुम से पूजन करने से त्रैलोक्य वशीभूत होता है, माणिक्य से पूजा करने से सार्वभौम-तुल्य स्थिति होती है एवं पद्मराग से पूजा करने पर पूजक राजा के समान हो जाता है।।२४।।

ताराकाल्योर्मत्स्यसूक्ते—

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः।
यद्यत् प्रार्थयते मन्त्री तत्तदाप्नोति नित्यशः।
लभते मञ्जुलां वाणीं कृष्णाष्टम्यां सदा जपात् ॥२५॥

तारा तथा काली के विषय में मत्स्यसूक्त में कहा गया है कि अष्टमी तथा चतुर्दशी में यत्नपूर्वक पूजा करे। इससे मन्त्रज्ञ पूजक जो-जो प्रार्थना करता है, उसे उसकी प्राप्ति होती है। कृष्णाष्टमी (जन्माष्टमी) के दिन जप द्वारा मधुर वाणी प्राप्त होती है।।२५।।

अत्र च नित्यार्चनानन्तरं नैमित्तिकं कार्यम्। रुद्रयामले—

मासार्द्धमथवा मासं सार्द्धं वा द्विगुणं तथा।
यावत्फलाप्तिमान् योगी तावदेवं समाचरेत् ॥२६॥

अब यहाँ कहा गया है कि नित्य पूजा के अनन्तर नैमित्तिक पूजा करे। रुद्रयामल में कहते हैं कि मासार्द्ध, एक मास अथवा डेढ़ मास तक द्विगुण जप करना चाहिये। जब तक फल न मिले तब तक ऐसा ही करता रहे।।२६।।

अन्यत्रापि—

नैमित्तिके तथा काम्ये फलाप्तिर्मण्डलावधि।
न चेत्तद् द्विगुणं कुर्याद्यथा स्यात्फलभाक्सुधीः ॥२७॥

अन्यत्र भी कहते हैं कि नैमित्तिक तथा काम्य कर्मों में मण्डल (४९) दिनों में फल मिलता है। यदि फल न मिले तब दूना कर्म करे। ऐसा करने से साधक फलवान हो जाता है।।२७।।

अष्टम्यां पूजनं देव्याः सर्वकामफलप्रदम्।
रम्भाफलं बीजपूरं सुगन्धिपरिमिश्रितम् ॥२८॥
मिश्रीकृतं बलिं दद्यादष्टम्याञ्च विशेषतः।

स्वर्णमालां महादेव्यै गन्धाद्यैश्च विशेषतः ।
फलं क्षीरं तथा दद्यादधिकं शर्करान्वितम् ॥२९॥

अष्टमी को देवी-पूजन करने से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। सुगन्धि द्रव्य-मिश्रित द्रव्य, रम्भाफल तथा बीजपूर प्रदान करे। विशेषतः अष्टमी को इन सबको मिलाकर (इनकी) बलि प्रदान करे। गन्धादि-सहित स्वर्णमाला महादेवी को विशेष रूप से निवेदन करना चाहिये। इसी प्रकार फल तथा अधिक शर्करा मिलाकर खीर प्रदान करना चाहिये।।२८-२९।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सम्पत्त्यै पूजयेच्छिवाम् ।
दानञ्चाक्षयसिद्ध्यर्थं दद्याद् देव्यै प्रयत्नतः ॥३०॥

अतएव सम्पत्ति के लिये सर्वप्रयत्न से देवी का पूजन करे। अक्षय-सिद्धि हेतु प्रयत्न के साथ देवी को उपर्युक्त वस्तुयें प्रदान करे।।३०।।

तन्त्रान्तरे—

कदलीं बीजपूरञ्च दुग्धं पक्वं निवेदयेत् ॥३१॥

दुग्धस्य पाकस्त्वग्निसंयोगजः। कदलीबीजपूरयोस्तु सौरः।

अन्य तन्त्र में कहते हैं कि पका केला, पका बीजपूर, पका दूध निवेदन करे। अग्नि के संयोग से दूध पकता है एवं कदली तथा बीजपूर का पाक सूर्यरश्मि से होता है।।३१।।

नीलतन्त्रे—

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजयेच्च यथाविधि ।
आज्ञासिद्धिमवाप्नोति जवापुष्पञ्च बर्बराम् ॥३२॥
चन्दनञ्चार्ककुसुमं दद्यात् श्वेतापराजिताम् ।
अर्घ्यं दद्याद् विशेषेण नित्यपूजासु सर्वदा ॥३३॥

नीलतन्त्र में कहा गया है कि अष्टमी तथा चतुर्दशी को विधि-विधान से पूजन करे। इससे आज्ञासिद्धि प्राप्त हो जाती है। जवाकुसुम, बर्बरा-पुष्प, मदारपुष्प, श्वेत अपराजिता तथा चन्दन से नित्य पूजा में सर्वदा अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।।३२-३३।।

अष्टोत्तरं शतं जाप्यं यावज्जीवितसंख्यया ।
यस्तु सम्पूजयेद् दुर्गामष्टम्याञ्च विशेषतः ।
जन्मत्रयार्जितं पापं तत्क्षणादेव नाशयेत् ॥३४॥

दुर्गां तारिणीम्, प्रकरणात्।

'यावत् जीवित' अर्थात् १०८ बार मन्त्र-जप करे। जो अष्टमी को विशेषतः देवी का पूजन करता है, वह पूजा उसके तीन जन्मों के पाप को तत्क्षण नष्ट कर देती है। प्रकरणवशात् यहाँ दुर्गा हैं—तारिणी।।३४।।

अथ प्रयोगविधिः

सर्वत्र प्रयोगेऽयुतजपः। यथा शारदायाम्—

अयुतं होमसंख्या स्याज्जपस्तावान् प्रकीर्त्तितः ॥१॥

अब प्रयोग-विधि कही जाती है। सर्वत्र प्रयोगार्थ १०००० जप करे। शारदातिलक के अनुसार होमसंख्या अयुत हो एवं जप भी उतना ही हो।।१।।

अथ भुवनेश्वर्याः प्रयोगः

त्रिमधुरान्वितैरश्वत्थसमिद्वरैर्हुत्वा ब्राह्मणान् वशयेत्, पद्मैः पार्थिवान्, पलाशैस्तत्पत्नीं, कुमुदैर्मन्त्रिणः। पञ्चविंशतिजप्तैर्जलैः प्रत्यहं स्नायाच्चेत् सर्वसौभाग्यवान्। पञ्चविंशतिजप्तजलं प्रातः पिबेद् यदि तदा महती लक्ष्मीर्महाकविता च। पलाशकुसुमैर्हूत्वा वाक्श्रियं लभते। मूलाभिमन्त्रितब्राह्मीघृतपाने कवित्वं वत्सरात्। लवणान्वितसिद्धार्थहोमे नरनारीनरपतीन् वशयेत् ॥२॥

अब भुवनेश्वरी-प्रयोग कहते हैं। त्रिमधुर द्वारा आप्लुत (भिंगोये गये) उत्तम पीपल की समिधा (काष्ठ) द्वारा होम करने से ब्राह्मणगण वशीभूत हो जाते हैं। पद्मसमूह द्वारा राजाओं को, पलाशसमूह से उनकी पत्नियों को, कुसुमसमूह द्वारा मन्त्रीगण को वशीभूत किया जा सकता है। यदि २५ बार जप करके (जल पर) उस जल द्वारा प्रातःस्नान किया जाय तब सौभाग्य मिलता है। यदि २५ बार जप करके प्रतिदिन प्रातः जल पीये तब महती लक्ष्मी तथा महाकवित्व प्राप्त होता है। पलाशपुष्पसमूह से होम करने से मधुर वाणी मिलती है। मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित ब्राह्मी घृत का पान करने से (नित्य) एक वर्ष में कवित्व-प्राप्ति हो जाती है। लवणयुक्त सिद्धार्थ से हवन करने पर पुरुष, नारी तथा नरपतिगण वश में हो जाते हैं।।२।।

अथ त्वरितायाः प्रयोगः

प्रयोग इति सर्वत्र ग्राह्यम्। योनिकुण्डे—

मल्लिकाकुसुमैर्हुत्वा वशयेदखिलं जगत्।
कृत्याग्रहादिशमनं पलाशकुसुमैर्हुतम् ॥

इक्षुदण्डैर्वृद्धिः। दूर्वादिदीर्घमायुः। प्रक्षालितधान्यैः श्रीः। अशोकैः पुत्रः,

मधुकैरिष्टम्। जम्बूफलैर्धनम्। वकुलपुष्पैः कीर्त्तिः। आम्रैर्दीर्घमायुः। चम्पकैः स्वर्णलाभः। सर्षपैः शत्रुक्षयः। बकुलपत्रैर्वैरिणामुच्छादनम्। शाल्मलीपत्रैः शत्रुनाशः। माषैर्मूकता। उन्मत्तैर्विक्षोभः ॥३॥

अब त्वरिता का प्रयोग कहते हैं। योनिकुण्ड में मल्लिका-पुष्पसमूह से होम करे। इससे समस्त जगत् वशीभूत होता है। पलाशपुष्प द्वारा होम करने से ग्रहादि शान्त होते हैं। गन्ने द्वारा होम करने से वृद्धि, दूर्वा से दीर्घ आयु, धोये हुये धान्य से होम करने से सौन्दर्य, अशोक से होम करने से पुत्र-प्राप्ति, मधु से होम करने से काम्य विषय की प्राप्ति, जामुनफल से होम करने से धन, बकुलपुष्प द्वारा हवन करने से कीर्त्ति, आम द्वारा होम (आम्रफल) करने से दीर्घ आयु, चम्पक से होम करने से स्वर्णलाभ, सरसों से होम करने से शत्रुक्षय एवं बकुलपत्र से होम करने से शत्रु का विनाश होता है। शमीपत्र से होम द्वारा शत्रुनाश एवं माष के हवन से शत्रु मूक हो जाता है। धतूरा के पत्ते से होम करने पर शत्रुओं में क्षोभ उत्पन्न होने लगता है।।३।।

अथ दुर्गायाः प्रयोगः

तिलैर्होमे नृपतिर्वश्याः। सिद्धार्थैर्निरोगता। पद्मैः शत्रुजयः। दूर्वाभिः शान्तिः। पलाशकुसुमैः पुष्टिः। धान्यैः श्रीः। मरीचैः शत्रुनाशः ॥४॥

अब दुर्गा का प्रयोग कहा जाता है। तिल द्वारा होम से राजा वश में होते हैं। सिद्धार्थ-समूह से होम द्वारा आरोग्य, पद्म द्वारा शत्रुजय, दूर्वा द्वारा होम से शान्ति मिलती है। पलाशपुष्प से पुष्टि, धान्यसमूह से होम द्वारा श्री एवं मिर्च (काली मिर्च) से होम करने से शत्रु नष्ट होते हैं।।४।।

अथ सरस्वत्याः प्रयोगः

पीत्वा तस्मिंश्रितं तोयं सहस्रं प्रत्यहं जपेत्।
महाकविर्भवेन्मन्त्री वत्सरेण न संशयः ॥५॥

अब सरस्वती का प्रयोग कहा जाता है। शारदातिलक के अनुसार धीमान् साधक वाग्वादिनी मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित (तथा अभिमन्त्रित करते समय) हथेली से आच्छादित जल का सात दिन पान करे एवं प्रतिदिन १००० मन्त्र का जप करे तो इससे वह एक वर्ष में महाकवि हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५।।

उरोमात्रोदके स्थित्वा सूर्यमण्डले देवीं विभाव्य प्रत्यहं त्रिसहस्रं जपेत्, तदा सिद्धिर्वाग्मिता च। पलाशबिल्वयोर्मधुरान्वितैः पुष्पैः समिद्भिर्वा होमे धर्मः। कदम्बपुष्पैः श्रीफलफलैर्वा श्रीः। कुन्दैर्वाक्। नन्द्यावर्त्त-पुष्पैर्वाग्मिता ॥६॥

वक्ष तक जल में खड़ा होकर सूर्यमण्डल में देवी का ध्यान करके प्रतिदिन ३००० जप करे। उससे सिद्धि तथा वाग्मिता प्राप्त होती है। त्रिमधुर से आप्लुत पलाश तथा बेल- पुष्प अथवा समिधा द्वारा होम से धर्म होता है। बिल्व के पुष्प तथा फल द्वारा होम से श्री, कुन्द से होम करने से मधुर वाणी, तगर (नन्द्यावर्त्त) फल से होम करने से वाग्मिता मिलती है।।६।।

अथ लक्ष्म्याः प्रयोगः

वक्षःप्रमाणे जले स्थित्वा सूर्यमण्डले देवीं विभाव्य लक्षत्रयजपे श्रीः। उत्तरनक्षत्रे सम्पूज्य नन्द्यावर्त्तपुष्पैः सहस्रहोमे सम्पत्तिः। धान्येन प्रत्यहं प्रयोगसमाप्तिं यावत् सहस्रहोमे महती लक्ष्मीः ॥७॥

अब लक्ष्मी का प्रयोग कहते हैं। वक्ष तक जल में खड़ा होकर सूर्यमण्डल में देवी का ध्यान करके मन्त्र का तीन लाख जप करना चाहिये। इससे श्री की प्राप्ति होती है। उत्तरभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में पूजन करके तगरपुष्प द्वारा होम करने से सम्पत्ति मिलती है। प्रयोग समाप्त होने पर प्रतिदिन धान्य द्वारा १००० होम करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।।७।।

अथ गणेशस्य प्रयोगः

चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुःशतवारं शुद्धजलेन तर्पणे अभीष्टफलम्। चतुर्थ्यां नारिकेलैर्होमः श्रीप्रदः॥८॥

अब गणेश का प्रयोग कहते हैं। ४४४ बार शुद्ध जल द्वारा तर्पण करने से अभीष्ट की प्राप्ति होती है। चतुर्थी को नारियल द्वारा हवन करने से लक्ष्मी मिलती है।।८।।

अथ सूर्यस्य प्रयोगः

रविवारे प्रभाते मण्डलं कृत्वा यथाविधि सूर्यं सम्पूज्य पीठमभ्यर्च्य ताम्रपात्रे प्रस्थजलं निधाय तत्र कुङ्कुमरोचनाराजीरक्तचन्दनवैणवान् करवीरजवाशालिकुशश्यामाकतण्डुलान् दत्वा तदर्घ्ये सूर्यं सम्पूज्य अर्घ्यं पिधायाष्टोत्तरशतं जप्त्वा जानुपृष्ठमहीतलः मस्तकावधि समुद्धृत्य सूर्यं पश्यन् दद्यात्। ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा जपेदष्टोत्तरं शतम्। एतत् कर्मणा आयुरारोग्यधनधान्यपशुपुत्रमित्रक्षेत्रतेजोवीर्यकान्तिविद्यावैभवानि भवन्ति ॥९॥

अब सूर्य का प्रयोग कहते हैं। रविवार को प्रातः मण्डल बनाकर यथाविधि सूर्य का पूजन करे। पीठ पर देवता की पूजा करके ताम्रपात्र में एक प्रस्थ जल रखकर उसमें कुसुम, गोरोचन, राई, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, वंशलोचन, कनेर, जवापुष्प, शालिधान्य, कुश, श्यामाक तथा चावल डालकर उस अर्घ्य से अंगसहित सूर्य का

पूजन करके अर्घ्य का आच्छादन करके १०८ बार मन्त्रजप करके पुनः पूजा करके अपने जानुद्वय को मिट्टी से स्पर्श कराते हुये मस्तक-पर्यन्त अर्घ्य को उठाकर सूर्य को देखते-देखते उस अर्घ्य का अर्पण करे। तदनन्तर १०८ बार जप करे। इस पूजन से आयु, आरोग्य, धन, धान्य, पशु, खेत, पुत्र, मित्र, तेज, वीर्य, कान्ति, विद्या तथा वैभव की प्राप्ति होती है।।९।।

अथ रामस्य प्रयोगः

जातीप्रसूनैर्जुहूयादिन्दिरावाप्तये नरः ।
बिल्वप्रसूनैर्होमे लक्ष्मीः ॥१०॥

अब राम का प्रयोग कहते हैं। मनुष्य धन की प्राप्ति के लिये चमेली के पुष्पों से हवन करे। बिल्वपुष्प के द्वारा हवन से भी धनलाभ होता है।।१०।।

अथ श्रीकृष्णस्य प्रयोगः

ब्राह्ममुहूर्ते कृष्णं ध्यात्वा लक्षं जप्त्वा इष्टसिद्धिं प्राप्नुयात्। दूर्वातण्डुलाष्टोत्तरसहस्रहोमे शान्तिरित्यादि ॥११॥

अब श्रीकृष्ण का प्रयोग कहा जाता है। ब्राह्म मुहूर्त्त में श्रीकृष्ण का ध्यान करके एक लाख मन्त्र-जप द्वारा इष्टसिद्धि मिलती है। दूर्वा तथा तण्डुल से १००८ हवन करने से शान्ति प्राप्त होती है।।११।।

अथ दधिवामनस्य प्रयोगः

साज्यपायससहस्रहोमे श्रीर्दध्योदनेन दुर्गमोचनम् ॥१२॥

अब दधिमाधव का प्रयोग कहते हैं। साज्य पायस के १००० होम से श्री (लक्ष्मी) तथा दधियुक्त ओदन से होम करने से दुर्ग से छुटकारा मिलता है।।१२।।

अथ वराहस्य प्रयोगः

वराहे तु भाद्रमासे शुक्लाष्टम्यां पञ्चगव्येषु शिलां निक्षिप्य स्पृष्ट्वाऽयुतं उत्तरामुखो जपेत्। तस्य सर्वापदो नश्यन्ति ॥१३॥

वराह भगवान् के प्रयोग में भाद्रमास की शुक्लाष्टमी को पञ्चगव्य को शिला पर छिड़ककर (शिला = शालग्राम शिला) उसका स्पर्श करके उत्तर की ओर मुख करके १०००० जप करने से समस्त विपत्ति का नाश होता है।।१३।।

अथ नृसिंहस्य प्रयोगः

श्रीफलकाष्ठाग्नौ लवङ्गपुष्पैः सहस्रहोमे श्रीप्राप्तिः ॥१४॥

अब नृसिंह-प्रयोग कहते हैं। बेल की लकड़ी से अग्नि जलाकर उसमें लौंग के फूल से १००० होम करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।।१४।।

अथ भैरव्याः प्रयोगः

मधुरान्वितरक्तपद्मैर्लक्षहोमे तदर्द्धैर्वा जगद् वशयेत्। त्रिमध्वक्तै रक्तोत्पलैः रक्तकरवीरैर्वा विश्वं वशम्। पलाशकुसुमैर्वाक्सिद्धिः। कर्पूरागुरुयुक्त-गुग्गुलुहोमे ज्ञानं कवित्वञ्च। क्षीराक्तैरमृताखण्डैर्होमेऽपमृत्युजय इत्यादिः ॥१५॥

अब भैरवी का प्रयोग कहते हैं। मधुर (त्रिमधुर) से लिप्त लाल कमल से १००००० होम करे अथवा ५०००० होम करके जगत् को वशीभूत किया जा सकता है। पलाशपुष्प से होम द्वारा वाणीसिद्धि एवं कर्पूर अगरु तथा गुग्गुलु के मिश्रण से होम द्वारा ज्ञान तथा कवित्व मिलता है। खीर से लिप्त अमृता (गुरुच) द्वारा होम से अकालमृत्यु नष्ट होती है—इत्यादि।।१५।।

अथ सुन्दर्याः प्रयोगः

मालतीमल्लिकाजातीकुसुमैर्मधुमिश्रितैः ।
घृतपूर्णैर्हुनेद् देवि! वागीशत्वं प्रजायते ॥१६॥

भगवान् कहते हैं—सुन्दरी-प्रयोगार्थ घृतपूर्ण मधुमिश्रित मालती, मल्लिका तथा चमेलीपुष्प के हवन करने से वाक्पतित्व उत्पन्न होता है।।१६।।

अथ छिन्नमस्तायाः प्रयोगः

श्रीफलानां पलाशानां तथैवोडुम्बरस्य च ।
सर्वसिद्धिप्रदो होमः कर्त्तव्योऽथ प्रयत्नतः ॥१७॥
शतमष्टोत्तरं हूत्वा जपं कुर्यात्ततः परम् ।
मालतीकुसुमैर्होमः कर्त्तव्यो मधुसंयुतैः ।
घृतेन सहितं वापि वागीशत्वप्रदायकः ॥१८॥

अब छिन्नमस्ता देवी का प्रयोग कहते हैं। यत्नपूर्वक बिल्वफल, पलाश तथा गूलर की समिधा से हवन करे। यह सर्वसिद्धिप्रद होता है। १०८ होम करके जप करे। तदनन्तर शहद से लिप्त पुष्पों से हवन करे अथवा घी के साथ होम करने से वागीश्वरत्व की प्राप्ति होती है।।१७-१८।।

छागमांसं सरक्तञ्च घृतेन प्लावितं तथा ।
यो जुहूयात् सदा देवीं राजा तस्य वशो भवेत् ।
श्वेतेन करवीरेण लक्षहोमाच्छतं जीवेत् ॥१९॥

जो व्यक्ति घृत से आप्लावित रक्त लिपटे बकरे के मांस से हवन करता है, राजा उसके वश में हो जाते हैं। श्वेत कनेर से एक लाख होम द्वारा व्यक्ति १०० वर्ष-पर्यन्त जीवित रहता है।।१९।।

अथ ताराश्यामयोः प्रयोगः

कालीतन्त्रे—

कुलभगं पुष्पिताया दृष्ट्वा यो जपते नरः।
अयुतैकप्रमाणेन स तु विद्यानिधिर्भवेत्॥२०॥
संस्कृताः प्राकृताः शब्दा लौकिका वैदिकास्तथा।
वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य च नान्यथा॥२१॥

अब तारा तथा श्यामा का प्रयोग कहते हैं। कालीतन्त्रमतानुसार जो मानव पुष्पिता नारी की कुलयोनि को देखकर १०००० जप करता है, वह विद्या का सागर बन जाता है। संस्कृत, प्राकृत, लौकिक तथा वैदिक जो-जो शब्द हैं, वे समस्त साधक के पास (मस्तिष्क में) आ जाते हैं। यह सत्य वचन है, जो अन्यथा नहीं होता।।२०-२१।।

अथवा मुक्तकेशस्तु हविर्भुक्त्वा सुसंयतः।
प्रजपेदयुतं प्राज्ञ एतदेव फलं लभेत्॥२२॥
नग्नां परलतां पश्यन्नयुतं यस्तु साधकः।
प्रजपेत्स भवेच्छीघ्रं विद्याया वल्लभः स्वयम्॥२३॥
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनः कुण्ठितां गताः।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते॥२४॥

अथवा प्राज्ञ व्यक्ति मुक्तकेश (बालों को खोलकर) तथा सुसंयत होकर हविष्यान्न का भोजन करके १०००० जप द्वारा भी उक्त फल ही प्राप्त करता है। जो साधक नग्न परस्त्री को देखते-देखते १०००० जप करता है, वह शीघ्र ही विद्या का अधिपति हो जाता है। उसके दर्शनमात्र से विरोधी वादीगण की बुद्धि कुण्ठित हो जाती है एवं सभा में उसके मुख से गद्य-पद्यमयी वाणी निकलने लगती है।।२२-२४।।

तन्नाम्ना सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः।
तस्य वाक्परिचयाज्जड़ा भवन्ति वाग्मिनः॥२५॥

उसका नाम लेकर सुधीगण उसे प्रणाम करके हर्षित होते हैं। उसके वाक्यों से अर्थात् बातों से बहुत बोलने वाले भी जड़ (मूक-से) हो जाते हैं।।२५।।

विद्याकामेन होतव्यं पद्मैर्मधुसमन्वितैः।
धनकामेन होतव्यं तिलाज्यमधुसंयुतम्॥२६॥

बन्धूकपुष्पहोमेन दासञ्च कुरुते नृपम् ।
सर्पिर्लवणहोमेन तथाकर्षति कामिनीम् ॥२७॥

विद्या चाहने वाला मधुयुक्त कमलों से होम करे। धनकामी व्यक्ति घृत तथा मधु से लिपटे तिलों से होम करे। बन्धूकफूलों से होम करने वाला राजा को भी दास बना लेता है। घृतयुक्त नमक से होम द्वारा कामिनी स्त्री का आकर्षण होता है।।२६-२७।।

वकुलैर्होममात्रेण सौभाग्यं लभते नरः ।
मल्लिकाजातिपुन्नागकदम्बैः पुष्टिमाप्नुयात् ॥२८॥

मनुष्य बकुलपुष्प के होममात्र से सौभाग्य प्राप्त करता है। मल्लिका, चमेली, नागकेशर तथा कदम्ब के फूलों से होम करने पर पुष्टि मिलती है।।२८।।

क्षीराज्यतगरैर्होमान्महतीं कवितां लभेत् ।
चन्दनागुरुकाश्मीरकर्पूरहोमतः पुनः ।
मन्त्री नीलसरस्वत्याः सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥२९॥

नीलसरस्वतीत्युपलक्षणम्।

मन्त्रों का ज्ञाता साधक खीर-घृत से लिपटे तगरपुष्पों द्वारा होम करके महाकवि हो जाता है। चन्दन, अगुरु, कुङ्कुम तथा कर्पूर से होम करके श्रीनीलसरस्वती की अर्चना करने से अभीष्ट-सिद्धि होती है।।२९।।

यहाँ नीलसरस्वती पद अन्य देवताओं का उपलक्षण है। अर्थात् अन्य देवताओं का भी इसी घटकों से होम करना चाहिये।

कर्पूरहोमतो मन्त्री सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ।
सम्पूज्य मूलमन्त्रेण बिल्वपत्रैर्घृतान्वितैः ।
सहस्रं प्रत्यहं हूत्वा प्राप्नोति परमां गतिम् ॥३०॥

प्रतिदिनमिति मण्डलपर्यन्तम्।

मन्त्र को जानने वाला साधक कर्पूर से होम करके समस्त इच्छित वस्तु पा जाता है। मूल मन्त्र से पूजन करके घृत से लपेट बिल्वपत्र द्वारा प्रतिदिन (एक मण्डल = ४९ दिन) १००० होम करने से परमगति प्राप्त होती है।।३०।।

तथा—

घृताक्तमालतीपुष्पहोमाद् द्रुतकविर्भवेत् ॥३१॥

साधक इस प्रकार घृत से लिपटे मालती-पुष्पों से आहुति देकर शीघ्र ही कवि बन जाता है।।३१।।

अथ तारायाः प्रयोगः

यथा ताराप्रदीपे—

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् साधयेत्ततः।
विद्याकामेन होतव्यं पद्मैर्मधुरलोलितैः ॥३२॥
त्रिमध्वक्तैस्तिलैर्हुत्वा धनैर्धनपतिर्भवेत्।
बन्धूकपुष्पहोमेन दासवत् कुरुते नृपान् ॥३३॥

अब तारा का प्रयोग कहते हैं। ताराप्रदीप के आधार पर कहते हैं कि मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार मन्त्रसिद्ध होकर प्रयोग-साधन करे। विद्याकामी व्यक्ति मधु से लिपटे कमलों से हवन करे। त्रिमधु से लिपटे तिलों द्वारा हवन करने वाला धनाधीश हो जाता है। बन्धूकपुष्प से होम करने पर राजा भी दास के समान हो जाते हैं।।३२-३३।।

सर्पिर्लवणहोमेन सदाकर्षति कामिनीम्।
पुष्पैश्च वकुलैर्हुत्वा सौभाग्यं विपुलं लभेत् ॥३४॥
मल्लिकाजातिपुन्नागकदम्बैः पुष्टिमाप्नुयात्।
राजवृक्षस्य पुष्पेण विपुलाञ्च श्रियं लभेत् ॥३५॥
दूर्वाहोमेन दीर्घायुर्भवेन्मन्त्री निरामयः।
क्षीराक्ततगरैर्होमान्महतीं कवितां लभेत् ॥३६॥

घृतयुक्त लवण होम = कामिनी आकर्षण। बकुलपुष्प होम = विपुल सौभाग्य। मल्लिका, चमेली, नागकेशर, कदम्बपुष्प होम = पुष्टि-प्राप्ति। राजवृक्ष-पुष्प होम = विपुल श्री की प्राप्ति। दूर्वा होम = दीर्घायु, निरामय। क्षीरयुक्त तरगपुष्प होम = महाकवित्व-प्राप्ति।।३४-३६।।

चन्दनागुरुकाश्मीरकर्पूरैर्होमतः पुनः।
प्रत्येकद्रव्यहोमेन सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥३७॥
बिल्वपत्रसहस्रैस्तु यदि वर्षं दिने दिने।
परमां गतिमाप्नोति देवानामपि दुर्लभम्।
मालतीकुसुमैर्होमात् कवितां लभते ध्रुवम् ॥३८॥

चन्दन, अगुरु, कुङ्कुम तथा कपूर से होम करने पर सर्वसिद्धि मिलती है। इनमें से प्रत्येक द्रव्य का होम सभी सिद्धि देता है। यदि एक वर्ष-पर्यन्त प्रतिदिन एक हजार बेलपत्र से होम करे तब साधकं देवताओं को भी दुर्लभ गति पा सकता है। मालती-पुष्पों से किया गया हवन कवित्व-प्राप्ति कराता है।।३७-३८।।

अत्र काल्युक्तप्रकारोऽपि बोध्यः, द्वयोराचाराविशेषात्। अत्र यत्र यत्र

होमसंख्या नोक्ता तत्राऽयुतहोम:। यथा—

सर्वस्यैव तु होमस्य नियमोऽयुतसंख्यक:।।३९।।

काली तथा तारा के अनुष्ठान का होम अलग से विशेष रूप से नहीं कहा गया है। वह काली प्रकरणोक्त विधि से करना चाहिये। जहाँ-जहाँ होम की संख्या नहीं कही गयी है, वहाँ १०००० हवन करना चाहिये। जैसे कहते हैं कि सभी होम में १०००० संख्यक हवन करना चाहिये।।३९।।

तन्त्रान्तरे—

यत्र जापे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभि: ।
तत्रैव गणना प्रोक्ता गजान्तकसहस्रकम् ।।४०।।

तथा च अयुतम् अष्टोत्तरसहस्रं वा होम:। इति प्रयोगविधानं किञ्चिदुक्तम्। विस्तरस्त्वन्यत्र द्रष्टव्य: ।।४१।।

तन्त्रान्तर में कहते हैं कि जहाँ जप तथा होम की संख्या विद्वानों ने नहीं कही है, वहाँ दश सहस्र (गजान्तक) गणना माननी चाहिये। अत: अयुत (१००००) अथवा १००८ होम कर्त्तव्य है। इस प्रकार से प्रयोगों का विधान संक्षेप में कहा गया। विस्तार अन्य ग्रन्थों में देखना चाहिये।।४०-४१।।

अथ तर्पणम्

मत्स्यसूक्ते—

मधुना तर्पणं कुर्यात् सर्वकामप्रपूरकम् ।
मन्त्रसिद्धिकरं साक्षान्महापातकनाशनम् ।।४२।।

अब तर्पण कहा जा रहा है। मत्स्यसूक्त में कहा गया है कि मधु से तर्पण करे। यह समस्त कामनाओं को पूरा करने वाला होता है। साथ ही मन्त्र की सिद्धि देने वाला एवं महान् पातकों का नाशक होता है।।४२।।

नीलतन्त्रे—

कर्पूरमिश्रितैस्तोयैर्मासमात्रं हि तर्पयेत् ।
वशीकृत्य नृपान् सर्वान् भोगी स्याद्यावदायुषम् ।।४३।।

नीलतन्त्र में कहते हैं कि कपूर मिले जल से एक महीना तक लगातार तर्पण करे। इससे समस्त राजाओं को वश में करके जीवन-पर्यन्त इच्छित भोग मिलता है।।४३।।

घृतै: पूर्णायुष: सिद्ध्यै दुग्धैरारोग्यसिद्धये ।
अगुरुमिश्रितैस्तोयै: सर्वकाले सुखी भवेत् ।।४४।।

नारिकेलोदकैर्मिश्रैस्तोयैः सर्वार्थसिद्धये ।
मरिचं मिश्रितैस्तोयैस्तथा शत्रून् विनाशयेत् ॥४५॥

साधक पूर्णायु पाने के लिये घृत से एवं आरोग्य-प्राप्ति के लिये दूध से तर्पण करे। अगुरु मिले जल से तर्पण करके साधक सर्वदा सुखी होता है। सर्वार्थ सिद्धि के लिये नारिकेल जल तथा शुद्ध जल मिलाकर तर्पण करे। इसी प्रकार काली मिर्च मिले जल से तर्पण द्वारा शत्रु का नाश होता है।।४४-४५।।

कवलैरुष्णतोयैश्च शत्रुमुच्चाटयेत् क्षणात् ।
ज्वराविष्टो भवेत्तेन दुग्धसेकात् शमं नयेत् ॥४६॥

केवल उष्ण जल से तर्पण करने से शत्रु का क्षणमात्र में उच्चाटन होता है; साथ ही उस शत्रु को ज्वर भी हो जाता है। पुनः दूध से सेचन करने से उस ज्वर की शान्ति होती है।।४६।।

सिन्धुसारस्वते—

शताभिजप्तमात्रेण रोचना तिलकं नरः ।
कृत्वा पश्यति यं मन्त्री तं कुर्याद्दासवत्सुधीः ॥४७॥

सिन्धुसारस्वत ग्रन्थ में कहा गया है कि गोरोचन का तिलक करके १०० बार जप करने मात्र से मन्त्र को जानने वाला साधक जिसको भी देखता है, वह उसके वश में हो जाता है।।४७।।

फेत्कारीये—

उपचारविशेषेण राजपत्नीं वशं नयेत् ।
राजानं जपमात्रेण बलिना सकलं जगत् ॥४८॥

उपचारविशेषेण मद्यादिनेत्यधिकारित्वाद् बोध्यम्। जपमात्रेणेति पूजा बहिर्भाविनत्यर्थः॥४९॥

फेत्कारी तन्त्र में कहा गया है कि उपचारविशेष (मद्य आदि) द्वारा तर्पण राजपत्नी को वशीभूत करता है। जपमात्र से राजा वशीभूत हो जाते हैं। बलि द्वारा समस्त जगत् वश में होता है।

उपचार विशेष द्वारा = मद्यादि से। यह अधिकारीभेद से है अर्थात् मद्यादि उपचार सबके लिये नहीं है। जपमात्र का अर्थ है कि पूजा के बहिर्भूत जप से।।४८-४९।।

बलिद्रव्यन्तु मत्स्यसूक्ते—

रम्भा जाती बीजपूरं सुगन्धिपरिमिश्रितः ।
मिश्रीकृत्य बलिं दद्यादष्टम्याञ्च विशेषतः ॥५०॥

बलिद्रव्य के सम्बन्ध में मत्स्यसूक्त में कहा है कि सुगन्धिमिश्रित रम्भा, चमेली, बीजपूर को मिलाकर बलि प्रदान करे। विशेषतः अष्टमी को बलि देनी चाहिये।।५०।।

बलिमन्त्रस्तु—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य उग्रतारे ततः परम्।
विकटदंष्ट्र! मोहय पदद्वन्द्वं समुच्चरेत्।
मारय खादय शत्रून् पचद्वयं वदेत्ततः ॥५१॥

बलिमन्त्र कहते हैं—पहले ॐ कहकर 'उग्रतारे' कहे, तदनन्तर 'विकटदंष्ट्रे' कहे। तत्पश्चात् 'मोहय मोहय' कहकर 'मारय खादय शत्रून्' तथा 'पच पच' कहे।।५१।।

ये मां हिंसितुमुद्यतो योगिनीचक्रे तान् हारय हुं फट् स्वाहा। पराविद्यामाकर्षय क्रट क्रट कपाले गृह्ण गृह्ण बलिं स्वाहेति। अयं मन्त्रस्ताराविषये। काल्यादौ तु तत्पटलोक्तबलिमन्त्रो बोद्धव्यः ॥५२॥

'ये मां हिंसितुमुद्यतो योगिनीचक्रे तान् हारय हुं फट् स्वाहा। पराविद्यामाकर्षय ॐ क्रट क्रट कपाले गृह्ण गृह्ण बलिं स्वाहा' कहे। अब सब मिलाकर मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा (श्लोक ५१ तथा ५२ दोनों मिलाकर)—ये मां हिंसितुमुद्यतो योगिनीचक्रे तान् हारय हुं फट् स्वाहा, पराविद्यामाकर्षय क्रट क्रट कपाले गृह्ण गृह्ण बलिं स्वाहा। यह केवल तारा के ही लिये कहा गया है।।५२।।

अथ निग्रहोपायः, तत् मारणम्। फेत्कारीये—

नरास्थनि लिखेन्मन्त्रं क्षारयुक्तं हरिद्रया।
सहस्रं परिसञ्जप्य निशायां शनिवासरे।
निक्षिप्यते यस्य गृहे मृत्युस्तस्य द्विमासतः ॥५३॥
क्षेत्रे तु शस्यहानिः स्याज्जवहानिस्तुरङ्गमे।
धनहानिर्धनागारे ग्राममध्ये तु तत्क्षयः ॥५४॥

अब निग्रह का उपाय कहा जाता है। निग्रह = मारण। जैसा कि फेत्कारीतन्त्र में कहा गया है कि मनुष्य की हड्डी को क्षारयुक्त करके हल्दी से मन्त्र लिखकर शनिवार की रात्रि में एक सहस्र जप करके जिसके गृह में फेंका जायेगा, उसकी दो माह में मृत्यु हो जायेगी। खेत में फेंकने से फसल की हानि हो जायेगी। खजाने में फेंकने से धनहानि तथा गाँव में फेंकने से ग्राम का क्षय हो जाता है।।५३-५४।।

नरास्थनि—मृत व्यक्ति की अस्थि। मन्त्रं स्वीयम्—अपने इष्टदेव का मन्त्र। क्षारन्तु—श्यानविट् युक्तं विट्लवणं—बाज के विष्ठा से युक्त विट् लवण।

लिखेन् मन्त्रमिति मन्त्रं लिखित्वा ह्ल्लेखाधोगतरेफमध्ये यस्य यो मन्त्रस्तदीयलज्जाबीजस्थरेफमध्ये अमुकं मारय मारयेत्यादि साध्यसहित-मित्यर्थः। अथवा साध्यं लिखित्वा तदन्ते मन्त्रं लिखेत्। सहस्रं परिसञ्जप्येति। अमुकं मारय इत्यन्तस्य मन्त्रस्य जपः। विद्वेषे तु अमुकामुकयोर्द्वेषं कुरु इत्यस्यान्ते मन्त्रमुच्चार्य सहस्रं जपेदिति ॥५५॥

मन्त्र लिखकर ह्ल्लेखा (ह्रीं) रेफ के मध्य अर्थात् जो मन्त्र है, उसके लज्जाबीज के साथ 'अमुकं मारय मारय' इत्यादि साध्य-सहित लिखना चाहिये अथवा साध्य का नाम लिखकर उसके पश्चात् मन्त्र लिखे। सहस्र बार जपना चाहिये। इस प्रकार 'अमुकं मारय मारय' इसके अनन्तर मन्त्र का जप करे। विद्वेषण में 'अमुकामुकयोर्द्वेषं कुरु' इसके अन्त में मूल मन्त्र जपे।।५५।।

अथाकर्षणम्

भूतडामरे—

श्रीबीजं मन्मथं बीजं लज्जाबीजं समुद्धरेत्।
प्रथमं प्रणवं दत्त्वा त्रिपुरादेवि! पदं ततः ॥५६॥
अमुकीति पदद्वन्द्वमाकर्षय पदद्वयम्।
स्वाहान्तं मन्त्रमुद्धृत्य जपेद् दशसहस्रकम् ॥५७॥

अब आकर्षण कहा जाता है। भूतडामर तन्त्र के अनुसार कहते हैं—श्रीबीज (श्रीं), मन्मथबीज (क्लीं), लज्जाबीज (ह्रीं) का उद्धार करे। प्रथमतः प्रणव 'ॐ' लगाये तदनन्तर 'त्रिपुरादेवि' कहे, तत्पश्चात् 'अमुकीं अमुकीं' तथा 'आकर्षय आकर्षय' कहकर अन्त में स्वाहा कहे। अब मन्त्रोद्धार होता है—ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं त्रिपुरादेवि अमुकीमाकर्षय अमुकीमाकर्षय स्वाहा। यहाँ अमुकी के स्थान पर जिसका आकर्षण करना है, उसका नाम कहना चाहिये।।५६-५७।।

षट्कोणञ्च समालिख्य रक्तचन्दनकुङ्कुमैः।
षडङ्गं कारयेन्मन्त्री लज्जाबीजसमन्वितम्।
षडदीर्घभाक् स्वरेणैव नादबिन्दुविभूषितम् ॥५८॥

अब रक्तचन्दन कुङ्कुम से एक षट्कोण बनाकर उसमें ह्रीं युक्त छः दीर्घ स्वर के साथ नाद-बिन्दुविभूषित षड़ङ्ग लगाये।।५८।।

रक्तपुष्पाक्षतैर्धूपैर्नैवेद्यैः परिपूज्यताम्।
भावयेन् चेतसा देवीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ॥५९॥

बालार्ककिरणप्रख्यां सिन्दूरारुणविग्रहाम्।
पद्मञ्च दक्षिणे पाणौ जपमालाञ्च वामके ॥६०॥
मन्त्रस्यास्य प्रसादेन रम्भामपि तथोर्वशीम्।
आकर्षयेन्न सन्देहः किं पुनर्मानुषीमिह ॥६१॥

अमुकीति आकर्षयेति सम्बन्धां द्वितीयान्तामित्यर्थः।

रक्तपुष्प, अक्षत, धूप तथा नैवेद्य द्वारा त्रिनेत्रा, चन्द्रशेखरा, बालार्क-किरण तुल्या, सिन्दूर के समान अरुण वर्ण वाली, दक्षिण हाथ में कमल तथा बाँयें हाथ में वरमाला-धारिणी देवी की मन ही मन भावना करते हुये सम्यक् रूप से पूजन करे।

इस मन्त्र की कृपा से रम्भा तथा उर्वशी का भी आकर्षण हो सकता है। यह बात निःसंदिग्ध है। फिर इस लोक की स्त्री की तो बात ही क्या है?।।५९-६१।।

अमुकी पद का आकर्षय पद से सम्बन्ध है और वह द्वितीया विभक्त्यन्त है अर्थात् अमुकीं आकर्षय अमुकीं आकर्षय।

अथवा—

भूर्जपत्रे समालिख्य कुङ्कुमालक्तवारिणा।
काश्मीरागुरुकस्तूरीरोचनामिलितेन तु।
अनामारक्तमिश्रेण कामलाक्षीमनुं ततः ॥६२॥
ॐ ह्रीं श्रीं कामलाक्षी अमुकीं आकर्षय आकर्षय हुं फट्।
इमं मन्त्रं जपेदादौ सहस्रैकं ततः पुनः।
तद्भूर्जपत्रमादाय गुलिकां कारयेत् सुधीः॥६३॥

अब अन्य विधि बताते हैं कि कुङ्कुम, अगुरु, कस्तूरी में अनामिका का रक्त, आलता, गोरोचन मिलाकर भोजपत्र पर कामलाक्षी मन्त्र इस प्रकार लिखे—ॐ ह्रीं श्रीं कामलाक्षि अमुकीं आकर्षय आकर्षय हुं फट्। इसका एक हजार जप करके उस भोजपत्र की गुटिका या गोली बनाये।।६२-६३।।

तेनैव साध्यपादोत्थमृत्तिकापङ्कवेष्टितम्।
शोषितं तेजसा भानोर्वेष्टयेत्त्रिकटुकैः पुनः ॥६४॥
प्रतिमां स्त्रीनिभां कृत्वा तस्याः क्षिपेत्तथोदरे।
गुलिकां पातयेत्पात्रे प्रतिमां साध्यरूपिणीम् ॥६५॥
तदाशाभिमुखो भूत्वा निर्जने निशि साधकः।
यावद् गच्छति चित्तञ्च तावद्रूपं जपेन्मनूम् ॥६६॥

इसी मन्त्र द्वारा साध्य के पैर के नीचे की मिट्टी के पंक से (उस मिट्टी को पानी से सानकर) उसमें मन्त्रयुक्त भोजपत्र को (गोली की तरह) लपेट कर उसे सूर्य की धूप में सुखाये। पुनः उसे त्रिकटु (सोंठ, पिप्पली तथा काली मिर्च) से आवेष्टित करे।

अब साध्य स्त्री के समान एक (मिट्टी की) प्रतिमा बनाकर उस गोली को (भोजपत्र पर मिट्टी लपेट कर जो गोली बनी है) उस प्रतिमा में रख देना चाहिये। गोली तथा उस प्रतिमा को एक पात्र में स्थापित करे। अब साधक रात्रि में एकान्त में उस प्रतिमा की ओर मुख करके उस प्रतिमा के रूप का चिन्तन एकाग्र मन से करे और जब तक साध्य स्त्री नहीं आ जाती तब तक मन्त्र-जप करता रहे।।६४-६६।।

अथ वशीकरणम्

तत्र चामुण्डामन्त्रः—ॐ चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानयामुकं स्वाहा ॥६७॥

अब वशीकरणार्थ चामुण्डा मन्त्र कहते हैं। चामुण्डा मन्त्र है—ॐ चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानय अमुकं स्वाहा।।६७।।

ध्यानम्—

दंष्ट्राकोटिविशङ्कटा सुवदना सान्द्रान्धकारोत्थिता
खट्वाङ्गानि निगूढ़दक्षिणकरा वामे च पाशं शिरः।
श्यामा पिङ्गलमूर्द्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृता
चामुण्डा शववाहिनी जपविधौ ध्येया सदा साधकैः ॥६८॥

इति ध्यात्वा लक्षं जप्त्वा किंशुकपुष्पैर्दशांशं जहुयात्।

ध्यान—करोड़ों दाँतों के कारण विशाल मुख वाली, सुवदना, घनघोर अन्धकार से निकलती हुई, खड्वाङ्ग तथा असि से दाहिने दोनों हाथ शोभित है जिनका और जिनके बाँयें दोनों हाथों में पाश तथा मुण्ड है, ऐसी श्यामवर्णा, पिङ्गल केशों वाली, भयङ्करी, व्याघ्रचर्म से आवृता, शव पर आरूढ़ चामुण्डा साधकों द्वारा साधना में सर्वदा ध्यान करने योग्य हैं। इस प्रकार ध्यान करते हुये एक लाख जप करके किंशुकपुष्पों से १०००० आहुति प्रदान करे।।६८।।

अथ विद्वेषणम्

द्वेषे तु विलिखेन्मन्त्रं प्रेतकर्पटके सुधीः।
द्वेष्यद्वेषकयोर्नाम्ना तयोर्द्वेषो महान् भवेत् ॥६९॥

अब विद्वेषण कहा जाता है। सुधी साधक विद्वेषण में प्रेत (मृतक) की अस्थि पर

द्वेष्य तथा द्वेषक (जिससे जिसका विद्वेषण करना है, उनका नाम) का नाम मन्त्र के साथ लिखे तो उनमें महाद्वेष हो जायेगा।।६९।।

विलेखेन्मन्त्रमिति। मन्त्रं लिखित्वा तदीयमायाबीजाधोगतरेफमध्ये अमुकामुकयोर्महाद्वेषं कुरु इति मारणोक्तद्रव्येण लिखेत्। अथवा अमुकामुकयोर्द्वेषं कुरु इति साध्यं लिखित्वा तदन्ते मन्त्रं लिखेत्। एवं अमुकामुकयोर्द्वेषं कुरु इत्यस्यान्ते मन्त्रमुच्चार्य सहस्रं जपेत्। कर्पटकमस्थि, पूर्वोक्तवाक्यत्वात् ।।७०।।

'विलिखेन् मन्त्रं' इसका अर्थ है कि मन्त्र लिखकर उस मन्त्र के अन्तर्गत 'ह्रीं' के अधोगत स्थान पर (आगे) 'अमुकामुकायोर्द्वेषं कुरु' यह साध्य लिखकर (साध्य का नाम लिखकर) अन्त में मन्त्र लिखे। कर्पटक = अस्थि।।७०।।

तन्त्रे—

अन्योन्यसमसंरम्भात् रोषितौ समरे वयौ।
तदीयनखरोड्डीनधूलिमादाय साधकः ।।७१।।
धूलिना तेन विद्वेषस्ताडनादभिजायते।
परस्परं रिपोर्वैरं मित्रेण सह निश्चितम् ।।७२।।

वयौ दक्षिणौ। तयोर्नखरोड्डीनधूलिभिस्ताडनाद् विद्वेषो भवति। ताड़ितयादिति वाक्यार्थः। अत्र वयःशब्दो अदन्त एव निर्दिष्टः ।।७३।।

तन्त्र में कहते हैं कि दो पक्षी परस्पर युद्ध में क्रोधित होकर नख से धूल उड़ाते हैं। साधक ऐसी धूल को लेकर (जहाँ से धूल उड़ाते हों) उस धूल को जिसका विद्वेषण करना है, उस पर तथा जिससे विद्वेषण कराना है, उन दोनों पर फेंकने से दोनों में परस्पर विद्वेष हो जाता है। यह निश्चित है।

वय-पक्षी। उनके नख द्वारा खोदी गई धूल के आघात से विद्वेषण होता है। धूल द्वारा ताड़ित व्यक्तियों में विद्वेषण होता है (परस्परत विद्वेष हो जाता है)। यहाँ 'वय' शब्द अकारान्त निर्दिष्ट है।।७१-७३।।

तथा—

महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रेण समालिखेत्।
ययोर्नाम तयोः शीघ्रं विद्वेषश्च परस्परम् ।।७४।।
रक्तेन महिषाश्वेन श्मशाने वस्त्रके लिखेत्।
यस्य नाम भवेत्तस्य विद्वेषश्च परस्परम् ।।७५।।

और भी कहा गया है कि भैंसा तथा अश्व का मल गोमूत्र द्वारा मिलाकर दो लोगों का नाम सम्यक् रूप से लिखने से उनमें परस्पर शीघ्र विद्वेष हो जाता है। महिष तथा अश्व के रक्त से श्मशान के कफन पर जिनका नाम लिखा जायेगा, वे परस्पर द्वेष करने लगेंगे।।७४-७५।।

अथवा षट्कोणचक्रमध्ये ॐ नमो महाभैरवाय श्मशानवासिने अमुकामुकयोर्विद्वेषं कुरु कुरु हुं फट्। एतन्मन्त्रलिखने विद्वेषो भवति ।।७६।।

अथवा षट्कोण चक्र में 'ॐ नमो महाभैरवाय श्मशानवासिने अमुकामुकयोर्विद्वेषं कुरु कुरु हुं फट्' यह अंकित करे तो इससे विद्वेषण हो जाता है, यह निश्चित है। 'अमुकामुकयोः' के स्थान पर दोनों पक्ष का नाम लिखना चाहिये।।७६।।

तत्रैव—

अन्य योगमहं वक्ष्ये दुर्लभे वसुधातले।
ज्ञानमात्रेण शत्रूणां विद्वेषो जायते ध्रुवम् ।।७७।।

अब पृथ्वी पर दुर्लभ अन्य विद्वेषण-प्रयोग को कहा जा रहा है, जिसके जानने-मात्र से शत्रुगण के मध्य आपस में विद्वेष हो जाता है।।७७।।

ॐ नमो भगवति! श्मशानकालिके अमुकं विद्वेषय विद्वेषय हन हन पच पच मथ मथ हुं फट् स्वाहा ।।७८।।

उक्त प्रयोग का मन्त्र 'ॐ नमो' से लगाकर 'फट् स्वाहा' तक इसी श्लोक ७८ में अंकित है।।७८।।

अमुना मन्त्रराजेन होमयेत् प्रयतः सुधीः।
वह्निकुण्डे निम्बपत्रेण कटुतैलान्वितेन च ।।७९।।
प्रज्वाल्य खादिरं वह्निं श्मशानजं ततः पुनः।
दशसाहस्रसंयुक्तं तिलयवाक्षतान्वितम् ।।८०।।
भावयन् कालिकां देवीमिन्द्रनीलसमप्रभाम्।
व्योमनीलां महाचण्डां सुरासुरविमर्दिनीम् ।।८१।।
त्रिलोचनां महारावां सर्वाभरणभूषिताम्।
कपालकर्त्तृकां हस्तां चन्द्रसूर्योपरि स्थिताम् ।।८२।।
शवजानुगतां चैव प्रेतभैरववेष्टिताम्।
वसन्तीं पितृकान्तारे सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।
होमयेद् विविधैः पुष्पैर्बलिछागोपहारकैः ।।८३।।

पूजयित्वा महेशानीं भक्तियुक्तेन चेतसा।
तद्भस्म च समादाय कारयेदभिमन्त्रितम् ॥८४॥

अभिमन्त्रितमिति अष्टोत्तरशतेनेत्यर्थः।

सुधी साधक संयत होकर त्रिकोण कुण्ड में इसी मन्त्रराज से कटु तैल में नीम का पत्ता लपेटकर उसकी आहुति इसी मन्त्र से प्रदान करे। सुधी साधक संयत होकर श्मशान में उगे खदिर काष्ठ की लकड़ी से अग्नि जलाकर तिल, अक्षत तथा जौ मिश्रित करके दश सहस्र नीम के पत्तों को उसमें लपेट कर मन्त्र-जप करते हुये आहुति प्रदान करे तथा उस समय इन्द्रनील के तुल्य प्रभायुता, आकाश के समान नीलवर्णा, महाचण्डा, सुरासुर- (देवदानव)-विमर्दिनी, त्रिलोचना, घोर गर्जन करने वाली, समस्त आभरण-भूषिता, कपाल तथा कैंची से युक्त बाहुद्वय वाली, चन्द्र तथा सूर्य के ऊपर अवस्थिता, शव के जानुओं पर खड़ी, प्रेत एवं भैरवगण से घिरी हुई, श्मशानवासिनी, सर्वसिद्धि देने वाली देवी की भावना करता रहे। विविध पुष्प, बलि तथा बकरा के उपहार द्वारा भक्ति से परिपूर्ण चित्त से महेशानी की पूजा करके उस होम के भस्म को एक सौ आठ मन्त्र-जप से अभिमन्त्रित करे।।७९-८४।।

भस्मना तेन यं हन्याद् विद्वेषस्तद्भवेन्नृणाम्।
वह्निः शीतलतां याति पतेद् भूमौ यदा रविः ॥८५॥
यदा शुष्यति पाथोधिश्चन्द्रमा पतते यदि।
तदा मिथ्या भवेद् देवि! योगराजः सुदुर्लभः ॥८६॥

उस भस्म द्वारा जिसे ताड़ित किया जायेगा (जिस पर भस्म फेंका जायेगा), उससे उनमें विद्वेष होगा (दोनों पक्ष पर भस्म छोड़ना होगा)। अग्नि शीतल हो सकती है, सूर्य पृथ्वी पर गिर सकता है, समुद्र सूख सकता है, चन्द्रमा भी पृथ्वी पर गिर सकता है अर्थात् समस्त अनहोनी हो सकती है परन्तु यह सुदुर्लभ प्रयोग कभी भी झूठ नहीं हो सकता।।८५-८६।।

अथवा—

षट्कोणचक्रराजन्तु शत्रूणां नाम टङ्कितम्।
पूर्वद्रव्येण विद्वेषं कारयेदथ साधकः ॥८७॥

ॐ ह्रीं विद्वेषिणि! अमुकामुकयोः परस्परं विद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा।

चक्रबाह्ये लिखेदेतं मन्त्रं पूर्वोक्तवस्तुभिः।
परस्परं भवेद् द्वेषो योगोऽयं कुब्जिकामते ॥८८॥

अथवा षट्कोण चक्रराज को महिष तथा अश्व का रक्त मिलाकर श्मशान के वस्त्र पर बना कर उसपर शत्रु का नाम लिखना चाहिये। इससे विद्वेषण होता है। मन्त्र है— ॐ ह्रीं विद्वेषिणि! अमुकामुकयोः परस्परं विद्वेषणं कुरु कुरु स्वाहा। जो षट्कोण ऊपर कहा गया है, उसके बाहर यह मन्त्र लिखे। यह कुब्जिका में कहा गया है।।८७-८८।।

तथा च षट्कोणचक्रराजं लिखित्वा मध्ये शत्रुनाम संलिख्य बहिरिमं मन्त्रं लिखेत्। लिखनञ्च महिषाश्वरक्तेन तयोः पुरीषेण वेति वाक्यार्थः ॥८९॥

षट्कोण चक्रराज बनाकर मध्य में शत्रु का नाम लिखकर चक्र के बाहर ऊपर अंकित मन्त्र लिखे। महिष एवं अश्व के रक्त से अथवा उन दोनों के मल से यन्त्र लिखना होगा। यही श्लोक का तात्पर्य है।।८९।।

अथोच्चाटनम्

वीरतन्त्रे—

श्मशानाङ्गारमादाय मङ्गले वासरे निशि।
कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य बध्नीयाद्रक्ततन्तुना ॥९०॥
शताभिमन्त्रितं कृत्वा निक्षिपेद्वैरिवेश्मनि ।
सप्ताहाभ्यन्तरे तस्य उच्चाटनमिदं महत् ॥९१॥

शताभिमन्त्रितमिति स्वीयमन्त्रेणेत्यर्थः।

अब उच्चाटन कहा जाता है। वीरतन्त्र के अनुसार मंगल की रात्रि में श्मशान का अंगार (जलता हुआ) लाकर काले वस्त्र से लपेटकर उसे रक्ततन्तु (लाल धागे) से बांधे। उसे १०० बार अभिमन्त्रित करके शत्रु के घर में छोड़ने से सात दिनों में उसका महान् उच्चाटन हो जाता है।।९०-९१।।

तन्त्रान्तरे—

निम्बपत्रे लिखेन्नाम महिषाश्वपुरीषकैः ।
काकपक्षाख्यलेखन्या लेखनीयमनन्तरम् ॥९२॥

कौवे के पंख की लेखनी से महिष तथा अश्व के मल के द्वारा नीम के पत्ते पर उस व्यक्ति का नाम लिखे, जिसका उच्चाटन करना है। तदनन्तर यन्त्र लिखे।।९२।।

मन्त्र—

ॐ नमः काकतुण्डि धवलामुखि अमुकमुच्चाटय उच्चाटय हुं फट्।

एतन्मन्त्रं समभ्यर्च्य लिखित्वा पूर्ववस्तुभिः ।
निम्बवृक्षस्थितं सर्वं काकालयं हुनेदथ ॥९३॥

कौवे के पंख की लेखनी से मूलोक्त मन्त्र अश्व तथा महिष के मल से लिखे। उसकी अर्चना करके नीम के वृक्ष पर स्थित कौवे के घोंसले से (घोंसला लाकर) हवन करे।।९३।।

श्मशानवह्निमानीय धुस्तूरकाष्ठदीपितम्।
वह्निं कृत्वा महातैलैरथवा कटुवस्तुभिः।
पूर्वोक्तमनुना तस्य पत्रं राजी कटुप्लुतम्।।९४।।

श्मशान की अग्नि लाकर धतूरा की लकड़ी को उस अग्नि से जलाये। ऊपर लिखे मन्त्र से नरतैल (मनुष्य की चर्बी के तैल) द्वारा अथवा त्रिकटु से हवन करे। अथवा राई तथा त्रिकटु-मिश्रित धतूरा के पत्ते द्वारा होम करे।।९४।।

सम्पूज्य धवलामुखीं पञ्चोपचारपूजया।
तद्भस्म प्रक्षिपेच्छत्रोर्मन्दिरोपरि मन्त्रवित्।
ध्यानयुक्तेन मनसा शत्रोरुच्चाटनं भवेत्।।९५।।

मन्त्रवित् साधक ध्यानयुक्त चित्त से धवलामुखी देवी की पञ्चोपचार से पूजा करके उस भस्म का (जो हवन से बनी है) शत्रु के घर के ऊपर निक्षेप करे। इससे शत्रु का उच्चाटन होता है।।९५।।

धूम्रवर्णां महादेवीं त्रिनेत्रां शशिशेखराम्।
जटाजूटसमायुक्तां व्याघ्रचर्मपरिच्छदाम्।
कृषाङ्गीमस्थिमालाढ्यां कर्त्रिकाढ्यकराम्बुजाम्।।९६।।

कोटराक्षीमुदग्राञ्च पातालसन्निभोदराम्।
एवं विभाव्य तां देवीमभ्यर्च्योच्चाटनं चरेत्।।९७।।

धूम्रवर्णा, त्रिनेत्रा, शशिशेखरा, जटाजूट-मण्डिता, व्याघ्रचर्म पहनने वाली, कृशांगी, अस्थिमाला-युक्ता, करकमलों में कैंची धारण करने वाली, कोटराक्षी, अत्युन्नता, पातालतुल्य (भीतर की ओर धँसे) उदर वाली महादेवी के इस रूप का ध्यान करने से शत्रु का उच्चाटन होता है।।९६-९७।।

कोटराक्षी = धँसी आँखें, अत्युन्नता = अत्यन्त लम्बी।

महातैलं नरतैलम्। राजीकटुप्लुतमिति राईसर्षपतैलाक्तमित्यर्थः।

महातैल—नरतेल। राजीकटुप्लुतम्—राई सरसों तैल से आप्लुत।

अथवा—

सौरारयोर्दिने ग्राह्यं नरास्थिचतुरङ्गुलम्।

निशारसेन संलिख्य प्रधानभवने क्षिपेत्।
सप्ताहाभ्यन्तरे शत्रोरुच्चाटनकरं भवेत्॥९८॥

मन्त्रश्च—हुं अमुकस्य उच्चाटनं कुरु कुरु स्वाहा। हुं अमुकं हन हन स्वाहा।

अब प्रकारान्तर से उच्चाटन के सम्बन्ध में कहते हैं कि शनि अथवा मंगल के दिन चार अंगुल की मनुष्य की हड्डी लाकर उस पर हल्दी के रस से मन्त्र लिखकर उसे शत्रु के घर में फेंके तो सप्ताह में ही शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। मन्त्र है—हुं अमुकस्य उच्चाटनं कुरु कुरु स्वाहा। हुं अमुकं हन हन स्वाहा।।९८।।

अथ स्तम्भनम्

रिपोर्मलं वृश्चिकञ्च खनित्वा भुवि निक्षिपेत्।
म्रियते मलरोधेन उद्धृते च सुखावहम्॥९९॥

मन्त्रस्तु–स्तम्भिनि अमुकस्य मलं स्तम्भय स्तम्भय हुं फट्।

इति स्तम्भनम्

अब स्तम्भन कहते हैं। भूमि खोदकर उसमें शत्रु का मल तथा बिच्छू को मन्त्र पढ़कर गाड़ दे। इससे शत्रु को मलरोध हो जाता है और वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। जब उसे खोदकर निकाल दिया जायेगा तब शत्रु सुखी हो जायेगा। मन्त्र है—स्तम्भिनि अमुकस्य मलं स्तम्भय स्तम्भय हुं फट्।।९९।।

अथाभिचारः

तत्र महानवम्यां शत्रुबलिर्यथा—ॐ विरुद्धरूपिणि चण्डिके वैरिणममुकं देहि देहि स्वाहेति खड्गमभिमन्त्र्य खड्गमन्त्रांश्च पठित्वा खड्गं सम्पूज्य छागादिकममुकोऽसीति वैरिनाम्नाभिमन्त्र्य रक्तसूत्रेण त्रिधा मुखं बद्ध्वा वैरिनाम्ना प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा अं अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणं विनाशय महादेवि! स्फें स्फें खादय खादय। इति पठित्वा बलिशिरसि पुष्पं दत्त्वा बलिमन्त्रान् पठित्वा बलिं सम्पूज्य ॐ अद्याश्विने मासीत्यादि महानवम्यां तिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकशत्रुनाशाय इमं छागं महिषं वा अमुकदैवतं भगवत्यै दुर्गायै सम्प्रददे इत्युत्सृज्य आं हुं फडिति छित्वा मूलमन्त्रं पठित्वा एतद्रुधिरं ॐ दुर्गायै नमः इति रक्तं शिरश्च दत्त्वा अष्टाङ्गमांसैर्मूलमन्त्रेण होमं कुर्यादिति॥१॥

अब अभिचार कहा जाता है। अभिचार में महानवमी को शत्रुबलि प्रदान करे।

जैसे—'ॐ विरुद्धरूपिणि! चण्डिके! वैरिणममुकं देहि देहि स्वाहा। इस मन्त्र से खड्ग को अभिमन्त्रित करके खड्गमन्त्रों का पाठ करके खड्ग का पूजन करे। अब छागप्रभृति (पशु) को अपने शत्रु का नाम लेकर कहे—अमुकोऽसि (अमुक के स्थान पर शत्रु का नाम लगाये)। पशु को वैरी के नाम से अभिमन्त्रित करके लाल धागे से उसका मुँह तीन बार बांधकर उस पशु में वैरी के नाम की प्राणप्रतिष्ठा करे। अब 'ॐ अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणं विनाशय महादेवि! स्फें स्फें खादय खादय' कहकर बलि पशु के मस्तक पर पुष्प चढ़ाकर बलि के मन्त्रों को पढ़कर बलि की पूजा करनी चाहिये। अब 'ॐ अद्याश्विने मासीत्यादि महानवम्यां तिथौ अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा अमुक-शत्रुनाशाय इमं छागं महिषं वा अमुकदैवतं भगवत्यै दुर्गायै सम्प्रददे' यह कहकर बलि का उत्सर्ग करके 'आं हुं फट्' मन्त्र से उसका खड्ग से छेदन करके यह कहे—'एतद् रुधिरं ॐ दुर्गायै नमः'। तदनन्तर रक्त और मस्तक देकर (अर्पित कर) बलि के अष्टाङ्ग के मांस से मूल मन्त्र पढ़ते हुये होम करे।।१।।

भूतडामरे—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चासाध्यं येन सिध्यति।
मारणं ब्रह्ममुख्यानां भूतप्रलयकारकम्।।२।।
प्रणवं हनयुग्माढ्यं सर्वं मारय मारय।
वज्रज्वालने हुं चास्त्रयोगान्मन्त्रः सुरान्तकः।
त्रिसहस्रस्य जापेन वज्रज्वालाकुलादिशः।।३।।

भूतडामर तन्त्र में कहते हैं कि जिसके द्वारा असाध्य भी साधित हो जाता है, उसे कहता हूँ। यह ब्रह्मा आदि मुख्य देवों का मारण-कारक तथा भूतसमूह के लिये प्रलयकारक है। प्रणव तथा हनयुग्म-युक्त (ॐ हन हन) सर्वं अमुकं (अमुक के स्थान पर साध्य का नाम ले) मारय मारय वज्रज्वालने हुं कहे तथा अस्त्र लगाये अर्थात् फट् कहे। यह देव-विनाशक मन्त्र है।।२-३।।

सर्वमित्यत्र तत्तनाम देयम्। तेन 'ॐ हन हन अमुकं मारय मारय वज्रज्वालने हुं फट्' इति मन्त्रः।।४।।

सर्वत्र इन स्थान पर वह-वह नाम लगाये। जहाँ 'अमुक' लिखा है, वहाँ साध्य का नाम लगाये। मन्त्र है—ॐ हन हन अमुकं मारय मारय वज्रज्वालने हुं फट्।।४।।

अत्र प्रतिकारस्तत्रैव—

तारं वज्रमुखे प्रोक्त्वा शरयुग्मास्त्रमीरितम्।
मृतसञ्जीवनी विद्या मृतप्राणप्रदायिनी।
भूतानां दुरितध्वंसो भवेदस्य प्रभावतः।।५।।

तेन ॐ वज्रमुखे शर शर फट्।

ॐ तथा वज्रमुखे कहकर शरयुग्म (शर-शर) तथा अस्त्र (फट्) कहे। यह मृत-संजीवनी विद्या मृतक में भी प्राण का सञ्चार कर देती है और इससे भूतगण दूर से ही भस्म हो जाते हैं। मन्त्र है—ॐ वज्रमुखे शर शर फट्।।५।।

अथवा—

पञ्चरश्मिं समुद्धृत्य संघट्टेति द्विधापदम्।
मृतानिति पदं सञ्जीवापयेशवधूस्ततः।
अस्मिन् भावितमात्रेण पुनर्जीवन्ति मूर्च्छिताः ।।६।।

तेन 'ॐ संघट्ट संघट्ट मृतान् सञ्जीवापय ह्रीं' इति मन्त्रः।

अथवा अन्य प्रकार का मन्त्र कहते हैं—पञ्चरश्मि (ॐ) का उद्धार करके (लगाकर) 'संघट्ट' पद को दो बार कहकर 'मृतान्' तथा 'सञ्जीवापय' कहकर ईशवधु (ह्रीं) लगाये। इसकी भावना-मात्र से मूर्च्छित व्यक्ति भी पुनर्जीवन प्राप्त करता है। यह मन्त्र है—ॐ संघट्ट संघट्ट मृतान् संजीवापय ह्रीं।।६।।

अथ षट्कर्मलक्षणम्

शारदायाम्—

अथाभिध्यास्ये तन्त्रेऽस्मिन् सम्यक् षट्कर्मलक्षणम्।
सर्वतन्त्रानुसारेण प्रयोगफलसिद्धिदम् ।।७।।
शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने ततः।
मारणान्तानि संशन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः ।।८।।

अब षट्कर्म का लक्षण कहा जाता है। शारदातिलक में कहा है कि अब समस्त तन्त्रों के आधार पर सम्यक् प्रयोग से फलसिद्धि देने वाले षट्कर्म को कहा जा रहा है।

शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण कर्म को मनीषीगण षट्कर्म कहते हैं।।७-८।।

रोगकृत्याग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरितः।
वश्यं जनानां सर्वेषां विधेयत्वमुदीरितम् ।।९।।

रोग, कृत्या-प्रयोग एवं ग्रहादि पीड़ा-निवृत्ति को शान्ति कहते हैं। समस्त लोकों में इच्छित व्यक्ति से आदेश वचन प्रतिपालन कराने को वश्य कहा जाता है।।९।।

प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं तदुदाहृतम्।
स्निग्धानां द्वेषजननं मिथो विद्वेषणं मतम् ।।१०।।

मनुष्य, जल, शुक्र (वीर्य), खड्ग, सेना, प्रतिवादी का वचन, वायु-प्रभृति की प्रवृत्ति के रोध को स्तम्भन कहा गया है। परस्परतः स्निग्ध वचन तथा स्नेह करने वालों में आपसी विरोध उत्पन्न करना विद्वेषण कर्म कहा जाता है।।१०।।

उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रमणं परिकीर्त्तितम्।
प्राणिनां प्राणहरणं मारणं तदुदाहृतम् ॥११॥
स्वदेवतादिक्कालादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत्।
रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा काली यथाक्रमात् ॥१२॥
षट्कर्म देवता प्रोक्ताः कर्मादौ ताः प्रपूजयेत्।
ईशचन्द्रेन्द्रनिर्ऋतिवाय्वग्नीनां दिशे मतः ॥१३॥

अपने गृह, ग्राम, नगरादि से अन्य स्थान पर (मन्त्रप्रयोग द्वारा) स्वस्थान से उच्चाटन करके भेजना ही उच्चाटन है। प्राणियों के प्राण का हरण करना मारण कहा गया है। अपने देवता, आसन, मुद्राप्रभृति तथा कालप्रभृति जानकर इन कर्मों का साधन करना चाहिये। रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, दुर्गा तथा काली को यथाक्रम से इनका देवता (शान्ति की देवता रति, वश्य की वाणी, स्तम्भन की रमा, विद्वेष की ज्येष्ठा, उच्चाटन की दुर्गा तथा मारण की देवता काली) कहा गया है। कर्म के आरम्भ में जो कर्म कर रहे हों, उस कर्म के उपरोक्त देवताओं में से उस कर्मदेवता का पूजन करे। षट्कर्म के हेतु ईशान, इन्द्र, चन्द्र, नैर्ऋत, वायु, अग्निकोण दिशा प्रशस्त फल देती है। (इन्द्र = पूर्व, चन्द्र = पश्चिम)।।११-१३।।

सूर्योदयं समारभ्य घटिकादशकं क्रमात्।
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने।
वसन्तग्रीष्मवर्षाख्यशरद्धेमन्तशैशिराः ॥१४॥

प्रतिदिन अहोरात्र के बीच सूर्योदय से प्रारम्भ करके १० घटिका-पर्यन्त काल में क्रमशः वसन्तादि छः ऋतु एक ही दिन में होते हैं। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त तथा शिखिर—ये छः ऋतु कहे गये हैं।।१४।।

यद्वा—

अर्द्धरात्रं शरत्कालो हेमन्तश्च प्रभातकम्।
पूर्वाह्णे च वसन्तः स्यान्मध्याह्ने ग्रीष्म एव च।
प्रावृड्रूपोऽपराह्णः स्यात्प्रदोषे शिशिरः स्मृतः ॥१५॥

अथवा अर्द्धरात्रि में शरद्, प्रभात में हेमन्त, पूर्वाह्न में वसन्त एवं मध्याह्न में ग्रीष्म ऋतु कही गयी है। अपराह्न वर्षाकाल है। प्रदोष काल में शिशिर ऋतु प्रारम्भ होता है। ऐसा जानना चाहिये।।१५।।

अथवा—

उषायोगे च हेमन्तः प्रभाते शिशिरागमः।
प्रहरार्द्धे वसन्तश्च ग्रीष्मो मध्यन्दिनागमे।
तूर्ययामे च वर्षाख्यः शरदस्तङ्गते रवौ ॥१६॥

अथवा उषायोग में हेमन्त एवं प्रभात में शिशिर का आगमन कहते हैं। तत्पश्चात् प्रहरार्द्ध में वसन्त तथा मध्याह्न में ग्रीष्म, चतुर्थ प्रहर में वर्षा तथा सूर्यास्त के पश्चात् शरद ऋतु कहा गया है।।१६।।

भैरवीये—

हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि।
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः।
प्रावृडुच्चाटने ज्ञेयो शरन्मारणकर्मणि ॥१७॥

भैरवीय तन्त्रानुसार शान्तिकार्य में हेमन्त, वश्य में वसन्त एवं स्तम्भ में शिशिर काल प्रशस्त है। विद्वेषण में ग्रीष्म प्रशस्त है, उच्चाटन में वर्षा प्रशस्त है तथा मारणार्थ शरत् ऋतु प्रशस्त कही गई है।।१७।।

चामुण्डातन्त्रे—

जपेत् पूर्वमुखो वश्ये दक्षिणञ्चाभिचारके।
पश्चिमे पौष्टिकं विद्यादुत्तरं शान्तिदं मतम् ॥१८॥

चामुण्डातन्त्र में कहा गया है कि वश्य कर्म हेतु पूर्व दिशा की ओर मुख करके जप करना चाहिये। इसी प्रकार अभिचार हेतु दक्षिण, पौष्टिककर्म हेतु पश्चिम एवं शान्ति कर्म के लिये उत्तर दिशा प्रशस्त कही गई है।।१८।।

तन्त्रान्तरे—

पूर्वमुखे भवेद्वश्यं दक्षिणे त्वाभिचारकम्।
पश्चिमे स्तम्भनं कुर्यादुत्तरासु च शान्तिकम् ॥१९॥
आकर्षणमथाग्नेये नैर्ऋते मारणं तथा।
उच्चाटनन्तु वायव्ये ऐशान्यां मोक्षदायकम् ॥२०॥
अथाभिचारके कार्या दक्षिणा प्लवना मही।
वसनं लोहितं प्रोक्तमुष्णीषं लोहितं स्मृतम् ॥२१॥

तन्त्रान्तरानुसार—पूर्वमुख होकर वश्य कर्म, दक्षिणमुख होकर आभिचारिक कर्म, उत्तरमुख होकर शान्ति कर्म, अग्निकोण में आकर्षण कर्म, नैर्ऋत्य में मारण कर्म, वायुकोण में उच्चाटन कर्म तथा ईशान कोण में मोक्षप्रद कर्म करना चाहिये। इसी

प्रकार अभिचार कर्म वहाँ करना चाहिये, जहाँ दक्षिण की ओर पृथ्वी का ढाल हो। इस कर्म में वस्त्र लाल रखे तथा उष्णीष भी लोहित वर्ण ही होना चाहिये।।१९-२१।।

भूषणं लौहद्रव्येण वामेन पूजनादिकम्।
नरस्नायुविशेषेण मारणे रज्जुरीरिता ॥२२॥
मृतस्य युद्धशून्यस्य दन्तेन गर्दभस्य वा।
कृत्वाक्षमालां जप्तव्यं शत्रूणां वधमिच्छता ॥२३॥
भग्नेभदन्तमालाभिर्जपेदाकर्षकर्मणि।
साध्यकेशसूत्रप्रोतैस्तुरङ्गदशनोद्भवैः।
अक्षमालां समालोक्य विद्वेषोच्चाटने जपेत् ॥२४॥

लौह का आभूषण बनाये। बाँयें हाथ से पूजा कर्म करे। मारण-कर्मार्थ मनुष्य के स्नायु-समूह की (रज्जु) डोरी से माला बनाये। शत्रुगण का वध करने के लिये चाहिये कि जो युद्ध में न मर कर अन्य कारण से मरा हो, ऐसे व्यक्ति के दाँत से अथवा गधे के दाँत की माला बनाकर जप करे। आकर्षण कर्म में भग्न हस्तिदन्त-निर्मित मनकों की माला से जप करना चाहिये। विद्वेष तथा उच्चाटनार्थ घोड़े के दाँत के मनके की माला बनाकर उसको जिसका विद्वेष करना हो अथवा उच्चाटन करना हो, उसके केश से गूँथ कर माला बनाये एवं जप करे।।२२-२४।।

तिथिनियमन्तु—

पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा।
बुधेज्यवारसंयुक्ता शान्तिकर्मणि पूजिता ॥२५॥
गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी।
नवमी पौष्टिके शस्ता................।

षट्कर्म का तिथि-नियम—बुध तथा बृहस्पतिवार को जब पञ्चमी, द्वितीया, तृतीया अथवा सप्तमी हो तब शान्तिकर्म करना उचित होता है। गुरु तथा सोमवार को जब चतुर्थी, त्रयोदशी अथवा नवमी पड़े तब पौष्टिक कर्म करना चाहिये।।२५-२६।।

............चाष्टमी सप्तमी तथा ॥२६॥
दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रदिनान्विता।
आकर्षणे त्वमावस्या नवमी प्रतिपत्तथा ॥२७॥
पौर्णमासी मन्दभानौ ज्ञेया विद्वेषकर्मणि।
कृष्णा चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्दवारके।
उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषे च विशेषतः ॥२८॥

जब अष्टमी, सप्तमी, दशमी तथा एकादशी रवि अथवा शुक्र को पड़े तब आकर्षण कर्म करना चाहिये। विद्वेष कर्म जब शनि अथवा रविवार को अमावस्या, नवमी, प्रतिपदा अथवा पौर्णमासी पड़े, तब करना चाहिये। उच्चाटन कर्म प्रदोष कृष्णा चतुर्दशी, कृष्णा अष्टमी को करना उचित होता है।।२७-२८।।

चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावस्या तथैव च।
मन्दभौमदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि ॥२९॥
बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी तथा।
पौर्णमासी च विज्ञेया तिथिः स्तम्भनकर्मणि ॥३०॥

मारण कर्म में शनि तथा मंगल को कृष्णा चतुर्दशी, अष्टमी तथा अमावस्या तिथि प्रशस्त है। स्तम्भन कर्म में जब बुध तथा सोमवार को पञ्चमी, दशमी अथवा पौर्णमासी पड़े तब करना उचित होता है।।२९-३०।।

शुभग्रहोदये कुर्याच्छुभानि च शुभोदये।
रौद्रकर्माणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम् ॥३१॥

शुभ ग्रहों के उदय में शुभ वारादि में शान्ति कर्म करना चाहिये। रिक्ता तिथियुक्त रविवार को रौद्रकर्म तथा मृत्यु योग में मारण कर्म करना चाहिये।।३१।।

अथासनम्

पद्माख्यं स्वस्तिकं भूयो विकटं कुक्कुटं पुनः।
वज्रं भद्रकमित्याहुरासनानि मनीषिणः ॥३२॥

अब षट्कर्म-हेतु आसन कहते हैं। षट्कर्मार्थ पद्मासन, स्वस्तिकासन, विकटासन, कुक्कुटासन, वज्रासन तथा भद्रासन—ये छः आसन विहित हैं।।३२।।

पद्मासनन्तु संयोज्य जानूर्वोरन्तरे करौ।
निविश्य भूमौ संस्थाप्य व्योमस्थं कुक्कुटासनम् ॥३३॥

अन्यानि वक्तव्यानि।

पद्मासन में बैठकर जानु तथा ऊरु के मध्य दोनों हाथों को प्रवेश कराकर भूमि में स्थापन करके दोनों हाथ से देह को ऊपर उठाये (हवा में उठाये) तो यह कुक्कुटासन होती है।।३३।।

षण्मुद्रा क्रमतो ज्ञेयाः पद्मपाशगदाह्वयाः।
मूषलाशनिखड्गाख्याः शान्तिकादिकर्मसु ॥३४॥
जलं शान्तिविधौ शस्तं वश्ये वह्निरुदाहृतः।

स्तम्भने पृथिवी शस्ता विद्वेषे व्योम कीर्त्तितम्।
उच्चाटने स्मृतो वायुर्भूयोऽग्निर्मारणे मतः ॥३५॥

शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण कर्म में यथाक्रम से पद्ममुद्रा, पाशमुद्रा, गदामुद्रा, मूषलमुद्रा, वज्रमुद्रा तथा खड्गमुद्रा का प्रयोग करना चाहिये। शान्ति में जल एवं वश्य में अग्नि प्रशस्त है। स्तम्भन में पृथ्वी प्रशस्त है। विद्वेष में आकाश तथा उच्चाटन में वायु और मारण में अग्नि प्रशस्त है।।३४-३५।।

तत्तद्भूतोदये सम्यक् तत्तन्मण्डलसंयुतम्।
तत्तत्कर्म प्रकर्त्तव्यं मन्त्रिणा निशितात्मना ॥३६॥

उन-उन भूतों के उदय से तीक्ष्ण बुद्धि साधक ऊर्ध्व तथा अधोभेद से अहोरात्र का ज्ञान करके उन-उन भूतमण्डलों द्वारा संयुक्त उन-उन कर्मों को करे।।३६।।

शीतांशुसलिलक्षोणीव्योमवायुहविर्भुजाम ।
वर्णाः स्युर्मन्त्रबीजानि षट्कर्मसु यथाक्रमम् ॥३७॥

षट्कर्म-समूह में यथाक्रम से मन्त्रबीज का क्रमशः शीतांशु, सलिल, क्षोणी, व्योम, वायु तथा अग्नि का वर्ण होता है।

जैसे—शान्ति में शीतांशु, वश्य में सलिल, स्तम्भन में क्षोणी, विद्वेष में व्योम, उच्चाटन में वायु तथा मारण में अग्नि (मन्त्रबीज का) वर्ण होता है।।३७।।

ग्रन्थनञ्च विदर्भञ्च सम्पुटो रोधनं तथा।
योगः पल्लव इत्येते विन्यासाः षट्सु कर्मसु ॥३८॥

ग्रन्थन, विदर्भ, सम्पुट, रोधन, योग तथा पल्लव—ये सभी षट्कर्म में मन्त्र के विन्यास कहे गये हैं।।३८।।

मन्त्रार्णान्तिरितान् कृत्वा साध्यवर्णान् यथाविधि।
ग्रन्थनं तद् विजानीयात् प्रशस्तं शान्तिकर्मणि ॥३९॥

यथाविधि साध्य के नाम के वर्णो को मन्त्रवर्णों से अन्तरित करे अर्थात् प्रथमतः एक मन्त्राक्षर, तदनन्तर साध्य के नाम का अक्षर, पुनः मन्त्र का एक अक्षर—इस प्रकार से अन्तिम अक्षर तक लगाता जाय। ऐसी प्रक्रिया ग्रन्थन कहलाती है। यह शान्ति कर्मार्थ प्रशस्त कही गई है।।३९।।

मन्त्रार्णद्वयमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत्।
विदर्भ एष विज्ञेयो मन्त्रिभिर्वश्यकर्मणि ॥४०॥

सर्वप्रथम मन्त्र के दो वर्ण लगाये, तत्पश्चात् साध्य के नाम का एक अक्षर,

तदनन्तर मन्त्र के दो वर्ण, तत्पश्चात् साध्य के नाम का एक अक्षर—ऐसे करता जाय। वश्य कर्म के ज्ञाता साधक इसे विदर्भ कहते हैं।।४०।।

आदावन्ते च मन्त्रः स्यान्नाम्नोऽसौ सम्पुटः स्मृतः।
एष संस्तम्भने शस्त इत्युक्तो मन्त्रवेदिभिः ।।४१।।

पहले पूर्ण मन्त्र कहे, उसके अनन्तर साध्य का नाम लगाये और अन्त में पुनः मन्त्र कहे। इस सम्पुट को ही सम्पुट कहते हैं। यह स्तम्भन प्रयोग में अत्यन्त फलकारी कहा गया है।।४१।।

नाम्न आद्यन्तमध्येषु मन्त्रः स्याद्रोधनं मतम्।
विद्वेषणविधाने तु प्रशस्तमिदमुत्तमम् ।।४२।।

साध्य नाम के आदि, मध्य तथा अन्त में मन्त्र लिखे। जैसे साध्य का नाम केशव है और मन्त्र ह्रीं है। तब 'ह्रीं केशव ह्रीं' इस प्रकार से लिखे तो इसे रोधन कहते हैं। यह विद्वेषण कर्म में के लिये प्रशस्त कहा गया है।।४२।।

मन्त्रस्यान्ते भवेन्नाम योगः प्रोच्चाटने मतः।
अन्ते नाम्नो भवेन्मन्त्रः पल्लवो मारणे मतः ।।४३।।

मन्त्र के अन्त में साध्य का नाम लगाना 'योग' कहा जाता है। उच्चाटनार्थ इसका प्रयोग किया जाता है तथा जब नाम के अन्त में मन्त्र लगाया जाता है तब उसे पल्लव कहा जाता है, जो मारण कर्म में प्रयुक्त होता है।।४३।।

सितरक्तपीतमिश्राः कृष्णा धूम्रा प्रकीर्त्तिताः।
वर्णतो मन्त्रसम्प्रोक्ता देवताः षट्सु कर्मसु ।।४४।।

षट्कर्म में मन्त्र में कहे गये देवताओं का वर्ण शान्ति में सफेद, वश्य में रक्त, स्तम्भन में पीत, विद्वेषण में मिश्र, उच्चाटन में कृष्ण तथा मारण में धूम्र कहा गया है।।४४।।

मन्त्राणां लिखनं द्रव्यं चन्दनं रोचना निशा।
गृहधूमचिताङ्गारो मारणेऽष्ट विषाणि च ।।४५।।

षट्कर्म में मन्त्रादि-लेखन के द्रव्य इस प्रकार हैं—शान्ति में चन्दन, वश्य में गोरोचन, स्तम्भन में (निशा) हरिद्रा, विद्वेषण में गृहधूम अर्थात् भोजन बनाने की धूम्र की कालिख एवं उच्चाटन में त्रिकटु पीसकर उससे मन्त्र लिखा जाता है। मारण कर्म में आठ विष से यन्त्र का अङ्कन करना चाहिये।।४५।।

श्येनाग्निलोनपिण्डानि धुस्तूरकरसः शुभः।
गृहधूमस्त्रिकटुकं विषाष्टकमुदीरितम् ॥४६॥

उपरोक्त आठ विष इस प्रकार हैं—श्येन (बाज) की बीट, चित्रक (चिता वनस्पति), नमक का मल (मैल), धतूरा का रस, त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च, पीपल) एवं गृहधूम (घर में लगी कालिख, जो चूल्हे पर जमती है)।।४६।।

देवताकालमुद्रादीन् सम्यग् ज्ञात्वा विचक्षणः।
षट्कर्माणि प्रयुञ्जीत यथोक्तफलसिद्धये ॥४७॥

इस प्रकार यथोक्त फल-सिद्धि के लिये विद्वान् साधक देवता, काल, मुद्रा, वार, तिथि, नक्षत्र, प्रभृति को सम्यक् रूप से जानकर षट्कर्म का प्रयोग करे।।४७।।

कुलार्णवे—

उच्चाटने वषट् प्रोक्तं हुंफडन्तञ्च मारणे।
स्तम्भने च नमः प्रोक्तं स्वाहा शान्तिकपौष्टिके ॥४८॥

कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि उच्चाटन मन्त्र के अन्त में वषट्, मारण मन्त्र के अन्त में हुं फट्, स्तम्भन के मन्त्र के अन्त में नमः एवं शान्ति तथा पुष्टि कर्म के अन्त में स्वाहा का प्रयोग करना चाहिये।।४८।।

विशेष—वश्य कर्म में भी अन्त में स्वाहा लगाना चाहिये।

होमतपर्णयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः।
मन्त्रान्ते योजयेन्मन्त्री जपकाले यथास्थितः ॥४९॥

मन्त्रज्ञ साधक को होम तथा तर्पण में मन्त्रान्त में स्वाहा एवं न्यास तथा पूजन में नमः का प्रयोग करना चाहिये, जपकाल में जैसा मन्त्र है, वैसा ही जप करना चाहिये।।४९।।

अस्यार्थः—एतानि तत्तत् कर्मणि जपकाले मन्त्रान्ते योजयित्वा मन्त्रं जपेत्। होमादिषु नायं नियमः इत्याह। होमतर्पणयोरितीति केचित्। तन्न ॥५०॥

यहाँ एतानि = वे-वे कर्म करते समय जपकाल में इस प्रकार मन्त्र के अन्त में वषट्, हुं, फट्, नमः, स्वधा इत्यादि लगाकर जप करना चाहिये। किसी का मत है कि होमादि में ऐसा नियम नहीं है, किन्तु वह उचित नहीं है।।५०।।

अग्निकार्ये जपे स्वाहा नमः सर्वत्र चार्चने।
शान्तिपुष्टिवशद्वेषाकृष्ट्युच्चाटनमारणम्।
स्वाहास्वधावषट्हूञ्च वौषट् फट् योजयेत्क्रमात् ॥५१॥

होमकार्य (अग्निकार्य) में मन्त्र के अन्त में सर्वत्र 'स्वाहा' लगाये। अर्चना में मन्त्रान्त में नम: लगाये। शान्ति, पुष्टि, वश्य, द्वेष्य, आकर्षण, उच्चाटन तथा मारण में इस प्रकार लगाये—शान्ति में स्वाहा, पुष्टि में स्वधा, वश्य में वषट्, विद्वेषण में हुं, आकर्षण में वौषट् तथा मारण में फट्।।५१।।

वश्याकर्षणसन्तापज्वरे स्वाहां प्रकीर्त्तयेत्।
क्रोधोपशमने शान्तौ प्रीतौ योज्यं नमो बुधैः ।।५२।।

वशीकरण, आकर्षण, सन्ताप तथा ज्वर में स्वाहा एवं क्रोध को शान्त करने के लिये, शान्तिकार्य में तथा प्रीति-कार्य में पण्डितगण 'नम:' का प्रयोग करते हैं।।५२।।

वौषट् सम्मोहनाद्दीपपुष्टिमृत्युञ्जयेषु च।
फट्कारं छेदने हूञ्च फट् विघ्नग्रहपातने ।।५३।।

सम्मोहन, उद्दीपन, पुष्टि तथा मृत्युञ्जय कर्म में 'वौषट्' लगाये। छेदन (बलि) में 'फट्' तथा विघ्न एवं ग्रहबाधा में 'हुं फट्' लगाना चाहिये।।५३।।

पुष्टौ चाप्यायने वौषट् रोधने मलिनीकृतौ।
हुंकारं प्रीतिनाशे च छेदने मारणे तथा ।।५४।।

इति विशेषवचनाद् होमादावपि वषडादिविधानात् ।।५५।।

पुष्टि तथा आप्यायन कर्म में वौषट्, रोधन तथा मलिनीकरण में हुं, प्रीतिनाशार्थ, छेदन (बलि), मारण, उच्चाटन तथा विद्वेष में वौषट्, पङ्गुकरण में वषट्, कुण्ड के उद्दीपन कार्य में लाभ तथा अलाभ में वषट् का प्रयोग किया जाता है। इस विशेष वचन के अनुसार होमादि में वषट् प्रभृति का प्रयोग विहित है।।५४-५५।।

शान्तिकादौ पात्रादिनियमस्तु तत्रैव—

शान्तिके राजतं ताम्रं भूर्जपत्रन्तु वश्यके।
सर्वकार्येषु सौवर्णं क्रूरे स्यात्प्रेतकर्मणि ।।५६।।
त्रिगन्धं शान्तिके प्रोक्तं पञ्चगव्यञ्च वश्यके।
सर्वकार्येऽष्टगन्धः स्यात्क्रूरे चाष्टविषाणि च ।।५७।।

(लेखनार्थ) अब शान्ति कार्यार्थ पात्रादि के नियम कहते हैं। शान्तिकर्म में चाँदी का पात्र एवं ताम्रपात्र, वशीकरणार्थ भोजपत्र, समस्त कार्य में सुवर्णपात्र तथा क्रूरकर्म में लेखनार्थ कफन के वस्त्र का प्रयोग करना चाहिये।

लेखनार्थ स्याही के लिये त्रिगन्ध से शान्तिकार्य, वशीकरण में पञ्चगव्य, समस्त कार्य में अष्टगन्ध की स्याही तथा क्रूरकार्य में अष्टविष की स्याही का प्रयोग करना चाहिये (अष्टविष का वर्णन पूर्व श्लोकों में किया गया है)।।५६-५७।।

शान्तिके लेखनी दूर्वा वश्यादौ शिखिपुच्छिका।
हेम्ना सर्वाणि कार्याणि क्रूरे स्यात् काकपुच्छिका ।।५८।।

अब लेखनी के लिये शान्ति कर्मार्थ दूब की लेखनी, वश्य आदि में मोर की लेखनी पंख समस्त कार्यार्थ स्वर्ण के लेखनी तथा क्रूरकर्मार्थ कौये के पंख की लेखनी का व्यवहार करना चाहिये।।५८।।

गृहेषु शान्तिकर्म स्याद्वश्यञ्च चण्डिकागृहे।
देवालयेषु सर्वाणि श्मशाने क्रूरकर्म च ।।५९।।
तत्तद्भूतोदये सम्यक् तत्तन्मण्डलसंयुतम्।
तत्तत् कर्म प्रकर्त्तव्यं मन्त्रिणा निश्चितात्मना ।।६०।।

इति षट्कर्मप्रकरणम्

शान्ति कर्म का प्रयोग घर में, वश्य कर्म का प्रयोग चण्डिमन्दिर में, समस्त कर्मों का प्रयोग देवालय में एवं क्रूर कर्म का प्रयोग श्मशान में करना चाहिये। स्थिर चित्त वाला मन्त्र जानने वाला साधक सम्यक् प्रकार से पृथ्वी आदि भूतों का उदय होने पर उन-उन भूतमण्डल से संयुक्त शान्तिप्रभृति षट्कर्म करे।।५९-६०।।

अथ भूतानामुदयाः

दण्डाकारा गतिर्भूमेः पुटयोरुभयोरपि।
तोयस्य पावकस्योर्ध्वं गतिस्तिर्यङ् नभस्वते।
गतिर्व्योम्नो भवेन्मध्ये भूतानामुदयः स्मृतः ।।६१।।

भूतगण के उदय के सम्बन्ध में शारदातिलक तन्त्र में कहा गया है कि (पृथ्वी) भूमि तत्त्व के उदय में नासिकापुट के अधोभाग में निःश्वास की गति दण्डाकार हो जाती है। जल तथा अग्नि के उदय में श्वास की गति ऊर्ध्व होती है। वायु के उदय में (वायु तत्त्वोदय में) श्वास की गति तिर्यक् (टेढ़ी) हो जाती है। आकाश तत्त्व के उदय की स्थिति में श्वास की गति मध्य में हो जाती है। इस प्रकार—यह भूतों का (पञ्चभूतों का) उदय कहा गया है।।६१।।

धरणेरुदये कुर्यात् स्तम्भनं वश्यमात्मवित्।
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म तोयस्य समये वसोः ।।६२।।
मारणादीनि मरुतो विपक्षोच्चाटनादिकम्।
क्षुद्राणि नाशने शस्तमुदये च विहायसः ।।६३।।

आत्मवित् साधक को पृथ्वी तत्त्वोदय में स्तम्भन तथा वशीकरण का प्रयोग

करना चाहिये। जल तत्त्वोदय में शान्ति तथा पौष्टिक कर्म, अग्नि तत्त्वोदय में उच्चाटनादि कर्म, वायु तत्त्वोदय में मारणादि कर्म तथा आकाशतत्त्वोदय में क्षुद्रादि नाशन कर्म का प्रयोग करना चाहिये।।६२-६३।।

भूतानां मण्डलादि

वृत्तं दिवस्तत् षड्विन्दुलाञ्छितं मातरिश्वनेः।
त्रिकोणं स्वस्तिकोपेतं वह्नेरर्द्धेन्दुसंयुतम् ।।६४।।
अम्भोजमम्भसो भूमेश्चतुरस्त्रं सवज्रकम् ।
तत्तद्भूतसमाभानि मण्डलानि विदुर्बुधाः ।
वर्णैं स्वैरञ्जितान्याहुः स्वस्वनाम्नावृतान्यपि ।।६५।।

अब भूतमण्डल कहा जाता है। इसके मध्य का आकाश मण्डल है—वृत्त। यह वृत्त ही उसकी परिधि की रेखा में समान भाग में छः बिन्दु द्वारा भूषित होकर वायुमण्डल हो जाता है। स्वस्तिकयुक्त ऊर्ध्वाग्र त्रिकोण है—अग्निमण्डल। अर्धचन्द्र से युक्त उसके उभय भागस्थ पद्म को जलमण्डल कहा जाता है। भूमिमण्डल है—अष्टवज्र-विभूषित चतुरस्र (भूपुर)। इन मण्डलों का उन-उन भूतसमूह की विद्यमानता से (जहाँ जो भूत है, वहाँ उसका वर्ण (रंग) भी है) समान वर्णयुक्त पण्डितों द्वारा कहा गया है अर्थात् जहाँ जो भूत है, वहीं उसका अपना वर्ण भी है। उन भूमि, जलादि मण्डल को अङ्कित करते समय उस मण्डल के रंग वाली रजः से उसे सजाये और इन मण्डल के भूतलिपि यन्त्र को कर्णिका में लिखित (कर्णिका में स्वर-मन्त्र लिखकर) स्वरमन्त्रों से आवृत करे।।६४-६५।।

स्वच्छं वियन्मरुत् कृष्णो रक्तोग्निर्विशदं पयः ।
पीत्वा भूमिः पञ्चभूतान्येकैकाधारतो विदुः ।।६६।।

आकाश श्वेत वर्ण, वायु कृष्ण वर्ण, अग्नि रक्त वर्ण, जल शुक्ल वर्ण (विशद वर्ण) तथा पृथ्वी पीत वर्ण वाली है। ये पञ्चभूत एक-एक पञ्चतन्त्रमात्रा में अर्थात् अपने कारण के आश्रित रहते हैं।।६६।।

प्रयोगानन्तरं कुलार्णवे—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं ध्यानन्याससमन्वितः ।
प्रयोगदोषशान्त्यर्थमात्मरक्षार्थकारणम ।
न चेत्फलञ्च नाप्नोति देवताशापमाप्नुयात् ।।६७।।

इन षट्कर्म के प्रयोग के अनन्तर जो कर्त्तव्य है, उसके लिये कुलार्णव तन्त्र में कहते हैं कि साधक को षट्कर्म-प्रयोग के दोष की शान्ति-हेतु ध्यान तथा न्यासयुक्त

होकर एक लाख मन्त्र-जप करना चाहिये। जिससे प्रयोग की दोष शान्ति हो तथा आत्मरक्षा हो। जो यह नहीं करता, उसे षट्कर्म कर्म का फल नहीं मिलता तथा देवता का शाप प्राप्त होता है।।६७।।

मन्त्रमिति। शान्त्यर्थं निर्दिष्टमन्त्रमित्यर्थः। यत्तु 'न शस्तं मारणं कर्म कुर्याच्चेदयुतं जपेदि'ति; तत्तु प्रायश्चित्तपरमिति ध्येयम्॥६८॥

मन्त्रम्—शान्ति के लिये निश्चित मन्त्र। मारण कर्म करना उचित नहीं है। यदि विवशता में मारण कर्म करना पड़े, तब एक लाख मन्त्र-जप करना चाहिये, जो कि उसके प्रायश्चित-स्वरूप होता है।।६८।।

●

अथ जपनिरूपणम्

जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचिकैः ।
धियां यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम् ॥१॥
उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः ।
जिह्वौष्ठौ चालयेत् किञ्चिद् देवतागतमानसः ॥२॥
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ।
मन्त्रमुच्चारयेद् वाचा वाचिकः स जपः स्मृतः ॥३॥

अब जप का निरूपण किया जा रहा है। मन्त्राक्षरों की आवृत्ति का नाम है—जप। यह मानस, उपांशु तथा वाचिक के भेद से तीन प्रकार का होता है। मन्त्र के अर्थ को स्मरण करके वर्णस्वरपदरूप मन्त्राक्षरों का मन ही मन उच्चारण करना मानस जप कहलाता है। देवता के प्रति मन लगाकर जिह्वा तथा ओष्ठ की किञ्चित् चालन क्रिया से बहुत ही धीमी आवाज में जो मन्त्रोच्चार किया जाता है, वह उपांशु जप होता है। वाणी द्वारा जिस मन्त्र का उच्चारण होता है, उसे वाचिक जप कहा जाता है।।१-३।।

विशुद्धेश्वरतन्त्रे—

निजकर्णागोचरो यो मानसः स जपः स्मृतः ।
उपांशुर्निजकर्णस्य गोचरः परिकीर्त्तितः ।
निगदन्तु जनैर्वेद्यस्त्रिविधो जप ईरितः ॥४॥
उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः ।
जिह्वाजपः शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥५॥

विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहते हैं कि ऐसा जप, जिसे अपने भी कान न सुनें, वह मानस जप कहलाता है। केवल अपने कांन सुन सकें, ऐसा जप उपांशु जप होता है। जिस जप को अन्य लोग भी सुनें, वह निगद (वाचिक) जप कहा गया है। इस प्रकार जप त्रिविध है। उच्च स्वर से जप करने का विशेष फल है, किन्तु उपांशु जप का दस गुणा फल, जिह्वा जप का (जिसमें केवल जिह्वा हिले, शब्द न हो) सौगुना फल है तथा मानस जप का फल हजारगुणा होता है।।४-५।।

तन्त्रान्तरे—

उच्चैर्जपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः ।
उत्तमो मानसो देवि! त्रिविधः कथितो जपः ॥६॥
जिह्वाजपः स विज्ञेयः केवलं जिह्वया बुधैः ।
अतिह्रस्वो व्याधिहेतुरतिदीर्घो वसुक्षयः ।
अक्षराक्षरसंयुक्तं जपेन्मौक्तिकहारवत् ॥७॥

अन्य तन्त्र में कहा गया है कि उच्च स्वर से किये गये जप को अधम कहते हैं। उपांशु जप मध्यम है तथा मानसिक जप सर्वोत्तम कहा गया है। हे देवि! इस प्रकार से जप त्रिविध है। पण्डितों का कथन है कि जिह्वा-जप केवल जिह्वा से होता है अर्थात् उसमें ध्वनि नहीं होती। अतिह्रस्व जप व्याधि तथा अतिदीर्घ जप धनक्षय का कारण होता है। मोती के हार के समान अक्षर के पश्चात् अक्षरयुक्त जप अर्थात् तारतम्य से जप करना चाहिये।।६-७।।

अतिह्रस्वः मन्त्रवर्णोच्चारणे बहुक्षणव्यवहितः। अतिदीर्घो मन्त्रवर्णानाम-तित्वरोच्चारणकृतः। वसुक्षय इति वसूनां क्षयो यस्मादिति विग्रहः। अक्षरमक्षरसंयुक्तं यत्रेति क्रियाविशेषणम्। मौक्तिकहारवत् हारस्थ-मौक्तिकवत्। अयञ्च संयुक्तांशे दृष्टान्तः ॥८॥

अतिह्रस्व—मन्त्रों के वर्णों के उच्चारण में कई क्षण व्यतीत करना। अतिदीर्घ—मन्त्रवर्णों का जल्दबाजी में उच्चारण। वसुक्षय—जिस जप से धन का क्षय हो। जिस जप में अक्षर के साथ अक्षर संयुक्त हो, वह है—अक्षराक्षर संयुक्त जप। अक्षर के पश्चात् दूसरे अक्षर का क्रम से उच्चारण करे, जैसे मुक्ता के हार में एक मोती से सटी दूसरी मोती होती है। यह है—अक्षर-संयोग का दृष्टान्त।।८।।

तथा तन्त्रान्तरे—

मनः संहृत्य विषयाद् मन्त्रार्थगतमानसः ।
न द्रुतं न विलम्बञ्च जपेन्मौक्तिकहारवत् ॥९॥

मन को विषयों से खाली करके मन्त्रार्थ का चिन्तन करते हुये ऐसे क्रम से एक अक्षर के पश्चात् दूसरे अक्षर के उच्चारण में विलम्ब न करे, न जल्दी करे। मौक्तिक हार के समान एक प्रकार से मन्त्र जपे।।९।।

ननु संयुक्तबीजस्य संयुक्तत्वेन वियुक्तत्वेन या उच्चारणं उच्यते दुर्वासः-कूटे—मायास्थाने ह-री वर्णयुगलञ्च क्रमोल्लिखेदिति वचनात्—

कामराजाख्यविद्यायास्त्रिकूटेषु महेश्वरि! ।
या स्थिता भुवनेशानी द्विधा कुरु वरानने ।
नादहीना बिन्दुहीना दुर्वासःपूजिता भवेत् ॥

इतिवचनाच्च तत्रैव विश्लेषणोच्चारणं नान्यत्रेति स्वरसः। विश्लेषं विनाऽनुच्चार्य्याणां कूटानान्त्वगत्यैव विश्लेषणोच्चारणमिति तत्त्वम् ॥१०॥

संयुक्त बीज का संयुक्तत्व रूप से अथवा वियुक्तत्व रूप से उच्चारण होगा? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि दुर्वासःकूट माया (ह्रीं) के स्थान पर ह-री इस क्रम से वर्ण को लिखे, इस प्रकार का वचन रहने पर हे महेश्वरि! कामराज नामक विद्या के तीन कूट जो भुवनेशानी बीज (ह्रीं) है, उसे द्विधा करे। वह (ह तथा री) नादहीना तथा बिन्दुहीना होते ही दुर्वासःपूजिता होगी। इस प्रकार का वचन होने के कारण केवल उसी स्थान पर ही विश्लेषण करके उच्चारण होगा—यह मेरा मत है। वर्ण के विश्लेषण के अतिरिक्त अनुच्चार्य कूटसमूह का तथा वर्णसमूह का विश्लेषण करके उच्चारण करना ही कर्त्तव्य है।।१०।।

कालिकापुराणे—

जपश्चोपांशुः सर्वेषामुत्तमः परिकीर्त्तितः ॥११॥

कालिकापुराण में कहा गया है कि समस्त जगत् में उपांशु जप ही उत्तम कहा गया है।।११।।

अथ जपक्रमः

हस्तेन स्रजमादाय चिन्तयेन्मनसा शिवाम् ।
चिन्तयित्वा गुरुं मूर्ध्नि यथा वर्णादिकं भवेत् ॥१२॥
मन्त्रञ्च कण्ठतो ध्यात्वा पीतवर्णं हिरण्मयम् ।
महामायाञ्च हृदये आत्मानं गुरुपादयोः ॥१३॥
आचचक्षे ततः पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः ।
देव्याश्चाप्येकतां नीत्वा सुषुम्नावर्त्मना ततः ॥१४॥

अब जपक्रम कह रहे हैं। हाथ में माला लेकर मन ही मन शिव का चिन्तन करना चाहिये। मस्तक में गुरु का चिन्तन करके मन्त्र जिस प्रकार वर्ण युक्त है, उसका कण्ठ में पीतवर्ण स्वर्णमय ध्यान करे। हृदय में महामाया का तथा आत्मा में गुरुपादुका का चिन्तन करे। तत्पश्चात् सुषुम्नापथ में गुरु, मन्त्र, आत्मा तथा देवता में अभेद-भावना करते हुये मन्त्रोच्चारण करे।।१२-१४।।

तथा—

जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः।
निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगतञ्च वा ॥१५॥
ॐ माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥१६॥
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद् दक्षिणे करे।
मालां स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना ॥१७॥
देवीं विचिन्तयन् जप्यं कुर्याद्वामेन संस्पृशेत्।
यथाशक्ति जपं कुर्यात् संख्ययैव प्रयत्नतः ॥१८॥
जप्त्वा मालां शिरोदेशे प्रांशुस्थानेऽथवा न्यसेत्।
स्वस्तिपाठं ततः कुर्यादिष्टं कामं निवेद्य च ॥१९॥

तन्त्र में यह भी कहा गया है कि जप के आदि में सर्वतोभद्र मण्डल-प्रभृति मण्डल के मध्य में अथवा बाँयें हाथ में माला रखकर यत्नपूर्वक जल द्वारा संस्कार करके उसका पूजन करे।

श्लोक १६ में लिखे मन्त्र से माला का पूजन करके अपने हृदय के सामने दाहिने हाथ में माला को धारण करके देवी का चिन्तन करते-करते जप करे तथा वाम हाथ से स्पर्श करे। यत्नपूर्वक संख्या-ज्ञान रखते हुये यथाशक्ति जप करे।

मन्त्र जपने के पश्चात् माला को मस्तक पर अथवा किसी उच्च स्थान पर रखना चाहिये। तदनन्तर अपनी कामना कहते हुये स्तुतिपाठ करे।।१५-१९।।

संख्ययैवेति। तथा च जपसंख्याकरणस्यावश्यकत्वम्। उक्तञ्च—

पर्वसन्धिषु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने।
असंख्यातञ्च यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥२०॥ इति।

संख्ययैवेति पद से जपसंख्या करना आवश्यक माना गया है। तन्त्र में कहते हैं—पर्वसन्धि (उंगलियों की सन्धि) से जो जप किया जाय, मेरुलंघन कर जो जप किया जाय, बिना संख्यागणना के जो जप जाय, वह सभी निष्फल होता है।।२०।।

जपादौ कुल्लुकाजपादिरप्यावश्यकः। यथा रुद्रयामले—

ईश्वर उवाच

कुल्लुकां मूर्ध्नि सञ्जप्य हृदि सेतुं विचिन्तयेत्।
महासेतुं विशुद्धौ तु षोड़शारे समुद्धरेत् ॥२१॥

मणिपूरे तु निर्वाणं महाकुण्डलिनीमधः।
स्वाधिष्ठाने कामबीजं राकिणी मूर्ध्नि संस्थितम्॥२२॥
विचिन्त्य विधिवद् देवि! मूलाधारान्तिकाच्छिवे।
विशुद्धस्तं स्मरेद् देवि! बिसतन्तुतनीयसीम्।
वेदिस्थानं द्विजिह्वान्तं मूलमन्त्रावृतं मुहुः॥२३॥

बिसतन्तुतनीयसीं कुण्डलिनीमित्यर्थः। द्विजिह्वान्तं जिह्वाद्वयमध्यम्।

जप के आदि में कुल्लुका का जप भी आवश्यक माना गया है। जैसे रुद्रयामल में कहा है कि मस्तक में कुल्लुका का जप करके हृदय में सेतु का चिन्तन करना चाहिये। षोडशदलात्मक विशुद्ध चक्र (कण्ठस्थ) में महासेतु का जप करना चाहिये।

नाभिस्थित मणिपूर चक्र के नीचे महाकुण्डलिनी अवस्थित रहती है। मूलाधार में महाकुण्डलिनी का चिन्तन करना चाहिये। स्वाधिष्ठान में लिंगमूल में कामबीज (क्लीं) का राकिनी शक्ति के मस्तक में ध्यान करे। हे देवि! मूलाधार से लेकर विशुद्ध चक्रपर्यन्त बिसतन्तु से भी पतली सूक्ष्मा कुण्डलिनी का चिन्तन करना चाहिये। जिह्वाद्वय का मध्य स्थान पुनः पुनः मूल मन्त्र से आवृत रहता है।।२१-२३।।

बिसतन्तुतनीयसी—कुण्डलिनी, द्विजिह्वान्त = जिह्वाद्वय के मध्य में। (द्विजिह्वान्त-इडा-पिंगला के मध्य में)।

श्रीदेव्युवाच

कुल्लुका कीदृशी नाथ सेतुर्वा वद कीदृश।
कीदृशो वा महासेतुर्निर्वाणं त्वथ कीदृशम्।
अन्यद्वा कथितं यन्मे कीदृशं तद्वद प्रभो॥२४॥

देवी कहती हैं कि हे प्रभो! कुल्लुका किस प्रकार का है, सेतु कैसा है, महासेतु तथा निर्वाण कैसे हैं और भी जो आपने मुझसे कहा है, वे कैसे हैं, कृपया कहिये।।२४।।

ईश्वर उवाच

गुह्याद् गुह्यतरं देवि! तव स्नेहेन कथ्यते।
विना येन महेशानि! निष्फलन्तु जपादिकम्॥२५॥
तारायाः कुल्लुका देवि! महानीलसरस्वती।
तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती।
कुल्लुकेयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥२६॥

ईश्वर कहते हैं—हे महेशानि, हे देवि! जिसके विना जपादि निष्फल हो जाते हैं, उन गुह्यतम विषयों को तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रेम के साथ कहता हूँ।

हे देवि! तारा का कुल्लुका है—महानील सरस्वती। ताराबीज अस्त्ररहित होने के कारण तीन अक्षरों का होकर महानीलसरस्वती हो जाता है। इसे कुल्लुका कहते हैं। यह समस्त तन्त्रों में गुप्त है।।२५-२६।।

पञ्चाक्षरी कालिकायाः कुल्लुका परिकथ्यते।
काली कूर्चं वधूर्माया षट्कारान्ता महेश्वरि! ॥२७॥

हे महादेवि! पञ्चाक्षरी विद्या कालिका का कुल्लुका है। हे महेश्वरि! काली (ह्रीं), कूर्च (हुं), वधु (स्त्रीं), माया (ह्रीं) तथा अन्त में फट्—यह पञ्चाक्षरी विद्या है (ह्रीं हुं स्त्रीं ह्रीं फट्)।।२७।।

छिन्नायास्तु महादेवि! कुल्लुकाऽष्टाक्षरी भवेत्।
वज्रवैरोचनीये च अन्ते वर्म प्रकीर्त्तयेत् ॥२८॥

हे महादेवि! छिन्नमस्ता की अष्टाक्षरी विद्या कुल्लुका होती है। 'वज्रवैरोचनीये' कहकर 'फट्' कहने से 'वज्रवैरोचनीये फट्' मन्त्र का उद्धार होता है। यही है—अष्टाक्षरी कुल्लुका।।२८।।

सम्पत्प्रदायाः प्रथमं भैरव्याः कुल्लुका मता।
श्रीमत् त्रिपुरसुन्दर्याः कुल्लुका द्वादशाक्षरी ॥२९॥

सम्पत्प्रदा का प्रथम कूट भैरवी का कुल्लुका है। श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी की द्वादशाक्षरी विद्या कुल्लुका है।।२९।।

वाग्भवं प्रथमं बीजं कामबीजमनन्तरम्।
लज्जाबीजं ततः पश्चात्त्रिपुरे च ततः परम् ॥३०॥
भगवति ततः पश्चादन्ते ठद्वयमुद्धरेत्।
अथवा कामबीजाख्या कुल्लुका परिकीर्त्तिता ॥३१॥

प्रथमतः वाग्भव (ऐं), तदनन्तर कामबीज (क्लीं), लज्जाबीज (ह्रीं), तदनन्तर 'त्रिपुरे', तत्पश्चात् 'भगवति', तत्पश्चात् अन्त में ठद्वय (ठ ठ अर्थात् स्वाहा) लगाने से मन्त्र होता है—'ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा'। यह द्वादशाक्षरी विद्या कुल्लुका है।।३०-३१।।

प्रासादबीजं शम्भोश्च मञ्जुघोषे षडक्षरी।
एकार्णं भुवनेश्वर्या विष्णोः स्यादष्टवर्णकः।
नमो नारायणायेति प्रणवाद्या च कुल्लुका ॥३२॥

प्रासादबीज शम्भु की कुल्लुका है। मञ्जुघोष की षडक्षरी विद्या कुल्लुका है। भुवनेश्वरी की एकाक्षर विद्या कुल्लुका है। प्रणव को आदि में स्थापित करके नमो नारायय अर्थात् 'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र नारायण की कुल्लुका है।।३२।।

मातङ्ग्या प्रथमं बीजं माया धूमावतीं प्रति।
बगलाया वधूबीजं लक्ष्म्याश्च निजबीजकम्॥३३॥

मातंगी-हेतु मातंगी का प्रथम बीज कुल्लुका है। धूमावती की मायाबीज (ह्रीं) कुल्लुका है, बगला की कुल्लुका वधूबीज (स्त्रीं) है। लक्ष्मी की कुल्लुका उसका अपना बीज (श्रीं) है।।३३।।

सरस्वत्या वाग्भवञ्च अन्नदाया अनङ्गकम्।
अन्यासान्तु पराबीजं कुल्लुका परमेश्वरि॥३४॥

हे परमेश्वरि! सरस्वती की कुल्लुका 'ऐं', अन्नपूर्णा की कुल्लुका अनङ्गबीज (क्लीं) एवं अन्य देवगण की कुल्लुका पराबीज मायाबीज है।।३४।।

इयं ते कथिता देवि! संक्षेपात् कुल्लुका मया।
अज्ञात्वा कुल्लुकामेतां यो जपत्यधमः प्रिये॥३५॥
पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिश्च जायते।
तथा जपादिकं सर्वं निष्फलं नात्र संशयः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रजपेन्मूर्ध्नि कुल्लुकाम्॥३६॥

हे देवि! मैंने संक्षेप में इतने कुल्लुका कहे हैं। हे प्रिये! इन्हें जाने विना जो जप करता है, वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। उसकी सिद्धि नष्ट हो जाती है। उसका सभी जप निष्फल हो जाता है। यह बात निःसंदिग्ध है। अतः सर्वप्रयत्न से मस्तक में कुल्लुका का जप करना चाहिये।।३५-३६।।

वर्म प्रकीर्त्तयेदिति कूर्चमुद्धरेदित्यर्थः। प्रथममिति। सम्पत्प्रदायाः प्रथमं कूटं भैरव्या कुल्लुका इत्यर्थः। पराबीजं मायाबीजम्। इति कुल्लुका॥३७॥

वर्म प्रकीर्त्तयेत् = कूर्च बीज का उद्धार करे। प्रथमम्—'सम्पत्प्रदा' यह प्रथम कूट भैरवी की कुल्लुका है। पराबीज—मायाबीज कुल्लुका।।३७।।

तत्रैव—

अथ सेतुं प्रवक्ष्यामि तं शृणुष्व प्रियंवदे।
यस्याऽज्ञानेन विफलं जपहोमादिकं भवेत्॥३८॥
विप्राणां प्रणवः सेतुः क्षत्रियाणां तथैव च।
वैश्यानान्तु फडन्तः स्यान्माया शूद्रस्य कथ्यते॥३९॥

उसी तन्त्र में कहा गया है कि हे प्रियंवदे! अब सेतु कहा जाता है, उसे सुनो। इसे न जानने पर होम-जप निष्फल हो जाता है। विप्रों के लिये तथा क्षत्रियों के लिये प्रणव (ॐ) ही सेतु है। वैश्यों का सेतु 'फट्' है एवं शूद्रों का सेतु है—'ह्रीं'।।३८-३९।।

अजप्त्वा हृदि देवेशि! यो वै मन्त्रं समुच्चरेत्।
सर्वेषामेव मन्त्राणामधिकारो न तस्य हि।।४०।।

हे देवेशि! हृदय में सेतु का जप न करके जो मन्त्र का जप करता है, उसका किसी भी मन्त्र पर (मन्त्र जपने का) अधिकार नहीं रहता।।४०।।

कालिकापुराणे—

मन्त्राणां प्रणवः सेतुर्न मन्त्रः प्रणवस्य तु।
श्रवत्यनोन्कृतं पूर्वं परस्त्याच्च विशीर्यते।।४१।।
अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्च प्रजापतिः।
वेदत्रयात् समुद्धृत्य प्रणवं निर्ममे पुरा।।४२।।

कालिकापुराण के अनुसार मन्त्रों को सेतु प्रणव है; किन्तु प्रणव के सेतु मन्त्र नहीं हो सकते। यदि मन्त्र के पूर्व ॐकार नहीं है तब मन्त्र क्षरित हो जाते हैं और मन्त्र के अन्त में प्रणव से अंलकृत न होने से वे विशीर्ण हो जाते हैं। प्राचीन काल में प्रजापति ने वेद से अ, ऊ, म का उद्धार करके प्रणव का निर्माण किया है।।४१-४२।।

स उदात्तो ब्राह्मणानां राज्ञां स्यादनुदात्तकः।
स्वरितश्चोरुजातानां मनसापि तथा स्मरेत्।।४३।।

ब्राह्मणों के लिये प्रणव उदात्त, क्षत्रिय के लिये अनुदात्त एवं कालपुरुष के ऊरु से उत्पन्न वैश्यों के लिये प्रणव स्वरित् है। अत: मन ही मन (प्रत्येक वर्ण को अपने ऊपर लिखे नियमानुसार) उदात्तादि रूपेण प्रणव का स्मरण करना चाहिये।।४३।।

चतुर्दशस्वरो योऽसौ शेष औकारसंज्ञकः।
स चानुस्वारचन्द्राभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते।।४४।।

यह जो औ नामक १४वाँ स्वर है, वह अनुस्वार तथा चन्द्रबिन्दु से युक्त हो जाने पर ॐ होकर शूद्रगणों का सेतु कहा गया है।।४४।।

निःसेतुः च यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्पति।
मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात्क्षरति यज्वनाम्।।४५।।

जैसे जल पर सेतु न होने से क्षणमात्र में व्यक्ति जल में बह जाता है, उसी प्रकार सेतुरहित मन्त्र क्षणमात्र में ही क्षरित हो जाता है और जप करने वाले को उसका फल नहीं मिलता।।४५।।

तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु चतुर्वर्णादिजातयः।
पार्श्वयोः सेतुमादाय जपकर्माचरन्ति च ॥४६॥
शूद्राणामादिसेतुर्वा द्विसेतुर्वा यथेच्छया।
द्विसेतवः समाख्याता सर्वदैव द्विजातयः ॥४७॥

इति सेतुप्रकरणम्

अतएव द्विजाति-प्रभृति चारो वर्णों को समस्त मन्त्रों के दोनों ओर सेतु लगाकर कर्म का अनुष्ठान करना चाहिये। शूद्रगण को इच्छानुसार मन्त्र के आदि में अथवा दोनों ओर सेतु लगाना चाहिये; लेकिन द्विजगणों को सर्वदा मन्त्र के दोनों ओर सेतु लगाना चाहिये।।४६-४७।।

महासेतुश्च देवेशि! सुन्दर्या भुवनेश्वरी।
कालिकायाः स्वबीजञ्च तारायाः कूर्चबीजकम्।
अन्यासान्तु वधूबीजं महासेतुर्वरानने ॥४८॥

भगवान् कहते हैं—हे देवेशि! सुन्दरी का महासेतु है—भुवनेश्वरी (ह्रीं)। कालिका का महासेतु उनका अपना बीज (क्रीं) है। तारा का महासेतु है—कूर्चबीज (हुं) एवं अन्यान्य देवताओं का महासेतु है—वधूबीज (स्त्रीं)।।४८।।

आदौ जप्त्वा महासेतुं पश्चान्मन्त्रमनन्यधीः।
धनैर्धनेशतुल्योऽसौ वाण्या वागीश्वरोपमः।
युद्धे कृतान्तसदृशो नारीणां मदनोपमः ॥४९॥

प्रथमतः महासेतु का जप करके अनन्य चित्त से मन्त्र का जप करना चाहिये। ऐसा जप करने वाला धन-धान्य से धनाधीश होकर कुबेर के समान हो जाता है। वाणी में वह वागीश्वर के समान हो जाता है। युद्ध में वह कृतान्त (यमराज) के समान तथा नारीगण के लिये कामदेव के समान हो जाता है।।४९।।

भुवनेश्वरी मायाबीजम्। महासेतुं पश्चादपि जपेत् सेतुसाम्यादिति सम्प्रदायविदः ॥५०॥

इति महासेतुप्रकरणम्

भुवनेश्वरी = मायाबीज ह्रीं। सेतु के साथ महासेतु का बाद में भी जप किया जा सकता है—ऐसा सम्प्रदायविदों का कथन है।।५०।।

तत्रैव—

अथ वक्ष्यामि निर्वाणं शृणुष्वावहितानघे!।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य मातृकाद्यं समुच्चरेत् ॥५१॥

उसी कालिकापुराण में कहा गया है कि हे अनघे! अब महानिर्वाण कहता हूँ; मन लगाकर उसे सुनो। प्रथमतः प्रणव कहकर मातृकाद्य (मातृका का प्रथम वर्ण) 'अ' का उच्चारण करना चाहिये।।५१।।

मातृकान्तु समस्ताञ्च पुनः प्रणवमुच्चरेत्।
एवम्पुटितमूलन्तु प्रजपेन्मणिपूरके ।।५२।।
एवं निर्वाणमीशानि! यो न जानाति पामरः।
कल्पकोटिसहस्रेषु तस्य सिद्धिर्न जायते ।।५३।।

इसके पश्चात् समस्त मातृका वर्णों का उच्चारण करके पुनः प्रणव का उच्चारण करना चाहिये। इस प्रकार पुटित मूल मन्त्र का मणिपूर में जप करना चाहिये। हे ईशानि! जो इस प्रकार का निर्वाण नहीं जानता, उस पापी को करोड़ों कल्पों में एवं सहस्र वर्षों में भी सिद्धि नहीं मिलती।।५२-५३।।

मातृकाद्यां अकारम्। समस्तां मातृकामिति। प्रथमोच्चारितमकारमादायेति भावः। एवं पुटितमूलस्त्विति। प्रणवमातृका प्रणवः पुटितं मूलमित्यर्थः। तेन प्रणवो मातृका प्रणवो मूलं प्रणवो मातृका प्रणवश्चेति सप्तभिर्निर्वाणम्। इदमेव मन्त्रशिखेत्युच्यते। सर्वत्र मातृका सानुस्वरैव गृह्यते। जपादावेवं सप्तधा जपेत् ।।५४।।

इति निर्वाणम्

मातृका का आद्य वर्ण अर्थात् 'अ'। प्रथम उच्चरित अकार का उच्चारण करके उसके अनन्तर समस्त मातृका लगाये। यही 'समस्तां मातृकाम्' का रहस्य है। पहले 'अ' लगाकर पुनः अकारादि मात्रिका—यह तात्पर्य नहीं है अर्थात् 'अ' एक ही बार लगाये। 'एवं पुटितमूलं' का अर्थ है कि प्रणव, मातृका वर्ण तथा प्रणव द्वारा सम्पुटित मूलमन्त्र। अर्थात् प्रणव-मातृका-प्रणव-मूल मन्त्र-मातृका तब पुनः प्रणव—इन सात से निर्वाण सम्पादित होता है। इसे मन्त्रशिखा कहा गया है। सर्वत्र मातृका को अनुस्वार-युक्त ही प्रयुक्त किया जाता है। जप के आदि में इस प्रकार से सात बार जप करे।।५४।।

अन्यद्वा कथितं यन्मे इति यद्देव्या पृष्टं तत्र शिवस्योत्तरं तु—
ऋषिच्छन्दो देवता च बीजं शक्तिश्च कीलकम्।
भावयेद्यत्नतो देवि! ततः स्वेष्टादिकं जपेत् ।।५५।।
एवं यदि जपेन्मन्त्री मन्त्रराजमनुत्तमम्।
षण्मासात् सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
साक्षात् स एव पूतात्मा देवैः सह विराजते ।।५६।।

इति ऋष्यादिन्यासः

अन्यद्वा कथितं यन्मे—अर्थात् 'मैंने अन्य जो कुछ कहा (पूछा)' यह कहकर देवी जो प्रश्न करती हैं, उस प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव उत्तर देते हैं—हे देवि! ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा कीलक की यत्नपूर्वक भावना करनी चाहिये। उसके अनन्तर अपने (दीक्षामन्त्र) मन्त्र का जप करे (अथवा काम्य कर्म-हेतु तदनुरूप मन्त्र का जप करे)। इस प्रकार जो कोई उत्तम मन्त्रराज का जप करेगा, उसे छः मास में सिद्धि प्राप्त होगी; यह निःसंदिग्ध है।।५५-५६।।

कुलार्णवे—

जाते सूतकमादौ स्यादन्ते च मृतसूतकम्।
सूतकद्वयसंयुक्तो यो मन्त्रः स न सिध्यति ॥५७॥

कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि मन्त्र का प्रथम उत्पत्तिजनित उच्चारण जातकाशौच (जन्म होने का अशौच) तथा अन्त मृताशौच होता है। जो इन सूतकों से युक्त मन्त्र का जप करता है, वह सिद्ध नहीं होता।।५७।।

तस्माद् देवि! प्रयत्नेन ध्रुवेण पुटितं ध्रुवम्।
अष्टोत्तरशतं वापि सप्तवारं जपादितः।
जपान्ते च ततो जप्याच्चतुर्वर्गफलाप्तये ॥५८॥

ध्रुवेण—प्रणवेन।

अतएव यत्नपूर्वक ध्रुव (प्रणव) के द्वारा मन्त्र को पुटित करे। जप प्रारम्भ करते समय १०८ बार अथवा सात बार प्रणव का जप करे। इसके पश्चात् मन्त्र-जप (यथाशक्ति) करके इसी प्रकार प्रणव का अन्त में भी जप करे। इससे चतुर्वर्ग-सिद्धि प्राप्त होती है।।५८।।

अन्त वाले ध्रुव का अर्थ है—निश्चित (प्रणव से)।

तन्त्रान्तरे—

ब्रह्मबीजं मनोर्दत्वा चाद्यन्ते परमेश्वरि!।
सप्तवारं जपेन्मन्त्रं सूतकद्वयमुक्तये ॥५९॥

अन्य तन्त्र के अनुसार दोनों सूतकों से मुक्ति के लिये मन्त्र के आदि तथा अन्त में प्रणव लगाकर सात बार जप करना चाहिये।।५९।।

अथ सप्तच्छदा

तन्त्रे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ऐश्वर्यं बिन्दुसंयुतम्।

कामबीजं ततो देवि! ह्ल्लेखा तदनन्तरम् ।
पुनः प्रणवमुद्धृत्य विद्या पञ्चाक्षरी प्रिये ॥६०॥
देवीभूतानि सर्वाणि तथा च साधकोत्तमाः ।
हरन्ति सर्वतेजांसि विद्यां सप्तच्छदां विना ॥६१॥

अब सप्तच्छदा कहा जाता है। भगवान् कहते हैं—हे प्रिये! हे देवि! प्रथमतः प्रणव का उद्धार करके बिन्दु-संयुत ऐश्वर्य (ऐं), कामबीज (क्लीं), तदनन्तर ह्ल्लेखा, तदनन्तर पुनः प्रणव का उद्धार करने से पञ्चाक्षरी विद्या का उद्धार होता है।

इसके पाँचों अक्षर देवीस्वरूप हैं। श्रेष्ठ साधक भी देवी का ही स्वरूप है। सप्तच्छदा विद्या विना इन मन्त्रों का समस्त तेज हर लिया जाता है।।६०-६१।।

ऐश्वर्या ऐकारः तेन ॐ ऐं क्लीं ह्रीं ॐ इति। पञ्चबीजात्मकसप्तच्छदा-मप्यादावन्ते च सकृत् सकृज्जपेत् ॥६२॥

ऐश्वर्य = ऐकार। अतएव 'ॐ ऐं क्लीं ह्रीं ॐ' यह पञ्चविद्यात्मक सप्तच्छदा है, जिसका जप के आदि में एक बार तथा जपान्त में एक बार जप करना चाहिये।।६२।।

अथामृता

यथा दोषशान्तिप्रकरणे—

प्रणवो मातृका देवी ह्ल्लेखेत्यमृतत्रयम् ।
अमृतत्रयसंयोगाद् दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥६३॥

सर्वसाधारण्यमृता विशेषस्तु—

शिव उवाच

शृणु वक्ष्यामि देवेशि! अमृतां सर्वसिद्धिदाम् ।
यासां संयोगमात्रेण सर्वविद्या सुसिद्धिदा ॥६४॥

अनन्तर अमृता कही जाती है। जैसा कि दोषशान्ति प्रकरण में कहा गया है कि प्रणव, मातृका, देवी तथा ह्ल्लेखा को अमृतत्रय कहते है। इसका संयोग होने से दुष्ट मन्त्र भी सिद्ध हो जाते हैं। यह सर्वसाधारण अमृता है। भगवान् शिव इस सम्बन्ध में कहते हैं कि हे देवि! सर्वविद्या-प्रदायिनी अमृता को सुनो, जिसके सम्बन्धमात्र से समस्त विद्या सिद्ध हो जाती है।।६३-६४।।

श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं—

एषा नवाक्षरी विद्या अमृताख्या सुसिद्धिदा ।
सुन्दरीसम्मता विद्या अमृता सिद्धिदायिनी ॥६५॥

श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं—यह नवाक्षरी विद्या अमृता है और सुसिद्धि देने वाली है। यह सुन्दरी-सम्मता अमृता विद्या सिद्धिप्रदा है।।६५।।

अष्टोत्तरशतं नित्यं प्रातःकाले भवेत्ततः।
मध्याह्ने च जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरशतं शुभे!।
एवं सर्वत्र बोद्धव्यं दशविद्यासु सम्मतम्॥६६॥

नित्य प्रातःकाल १०८ बार ऊपर लिखे मन्त्र का जप करना चाहिये एवं मध्याह्न में भी १०८ बार जप करना चाहिये। हे शुभे! दशमहाविद्या-सम्मत यह मन्त्र है।।६६।।

श्रीदुर्गा उवाच

मन्त्रत्रयं महाभाग! संश्रुतं भवतो मुखात्।
कथ्यतां देव! सिद्धीश दशविद्यासु सम्मतम्।
कथ्यतां कथ्यतां देव! यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति॥६७॥

श्री दुर्गा कहती हैं कि हे महाभाग! आपके मुख से मैंने मन्त्रत्रय का श्रवण किया। हे देव! हे सिद्धीश! दस महाविद्याओं के लिये सुसम्मत अमृतमन्त्र को कहिये। हे देव! यदि आप मुझसे स्नेह करते हैं, तब इसे अवश्य कहें।।६७।।

श्रीदेव उवाच

सर्वासां दशविद्यानां मन्त्रं वक्ष्यामि संशृणु॥६८॥

अब सभी दश महाविद्या के मन्त्रों को कहता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो।

ऐं ह्रीं ऐं ऐं ह्रीं ऐं—

इति ते कथित विद्या भैरवीषु च सम्मता।
परात् परतरा विद्या अमृताऽमृतदायिनी॥६९॥

'ऐं ह्रीं ऐं ऐं ह्रीं ऐं' भैरवीसम्मत यह अमृता विद्या तुमसे कहा। अमृत-प्रदायिनी यह विद्या श्रेष्ठतर है।।६९।।

एषा सप्ताक्षरी विद्या भुवनेश्याञ्च सम्मता।
द्रुतसिद्धिप्रदा विद्या कलावमृतदायिनी॥७०॥

'ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं' रूपी सप्ताक्षरी विद्या भुवनेश्वरी महाविद्या के लिये सम्मत है। अमृतदायिनी यह विद्या कलिकाल में शीघ्र सिद्धि देती है।।७०।।

विशेष—सप्ताक्षरी मन्त्र में 'क्लीं' के स्थान पर 'क्रीं' उचित प्रतीत होता है।

ऐं ऐं ऐं ह्रीं ह्रीं ह्रीं—

षडक्षरी महाविद्या बगलासु च सम्मता।
द्रुतसिद्धिप्रदा विद्या पूर्वोक्तजपतः प्रिये॥७१॥

'ऐं ऐं ऐं ह्रीं ह्रीं ह्रीं' यह षडक्षरी अमृता विद्या बगला देवी के लिये सम्मत है। इसका पूर्वोक्त रीति से जप करने से शीघ्र सिद्धि मिलती है।।७१।।

ह्रीं क्लीं स्त्रीं ह्रीं हुं ह्रीं स्वाहा—

अष्टाक्षरी महाविद्या मातङ्गीषु च सम्मता।
द्रुतसिद्धिप्रदा विद्या सुजपेद्भक्तितो यदि।।७२।।

'ह्रीं क्लीं स्त्रीं ह्रीं हुं ह्रीं' यह अष्टाक्षरी महाविद्या मातङ्गी के लिये सम्मता है। यदि इसका भक्तिपूर्वक अच्छी प्रकार जप किया जाय तो शीघ्र सिद्धि देती है।।७२।।

विशेष—यहाँ भी कुलविद्वान् 'क्लीं' के स्थान पर 'क्रीं कहते हैं।

श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं—

सप्ताक्षरी महाविद्या कमलासु च सम्मता।
द्रुतसिद्धिप्रदा विद्या कलौ चामृतदायिनी।।७३।।

'श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं' यह सप्ताक्षरी विद्या कमला के लिये सम्मता है। यह (अमृतदायिनी विद्या) कलिकाल में शीघ्र सिद्धि देती है।।७३।।

हुं हुं हुं ह्रीं हुं हुं हुं—

सप्ताक्षरी महाविद्या चामृता धनदासु च।
द्रुतसिद्धिप्रदा विद्या कलौ चामृतदायिनी।।७४।।

'हुं हुं हुं ह्रीं हुं हुं हुं' यह सप्ताक्षरी महाविद्या धनप्रदा है। कलिकाल में अमृतदायिनी यह विद्या शीघ्र सिद्धि देती है।।७४।।

ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं—

सप्ताक्षरी महाविद्या मर्दिनीषु च सम्मता।
द्रुतसिद्धिप्रदा नित्या कलौ चामृतदायिनी।।७५।।
या नित्या कालिका देवी कलौ जाग्रत्स्वरूपिणी।
तथापि कालिका देव्या रहस्यं कथयामि ते।।७६।।

'ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं' रूपा सप्ताक्षरी महाविद्या महिषमर्दिनी के लिये सम्मत है तथा यह अमृतप्रदायिनी विद्या कलिकाल में शीघ्र सिद्धि देती है। यह नित्या कालिका देवी कलिकाल में नित्य जाग्रता हैं। इनका रहस्य तुमसे कहता हूँ।।७५-७६।।

क्लीं क्रीं ऐं ब्लूं ब्लूं ह्रीं श्रीं हुं ॐ स्त्रीं स्वाहा।
द्वादशाक्षरी महाविद्या कालिकासु च सम्मता।
द्रुतसिद्धिप्रदा नित्या कलौ चामृतदायिनी।।७७।।

क्लीं क्रीं ऐं ब्लूं ब्लूं ह्लीं श्रीं हुं ॐ स्त्रीं स्वाहा-रूपी बारह अक्षरों वाली यह महाविद्या कालिका के लिये सम्मत है। यह शीघ्र सिद्धिप्रदा तथा अमृतदायिनी है। यह कलिकाल में अतिशीघ्र सिद्धि देती है।।७७।।

ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा।

कथितैषा महाविद्या छिन्नापञ्चदशाक्षरी।
गुह्याद् गुह्यतरं गुह्यं कथितं तव दुर्लभम्।।७८।।
नातः परतरं तत्त्वं कोटितन्त्रेषु सम्मतम्।
प्रातःकाले जपेन्नित्यं चाष्टोत्तरशतं प्रिये! ।।७९।।

'ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा'—पन्द्रह अक्षरों वाली यह महाविद्या छिन्नमस्ता की अमृता महाविद्या कही जाती है। यह विद्या गुप्त से भी गुप्त है। जिस दुर्लभ विद्या को तुमसे कहता हूँ, वह 'ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा' यह विद्या करोड़ों तन्त्रों से सम्मत है एवं इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ तत्त्व कुछ नहीं है। हे प्रिये! नित्य प्रातः इसका १०८ जप करना चाहिये।।७८-७९।।

त्रिसंध्यायां जपेद् विद्या पूर्वोक्तक्रमतः सदा।
यथा दिवा तथा रात्रौ जपात्सिद्धीश्वरो भवेत्।
ततस्तु पूजयेद् धीमान् यस्य या स्वेष्टदेवताः ।।८०।।

इति वर्णविलासतन्त्रे गणेशजतुकर्णसंवादे, त्रयोदशपटलेऽभिहितम्।

सदा त्रिसन्ध्या में पूर्वोक्त क्रम से इस विद्या का जप करना चाहिये। जैसे दिन में जपे, उसी प्रकार रात्रि में भी जप करे। जापक इससे सिद्धियों का अधिपति हो जाता है। तदनन्तर धीमान् साधक अपने-अपने इष्टदेव का पूजन करे—यह वर्णविलासतन्त्र में गणेश तथा जतुकर्ण संवादस्वरूप त्रयोदश पटल में कहा गया है।।८०।।

तत्रैव नवमपटले—

सुन्दरी भैरवी तारा मातङ्गी बगला तथा।
धनदा उग्रचण्डा च कलौ निद्रातुरा शुभे! ।।८१।।
दीक्षा च छिन्नमस्तायां कलौ नास्ति सुरेश्वरि! ।
नास्ति नास्ति कलौ नास्ति इति निर्णयमीरितम्।
न सिद्धिश्छिन्नमस्तायामस्त्रघातमवाप्नुयात्।।८२।।

उसी ग्रन्थ के नवम पटल में कहा है कि हे शुभे! सुन्दरी, भैरवी, तारा, मातङ्गी, बगला, धनदा तथा उग्रचण्डा को कलिकाल में निद्रातुरा कहा गया है। हे सुरेश्वरि!

कलिकाल में छिन्नमस्ता की मन्त्रदीक्षा नहीं होती। कलि में इसके लिये नहीं नहीं नहीं—यही सिद्धान्त है। छिन्नमस्ता की सिद्धि कलिकाल में विहित नहीं है। उसे करने से अस्त्रघात लगता है।।८१-८२।।

कलौ ब्राह्मी सुरश्रेष्ठा जाग्रद्रूपा च कालिका।
श्रुत्वा च कालिकामन्त्रं कलौ सिद्धीश्वरो भवेत्।।८३।।

हे देवि! कलिकाल में सुरश्रेष्ठा ब्रह्मरूपा कालिका ही जाग्रत् रहती हैं। कालिका मन्त्र का श्रवण करने से कलि में सिद्धि मिलती है।।८३।।

श्रीदेव्युवाच

पृच्छाम्येकं महाभाग! पार्वतीश्वर! शङ्कर!।
अज्ञानाद्यदि वा मोहाच्छिन्नमस्तासु दीक्षितम्।
किमु पापं हि योगीन्द्र! तन्मे कथय सम्प्रतम्।।८४।।

श्री देवी कहती हैं—हे महाभाग! पार्वतीपति शङ्कर! एक जिज्ञासा है। अज्ञान से अथवा मोह के कारण कलिकाल में यदि कोई छिन्नमस्ता के मन्त्र की दीक्षा ले लेता है, तब हे योगीन्द्र! उसके प्रतिकार का क्या उपाय है? कृपया कहिये।।८४।।

श्रीशिव उवाच

छिन्नामन्त्रं तदा देवि! न च त्याज्यं कदाचन।
उपायं तस्य वक्ष्यामि शृणु हे नगनन्दिनि!।।८५।।
यत्कृत्वा साधकः सर्वेश्छिन्नासु सिद्धिभाग्भवेत्।
शृणु विद्यां प्रवक्ष्यामि विद्याञ्चामृतदायिनीम्।।८६।।

भगवान् श्री शिव कहते हैं—यदि कोई छिन्नमस्ता के मन्त्र से दीक्षित हो ही जाता है, तब वह उसका कभी भी त्याग न करे। हे पर्वतनन्दिनि! उसके प्रतिकार का उपाय कहता हूँ, सुनो। समस्त साधक जिस विधि को करके छिन्नमस्ता महाविद्या की सिद्धि प्राप्त करते हैं, उस विद्या का श्रवण करो।।८५-८६।।

क्रीं ॐ क्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं हुं श्रीं ॐ श्रीं स्त्रीं ॐ स्त्रीं हुं ॐ सं स्वाहा।

एषा ते कथिता विद्या चामृताऽमृतदायिनी।
अमृतैः पुटितं कृत्वा प्रत्यहं प्रजपेच्छतम्।।८७।।
एवं हि प्रत्यहं कुर्याद्यावल्लक्षं समाप्यते।
ततस्तु सोऽधिकारी स्यात् पुरश्चरणपूजयोः।।८८।। इति।

इस अमृतदायिनी अमृत विद्या को तुम्हें बतलाता हूँ। इसे अमृत द्वारा पुटित करके प्रतिदिन (छिन्नमस्ता मन्त्र का) १०८ बार जप करे।

जब तक १००००० जप की समाप्ति न हो जाय तब तक नित्य जप करता रहे। संख्या पूर्ण होने पर वह पुरश्चरण तथा पूजा का (छिन्नमस्ता पूजा) का अधिकारी होता है। मन्त्र है—क्रीं ॐ क्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं हुं श्रीं ॐ श्रीं स्त्रीं ॐ स्त्रीं हुं ॐ सं स्वाहा।।८७-८८।।

जपादौ शाक्तैः कामकला ध्येयेति तद्ध्यानमुच्यते ।।८९।।

जप के आदि में शाक्तों द्वारा कामकला का ध्यान करना चाहिये। इसलिये कामकला का ध्यान कहते हैं।।८९।।

यथा समयातन्त्रे—

वक्त्रविम्बकुचद्वन्द्वसपरार्द्धावसानकम ।
श्रुतिनासाक्षिदोर्दण्डयुगपादयुगान्वितम् ।।९०।।
महाकालकलारूपमेतदेव विचिन्तयेत् ।
एतन्महाकामकलाध्यानात्सर्वं वशं नयेत् ।।९१।।

समयातन्त्र में कहा गया है कि इस कामकला का मुख तथा स्तनद्वय के अधोभाग में हकार का अर्ध अवस्थित है (हकारार्द्ध)। वे श्रुति, नसिका, अक्षि (चक्षु), बाहुद्वय तथा पादद्वय से युक्त हैं। महाकाल की कलारूप इन कामकला के स्वरूप का चिन्तन करने से सबको वश में किया जा सकता है।।९०-९१।।

क्षोभयेत् सर्ववनिताः स्वर्गपातालसंस्थिताः ।
मर्त्यजा दृष्टिमात्रेण स्फुरज्जघनमण्डला ।
भयलज्जाविनिर्मुक्ता वशगा तस्य जायते ।।९२।।

वह स्वर्ग, पाताल तथा इस मृत्युलोक की समस्त नारियों को वश में कर सकता है। इस मृत्युलोक की नारियाँ उसके दृष्टिपातमात्र से अपना जघनमण्डल उन्मुक्त करके भय तथा लज्जा का त्याग करके उसके वश में आ जाती हैं।।९२।।

सपरार्द्धमिति। सात्परः सपरो हकारस्तदर्द्धमवसानमध्ये हं शं यस्येत्यर्थः। तथा चोक्तं श्रीमताचार्येण–मुखं बिन्दुं कृत्वा स्तनयुगमधस्तस्य तदधो हकारार्द्धं ध्यायेद् हरमहिषि! ते मन्मथकलामित्यादि। त्रिपूटा भुजङ्गप्रयातेऽपि व्यक्तं—सदानन्दपूर्णां हकारार्द्धवर्णां त्रिबिन्दुस्वरूपां त्रिशक्तिं भजामीति ।।९३।।

सपरार्द्ध का अर्थ है—सकार से परवर्त्ती जो है अर्थात् 'ह'। उसका अर्ध अवसान अर्थात् हं शं। श्रीमत् शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी ग्रन्थ में भी यही कहा है—हे

हरमहिषि! बिन्दु को मुख मानकर उसके अधोभाग में हकारार्द्ध को स्तनयुगल मानकर तुम्हारी मन्मथ कला का ध्यान करूंगा। त्रिपूटा के भुजंगप्रयात छन्द में यही तथ्य स्पष्टतः कहा गया है— 'सर्वदा आनन्दपूर्णा हकारार्द्धवर्णा त्रिबिन्दुस्वरूपा त्रिशक्ति का भजन करो'।।९३।।

श्रीक्रमेऽपि—

या सा मधुमतीनाम्नी माया मोहनकारिणी।
बाह्याभ्यन्तरभेदेन चिन्तनीयाञ्च तां शृणु ।।९४।।

श्रीक्रमशास्त्र में भी कहा है कि वह मधुमती नामक मोहनकारिणी माया बाह्य तथा आभ्यन्तर भेद से चिन्तनीया है। उसका श्रवण करो।।९४।।

त्रैलोक्यमेकरूपेण स्वात्मानमेकरूपिणीम्।
एकाकृतिस्वरूपेण सर्वां शक्तिं विचिन्तयेत् ।।९५।।
भावयेत् कामिनीं सर्वां देवीमींवर्णरूपिणीम्।
ईङ्कारभूतवर्णस्यावयवञ्च चतुष्टयम् ।।९६।।

त्रैलोक्य में व्याप्त एक ही रूप में स्थिता, स्वात्मस्वरूपा उन एकरूपिणी का चिन्तन करे। समस्त शक्तियों का एक रूप से चिन्तन करे। समस्त कामिनियों की 'ई' वर्णरूपिणी देवीस्वरूपा भावना करे। 'ई'कार वर्ण के चार अवयव हैं।।९५-९६।।

बिन्दुत्रयस्य देवेशि! प्रथमं बिन्दुवक्त्रकम्।
बिन्दुद्वयं कुचद्वन्द्वं हृदि स्थाने नियोजयेत्।
हकारार्द्धकलां सूक्ष्मां योनिमध्ये विचिन्तयेत् ।।९७।।

हे देवि! बिन्दुत्रय का प्रथम बिन्दु है—मुख। अन्य दो बिन्दु का हृदय स्थान में स्तनद्वय के रूप में चिन्तन करे। योनि में सूक्ष्म हकार की अर्धकला का चिन्तन करे।।९७।।

तन्त्रचूडामणौ—

मुखं बिन्दुवदाकारं तदधः कुचयुग्मकम्।
सर्वाविद्यामृतापूर्णं सर्ववाग्विभवप्रदम् ।।९८।।
तदधः सपरार्द्धञ्च सुपरिष्कृतविस्तृतम्।
सर्वदेवादिभूतं तत् सर्वदेवनमस्कृतम् ।।९९।।
सर्वाह्लादकरं पूर्णं सर्वरञ्जनकारकम्।
सर्वार्थसाधकं देवं भावयेत् साधकोत्तमः ।।१००।।

एतेन सानुस्वारश्चतुर्थस्वरः कामकलेति तत्त्वम्।

इति कामकलाविवरणम्

तन्त्रचूड़ामणि में कहा गया है कि मुख बिन्दु के समान आकारयुक्त है। उसके अधोदेश में स्तनद्वय हैं। यह सर्वविद्यारूप अमृतपूर्ण तथा समस्त वाग्विभव को देने वाला है।

उसके अधोदेश में सपरार्द्ध ('ह' का अर्ध) सुपरिष्कृत तथा विस्तृत है। वह समस्त देवगण का आदिभूत है, सबका रञ्जनकारक है। श्रेष्ठ साधक को इन सर्वार्थ-साधक देवता की भावना करनी चाहिये।।९८-१००।।

इसके द्वारा यह तत्त्व प्रतिपादित होता है कि अनुस्वारयुक्त चतुर्थ स्वर ईं कामकला है। कामकला का विवरण समाप्त होता है।

तन्त्रे—

मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः ॥१॥

व्यग्रत्वमाकुलता। निर्वेदो ग्लानिः।

अन्य तन्त्र में कहते हैं कि मन को विषयों से लौटा लेना ही शौच है। मन्त्र का अर्थ-चिन्तन ही मौन है। व्यग्र न होना तथा ग्लानि का न होना जपसम्पत्ति-प्राप्ति का कारण है।

व्यग्रत्व = आकुलता, निर्वेद—ग्लानि।।१।।

कुलार्णवे—

मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।
न सिध्यति वरारोहे! कल्पकोटिजपादपि ॥२॥

इति वचनान्मनःपरमशिवकुलकुण्डलिनीवायूनां मेलनमावश्यकम्। तच्च वक्ष्यमाणपारिभाषिकयोनिमुद्रामध्यनिविष्टषट्चक्रभेदात् सिद्ध्यति ॥३॥

कुलार्णव में कहते हैं कि हे वरारोहे! मन अन्यत्र हो, शिव अन्यत्र हो, शक्ति अन्यत्र हो, प्राण अन्यत्र हो तो ऐसी स्थिति में करोड़ों कल्प में भी जपसिद्धि नहीं होती। इस वचनानुसार मन, परमशिव, कुलकुण्डलिनी एवं प्राणवायु का मिलन आवश्यक है। योनिमुद्रा के मध्य स्थित षट्चक्र-भेदन से यह मिलन सिद्ध होता है।।२-३।।

तथा गौतमीये—

पशुभावस्थितो मन्त्राः केवलं वर्णरूपिणः।
सुषुम्ना ध्वन्युच्चरिताः प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते ॥४॥

प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति फलदा भवन्तीत्यर्थः।

गौतमीय तन्त्र में कहा हैं कि जब मन्त्र पशुभाव से स्थित है, तब वह केवल वर्ण-स्वरूप है। जब वह सुषुम्ना ध्वनि से उच्चरित होता है, तब वह फलदाता हो जाता है। प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति अर्थात् फलप्रद हो जाता है।।४।।

मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोतानि परिभाषयेत्।
तामेव परमे व्योम्नि परमानन्दबृंहिते।
दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजाहोमादिभिर्विना ।।५।।

यह भावना करे कि मन्त्र के अक्षर चित् शक्तिरूपा कुलकुण्डलिनी में ग्रथित हैं। वह चित् शक्ति परमानन्दमय परमव्योम में (परमात्मा में) ग्रथित है—यह भावना भी करे। पूजा होमादि के विना केवल भावना मात्र से ही आत्मा का सद्भाव परिलक्षित होने लगता है।।५।।

अस्यार्थः—मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ कुलकुण्डलिन्यां प्रोतानि ग्रथितानि परिभाषयेत्। तामेव कुलकुण्डलिनीमेव। परमे उत्कृष्ट अपरिमेयत्वात् व्योम्नि व्योमतुल्ये अर्थात् परमात्मनि प्रोतां परिभाषयेत्। अतएव पूजा-होमादिभिर्विना आत्मनः सद्भावं आत्मतत्त्वं दर्शयति दर्शयेदित्यर्थः। जपे मन्त्रार्थादिज्ञानमप्यावश्यकम् ।।६।।

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि यह भावना करे कि मन्त्राक्षर कुलकुण्डलिनी (चित् शक्ति) में ग्रथित है। कुलकुण्डलिनी का ही अपरिमेयत्व के कारण परम उत्कृष्ट परम व्योम में व्योमतुल्य अर्थात् परमात्मा में ग्रथित रूप से भावना करे। जप में मन्त्रार्थ का ज्ञान भी आवश्यक है।।६।।

यथा—

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
शतकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते ।।७।।
लुप्तबीजाश्च ये मन्त्रा न दास्यन्ति फलं प्रिये।
मन्त्राश्चैतन्यसहिताः सर्वसिद्धिकराः स्मृताः ।।८।।
चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्ता वर्णास्तु केवलम्।
फलं नैव प्रयच्छन्ति कल्पकोटिजपैरपि ।।९।।

जो व्यक्ति मन्त्र का अर्थ, मन्त्र का चैतन्य तथा योनिमुद्रा नहीं जानता, उसे शतकोटि कल्पों में भी जपसिद्धि नहीं होती। हे प्रिये! जिन मन्त्रों का बीज (चैतन्य) लुप्त है, वे फल नहीं देते। चैतन्य होकर ही वे सर्वसिद्धिप्रद होते हैं, ऐसा कहा गया है।

चैतन्यरहित मन्त्र केवल वर्णसमूह-मात्र हैं (शक्तिहीन हैं); करोड़ों कल्पों में भी उनके जप से लाभ तथा फल प्राप्त नहीं होता।।७-९।।

तत्र मन्त्रार्थो मन्त्रप्रतिपाद्यदेवतैव। मन्त्रचैतन्यन्तु मूलाधारपद्मं पीतं व श ष सयुक्तं चतुर्दलं, तन्मध्यस्थत्रिकोणवह्निमण्डलान्तर्गताधोमुखस्वयम्भूलिङ्गं शङ्खावर्त्तवद् दक्षिणावर्त्तसार्द्धत्रिवलयेन संवेष्ट्य स्थितोर्ध्वमुखी प्रसुप्त-भुजगाकारा नीवारशूकवत् तन्वी तड़िदिव पीतवर्णा सूर्यकोटिसमा चन्द्र-कोटिशीतला कुलकुण्डलिनी वर्त्तते। तत्रैव मन्त्राक्षराणि ग्रथितानि भावयेत्। ततो रमिति वह्निबीजमुच्चार्य तत्र वह्निमुज्ज्वाल्य हुमिति कूर्चबीजमुच्चार्य तेनाग्निना कुलकुण्डलिनीं मन्त्राक्षराणि च चेतयेदितीति मन्त्रचैतन्यम् ॥१०॥

यहाँ मन्त्रार्थ से तात्पर्य है—मन्त्र का देवता। अब मन्त्रचैतन्य कहा जाता है। मूलाधार पद्म पीत वर्ण है और व श ष स चार वर्णयुक्त है। उसके मध्य में स्थित त्रिकोण अग्निमण्डलान्तर्गत अध:मुखी स्वयम्भु लिंग को शङ्ख के आवर्त्त के समान साढ़े तीन फेरे से आवेष्टित करके ऊर्ध्वमुखी प्रसुप्त सर्पाकृति रूप से अवस्थित नीवारतन्तु के समान तन्वी (पतली), विद्युत् के समान पीतवर्णा, करोड़ों सूर्य के समान तेजोमयी तथा करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतला कुलकुण्डलिनी स्थित है। यह भावना करे कि मन्त्राक्षर कुलकुण्डलिनी में ग्रथित हैं। अब 'रं' अग्निबीज की भावना करके वहाँ की अग्नि को प्रज्ज्वलित करके 'हुं' की भावना करे और इस अग्नि से कुल-कुण्डलिनी तथा मन्त्र के अक्षरों को चेतना प्रदान करे। यही मन्त्रचैतन्य कहलाता है।।१०।।

अथवा—

सम्पुटीकृत्य मन्त्रेण आदिलान्तान् सबिन्दुकान्।
पुनश्च सविसर्गांस्तान् क्षकारं केवलं जपेत्।
एवं जप्त्वापदिष्टश्चेत् प्रबुद्धः शीघ्रसिद्धिदः ॥११॥

अथवा अकार से लेकर ल-पर्यन्त सभी वर्णों के ऊपर बिन्दु लगाये। उसे मन्त्र द्वारा पुटित करके केवल 'क्ष' का जप करे। पुनः उन वर्णों को विसर्ग से पुटित करके केवल 'क्ष' का जप करे। इस प्रकार से करके उपदिष्ट होने पर वह चैतन्य होकर शीघ्र सिद्धि देने वाला होता है।।११।।

तथा च—आदौ मन्त्रमुच्चार्य सानुस्वारमकारं पुनर्मन्त्रमुच्चारयेत्। एवं द्वितीयलकारपर्यन्तम्, ततः केवलं 'क्षं' इति जपेत्। ततो मूलमुच्चार्य सविसर्गमकारं ततो मूलमित्येवं सविसर्गद्वितीयलकारपर्यन्तमुच्चार्य केवलं क्षम् इति जपेत्। एवं जप्त्वा गुरुणा दत्तो मन्त्रः सर्वदैव प्रबुद्धः, तस्य चैतन्याकरणेऽपि न क्षतिः ॥१२॥

प्रथमतः मन्त्र उच्चारण करके अं का उच्चारण करके पुनः मन्त्र का उच्चारण करे। इस प्रकार ल-पर्यन्त उच्चारण करे। इतना करके अब केवल 'क्ष' का जप करे। तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण करके विसर्गयुक्त अ (अः) का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण करे। ऐसा 'लः' पर्यन्त करना होगा। इस प्रकार जप करे। गुरु-प्रदत्त मन्त्र सदा प्रबुद्ध होता है। उसे चैतन्य न करने पर भी कोई क्षति नहीं होती।।१२।।

अथ का योनिमुद्रा? न तावन्मुद्राविशेषः। तस्य वैष्णवाद्यविषयकत्वेना-सार्वत्रिकत्वादिति चेदुच्यते। अत्र योनिमुद्रा पारिभषिकी ॥१३॥

योनिमुद्रा क्या है? यह मुद्रा वैष्णवादि साधकों के लिये न होने से सार्वत्रिक नहीं है। यदि कोई यह कहे तब इसका उत्तर यह है कि यहाँ योनिमुद्रा पारिभाषिकी-मात्र है। मुद्रा-विशेष से इसका तात्पर्यार्थ नहीं है।।१३।।

यथा—

योनिमुद्रां ततः कुर्यात् साधको मन्त्रसिद्धये।
आधारे चिन्तयेद् देवीं जगच्चैतन्यरूपिणीम् ॥१४॥

जैसे कि शास्त्र में कहा गया है कि तत्पश्चात् साधक मन्त्रसिद्धि के लिये योनिमुद्रा करे। मूलाधार में प्रसुप्त भुजगाकारा सूक्ष्मगामिनी अर्थात् सूक्ष्म नाड़ी मार्ग से चलने वाली देवी का ध्यान करे, जो जगत् को चैतन्य प्रदान करने वाली है।।१४।।

प्रसुप्तभुजगाकारां कुण्डलीं सूक्ष्मगामिनीम्।
वायुना वह्निमुत्थाप्य बोधयेद् भारतीं सदा ॥१५॥

उन प्रसुप्त भुजगाकार सूक्ष्मगामिनी कुण्डलिनी देवी को उत्थापित करने के लिये वायु द्वारा वह्नि को प्रज्ज्वलित करके वर्णरूपी भारती को प्रबुद्ध करे।।१५।।

आधारे च तथा मेढ्रे नाभौ च हृदये तथा।
कण्ठे चैव भ्रुवोर्मध्ये चिन्तयेत् परमेश्वरीम् ॥१६॥

मूलाधार के चतुर्दल पद्म में, लिङ्गस्थ षड्दल पद्म में, नाभिस्थ दशदल पद्म में, हृदय के द्वादशदल पद्म में, कण्ठ के षोडशदल पद्म में तथा भ्रूमध्य के द्विदल पद्म में परमेश्वरी का चिन्तन करना चाहिये।।१६।।

एवं क्रमेण षट्चक्रं भित्वा साधकसत्तमः।
परं ब्रह्ममयं पश्चाद् देवतां कारयेत्ततः ॥१७॥

इसी क्रम से साधकश्रेष्ठ षट्चक्र-भेदन द्वारा भगवती कुण्डलिनी को परब्रह्ममय होने की भावना करे।।१७।।

ब्रह्मरन्ध्रपथे पश्चात् परं ब्रह्मणि योजयेत्।
अमृतैश्च समाप्लाव्य पुनराधारमानयेत् ॥१८॥

ब्रह्मरन्ध्र पथ से उसे परमब्रह्म से मिलाये; तदनन्तर सहस्रार से क्षरित हो रहे अमृत से उसे प्लावित करके पुन: मूलाधार में ले आये।।१८।।

एवं वारत्रयं कृत्वा हृदि देवं विचिन्तयेत्।
मानसैः पूजयेत्पश्चाद् ध्यात्वा कल्पानुसारतः ॥१९॥

ऐसा तीन बार करके हृदयस्थ देवता का ध्यान करे। कल्पानुसार ध्यान करके मानस पूजनादि करे।।१९।।

आवाहनादिभिः पश्चात् स्नानपर्यन्तपूजनम्।
षडङ्गैरपि सम्पूज्य साङ्गैरावरणैरपि ॥२०॥
ततो धूपञ्च दीपञ्च नैवेद्यञ्च यथाविधि।
ताम्बूलञ्च ततो दत्त्वा जपेद्वर्णाक्षमालया ॥२१॥

तदनन्तर आवाहनादि के साथ स्नान-पर्यन्त पूजा करे। अंगसहित आवरणादि (देवों) का पूजन करके यथाविधि धूप-दीप-नैवेद्य देकर ताम्बूल अर्पण करने के पश्चात् अक्षमाला से जप करे।।२०-२१।।

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा हूत्वा वह्निपुरे ततः।
कृतार्थो जायते मन्त्री मन्त्रयज्ञं समाचरन्।
प्राणायामत्रयं कृत्वा षडङ्गं विन्यसेत्ततः ॥२२॥

इति योनिमुद्राप्रकरणम्

१०८ जप करके तदनन्तर होम करके मन्त्रज्ञ साधक मन्त्रयज्ञ (जप) का आचरण करके कृतार्थ हो जाय। तदनन्तर तीन बार प्राणायाम करके षडङ्ग न्यास करे।।२२।।

यामले—

माससमात्रं जपेन्मन्त्रं भूतलिप्या तु सम्पुटम्।
क्रमोत्क्रमात् सहस्रन्तु तस्य सिद्धो भवेन्मनूः ॥२३॥

यामल में कहा गया है कि भूतलिपि द्वारा सम्पुटित मन्त्र को क्रम तथा व्युत्क्रम से नित्य एक सहस्र एक मास-पर्यन्त जपना चाहिये। इससे मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।२३।।

तत्र भूतलिपिः—

पञ्चह्रस्वाः सन्धिवर्णा व्योमेराग्निर्जलं धरा।
अन्त्यमाद्यं द्वितीयञ्च चतुर्थं मध्यमं क्रमात् ॥२४॥

पञ्चवर्गाक्षराणि स्युर्वान्तश्वेतेन्दुभिः सह।
एषा भूतलिपिः प्रोक्ता द्विचत्वारिंशदक्षरैः ॥२५॥

यहाँ भूतलिपि है—५ ह्रस्व वर्ण, सन्धि वर्ण, व्योम वर्ण, वायु वर्ण, अग्नि वर्ण, जल वर्ण, धरा वर्ण, वान्त वर्ण, श्वेत वर्ण तथा इन्दु वर्ण के साथ अन्त्य वर्ण, आद्य वर्ण, द्वितीय वर्ण, चतुर्थ वर्ण, मध्यम (तृतीय वर्ण) इस क्रम से पाँच वर्ग के अक्षरसमूह से भूतलिपि है। इन ४२ अक्षरों को भूतलिपि कहा गया है।।२४-२५।।

अस्यार्थः—सन्धिवर्णा ए ऐ ओ औ। व्योमः हकारः इरा यकारः, अग्नि रेफः, जलं वकारः, धरा लकारः, अन्त्यं ङकारः। आद्यः ककारः, द्वितीयं खकारः, चतुर्थं घकारः, मध्यमं गकारः। एवं वर्ग-चतुष्टयमपरम्। वान्तस्तालव्यशकारः। श्वेतो मूर्धन्यषकारः, इन्दु-र्दन्त्यसकारः। तथा च अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख घ ग ञ च छ झ ज ण ट ठ ढ ड न त थ ध द म प फ ब श ष स एतान्युच्चार्य मूलं ततः स ष श ब भ फ प म द ध थ त न ड ढ ठ ट ण ज झ छ च ञ ग घ ख क ङ ल व र य ह औ ओ ऐ ए ऌ ॠ उ इ अ एवमुत्क्रमेण तान्युच्चरेत्। एवं प्रत्यहं सहस्रप्रमाणेन मासमात्रजपादपि मन्त्रसिद्धिः ॥२६॥

इन श्लोकों का अर्थ है—सन्धिवर्ण ए ऐ ओ औ। व्योम 'ह', इरा (वायु) 'य', अग्नि 'र', जल 'व', धरा (पृथ्वी) 'ल', अन्त्य 'ङ', आद्य 'क', द्वितीय 'ख', चतुर्थ 'घ' मध्यम 'ग' यह है अपर वर्गचतुष्टय। व्यान्त तालव्य 'श', श्वेत मूर्धन्य 'ष', इन्दु दन्त्य 'स'। अतएव अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख घ ग ञ च छ झ ज ण ट ठ ढ़ ड न त थ ध द म प फ भ ब श ष स—इनका उच्चारण करके मूल मन्त्र कहे। तदनन्तर स ष श ब भ फ प म द ध थ त न ड ढ ठ ट ण ज झ छ च ञ ग घ ख क ङ ल व र य ह औ ओ ऐ ए ऌ ॠ उ इ अ—इस प्रकार व्युत्क्रम में वर्णों का उच्चारण करे। इस प्रकार से प्रतिदिन १००० संख्या में मास-पर्यन्त जप से मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है।।२६।।

अथ जपप्रयोगः

कृताचमनो यथोक्तासनोपविष्टा यथाविहितदिङ्मुखस्तालत्रयादिना दिव्य-भौमान्तरिक्षान् विघ्नानुत्सार्य गुरुगणेशदेवतां नमस्कृत्य भूतशुद्धिमातृका-न्यासप्राणायामऋष्यादिन्यासकराङ्गन्यासान् यथाविधि विधाय मन्त्रचैतन्यं कुर्यात् ॥२७॥

अब जप-प्रयोग कहा जाता है। साधक आचमन करके यथोक्त आसन पर बैठकर यथाविहित दिशा में मुख करके तीन ताली बजाकर दिव्य, भौम तथा अन्तरिक्ष के विघ्न-समूहों को दूर करके गुरु-गणेश-देवताओं को प्रणाम करके यथाविधि भूतशुद्धि, मातृका न्यास, प्राणायाम, ऋष्यादि न्यास तथा कराङ्ग न्यास करके मन्त्र को चैतन्य करे।।२७।।

तद्यथा मूलाधारे कुलकुण्डलिनीं प्रागुक्तरूपां निद्राणां विचिन्त्य तत्रैव कुण्डलिन्यां मन्त्राक्षराणि ग्रथितानि विभाव्य रमिति वह्निबीजमुच्चार्य मूलाधारस्थत्रिकोणान्तर्गतवह्निमुज्ज्वाल्य हुमिति कूर्चबीजमुच्चार्य तेनाग्निना कुलकुण्डलिनीं मन्त्राक्षराणि च चेतयेत्। ततः पारिभाषिकयोनिमुद्रां कुर्यात् ॥२८॥

जैसे मूलाधार में पूर्वोक्त-रूपा कुलकुण्डलिनी की निद्रिता रूपेण भावना करके उस कुण्डलिनी में ही मन्त्राक्षरों को ग्रथित होने की भावना करके वह्निबीज का उच्चारण करके अर्थात् मूलाधार के त्रिकोण-अन्तर्गत उस वह्निबीज (अग्नि 'रं') का उच्चारण करके मूलाधारस्थ त्रिकोण के अन्तर्गत उसे प्रज्ज्वलित होने की भावना करे। उसे उज्ज्वलित करके 'हुं' (कूर्चबीज) का उच्चारण करके उस अग्नि से कुलकुण्डलिनी को तथा मन्त्राक्षरों को जगाये। तत्पश्चात् पारिभाषित योनिमुद्रा का प्रदर्शन करे। (इसे योनिमुद्रा प्रकरण में कहा गया है)।।२८।।

यथा—वक्ष्यमाणषट्चक्रभेदप्रणाल्या मूलदेवतामयीं कुलकुण्डलिनीं परमशिवमूलाधारयोर्गतागतेन त्रिः सङ्गमयेत्। ततोऽमृतलोलीभूतात् तां यथोक्तध्यानेन हृदि विचिन्त्याऽन्तर्योगेन नैवेद्यरहितैर्मानसोपचारैरभ्यर्च्य कामकलां चिन्तयेत्। ततो हृदि देवीं मूर्ध्नि गुरुं कण्ठे मन्त्रं गुरुपादयोरात्मानं विचिन्तयेत्। ततो दक्षिणहस्तेन मालामादाय जलेनाभ्युक्ष्य—

ॐ माले! माले! महामाले! सर्वशक्तिस्वरूपिणि! ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥

इति मन्त्रेण मालां नमस्कुर्यात्। ततः सप्तच्छदां सकृज्जप्त्वा अमृता-मष्टोत्तरशतं जपेत्। ततः कुल्लुकां शिरसि सञ्चिन्त्य सकृज्जपेत्। ततो निर्वाणं नाभिमूलस्थे मणिपूरके विन्यस्य सप्तधा जपेत्। ततो महासेतुं कण्ठस्थविशुद्धाख्ये विन्यस्य सकृज्जपेत्। ततः प्रणवरूपं सेतुं हृदि विचिन्त्य सकृज्जपेत्। ततः पञ्चशुद्धिप्रकरणवाच्यं मन्त्रशुद्धिं कुर्यात् ॥२९॥

जैसे षट्चक्र-भेदन प्रणाली से मूल देवतामयी कुलकुण्डलिनी को मूलाधार से

परम शिव में तथा परमशिव से मूलाधार-पर्यन्त यातायात द्वारा तीन बार उसे परमशिव से मिलाये। तत्पश्चात् सहस्रार से क्षरित अमृत से उसे आप्लावित करके हृदय में उसका ध्यान करके उनका पूजन अन्तर्याग द्वारा नैवेद्यरहित (मानस पूजा में नैवेद्य वर्जित है) मानसोपचार द्वारा पूजा करके कामकला का चिन्तन करना चाहिये। इसके अनन्तर हृदय में देवी की, मस्तक में गुरु की, कण्ठ में मन्त्र की चिन्तना करके गुरु के पादद्वय में आत्मा की चिन्तना करनी चाहिये। अब माला लेकर दाहिने हाथ के जल द्वारा उसे पवित्र करके 'ॐ माले! माले! महामाले! सर्वशक्तिस्वरूपिणि! चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान् मे सिद्धिदा भव' कहकर इस मन्त्र से माला को नमस्कार करे। अब एक बार सप्तच्छदा का जप करके अमृता का १०८ बार जप करे। अब कुल्लुका का मस्तक में चिन्तन करके एक बार जप करना चाहिये। अब नाभिमूलस्थ मणिपूरक में पहले कहे गये निर्वाण का विन्यास करके सात बार जप करे। तत्पश्चात् कण्ठस्थ विशुद्ध नामक चक्र में महासेतु का विन्यास करके एक बार जप करे। तदनन्तर प्रणवरूप सेतु (ॐ) का चिन्तन करके एक बार जप करे। इसके पश्चात् पञ्चशुद्धि प्रकरण में कही गयी मन्त्रशुद्धि करनी चाहिये।।२९।।

यथा—एकैकमकारादि सानुस्वारमातृकावर्णं जप्त्वा समग्रमन्त्रं प्रजप्य पुनर्मातृकैकैकवर्णं जपेत्। यथा अं मूलम् अं इत्यादि। एवमकारादिक्षकारान्तम्। पुनः क्षकारादि अकारान्तम्। यथा क्षं मूलम् क्षं इत्यादि। ततः सूतकमुक्तये प्रणवपुटितं मन्त्रं सप्तधा जपेत्। ततो देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं चिन्तयन् हृदयासन्नदेशे दक्षिणहस्तेन मालामादाय आदौ सेतुत्वेन प्रणवमुच्चार्य यथाशक्ति जपं कुर्यात्। ततो जपान्ते पुनः सेतुत्वेन प्रणवमुच्चार्य सूतकमुक्तये पुनः प्रणवपुटितं मन्त्रं सप्तधा प्रजप्य महासेतुं सकृज्जपेत्। ततः सप्तच्छदां सकृज्जपेत्। ततो गुह्येत्यादिना जपं समर्प्य स्तुत्वा नमस्कृत्य प्राणायामत्रयं षड़ङ्गन्यासञ्च कुर्यात् ।।३०।।

जैसे मातृका वर्ण के अकारादि एक-एक वर्ण को अनुस्वार से युक्त करके जप करके मन्त्र जप करके पुन: मातृका के एक-एक वर्ण के साथ अनुस्वार (ं) लगाकर जप करे। जैसे पहले 'अं' तदनन्तर मूल मन्त्र तदनन्तर 'अं'। पहले 'आं' तदनन्तर मूल मन्त्र तदनन्तर 'आं'। इसी प्रकार से 'अ' से लगाकर 'क्ष'-पर्यन्त जप करके पुन: (विलोम रीति) 'क्ष' से 'अ'-पर्यन्त जप करे। जैसे क्षं मूल मन्त्र लगाकर पुन: क्षं। इसके पश्चात् दोनों सूतक से मुक्ति के लिये प्रणव को आगे तथा पीछे लगाकर मूल मन्त्र का जप प्रणवपुटित रूपेण करे। तदनन्तर देवता, गुरु तथा मन्त्र की एकता का चिन्तन करके हृदय के निकट दाहिने हाथ में माला उठाकर सेतुरूप प्रणव (ॐ) का उच्चारण

करके यथाशक्ति जप (मूल मन्त्र का) करना चाहिये। तत्पश्चात् जप का अन्त करते समय पुनः 'ॐ' का उच्चारण करके सूतकों से छुटकारा के लिये प्रणव-पुटित मूल मन्त्र का सात बार जप करके एक बार महासेतु का जप करे। तदनन्तर सप्तच्छदा का एक बार जप करके 'ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं' मन्त्र से जप-समर्पण करके प्राणायाम और षड़ङ्ग न्यास करे।।३०।।

अशक्तौ ऋष्यादिन्यासकराङ्गन्यासान् कृत्वा देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं विभावयन् प्रणवपुटितं सप्तधा मूलमन्त्रं प्रजप्य पुनः प्रणवमुच्चार्य यथाशक्ति जप्त्वा पुनः प्रणवमुच्चार्य पुनः प्रणवपुटितं मन्त्रं सप्तधा जपित्वा जपं समर्पयेदिति। शूद्राणां प्रणवस्थाने चतुर्दशस्वर एव सविन्दुर्नमःपदं वा देयमिति जपप्रयोगः ॥३१॥

इन समस्त प्रक्रिया को करने में जो असमर्थ हैं, वे ऋष्यादि न्यास तथा करन्यास करके देवता, गुरु तथा मन्त्र के एकता की भावना करते-करते सात बार प्रणवपुटित मन्त्र का जप करके, पुनः प्रणव का उच्चारण करके पुनः प्रणवपुटित मन्त्र का सात बार जप कर जप का समर्पण करें। शूद्रगण प्रणव की जगह बिन्दुसहित चतुर्दश स्वर कहकर औं (ॐ न कहे) अथवा नमः शिवाय कहें। इस प्रकार जपप्रयोग समाप्त होता है।।३१।।

अथ जपफलम्

शिवधर्मे—

सर्वेषामेव यज्ञानां जायतेऽसौ महाफलः।
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥३२॥
प्रसन्नां विपुलान् कामान्दद्यान्मुक्तिञ्च शाश्वतीम्।
यक्षरक्षपिशाचाश्च ग्रहाः सर्पाश्च भीषणाः।
जपिनं नोपसर्पन्ति भयभीताः समन्ततः ॥३३॥

अब जपफल कहा जा रहा है। शिवधर्म ग्रन्थ में कहा है कि समस्त यज्ञों में मन्त्र जप यज्ञ महान् फल देने वाला है। जप से स्तुति द्वारा देवतागण प्रसन्न होते हैं। वे प्रसन्न होकर विपुल मात्रा में इच्छित फल प्रदान करते हैं। शाश्वती मुक्ति भी देते हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच, ग्रह तथा भीषण सर्प भी जप से डरकर जप करने के निकट नहीं आते। चतुर्दिक् भाग जाते हैं।।३२-३३।।

अन्यत्रापि—

जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्वरानने! ।

तथा—

जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठोऽखिलयज्ञफलं लभेत् ।।३४।।

अन्यत्र भी कहते हैं कि हे वराननें! जप से सिद्धि, जप से सिद्धि—यह ध्रुव है। इसी प्रकार अन्यत्र भी कहा है कि जप में निष्ठा वाले द्विजश्रेष्ठ समस्त यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं।।३४।।

पाद्म-नारदीययोः—

यावन्तः कर्मयज्ञाः स्युः प्रदिष्टानि तपांसि च ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।३५।।
माहात्म्यं वाचिकस्यैतज्जपयज्ञस्य कीर्त्तितम् ।
तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसः स्मृतः ।।३६।।

पद्मपुराण तथा नारदीय पुराण में कहते हैं कि जितने कर्मयज्ञ हैं तथा जितनी भी तपस्या कही गयी हैं, उनका फल जपयज्ञ की तुलना में १६वाँ भाग भी नहीं है। वाचिक जप यज्ञ का माहात्म्य कीर्त्तित है। उपांशु जप उससे १००-१०० गुणित फल देता है। मानस जप उससे भी हजार गुणित फल देता है, यह कहा गया है।।३५-३६।।

मानसः सिद्धिकामानां पुष्टिकामैरुपांशुकः ।
वाचिको मारणे चैव प्रशस्ता जप ईरितः ।।३७।।

जो सिद्धि चाहते हैं, उनके लिये मानस जप, पुष्टिकामी-हेतु उपांशु जप तथा मारणार्थ वाचिक जप श्रेष्ठ कहा गया है।।३७।।

यत्तु—

मनसा यः स्मरेत्स्तोत्रं वचसा वा मनुं जपेत् ।
उभयं निष्फलं याति छिन्नभाण्डोदकं यथा ।।३८।।

इति तन्निगदनिषेधपरम्।

मन ही मन जो स्तोत्र पढ़ता है या बोल कर जो जप करता है तो दोनों ही वैसे ही निष्फल होती हैं, जैसे टूटे वर्तन में जल भरना। यह जो कहा गया, वह निषेधपरक है।।३८।।

कुलार्णवे—

हृदये ग्रन्थिभेदश्च सर्वावयववर्द्धनम् ।
आनन्दाश्रुणि पुलको देहावेशः सुरेश्वरि ।
गद्गदोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशयः ।।३९।।

कुलार्णव में कहते हैं कि हे सुरेश्वरि! जप से हृदय-ग्रन्थि का भेदन होता है, समस्त अवयवों की वृद्धि होती है, आनन्दाश्रु गिरते हैं, मन पुलकित होता है, देह में आवेश तथा वाणी गद्गद होती है, इसमें संशय नहीं है।।३९।।

अथ युगसेवानियमः

कृते जपन्तु कल्पोक्तस्त्रेतायां द्विगुणो जपः ।
द्वापरे त्रिगुणोः प्रोक्तश्चतुर्गुणफलः कलौ ।।४०।।

चतुर्गुणात् फलं यस्य स तथेत्यर्थः।

अब युगसेवा नियम कहा जाता है। तन्त्र में कहते हैं कि सत्ययुग में कल्पोक्त जप कर्त्तव्य है अर्थात् उन-उन शास्त्र में उन-उन देव-देवी का जितना जप कहा गया है उतना करना होता है। त्रेता में दूना जप कर्त्तव्य है। द्वापर में त्रिगुण जप कर्त्तव्य है। कलि में चौगुना फल कहा गया है। चतुर्गुण फल का अर्थ है कि चौगुना जप करे; जिससे कि चौगुने जप का लाभ होगा। नहीं तो नहीं होगा।।४०।।

अथ पुरश्चरणम्

योगिनीहृदये—

गुरोराज्ञां समादाय शुद्धान्तः करणो नरः ।
ततः पुरस्क्रियां कुर्यान्मन्त्रसंसिद्धिकाम्यया ।।४१।।

अब पुरश्चरण कहा जाता है। योगिनीहृदय में कहा गया है कि मानव शुद्ध अन्तःकरण करके मन्त्रसिद्धि-हेतु गुरु से आज्ञा लेकर पुरश्चरण करे।।४१।।

जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः ।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ।।४२।।

जैसे प्राणहीन मनुष्य कोई कार्य नहीं कर सकता, वैसे ही पुरश्चरण-रहित मन्त्र भी फल नहीं दे सकते।।४२।।

तस्मादादौ स्वयं कुर्याद् गुरुं वा कारयेद् बुधः ।
गुरोरभावे विप्रं वा सर्वप्राणिहिते रतम् ।।४३।।
स्निग्धं शास्त्रविदं मित्रं नानागुणसमन्वितम् ।
स्त्रियं वा सद्गुणोपेतां सपुत्रां विनियोजयेत् ।।४४।।

अतएव सर्वप्रथम पुरश्चरण स्वयं करे अथवा गुरु से करावे। गुरु के अभाव में सर्वप्राणी के हित में रत, शान्त, शास्त्र को जानने वाले, मित्र, नाना गुण से समन्वित विप्र से पुरश्चरण कराये। सद्गुणों वाली पुत्रवती स्त्री भी पुरश्चरण कर सकती है।।४३-४४।।

आदौ पुरस्क्रियां कर्त्तुं स्थाननिर्णय उच्यते।
पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुह्यपर्वतमस्तकम् ॥४५॥
तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं वनम्।
उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरेः ॥४६॥
तुलसीकाननं गोष्ठं वृषशून्यं शिवालयम्।
अश्वत्थामलकीमूलं गोशालाजलमध्यतः ॥४७॥
देवतायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम्।
साधने तु प्रशस्तानि स्थानान्येतानि मन्त्रिणाम्।
अथवा निवसेत्तत्र यत्र चित्तं प्रसीदति ॥४८॥

प्रथमतः पुरश्चरण का स्थान-निर्णय करना चाहिये। पुण्य क्षेत्र में, नदी-तीर में, गुहा में, पर्वत की चोटी पर, तुलसी के कानन में, गोष्ठ में, वृषरहित शिवालय में, आँवला अथवा आमलकी के नीचे, गौशाला में, जल में, देवालय में, समुद्र के किनारे अथवा अपने घर में पुरश्चरण करना प्रशस्त कहा गया है अथवा जहाँ जाने से चित्त प्रसन्न हो, वहाँ पर ही पुरश्चरणार्थ बैठना चाहिये।।४५-४८।।

तथा—

गृहे शतगुणं विद्यात् गोष्ठे लक्षगुणं भवेत्।
कोटिर्देवालये पुण्यमनन्तं शिवसन्निधौ ॥४९॥
म्लेच्छदुष्टमृगव्यालशङ्कातङ्कविवर्जिते।
एकान्तपावने निन्दारहिते भक्तिसंयुते ॥५०॥
सुदेशे धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे।
रम्ये भक्तजनस्थाने निवसेत्तापसः प्रिये।
गुरुणा सन्निधाने च चित्तैकाग्रस्थले तथा ॥५१॥

इसी प्रकार तन्त्र में और भी कहा गया है कि गृह में पुरश्चरण करने से १०० गुणा, गोष्ठ में लाख गुणा तथा देवालय में पुरश्चरण करने से अनन्तगुणित फल मिलता है। भगवान् कहते हैं—हे प्रिये! म्लेच्छ, दुष्ट, मृगादि पशु तथा सर्पभय एवं आतंक से रहित स्थान में, अति पवित्र स्थान में, निन्दारहित स्थान में, भक्तिजनक सुन्दर स्थान में, धार्मिक स्थान मं, सुभिक्ष (जहाँ भोजन मिले) तथा उपद्रवरहित स्थान में, मनोहर स्थान में भक्तों से पूर्ण स्थान में, गुरुगण के पास में तथा एकाग्रता-जनक स्थान में साधक व्यक्ति पुरश्चरणार्थ बैठे।।४९-५१।।

प्रेतभूम्यादिकञ्चैव तत्तत्कल्पप्रकाशितम्।
एषामन्यतमं स्थानमाश्रित्य जपमाचरेत् ॥५२॥

जिन-जिन देवताओं के कल्प में श्मशान में पुरश्चरण करने का विधान है, उन-उन देवताओं के अन्यतम स्थान का आश्रय लेकर जप करना चाहिये।।५२।।

वाराहीतन्त्रे—

चन्द्रतारानुकूले च शुक्लपक्षे शुभेऽहनि।
आरभेत पुरश्चर्यां हरौ सुप्ते न चाचरेत् ।।५३।।

वाराहीतन्त्र के अनुसार चन्द्र-तारा की अनुकूलता में (पञ्चाङ्ग से ज्ञात करके) शुक्ल-पक्ष के शुभ दिन से पुरश्चरण-प्रारम्भ करे। जब हरिशयन हो चुका हो (तब से देवोत्थान एकादशी-पर्यन्त) पुरश्चरण न करे।।५३।।

प्रतिप्रसवश्च रुद्रयामले—

कार्त्तिकाश्विनवैशाखमाघेऽथ मार्गशीर्षके।
फाल्गुने श्रावणे दीक्षा पुरश्चर्या प्रशस्यते ।।५४।। इति।

रुद्रयामल में इसी सन्दर्भ में कहा है कि कार्त्तिक, आश्विन, वैशाख, माघ, मार्गशीर्ष, फाल्गुन तथा श्रावण मास दीक्षा-हेतु उत्तम हैं। ग्रहण तथा महातीर्थ में किसी कालजनित शुद्धाशुद्ध का विचार नहीं करना चाहिये।।५४।। इति।

अथ पुरश्चरणे भक्ष्यादिनियमः

अगस्त्यसंहितायां—

दधिक्षीरं घृतं गव्यमैक्षवं गुडवर्जितम्।
तिलाश्चैव सिता मुद्गाः कन्दः केमुकवर्जितः ।।५५।।
नारिकेलफलञ्चैव कदली लवली तथा।
आम्रमामलकञ्चैव पनसञ्च हरीतकी।
व्रतान्तरे प्रशस्तञ्च हविष्यं मन्यते बुधैः ।।५६।।
भुञ्जानो वाह विष्यान्नं शाकं यावकमेव वा।
पयोमूलं फलं वापि यत्र यत्रोपलभ्यते ।।५७।।
रम्भाफलं तिन्तिडीकं कमलानागरङ्गकम्।
फलान्येतानि भोज्यानि एभ्योऽन्यानि विवर्जयेत् ।।५८।।

अगस्त्यसंहिता में मन्त्रों पुरश्चरण-काल में भक्षणादि का नियम बतलाते हैं। दधि, क्षीर, गाय का घृत, गुड़ को छोड़कर गन्ने से बने पदार्थ जैसे—शर्करा, तिल, शुक्ल मूंग, केमुक को छोड़कर अन्य कन्द, नारियल, केला, लवली, आम, आमलकी, पनस, हरीतकी को व्रतों में प्रशस्त तथा हविष्य माना गया है। हविष्यान्न, शाक, यावक, पय, मूल, फल अथवा जहाँ जो मिले, जैसे—रम्भाफल, तिन्तिड़ी, कमला,

नागरंग—ये भोज्य फल कहे गये हैं। इनसे भिन्न फलों का त्याग कर देना चाहिये।।५५-५८।।

यत्तु योगिनीतन्त्रे—

चिञ्चाञ्च नालिकाशाकं कलायं लकुचं तथा।
कदम्बं नारिकेलं च व्रते कूष्माण्डकं त्यजेत् ।।५९।।

योगिनीहृदय तन्त्र में कहते हैं कि व्रत में चिंचा, नालिकाशाक, कलाय, लकुच, कदम्ब, नारियल तथा कोहड़े का त्याग करना चाहिये। (यह अन्य व्रत के सन्दर्भ में कहा गया है)।।५९।।

तथा—

विवर्जयेत् मधुक्षारं लवणं तैलमेव च।
ताम्बूलं कांस्यपात्रञ्च दिवाभोजनमेव च ।।६०।।

और भी कहा गया है कि शहद, क्षार, नमक, तेल, ताम्बूल, कांस्य पात्र में भोजन एवं दिन में भोजन का (व्रत में) वर्जन करे।।६०।।

तथा—

क्षारञ्च लवणं मांसं गृञ्जनं कांस्यभोजनम्।
माषाढ़की मसूरांश्च कोद्रवांश्चणकानपि ।।६१।।

और भी कहते हैं—क्षार, लवण, मांस, गृञ्जन, कांसे के वर्तन में खाना, माष, आढ़की (तुवरिका), मसूर, कोदो धान, चना का वर्जन करे।।६१।।

कौटिल्यं क्षौरमभ्यङ्गमनिवेदितभोजनम्।
असङ्कल्पितकृत्यञ्च वर्जयेन्मर्द्दनादिकम् ।।६२।।

कुटिलता, क्षौर कर्म, अभ्यङ्ग लगाना, विना देवता को निवेदित किये भोजन करना, असंकल्पित कार्य करना, मालिश कराना, पैर-हाथ दबाना आदि कार्य वर्जित हैं।।६२।।

स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा।
मन्त्रजप्तान्नपानीयैः स्नानाचमनभोजनम्।
कुर्याद्यथोक्तविधिना त्रिसन्ध्यां देवतार्चनम् ।।६३।।
अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रावृतोऽपि वा।
प्रलपन् प्रजपेद्यावत्तावन्निष्फलमुच्यते ।।६४।।

पञ्चगव्य जल से अथवा केवल आमलक (आँवला जल) से स्नान करना चाहिये। मन्त्रजप कर अन्न तथा पानी से स्नान, आचमन तथा भोजन करना चाहिये (मन्त्र जप

कर यह सब करे)। यथोक्त विधि से तीनों सन्ध्या में देवतार्चन करना चाहिये। अपवित्र हाथों से, नग्न होकर, सर ढककर अथवा बात करते-करते जप करना निष्फल कहा गया है।।६३-६४।।

कुलार्णवे—

यस्यान्नपानपुष्टाङ्गः कुरुते धर्मसञ्चयम् ।
अन्नदातुः फलस्यार्द्धं कर्तुश्चार्द्धं न संशयः ।।६५।।

कुलार्णव के अनुसार जो अन्न-पानादि से पुष्ट होकर धर्मसञ्चय करते हैं, उन्हें आधा फल होता है। उनका आधा फल कर्मकर्त्ता को मिलता है। अर्थात् जो परान्न से पुष्ट होकर धर्मकार्य करते हैं, उनको आधा फल मिलता है।।६५।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन परान्नं वर्जयेत् सुधीः ।
पुरश्चरणकालेषु सर्वकर्मसु शाम्भवी ।।६६।।

भगवान् कहते हैं—हे शाम्भवि! पुरश्चरण काल में सभी कार्य में सुधी साधक को दूसरे के द्वारा प्रदत्त अन्न का वर्जन करना चाहिये।।६६।।

जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
मनो दग्धं परस्त्रीभिः कथं सिद्धिर्वरानने ।।६७।।

परान्नं भिक्षेतरविषयम्। भिक्षायां तस्य स्वतोत्पादात्।

हे वरानने! जिनकी जीभ पराये अन्न से दग्ध है, प्रतिग्रह से हाथ दग्ध है, मन पराई स्त्री-चिन्तन से दग्ध है, उन्हें सिद्धि कैसे हो सकती है। भिक्षा में मिले अन्न के अतिरिक्त मिला अन्न परान्न होता है; क्योंकि परान्न अपने प्रयत्न से नहीं मिलता, जबकि भिक्षा प्रयत्न से मिलती है।।६७।।

तन्त्रान्तरे—

विहाय वह्निं न हि वस्तु किञ्चित् ग्राह्यं परेभ्यः सति सम्भवे च ।
असम्भवे तीर्थबहिर्विशुद्धात्पर्वातिरिक्ते प्रतिगृह्य जप्यात् ।।६८।।

तन्त्रान्तर में कहा है कि द्रव्य रहने पर अग्नि के सिवाय कोई भी वस्तु दूसरे से नहीं लेना चाहिये। जब द्रव्य न रहे तब तीर्थस्थान के बाहर जाकर पर्व के दिन विशुद्ध व्यक्ति से प्रतिग्रह (माँगकर) जप करे।।६८।।

कुलार्णवे—

सकृदुच्चरिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत् ।
प्रोक्ते पारशरे शब्दे प्राणायामं सकृच्चरेत् ।।६९।।

कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि जपकाल में यदि एक भी अपशब्द मुख से निकल जाय तब प्रणवोच्चारण करना चाहिये। पारशर (पारसी) अर्थात् विदेशी भाषा का शब्द निकल जाने पर एक बार प्राणायाम करना चाहिये।।६९।।

बहुप्रलापी आचम्य न्यस्याङ्गानि ततो जपेत्।
क्षुतेऽप्येवं तथाऽस्पृश्यस्थानानां स्पर्शनेऽपि च।
एवमादींश्च नियमान् पुरश्चरणकृच्चरेत्।।७०।।

अधिक बकवाद करने के अनन्तर आचमन तथा अंगन्यास के पश्चात् जप करना चाहिये। हिचकी होने पर एवं अस्पृश्य स्थान का स्पर्श करने पर भी ऐसा ही करे। पुरश्चरण करने वाले साधक को इन नियमों का पालन करना चाहिये।।७०।।

विण्मूत्रोत्सर्गशङ्कादियुक्तः कर्म करोति यः।
जपार्चनादिकं सर्वमपवित्रं भवेत् प्रिये!।।७१।।

हे प्रिये! जो व्यक्ति मल मूत्रादि शंका (हाजत) से युक्त होकर अर्चन-जपादि करता है, उसके समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं।।७१।।

मलिनाम्बरकेशादिमुखदौर्गन्ध्यसंयुतः।
यो जपेत्तं दहत्याशु देवता गुप्ति संस्थिता।।७२।।
आलस्यं जृम्भणं निद्रां क्षुतं निष्ठीवनं भयम्।
नीचाङ्गस्पर्शनं कोपं जपकाले विवर्जयेत्।।७३।।

मलिन वस्त्र, मलिन केश तथा दुर्गन्धयुत मुख से जो जप करता है, देवतागण गुप्त रहते हुये भी उसको (उसके जप को) भस्म कर देते हैं।

आलस्य, जम्भाई, निद्रा, हिचकी, थूकना, नीचे के अंग का स्पर्श और कुपित होना—इन सबका जपकाल में परित्याग करना चाहिये।।७२-७३।।

एवमुक्तविधानेन विलम्बं त्वरितं विना।
उक्तसख्यं जपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये।।७४।।

इस प्रकार से पहले कहे गये विधान से पुरश्चरण-सिद्धि के लिये बिना जल्दबाजी के अथवा धीमी गति से न करके निश्चित संख्यात्मक जप करना चाहिये।।७४।।

देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया।
जपेदेकमनाः प्रातःकालं मध्यन्दिनावधि।।७५।।

देवता, गुरु तथा मन्त्र में एकता की भावना करके एकाग्र होकर प्रातः से मध्याह्न-पर्यन्त जप करना चाहिये।।७५।।

तथा—

भूशय्याब्रह्मचारित्वमौनमाचार्यसेविता ।
नित्यपूजा नित्यदानं देवतास्तुतिकीर्त्तनम् ।।७६।।
नैमित्तिकार्चनञ्चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ।
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ।।७७।।

और भी कहा गया है कि भूमि पर शयन, ब्रह्मचारित्व, मौन, आचार्यों की सेवा, प्रतिदिन त्रिसंध्या स्नान, क्षुद्रकर्म का त्याग, नित्य पूजन, नित्य होम, देवता की स्तुति-कीर्त्तन, नैमित्तिक देवता पूजा, गुरु तथा देवता पर विश्वास एवं जपनिष्ठा—इन बारह धर्मों का पालन करने से मन्त्र सिद्धिप्रद हो जाता है।।७६-७७।।

स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम् ।
असत्यभाषणं जिह्मभाषणं परिवर्जयेत् ।।७८।।

स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य तथा नास्तिक के साथ भाषण, जूठे मुख से कथनोपकथन, असत्य भाषण तथा कुटिलतापूर्वक भाषण का साधक परित्याग करे।।७८।।

सत्येनापि न भाषेत जपहोमार्चनादिषु ।
अन्यथानुष्ठितं सर्वं भवत्येव निरर्थकम् ।।७९।।
पुरश्चरणकाले तु यदि स्यान्मृतसूतकम् ।
तथापि कृतसङ्कल्पो व्रतं नैव परित्यजेत् ।।८०।।

जप-होमादि कर्म के बीच सत्य वाक्य तक न बोले (अर्थात् असत्य की बात तो दूर है, सत्य बोलना भी वर्जित है अर्थात् मौन रहे)। जो इसे नहीं मानता, उसका अनुष्ठान निष्फल हो जाता है। पुरश्चरण-काल में यदि साधक को जननाशौच अथवा मरणाशौच भी हो जाय, तथापि संकल्प लेने के कारण पुरश्चरण संकल्प व्रत का त्याग करना उचित नहीं है।।७९-८०।।

योगिनीहृदये—

शयीत कुशशय्यायां शुचिवस्त्रधरः सदा ।
प्रत्यहं क्षालयेच्छय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत् ।।८१।।
असत्यभाषणं वाचं कुटिलां परिवर्जयेत् ।
वर्जयेद् गीतवाद्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनम् ।।८२।।

योगिनीहृदय तन्त्र में कहा गया है कि पुरश्चरण काल में कुश बिछाकर ही रात्रिकाल में शयन करना चाहिये। शुद्ध वस्त्रादि धारण करना चाहिये। प्रतिदिन शय्या को धोना चाहिये और एकाकी निर्भय होकर शयन करना चाहिये।

पुरश्चरण-काल में असत्य बोलना, कुटिल बोलना, गीत वाद्य सुनना, नृत्य देखना भी त्याग देना चाहिये।।८१-८२।।

अभ्यङ्गं गन्धलेपञ्च पुष्पधारणमेव च।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत्।।८३।।

अभ्यङ्ग लगाना, गन्ध-लेपन करना, पुष्पमालादि धारण करना, मैथुन तथा तत्सम्बन्धित बातें करना एवं ऐसी गोष्ठी का भी त्याग कर देना चाहिये।।८३।।

त्यजेदुष्णोदकं स्नानमन्यदेवप्रपूजनम्।
नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवस्त्राकुलोऽपि वा।।८४।।

उष्ण जल से स्नान तथा अन्य देवताओं का पूजनादि भी न करे। एक वस्त्र पहनकर अथवा अनेक वस्त्र पहनकर जप न करे।।८४।।

वैशम्पायनसंहितायां—

विपर्यासं न कुर्याच्च कदाचिदपि मोहतः।
उपर्यधो बहिर्वस्त्रे पुरश्चरणकृन्नरः।।८५।।

वैशम्पायन संहिता में कहा गया है कि पुरश्चरण करने वाला साधक देह के ऊपरी हिस्से में तथा अधोभाग में सब मिलाकर दो वस्त्र पहने। कभी भी मोह के कारण इस नियम को भंग न करे अर्थात् उत्तरीय को वस्त्र तथा वस्त्र को उत्तरीय न बनाये।।८५।।

पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे श्रुते।
क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत्।।८६।।
तथा च तस्य तत्प्राप्तौ प्राणायामं षडक्षरम्।
कृत्वा सम्यग् जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम्।।८७।।

आदिपदाद् वह्निब्राह्मणौ।

पतितों एवं अन्त्यजों का दर्शन होने पर, उनसे बातें होने पर तथा जम्भाई आने पर जप को छोड़ देना चाहिये। इन सबके होने की स्थिति में प्राणायाम तथा षड़ङ्ग न्यास करना चाहिये अथवा सूर्य, अग्नि अथवा ब्राह्मण का दर्शन करके बाकी बचा जप करना चाहिये।।८६-८७।।

तन्त्रान्तरे—

मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः।।८८।।

विषयों से मन को हटाना शौच है। मन्त्रार्थ का चिन्तन मौन है। अव्यग्र होना ही अनिर्वेद है। यह सब जपसम्पत्ति प्रदान करने वाले हैं।।८८।।

उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गणावृतः।
अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रलपन्न जपेत्क्वचित् ॥८९॥

उष्णीशी होकर, कञ्चुकी पहन कर, नग्न होकर, केशों को खोलकर (यदि बड़े बाल हैं तब), अनेक लोगों से घिरे होकर, अपवित्र होकर, अशुद्ध होकर, बातें करते हुये कदापि जप न करे।।८९।।

अनासनः शयानो वा गच्छन् भुञ्जान एव च।
अप्रावृतौ करौ कृत्वा शिरसि प्रावृतोऽपि वा ॥९०॥
चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्षुब्धो भ्रान्तः क्षुधान्वितः।
रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत्तिमिरान्तरे ॥९१॥

बिना आसन पर बैठे, सोते हुये, चलते-चलते, खाते-खाते, हाथों को ढ़के विना अथवा मस्तक को ढ़ककर, चिन्ता से व्याकुल होकर, क्षुब्ध भ्रान्त अथवा भूख से आर्त्त स्थिति में, अशुद्ध स्थान पर या अन्धकार में जप नहीं करना चाहिये।।९०-९१।।

उपानद् गूढ़पादो वा यानशय्यागतस्तथा।
प्रसार्य न जपेत्पादावुत्कटासन एव वा ॥९२॥

जूते को पैरों में पहने, गाड़ी अथवा शय्या पर बैठकर, दोनों पैर फैलाकर, उत्कट आसन पर आसीन होकर जप नहीं करना चाहिये।।९२।।

न यज्ञकाष्ठे पाषाणे न भूमौ नासने स्थितः।
मार्जारं कुक्कुटं कौञ्चं श्वानं शूद्रं कपिं खरम्।
दृष्ट्वाचम्य जपेच्छेषं स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥९३॥

यज्ञकाष्ठ अथवा पाषाण पर अथवा भूमि पर बैठकर अथवा भूमि का स्पर्श पैरों से करते हुये जप न करे। जपकाल में बिल्ली, मुर्गा, बगुला, कुत्ता, शूद्र, वानर, गर्दभ को देखने पर आचमन करके पुनः जप करे। यदि इनका स्पर्श हो जाता है, तब स्नान करके जप करना चाहिये।।९३।।

मानसान्यजपेद्वायं नियमः। मानसे तु नियमो नास्ति। मनसः सर्वदैव शुचित्वात् ॥९४॥

मानस जप में कोई नियम नहीं है; क्योंकि मन सर्वदा पवित्र होता है।।९४।।

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि।
मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाऽभ्यसेत्।
न दोषो मानसे जापे सर्वदेशेऽपि सर्वदा ॥९५॥

श्यामादिविद्यायां तत्तन्मन्त्रजपे विशेषो वक्ष्यते।

मन्त्र की शरण लेने वाला विद्वान् मन से सदा अभ्यास करता रहे, पवित्र-अपवित्र स्थिति में, चलते-चलते, खड़े रहते-रहते, सोते-सोते, सर्वदा मन से मन्त्र का जप करे। सभी स्थानों पर मानस जप में कोई दोष नहीं होता।।९५।।

श्यामादि विद्या में उन-उन देवी के सम्बन्ध में (समय पर) विशेषतः कहा जायेगा।

गौतमीये—

शक्त्या त्रिसवनं स्नानं अन्यथा द्वे सकृच्च वा।
त्रिसन्ध्यां प्रजपेन्मन्त्रं पूजनं तत्समं भवेत्।।९६।।

सन्ध्यात्रये पूजाङ्गतया जपमष्टोत्तरशतमित्यर्थः।

गौतमीय तन्त्र के अनुसार अपनी शक्ति के अनुसार त्रैकालिक स्नान करे अथवा दो बार अथवा एक बार स्नान करे। त्रिसंध्या में जप करना चाहिये। पूजा भी उतनी ही करे अर्थात् तीन बार, दो बार अथवा एक बार करे। त्रिसन्ध्या में पूजा में अंगरूप (प्रत्येक सन्ध्या) में १०८ जप करना चाहिये।।९६।।

तथा—

एकदा वा भवेत् पूजा न जपेत् पूजनं विना।
जपान्ते वा भवेत्पूजा पूजान्ते वा जपेन्मनूम्।।९७।।

और भी कहा है कि एक समय पूजा करे। पूजा के बिना जप न करे। अथवा जपान्त में पूजा करे अथवा पूजान्त में मन्त्र जपे।।९७।।

अथ पुरश्चरणजपकालविधिः

यथा—

देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया।
जपेदेकमनाः प्रातःकालं मध्यन्दिनावधि ॥१॥

अब पुरश्चरण जपकाल-विधि कहते हैं। जैसे कि मन ही मन देवता, मन्त्र तथा गुरु के ऐक्य की भावना करे। इस प्रकार एकाग्र होकर प्रातः से लेकर मध्याह्न-पर्यन्त जप करे।।१।।

अन्यत्रापि—'प्रातःकालं समारभ्य जपेन् मध्यन्दिनावधि' इत्यस्याऽधिक-कालव्यवच्छेदपरत्वम्, नियमपरत्वे कदाचिज्जिह्वाया पाटवजाड्यवशात् प्रतिनियतजपसंख्याया आधिक्यन्यूनत्वप्रसक्त्या नियमभङ्गः स्यात्। तस्मात् प्रथमदिने सार्द्धप्रहरपर्यन्तं जप्तव्यम्। तेन दिवसान्तरे जिह्वामान्द्येऽपि न क्षतिः ॥२॥

अन्यत्र भी कहा है कि प्रातः से प्रारम्भ करके मध्याह्न-पर्यन्त जप करे। इस वचन का तात्पर्य है कि अधिक काल तक जप करे। इससे अधिक जप न करे। यदि यह नियम होता है कि रोज इतना ही जप करे तब कदाचित् जिह्वा की पटुता (योग्यता) अथवा जड़ता के कारण प्रतिदिन नियत संख्यक जप नहीं हो पाता और कम-अधिक होने से नियमभंग होता (अर्थात् जिह्वा नित्य एक ही गति से जप नहीं कर सकती)। इसलिये नियम है कि प्रथम दिन आधा प्रहर जप करे। इसलिये यदि अन्य दिन जिह्वा मन्द गति से जप करे तब भी कोई क्षति नहीं है।।२।।

यत् संख्यया समारब्धं तत् कर्त्तव्यमहर्निशम्।
यदि न्यूनाधिकं कुर्याद् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥३॥

यह कहा गया है कि जिस संख्या में जप पहले दिन किया जाय, अहर्निश उतनी ही संख्या में जप करना चाहिये। यदि कम या अधिक जप होता है, तब मानव व्रतभ्रष्ट हो जाता है।।३।।

मुण्डमालायाम्—

यत् संख्यया समारब्धं तज्जप्तव्यं दिने दिने।
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यमासमाप्तं सदा जपेत् ॥४॥

मुण्डमालातन्त्र में कहा गया है कि जितनी संख्या में जपारम्भ पहले दिन करे, प्रतिदिन उतना ही जप करना चाहिये। न्यून अथवा अधिक नहीं करना चाहिये। समाप्ति-पर्यन्त सदा जप करते रहना चाहिये अर्थात् बीच में व्यवधान नहीं होना चाहिये।।४।।

कुलार्णवे—

न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति कदाचन।
यथा विधिकृतान्येव तत्कर्माणि फलन्ति हि ॥५॥

कुलार्णव तन्त्र में कहा है कि निश्चित (प्रथम दिन से) न्यून कर्म (जप) अथवा अधिक कर्म (जप) कभी भी फलप्रद नहीं होता। यथाविधि किये कर्म ही फल प्रदान करने वाले होते हैं।।५।।

अथ जपसंख्याकरणे विशेषः—

नाक्षतैर्हस्तपर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः।
न चन्दनैर्मृत्तिकाया जपसंख्यां न कारयेत् ॥६॥

शेषनकारो मृत्तिकयान्वितः।

अब जपसंख्या को निश्चित करने के लिये विशेषत: कहा गया है कि जपसंख्या-गणना के लिये अक्षत, उंगली के पर्व, धान्य, पुष्प, चन्दन तथा मृत्तिका का प्रयोग नहीं करना चाहिये।।६।।

तर्हि किं कर्त्तव्यमित्यत्राह—

लाक्षाकुसितसिन्दूरं गोमयञ्च करीषकम्।
विलोम्य गोधिकां कृत्वा जपसंख्यान्तु कारयेत् ॥७॥

कुसितं रक्तचन्दनबीजम्। गोधिका दीर्घाकारवर्त्तिका। इदमुपलक्षणं कुशादीनपि जपसंख्या न निषिद्धा।

तब क्या कर्त्तव्य है? इस पर कहते हैं कि लाख, कुसित (रक्तचन्दन बीज), सिन्दूर, गोबर, दीर्घाकार बत्ती, करीषक (गाय का सूखा गोबर) की गोलियाँ बनाकर उनसे जपसंख्या की गणना करनी चाहिये। कुसित = रक्तचन्दन बीज, गोधिका = दीर्घाकार बत्ती। यह कुशादि का उपलक्षण है अर्थात् कुशादि द्वारा जपसंख्या-गणना निषिद्ध नहीं है।।७।।

पुरश्चरणारम्भकाले तु गायत्रीजपः कार्यः। यथा विद्याधराचार्यः—

प्रातः स्नात्वा तु गायत्र्याः सहस्रं प्रयतो जपेत्।
ज्ञाताज्ञातस्य पापस्य क्षयार्थं प्रथमं ततः ॥८॥

पुरश्चरण काल में गायत्री-जप भी कर्त्तव्य है। जैसा कि विद्याधराचार्य कहते भी हैं कि प्रातः स्नान के उपरान्त संयत होकर ज्ञात और अज्ञात पाप के क्षय हेतु १००० गायत्री का जप करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्र-जप करना चाहिये।।८।।

यत्तु 'प्रातः स्नात्वा तु सावित्र्या अयुतं प्रयतो जपेत्' इति तत् पुनरत्यन्त-पापाशङ्कया। गायत्रीपदमत्र तान्त्रिकगायत्रीपरम्।

अष्टोत्तरशतावृत्त्या गायत्रीं प्रजपेत् सुधीः।
महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद् दशधा यदि।
सत्यं सत्यं महादेवि! मुक्तो भवति तत्क्षणात्।।९।।

यहाँ जो प्रातःस्नान करके अयुत गायत्री-जप का विधान है, वह अत्यन्त अधिक पाप की स्थिति के लिये है। यह वचन यहाँ तान्त्रिक गायत्री के लिये कहा गया है (जिस देवता के साधनार्थ कर्म करना है उनकी गायत्री)। भगवन् कहते है—हे महादेवि! सुधी साधक १०८ बार गायत्री-जप करे। यदि महापातकी भी १० बार गायत्री-जप करता है, तब वह तत्क्षण पापमुक्त हो जाता है।

यह तान्त्रिक गायत्री के लिये कहा गया है, जिसमें स्त्री-शूद्रादि सभी को अधिकार है। वैदिक तथा तान्त्रिक गायत्री में से किसी के भी जप से पापशुद्धि हो जाती है।।९।।

इत्यादि सन्ध्योक्तवचनात्। अतएव स्त्रीशूद्रसाधारण्यमपि युज्यते। वस्तुतस्तु तयोरन्यतरजपादेव पापक्षयो भवति।।१०।।

यह सन्ध्योक्त वचन है। तान्त्रिक गायत्री में सभी को समान अधिकार है। द्विज वैदिक गायत्री अथवा तान्त्रिक में से किसी का भी प्रयोग करके पापमुक्त हो सकते हैं। स्त्री-शूद्रादि को केवल तान्त्रिक का ही गायत्री जप करना चाहिये।।१०।।

योगिनीहृदये—

यत्र ग्रामे जपेन्मन्त्री तत्र कूर्मं विचिन्तयेत्।।११।।

योगिनीहृदय तन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रज्ञ साधक जिस ग्राम में जप करे, वहाँ कूर्म चक्र का चिन्तन करे।।११।।

गौतमीये—

पर्वते सिन्धुतीरे वा पुण्यारण्ये नदीतटे।
यदि कुर्यात्पुरश्चर्यां तत्र कूर्मं न चिन्तयेत्।
ग्रामे वा यदि वा वान्तौ गृहे तच्च विचिन्तयेत्।।१२।।

गौतमीय तन्त्रानुसार पर्वत, समुद्रतट, पवित्र, अरण्य में, नदीतट पर यदि पुरश्चरण

करते हैं, तब कूर्मचक्र के चिन्तन की आवश्यकता नहीं होती। यदि ग्राम में अथवा एकान्त में पुरश्चरण किया जाता है तब इस कूर्मचक्र का चिन्तन अवश्य करणीय होता है।।१२।।

अथ कूर्मचक्रम्

शारदायाम्—

दीपस्थानं समाश्रित्य कृतं कर्म फलप्रदम्।
चतुरस्त्रां भुवं भित्वा कोष्ठानां नवकं लिखेत्।।१३।।
पूर्वं कोष्ठादि विलिखेत् सप्तवर्गाननुक्रमात्।
ळक्षमीशे मध्यकोष्ठे स्वरान् युग्मक्रमांल्लिखेत्।।१४।।

अब कूर्मचक्र कहा जाता है। शारदातिलक तन्त्र के अनुसार दीपस्थान पर बैठकर कर्म करना फलदायक होता है। चौकोर भूमि पर पूर्व-पश्चिम दो दीर्घ रेखा द्वारा तथा उत्तर-दक्षिण दो दीर्घ रेखा द्वारा भेदन करके नौ कोष्ठ अंकित करे।

पूर्व दिशा के बहिःकोष्ठ से प्रारम्भ करके उत्तर दिशा-पर्यन्त आठ कोष्ठों में यथाक्रमेण क च ट त प य शवर्ग को प्रदक्षिण क्रम से लिखे। ईशान कोण के कोष्ठ में ळ तथा क्ष दो वर्ण अंकित करे। चतुरस्र-मध्य-स्थित कोष्ठों में पूर्वादि दिशा के कोष्ठ से प्रदक्षिण क्रम से प्रति कोष्ठ में दो-दो वर्ण लिखे।।१३-१४।।

दिक्षु पूर्वादितो यत्र क्षेत्राद्यक्षरसंस्थितिः।
मुखं तत्तस्य जानीयाद्धस्तावुभयतः स्थितौ।।१५।।
कोष्ठे कुक्षौ उभे पादौ द्वे शिष्टं पुच्छमीरितम्।
क्रमेणानेन विभजेन्मध्यस्थमपि भागतः।।१६।।

इस चक्र के जिस स्थल में आद्य अक्षर (वर्ण) 'अ' अवस्थित है, वह इसका मुख है। दोनों पार्श्व में अवस्थित दो बहिःकोष्ठ इसके दो हाथ हैं। इसके नीचे उभयपार्श्व में अवस्थित दो बहिःकोष्ठ दो पैर हैं। अवशिष्ट कोष्ठ को पूंछ कहते हैं। मध्य चतुरस्र कोष्ठ को इस प्रकार से नौ भाग में बाँटना चाहिये।।१५-१६।।

मुखस्थो लभते सिद्धिं करस्थः स्वल्पजीवनः।
उदासीनः कुक्षिसंस्थः पादस्थो दुःखमाप्नुयात्।।१७।।
पुच्छस्थः पीड्यते मन्त्री बन्धनोच्चाटनादिभिः।
कूर्मचक्रमिदं प्रोक्तं मन्त्राणां सिद्धिदायकम्।।१८।।

साधक मुख भाग पर अवस्थित होकर जपादि में सिद्धि पाता है। करस्थान पर

जप करने से स्वल्प जीवन मिलता है। कुक्षि स्थान का कार्य फल के प्रति उदासीन बनाना होता है। पैरों पर अवस्थित होकर कार्य करने से दुःख मिलता है। पुच्छ स्थान पर स्थित होकर जपादि से साधक को बन्धन, उच्चाटन आदि से कष्ट होता है। मन्त्रसमूह की सिद्धि-हेतु यह कूर्मचक्र कहा गया।।१७-१८।।

कूर्मचक्रमविज्ञाय यः कुर्याज्जपयज्ञकम्।
तस्य यज्ञफलं नास्ति सर्वानर्थाय कल्पते ।।१९।।

जो व्यक्ति कूर्मचक्र को जाने बिना जपयज्ञ करता है, उसे फल नहीं मिलता; अपितु समस्त अनर्थों का उदय होता है।।१९।।

दीप्यतेऽत्र दीपस्थानं मुखम्। क्षेत्राद्यक्षरसंस्थितिरिति। ग्रामस्य यत्राद्यक्षरसंस्थानमित्यर्थः। मध्यस्थमपि भागत इति। मध्यकोष्ठमपि नवभागं कुर्यादित्यर्थः ।।२०।।

जो स्थान दीप्त हो—इस व्युत्पत्ति से निष्पन्न दीपस्थान शब्द का अर्थ है—मुख। 'क्षेत्राद्यक्षरसंस्थितिः' का तात्पर्य है कि जिस कोष्ठ में ग्राम के प्रथम अक्षर की स्थिति है। 'मध्यस्थमपि भागतः' का तात्पर्यार्थ है कि मध्य कोष्ठ के नौ भाग करें।।२०।।

मुण्डमालायां—

पुण्यक्षेत्रादिकं गत्वा कुर्याद्भूमेः परिग्रहम्।
यथा ह्यमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये।
ममेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रोऽयं सिध्यतामिति ।।२१।।

मुण्डमालातन्त्र के अनुसार पुण्यक्षेत्रादि में जाकर जपस्थान का ग्रहण करना चाहिये। 'अमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये ममेयं भूमिर्गृह्यते मन्त्रोऽयं सिध्यताम्' यह स्थानग्रहण का मन्त्र कहा गया है।।२१।।

तथा—

ग्रामे क्रोशमितं स्थानं नद्यादौ स्वेच्छया मतम्।
नगरादावपि क्रोशं क्रोशयुग्ममथापि वा ।।२२।।
क्षेत्रं वा यावदिष्टन्तु विहारार्थं प्रकल्पयेत्।
आहारादिविहारार्थं तावतीं भूमिमाक्रमेत् ।।२३।।

और भी कहा गया है कि विचरण के लिये ग्राम से कोश-परिमित स्थान में नदी-प्रभृति (तीर पर) इच्छानुसार स्थान में, नगरादि से एक कोस अथवा दो कोश-परिमित स्थान ग्रहण करे। आहार-विहार के लिये इच्छानुरूप स्थान चुनना चाहिये। इसके लिये भी उतनी ही भूमि का (एक-दो कोस) अतिक्रमण करना चाहिये।।२२-२३।।

क्षीरवृक्षोद्भवान् कीलानस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितान्।
लिखनेद् दशदिग्भागे तेष्वस्त्रञ्च प्रपूजयेत् ॥२४॥

क्षीर वृक्ष से १० कील बनाकर उसे फट् मन्त्र से अभिमन्त्रित करके दशो दिशाओं में गाड़ना चाहिये। वहाँ अस्त्र का पूजन करना चाहिये।।२४।।

लोकपालान् पुनस्तेषु गन्धाद्यैः पूजयेत् सुधीः।
मध्यस्थाने क्षेत्रपालं वास्त्वीशञ्च गणेश्वरम् ॥२५॥ इति।

साधक पुनः वहाँ गन्धादि उपचारों से लोकपालगण का पूजन करे। मध्य में क्षेत्रपाल, वास्तुपति तथा गणेश्वर का पूजन करना चाहिये।।२५।।

अथ पुरश्चरणहोमादि

तन्त्रान्तरे यथा—

जपान्ते प्रत्यहं मन्त्री होमयेत्तु दशांशतः।
तर्पणञ्चाभिषेकञ्च तत्तद्दशांशतो मुने! ॥२६॥

अब पुरश्चरण-होमादि कहा जाता है। तन्त्रान्तर में कहते हैं कि मन्त्र का ज्ञाता साधक प्रतिदिन जप के अन्त में (उस दिन किये गये जप का) दशमांश संख्यक होम करे। हे मुनिश्वर! होम का दशमांश तर्पण एवं तर्पण का दशमांश अभिषेक करे।।२६।।

प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान् न्यूनाधिकप्रशान्तये।
विप्रभोजनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद्यतः।
अथवा सर्वपूर्त्तौ च होमादिकमथाचरेत् ॥२७॥

जपदशांशेन होमन्तु विशेषानुक्तौ ॥२८॥

जप-साधन कर्म के दोषों की शान्ति के लिये उसी परिमाण में ब्राह्मण-भोजन कराये। इससे अंगहीन जप-साधन कर्म भी अंगमय हो जाता है। अथवा पुरश्चरण की समाप्ति पर होमादि का अनुष्ठान करना चाहिये। विशेष उक्ति न रहने पर जप का दशमांश होम करना कर्त्तव्य है।।२७-२८।।

यथा योगिनीहृदये—

कल्पोक्तविधिना मन्त्री कुर्याद्धोमादिकं ततः।
अथवा तद्दशांशेन होमादींश्च समाचरेत् ॥२९॥

योगिनीहृदय तन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रों को जानने वाला साधक अपने कल्पोक्त विधि से होमादि करे अथवा दशांश हवन करे।।२९।।

तेन विशेषवचनात् क्वचिदन्यथापि ॥३०॥

तथापि विशेष वचनों के अनुसार इन वचनों के अतिरिक्त भी हो सकता है।।३०।।

यथा दुर्गाष्टाक्षरमन्त्रे—

वसुलक्षं जपेन्मन्त्रं तिलैर्मधुरलोड़ितैः ।
पयोन्धसा वा जुहुयात्तत्सहस्रं जितेन्द्रियः ॥३१॥

इत्यत्र पयोन्धसा सदुग्धान्नेन।

जितेन्द्रिय साधक (वसु) आठ लाख मन्त्र जपे। मधुराप्लुत (शहद) से लिपटे तिलों से अथवा दुग्धान्न से ८००० आहुति से होम करे। यहाँ पयोन्धसा का अर्थ है कि दुग्धसहित अन्न से।।३१।।

तथा च वाचनिकस्तत्राष्टसहस्रहोमः। एवमन्यत्रापि क्वचित् ॥३२॥

अतएव यहाँ वाचनिक अष्ट सहस्र होम से तात्पर्य है। अन्यत्र भी ऐसा ही करना चाहिये।।३२।।

होमाद्यशक्तौ सनत्कुमारतन्त्रे—

यद्यदङ्गं भवेद्भग्नं तत्संख्याद्विगुणो जपः ।
होमाभावे जपः कार्यो होमसंख्या चतुर्गुणः ॥३३॥

होमादि में असमर्थ साधक के लिये सनत्कुमार तन्त्र में कहते हैं कि इस कर्म का जो-जो अंग भग्न (अपूर्ण) रह गया हो (जैसे होम), उसके लिये उस संख्या का त्रिगुण जप करे अर्थात् भग्न कर्म में जितना अभिप्रेत था, उसका तिगुना जप करना चाहिये। होम के अभाव में होम की संख्या का चौगुना जप करना चाहिये।।३३।।

विप्राणां क्षत्रियाणाञ्च रससंख्या गुणः स्मृतः ।
वैश्यानां वसुसंख्याक एषां स्त्रीणामयं विधिः ॥३४॥

इस हेतु विप्र तथा क्षत्रिय को रससंख्यक (छः गुणा) जप करना चाहिये। वैश्यगण वसुसंख्यक (आठ गुणा) जप करें—यह कहा गया है। स्त्रीगण भी अपनी जाति के अनुसार इतना ही करें अर्थात् ब्राह्मण स्त्री को छः गुणा, क्षत्रिय स्त्री को छः गुणा एवं वैश्य स्त्री को आठ गुणा जप करना चाहिये।।३४।।

यं वर्णमाश्रितः शूद्रः स च तस्य विधिं चरेत्।
शूद्रस्य विप्रभृत्यस्य तत्पत्न्याः सदृशो जपः ॥३५॥

एतेन स्त्रीशूद्रयोस्तुल्यता उक्ता॥३६॥

शूद्र जिस वर्ण के व्यक्ति का आश्रय लेकर रहता है, वह उसकी विधि का

आचरण करे। जैसे यदि वह विप्र के यहाँ आश्रित है, तब विप्र की तरह छः गुणा जप करे। उसकी पत्नी भी उतना ही जप करे (यदि वह जप-साधना करती हो)। इस वचन से स्त्री तथा शूद्र की तुल्यता कही गयी है।।३५-३६।।

अत्राप्यशक्तौ योगिनीहृदये—

होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः ।
इतरेषान्तु वर्णानां त्रिगुणादिः समीरितः ।।३७।।

इस प्रकार के जप में जो अशक्त है, उसके लिये योगिनी हृदयतन्त्र में कहते हैं— जो शास्त्रोक्त संख्यानुसार जप नहीं कर सकते, ऐसे ब्राह्मण होम संख्या का दूना जप करें। अन्य वर्ण के लोग इस परिस्थिति में त्रिगुण जप करें, यह विहित है।।३७।।

त्रिगुणादिरिति होमसंख्यायास्त्रिगुणो जपः क्षत्रियस्य, चतुर्गुणो वैश्यस्य, पञ्चगुणः शूद्रस्येत्यर्थः ।।३८।।

त्रिगुणादि का अर्थ है कि क्षत्रिय होमसंख्या का तीनगुना, वैश्य चौगुना तथा शूद्र पाँचगुना जप करे।।३८।।

एतदुक्तं कुलप्रकाशेऽपि—

यद्यदङ्गं विहीनं स्यात्तत्संख्याद्विगुणं जपम् ।
कुर्वीरंस्त्रीचतुःपञ्चयथासंख्यद्विजातयः ।।३९।।

कुलप्रकाशतन्त्र में कहा भी गया है—कर्म के जिस-जिस अंग की हानि होती है, द्विज उसका दूना जप करे। संख्यानुसार त्रिगुण, चतुर्गुण, पञ्चगुण जप करे।।३९।।

त्रयश्च चत्वारश्च पञ्च च त्रिचतुःपञ्च। तथा च विप्रो द्विगुणं क्षत्रियस्त्रिगुणं वैश्यश्चतुर्गुणं शूद्रः पञ्चगुणं जपं कुर्यादित्यर्थः। एतन्मते सर्वेषां होमादिषु सर्वत्रैव द्विगुणो जपः ।।४०।।

'त्रयश्च चत्वारश्च पञ्च च' इस प्रकार के द्वन्द्व समास से त्रिचतुःपञ्च पद निष्पन्न होता है। इससे इस श्लोक का अर्थ यह है कि विप्र दूना, क्षत्रिय तिगुणा, वैश्य चार गुणा तथा शूद्र पाँच गुणा जप करे। इस मत से जपादि के सभी अंगों के अनुष्ठान में अशक्त के लिये यह नियम है। अथवा होमादि में असमर्थ होने पर सभी सर्वदा द्विगुण जप करें, यह विहित है।।४०।।

यथा तन्त्रान्तरे—

यद्यदङ्गं विहीयेत तत्संख्याद्विगुणो जपः।
कर्त्तव्यश्चाङ्गसिद्ध्यर्थं तदशक्तेन भक्तितः ।
न चेदङ्गं विहीयेत तद्विशिष्टमवाप्नुयात् ।।४१।।

जैसा कि अन्य तन्त्र में कहा भी गया है कि उन-उन अंगों के अनुष्ठान में असमर्थ व्यक्ति ने जिस-जिस अंग को छोड़ दिया है, उस अंग की सिद्धि के लिये भक्तिपूर्वक उस अंग की संख्या का दूना जप करे। यह न करने पर अंग त्यक्त हो जायेगा। दूना इत्यादि जप करने पर कर्म से फल प्राप्त होगा।।४१।।

एतेन स्त्रीशूद्रयोर्होमाधिकारः सिद्ध्यति। तयोर्होमस्तु ब्राह्मणद्वारा,

ॐकारोच्चारणाद् होमाच्छालग्रामशिलार्चनात्।
ब्राह्मणीगमनाच्चैव शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्।। इति।

शूद्रस्य साक्षात्करणनिषेधात्, स्त्रीणां सर्वत्र वैदिककर्मसु शूद्रतुल्यत्वप्रतिपादनाच्च। यथा—'स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रपातसमो मम' इति भगवद्वाक्यम्।

अष्टाक्षरो महामन्त्रः सप्तार्णः शूद्रयोषिताम्।
प्रणवादिश्च यो मन्त्रो न स्त्रीशूद्रे प्रशस्यते।।

इति नारायणीयकल्पः। सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रयोर्नेच्छति, यदि स्त्रीशूद्रो जानीयान्मृतोऽधो गच्छतीति नृसिंहतापनीयश्च ।।४२।।

इन वचनों से स्त्री-शूद्र का होमाधिकार सिद्ध हो जाता है; किन्तु उनका होम ब्राह्मण द्वारा ही होगा; क्योंकि ॐकार का उच्चारण, होम, शालग्राम-शिलार्चन तथा ब्राह्मणीगमन से शूद्र को चाण्डालत्व प्राप्त होता है।

इन वचन से शूद्र द्वारा स्वयं होम करने का निषेध है और स्त्रीगण के लिये भी वैदिक कर्मों में शूद्र के समान ही अधिकार की समतुल्यता है। भगवद् वाक्य भी है कि स्त्री-शूद्र का स्पर्श मेरे लिये वज्रपात के समान है। नारायणीय कल्प में कहते हैं कि अष्टाक्षर तथा सप्तार्ण महामन्त्र तथा प्रणवादि जो मन्त्र हैं, वे स्त्री तथा शूद्र के लिये प्रशस्त नहीं हैं। नृसिंहतापनीयोपनिषद् में कहा गया है कि स्त्री तथा शूद्र को सावित्री (गायत्री), प्रणव, यजुर्मन्त्र (स्वाहा), श्रीं का उच्चारण नहीं करना चाहिये। यदि स्त्री तथा शूद्र ऐसा करते हैं, तब उन्हें मृत्यु के पश्चात् अधोगति प्राप्त होती है।।४२।।

सावित्री वैदिकगायत्री, न तु तान्त्रिक्यपि। प्रणवः ॐकारः न तु तत्तद्देवताप्रणवः। यजुः स्वाहा। लक्ष्मी श्रीबीजम्। पञ्चाङ्गाचरणाशक्तौ तावज्जपविप्रभोजनरूपाङ्गद्वयेनापि पुरश्चरणसिद्धिः ।।४३।।

सावित्री अर्थात् वैदिक गायत्री; यहाँ तान्त्रिक गायत्री नहीं कहा है। प्रणव = ओंकार, यह उन-उन देवताओं का प्रणव नहीं है। यजुः = स्वाहा। लक्ष्मी = श्रीबीज।

पाँच अंगों वाले पुरश्चरण को करने में असमर्थ होने पर उतनी संख्या का जप तथा ब्राह्मणभोजन रूप अंगद्वय द्वारा भी पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है।।४३।।

तथा चागस्त्यसंहितायाम्—

यदि होमाद्यशक्तः स्यात्पूजायां तर्पणेऽपि वा।
तावत्संख्यजपेनैव ब्राह्मणाराधनेन च।
भवेदङ्गद्वयेनैव पुरश्चरणमार्य वै ।।४४।।

अगस्त्यसंहिता में कहते हैं कि यदि होमादि में अशक्त हो तथा पूजन एवं तर्पण में भी अशक्त हो, तब वह उतना जप तथा ब्राह्मण की आराधना (भोजनादि सत्कार) रूपी अंगद्वय द्वारा पुरश्चरण सफल करे।।४४।।

तावत्संख्यजपेन तत्तन्मन्त्रोक्तजपेन। होमादनन्तरं तर्पणं कार्यम् ।।४५।।

तावत् संख्या जपेन—उन-उन मन्त्रोक्त संख्यक जप द्वारा। होम के पश्चात् तर्पण कर्त्तव्य है।।४५।।

तर्पणप्रकारन्तु यथा—

तर्पणन्तु ततः कुर्यात् तीर्थोदैश्चन्द्रमिश्रितैः।
जले देवं समावाह्य पाद्याद्यैरुदकात्मकैः ।।४६।।
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या परिवारसमन्वितम्।
एकैकमञ्जलिं तोयं परिवारान् प्रतर्पयेत् ।।४७।।

चन्द्रः कर्पूरम्।

तर्पण का प्रकार तन्त्र में कहा गया है। कहते हैं कि तत्पश्चात् देवता का आवाहन करके भक्ति के साथ परिवार के साथ (देवता के परिवार के साथ) देवता की पूजा जल रूप पाद्यादि से करके चन्द्र (कपूर) मिश्रित तीर्थजल द्वारा तर्पण करे। देवता के परिवार गणों का भी एक-एक अंजलि जल से तर्पण करे। चन्द्र = कपूर।।४६-४७।।

तर्पणन्तु होमदशांशेन कार्यं, पूर्वोक्तवचनात्। गोपालमन्त्रतर्पणे तु होम-समसंख्यकम्, 'इह गोपालमन्त्राणां तर्पणं होमसमसंख्यये'ति वचनात्। इदं विशेषविधानसामर्थ्यान्न विष्णुरामादिविषयम्। अत्र होमानुकल्प-करणेऽपि होमसंख्याचतुर्गुणमेव तर्पणम्। न तु होमानुकल्पजपचतुर्गुणमपि। अभिषेकादिरपि जपदशांशदशांशदशांशादि क्रमेणैव। तर्पणवाक्यन्तु स्नानप्रकरणे बोध्यम् ।।४८।।

पूर्वोक्त वचन के अनुसार होम के दशांश का तर्पण करे। यहाँ गोपाल मन्त्र-हेतु

तर्पण अन्य प्रकार से कहा गया है कि गोपाल मन्त्रों में होम की संख्या के इतना ही होम करे। विशेष विधान में सामर्थ्य होने के कारण गोपाल मन्त्र में इस प्रकार का तर्पण समसंख्यक होता है अर्थात् जितना होम, उतना तर्पण। विष्णु, राम, प्रभृति के विषय में ऐसा नहीं है। यहाँ होम का अनुकल्प होम की संख्या का चारगुणा तर्पण करना पड़ेगा। लेकिन होम के अनुकल्प (बदले) में जप चतुर्गुण नहीं होगा। अभिषेकादि में भी जप के दशांश के दशांश के दशांश का क्रम होगा। तर्पण के सम्बन्ध में उच्चारण किये जाने वाले वाक्य को स्नान-प्रकरण में इसी ग्रन्थ में देखना चाहिये।।४८।।

अभिषेकप्रकारन्तु—

नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम्।
द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषिञ्चाम्यनेन तु।
अभिषिञ्चेत् स्वमूर्द्धानं तोयैः कुम्भाख्यमुद्रया ।।४९।।

अभिषेक का प्रकार—नमः से समाप्त होने वाले मन्त्र का उच्चारण करके उसके पश्चात् द्वितीया विभक्तियुक्त देवता का नाम और 'अहं' का उच्चारण करे और 'अभिषिञ्चामि' लगाये। 'ॐ नमो नारायणाय नमः नारायणमहमभिषिञ्चामि' इस प्रकार कुम्भमुद्रा द्वारा जल से अपने मस्तक का अभिषेक करे।।४९।।

शक्तिविषये तु नीलतन्त्रे—

मन्त्रान्ते नाम चोच्चार्य सिञ्चामीति नमः पदम् ।।५०।।

शक्ति साधनाहेतु नीलतन्त्र में तर्पण मन्त्र के सम्बन्ध में कहा है कि मन्त्र के अन्त में अपना नाम कहकर 'सिञ्चामि' तथा 'नमः' कहे।।५०।।

ततोऽभिषेकदशांशसंख्यब्राह्मणान् भोजयित्वा दक्षिणां दद्यात् ।।५१।।

तत्पश्चात् अभिषेक के दशमांश परिमाण में ब्राह्मणगण को भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे।।५१।।

यथा—

गुरवे दक्षिणां दद्याद् भोजनाच्छादनादिभिः।
गुरुं सन्तोषमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।।५२।।
सम्यक् सिद्धैकमन्त्रस्य पञ्चाङ्गोपासनेन च।
सर्वे मन्त्राश्च सिध्यन्ति त्वत्प्रसादात् सुरेश्वरि ।।५३।।

तन्त्र में कहा है कि भोजन तथा आच्छादन वस्त्रादि देकर गुरु को दक्षिणा देनी चाहिये। गुरु के सन्तोष-मात्र से मन्त्र-सिद्धि हो जाती है, यह अटल है।

हे सुरेश्वरि! जिनको सम्यक् प्रकार से एक भी मन्त्र की सिद्धि हो गयी है, पञ्चाङ्ग उपासना तथा तुम्हारी कृपा से उन्हें समस्त मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं।।५२-५३।।

गुरुमूलमिदं सर्वमित्याहुस्तन्त्रवेदिनः ।
एकग्रामे स्थितो नित्यं गत्वा वन्देत वै गुरुम् ।।५४।।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मादादौ तमर्चयेत् ।
मिष्ठान्नं बहुशः कार्यं भुञ्जीत बान्धवैः सह ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेत् सकलेप्सितान् ।।५५।।

यह समस्त गुरुमूल ही है, ऐसा तन्त्रज्ञ कहते हैं। यदि गुरु तथा शिष्य एक ही ग्राम में रहते हैं, तब प्रतिदिन गुरु-गृह जाकर गुरु की वन्दना करे। गुरु ही परब्रह्म हैं। अतः सर्वाग्र में उनकी अर्चना करे। मिष्ठान्न प्रचुर मात्रा में अर्पण करे और (उस प्रसाद का) बान्धवों के साथ भोजन करे। इस प्रकार से साधक मन्त्रज्ञ होकर सभी इच्छित विषयों को साधित कर लेता है।।५४-५५।।

सङ्कल्पवाक्यन्तु—अद्येत्यादि अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धिप्रतिबन्धकाशेषदुरितक्षयपूर्वकामुकमन्त्रसिद्धिकामो यावता कालेन सेत्स्यति तावत्कालपर्यन्तममुकमन्त्रेयत्संख्यजपतद्दशांशहोमतद्दशांशतर्पणतद्दशांशमार्जन-तद्दशांशब्राह्मणभोजनरूपपुरश्चरणमहं करिष्ये इति साम्प्रदायिकाः वर्णयन्ति। तन्न शोभते, ततः सिद्धो भवेन्मन्त्र इत्यादिवचनैर्मन्त्रसिद्धिमात्रस्यैव तज्जन्यत्वावगतेः पूर्वकान्तविशेषणोपादानानौचित्यात्। एवं अद्यारभ्येत्य-स्यैव वाच्यतया यावतेत्यादि पर्यन्तमित्यन्तं न निर्देश्यम्, मानाभावात्। एवमियत्संख्यजपतद्दशांशहोमतद्दशांश तर्पणेत्यादिकमपि न सर्वत्र युक्तम्, होमाशक्तौ यथानिर्देशायोगात्। न च तत्र इयत्संख्यजपतद्दशांशहोमद्वि-गुणजपतद्दशांशतर्पणेत्यादिकमेव प्रयोज्यम्, तर्पणे होमद्विगुणजपदशांश-तापत्तेः। इयत्संख्यजपतद्दशांशहोमद्विगुणजपहोमदशांशतर्पणेत्यादिक-मप्ययुक्तम्, तत्र होमाप्रसिद्धेः। एवं ब्राह्मणभोजनपदमप्यशक्यप्रयोगम्, कृतावन्वयात्, णिजन्तभुजधातुसिद्धप्रयोगस्य शक्यत्वेऽपि शिष्टैस्तथापि प्रयोगानाचरणात्, न खलु केनाप्युच्यते ब्राह्मणभोजनं करोमीति ।।५६।।

साम्प्रदायिकगण के अनुसार 'ॐ अद्येत्यादि' ऊपर मूल संस्कृत में लिखे सङ्कल्प वाक्य को कहते हैं; किन्तु यह शोभन नहीं है। क्योंकि 'ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रः' इत्यादि वचनों द्वारा मन्त्र-सिद्धिमात्र ही पुरश्चरण का कार्य है। अतः 'अमुकमन्त्रसिद्धिप्रतिबन्धका-शेषदुरितक्षयपूर्वक' इस प्रकार का विशेषण ग्रहण करना उचित नहीं है। इस प्रकार

'इयत् संख्यक जप तद्दशांश होम तद्दशांश तर्पण' इत्यादि कहना भी उचित नहीं है; क्योंकि होम में अशक्त रहने पर इस प्रकार का निर्देश (संकल्प में) किया ही नहीं जा सकता। क्योंकि परिस्थितिवश यदि उपरोक्त सङ्कल्प के पश्चात् भी साधक होमादि में अशक्त रह जाता है तब उसे सङ्कल्प में अंकित 'दशांश' करने से कोई लाभ नहीं होगा; क्योंकि तब उसे द्विगुण अथवा त्रिगुण जप करना पड़ेगा। तब यह सङ्कल्प के विपरीत हो जायेगा। इसलिये इस सङ्कल्प का प्रमाण नहीं मिलता। सङ्कल्प में ये वाक्य अयुक्त हैं; उचित नहीं है। इसी प्रकार सङ्कल्प में 'ब्राह्मणभोजन' पद भी प्रयोग-योग्य नहीं प्रतीत होता; क्योंकि 'करिष्ये' इस 'कृ' धातु अर्थ का कृति से अन्वित नहीं होता। 'णिच्' प्रत्ययान्त भुज धातु द्वारा सिद्ध भोजन पद का प्रयोग करने पर भी शिष्ट व्यक्तिगण इस प्रकार के प्रयोग का आचरण नहीं करते। 'ब्राह्मणभोजनं करोमि' ऐसा कोई नहीं कहता।।५६।।

अथ प्रथमदिन एव अद्यारभ्य इयज्जपं करिष्ये इति सङ्कल्प्य प्रात्यहिकं तावज्जप्त्वा अद्यारभ्य इयद्धोमं करिष्ये इति इयद्धोमद्विगुणजपं करिष्ये इति वाभिलप्य प्रात्यहिकं तावत् कृत्वा अद्यारभ्य इयं तर्पणं करिष्ये इति सङ्कल्प्य प्रात्यहिकं तावत् कृत्वा अद्यारभ्य इयन्मार्जनं करिष्ये इत्यभिलप्य प्रात्यहिकं तावदभिषिच्य अद्यारभ्य इयद् ब्राह्मणभोजनं करिष्ये इत्यभिलप्य प्रात्यहिकं तावत् कृत्वा दिनान्तरेषु प्रात्यहिकानि निष्पाद्य पूजान्ते दक्षिणां दद्यादिति साम्प्रतमिति चेन्न, एकैकसमापनोत्तरेतरकरणकल्पे तद्योगात्, एकप्रयोगान्तर्गतपृथक्फलाजनकक्रियासु बाधकं विना पृथक् सङ्कल्पायोगाच्च स्नपनपूजनहोमबलिदानात्मकचतुष्कर्ममय्यां महापूजायामष्टमीपूजनादिवत् होमस्नपनादिवच्च। तत्र हि काम्यस्नाने सङ्कल्पः पृथक्फलजनकत्वात् न तु पूजाङ्गनित्यस्नानेऽपि। बलिदाने तु—

ततो देवीं समुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः।
अभिषिच्य बलिं पश्चात् करवालं प्रपूजयेत्॥

इति पृथगभिलापे विशेषविधिर्बाधकः। ग्रहणपुरश्चरणे तु होमादिसङ्कल्पः पृथगेव, राहुग्रस्ते निशाकरे इत्यादौ होमादिषु सप्तम्यनन्वयप्रसङ्गरूपबाधकबलात्। अतएव जपं समाप्य पुनः पुनः सङ्कल्पहोमादिकं कार्यमिति प्रत्युक्तम्, एकप्रयोगान्तर्गतेषु नानासङ्कल्पायोगात्, प्रत्यहहोमादिकरणसङ्कल्पबाधाच्च। एवं प्रथमत एव पञ्चसङ्कल्पकरणकल्पोऽपि न युक्तः। प्रयोगैक्यसङ्कल्पभेदायोगात्॥५७॥

प्रथम दिन ही 'अद्यारभ्य इयज्जपं करिष्ये' का सङ्कल्प करके सङ्कल्पित संख्या का जप करके 'अद्यारभ्य इयद्धोमं करिष्ये' अथवा जपाङ्ग भङ्ग होने पर 'इयद्धोमद्विगुणजपं करिष्ये' इस प्रकार का सङ्कल्प करके सङ्कल्पित होम अथवा जप करके 'अद्यारभ्य इयत् तर्पणं करिष्ये' इस सङ्कल्प द्वारा सङ्कल्पित तर्पण करके 'अद्यारभ्य इयत् मार्जनं करिष्ये' कहकर अभिषेक करके 'अद्यारभ्य इयद् ब्राह्मणभोजनं करिष्ये' का सङ्कल्प करके उतने सङ्कल्पित ब्राह्मणों को भोजन कराकर प्रात्यहिक कर्म का समापन करके पूजान्त में ब्राह्मण को भोजन दे। यदि यह सब युक्तियुक्त माना जाय? ना, यह उचित नहीं है; क्योंकि एक अङ्ग की समाप्ति पर अन्य अंग के करने के इस प्रकार के सङ्कल्प को नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि एक ही प्रयोग के अन्तर्गत पृथक् फल अजनक (न देने वाले) क्रियासमूह बाधक हैं। क्योंकि यहाँ विना स्नान, पूजन, होम तथा बलिदान की चार कर्म से युक्त महापूजा, अष्टमी पूजा अथवा होम आदि के समान पृथक् सङ्कल्प नहीं किया जा सकता। अष्टमी आदि पूजन में काम्य स्नान का पृथक् सङ्कल्प होता है; क्योंकि वह पृथक् फल देता है। लेकिन जपादि साधना के सभी अंग एक ही प्रयोग के अन्तर्गत होते हैं। वे अलग-अलग फल नहीं दे सकते। प्रयोग में सब साथ अनुष्ठित होने पर ही (क्रमानुसार अनुष्ठित होकर) फल दे सकते हैं। इसलिये उनकी पूजा में स्नानादि का अलग से सङ्कल्प नहीं किया जाता। बलिदान में कहते हैं कि देवी के उद्देश्य से अपनी कामना के उद्देश्य से बलि का अभिषेचन करके तत्पश्चात् तलवार (अस्त्र) का पूजन करे।

इस प्रकार की विशेष विधि पृथक् सङ्कल्प न लेने के मत की बाधिका है। ग्रहण पुरश्चरण में (ग्रहणकालीन पुरश्चरण में) राहुग्रस्त चन्द्रमा की स्थिति में होमादि में सप्तमी विभक्ति का अनन्वय प्रसङ्ग बाधक होने के कारण होमादि सङ्कल्प अलग-अलग किये जाते हैं, इसलिये जप समाप्त करके पुनः-पुनः एक-एक अंग का सङ्कल्प लेना तथा होम करना कर्त्तव्य है, यह मत खण्डित होता है। क्योंकि एक ही प्रयोग के अन्तर्गत कर्मसमूह के अंगों के लिये अलग-अलग सङ्कल्प नहीं हो सकता तथा प्रतिदिन होमादि करने के सङ्कल्प में बाधा है (क्योंकि एक दिन में जप पूरा नहीं होता। पुरश्चरण में नित्य जपे जप का हवन नहीं होता, वह तो जपसंख्या पूर्ण हो जाने पर ही होता है)। इसलिये प्रथमतः पाँच सङ्कल्प करना भी युक्तियुक्त नहीं है; क्योंकि प्रयोग एक ही है। उनके सङ्कल्प में भेद नहीं हो सकता (अलग-अलग नहीं किया जा सकता)।।५७।।

एवममुकदेवतायां इति व्यर्थम्, अमुकमन्त्रस्येत्यस्यैव सम्यक्त्वात्। यदि तु नक्षत्रविद्याप्रचण्डचण्डिकयोः कूर्चात्मके सुन्दरीगोपालयोः कामात्मके

चैकाक्षरे मन्त्रे देवतोल्लेखा व्यावर्त्ततया न व्यर्थस्तदा तत्रैव तथा वक्तव्यम्, तथापि अमुकमन्त्रपदेन यद्येकाक्षरादिमन्त्रत्वेन निर्देशस्तदा तद्देवतातादृश-मन्त्रान्तरव्यावृत्तिर्न घटते। तस्मादिष्टमन्त्रमुच्चार्य इत्यस्य मन्त्रस्येति वाच्यम्। अस्तु; इष्टमन्त्रमुच्चार्य इत्यस्यामुकदेवतामन्त्रस्येति क्वचिद् व्यावर्त्तकतया क्वचिच्च स्वरूपाख्यानपरतया निर्देशः ॥५८॥

इस प्रकार से 'अमुकदेवतायाः' यह वाक्य व्यर्थ है, क्योंकि 'अमुकमन्त्रस्य' यह कहते ही सम्यक् रूप से (ज्ञात हो जाता है कि कौन देवता है) कह दिया जाता है। यद्यपि नक्षत्र विद्या में तथा प्रचण्डचण्डिका के कूर्चरूप बीज (हुं) एकाक्षर मन्त्र में अथवा सुन्दरी विद्या तथा गोपाल के कामबीज रूप एकाक्षर मन्त्र में देवता का उल्लेख अन्य देवता का व्यावर्त्तक होने के कारण व्यर्थ नहीं है। अतः मात्र वहीं (इन एकाक्षर मन्त्रों में) देवता का उल्लेख करे (अमुकदेवतायाः) अन्यत्र न करे। अतएव इष्ट मन्त्रोच्चार करके वहाँ 'इत्यस्य मन्त्रस्य' यह कहे। इष्ट मन्त्र का उच्चारण करके 'इत्यस्यामुकदेवतामन्त्रस्य' यह निर्देश किसी स्थान पर व्यावर्त्तक रूप में कर्त्तव्य है और कहीं स्वरूप-कथनरूप में कर्त्तव्य है।।५८।।

अत्र 'मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्वश' इत्यत्र सर्वश इत्यनेन सर्वप्रकारेण मासत्वपक्षत्वतिथित्वात्मकसामान्यप्रकारेण माघत्वादिशु-क्लत्वादिप्रतिपत्वादिना मासपक्षतिथिविभाजकोपाधिरूपविशेषप्रकारेण चोल्लेखविधानात् माघत्वादिना चोल्लेखः कार्यः, तत्रापि विशेषरूपा-वच्छिन्नवाचिपदस्य विशेषेण पदत्वात् प्राक् निर्देशः। तेन माघे मासि इत्यादिरूपेणैवोल्लेखः, न तु माघमासीत्यादिनापि, माघमासत्वादेरुभ-यरूपबहिर्भावादिति ध्येयम् ॥५९॥

इस सङ्कल्प से 'मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्वशः' इस पद द्वारा सब प्रकार के मासत्व पक्षत्व तिथित्वरूप सामान्य प्रकार से तथा माघत्वादि, शुक्लत्वादि, प्रतिपत्वादि मास, पक्ष, तिथि-विभाजक उपाधिरूप विशेष प्रकार के विधान का उल्लेख रखने के कारण माघत्वरूप से उल्लेख करना कर्त्तव्य है। यहाँ भी विशेष रूप विशिष्ट के वाचक पद को विशेषण पद कहकर पूर्व में ही निर्देश होता है। इसीलिये 'माघे मासि' उल्लेख होता है, 'माघमासि' इत्यादि रूप से उल्लेख नहीं किया जाता; क्योंकि माघमासत्वादि उभयरूपेण (सामान्य रूप तथा विशेष रूप से) बहिर्भूत है। यह जानना चाहिये।।५९।।

एवमनेकाहसाध्यकर्मणि, तत्तिथेरधिकरणत्वायोगात् अमुकतिथिरित्यन्तर-

मारभ्येति वक्तव्यम्। तथा च 'ॐ तत्सत् ॐ अद्यामुके मास्यमुकराशिस्थे भास्करेऽमुके पक्षेऽमुकतिथावारभ्यामुकगोत्रः श्री अमुकः इत्युच्चार्य इष्टमन्त्रमुच्चार्य इत्यस्यामुकदेवतामन्त्रस्य सिद्धकामस्तल्लक्षजप-तत्करणकायुतहोमसहस्रतर्पणशताभिषेकभोजनजन्यदशब्राह्मणतृप्त्युत्पादन-रूपपञ्चाङ्गपुरश्चरणमहं करिष्ये इत्येव वाक्यमुचितम्। होमाद्यशक्तौ अद्येत्यादि तल्लक्षजपतत्करणायुतहोमानुकल्पतद्द्व्ययुतजपतत्करण-कसहस्रतर्पणेत्यादि वाच्यम्। एवं लक्षजपदशब्राह्मणभोजनात्मकद्व्यङ्ग-पुरश्चरणसङ्कल्पोऽप्यूह्यः ॥६०॥

इस प्रकार से जो कर्म अनेक दिनों में साध्य होगा, उस कर्म के सङ्कल्प में उल्लेख की गई तिथि (द्वितीयादि) दिन साध्य कर्म का अधिकरण नहीं हो सकता। अत: 'अमुकतिथौ' के पश्चात् 'आरभ्य' यह कहना पड़ेगा। इस स्थिति में इस प्रकार का सङ्कल्प वाक्य होना उचित है—'ॐ तत्सत् ॐ अद्य अमुके मासि अमुकराशीस्थे भास्करेऽमुके पक्षेऽमुकतिथावरभ्यामुकगोत्र: श्री अमुक: ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहेत्यस्य श्रीकृष्णमन्त्रस्य सिद्धिकामस्तल्लक्षजपतत्करणायुतहोमसहस्रतर्पणशताभिषेक-भोजनजन्यदशब्राह्मणतृप्त्युत्पादनरूपपञ्चाङ्गपुरश्चरणमहं करिष्ये'। इस प्रकार से एक लाख जप तथा दश ब्राह्मण भोजनरूप दो अंग से विशिष्ट इस पुरश्चरण सङ्कल्प को इस प्रकार गठित किया जाता है।।६०।।

ब्राह्मणभोजने दशत्वादिसंख्याब्राह्मणस्यैव विवक्षितो, न तु भोजनस्य, 'ब्राह्मणान् भोजयेद् दशे'त्यादि वचनबलात्। तेनैकब्राह्मणस्य दशकृत्वो भोजनान्न दशब्राह्मणभोजनसिद्धिः, एकस्य दशत्वपर्याप्त्यनधिकरणत्वात्। अत एवैकशिवलिङ्गस्य शतपूजने शतशिवपूजा न सिध्यति, तुल्य-न्यायात् ॥६१॥

'दश ब्राह्मणों को भोजन कराये' इस वचन के बल से दशत्व संख्या ब्राह्मणों की विवक्षित है, भोजन की नहीं है। इसलिये एक ही ब्राह्मण को १० बार भोजन करा देने से दश ब्राह्मणों का भोजन सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि एक पदार्थ दशत्व संख्या की पर्याप्ति का अधिकरण नहीं होता। इसी कारण इसी के समान एक ही शिवलिङ्ग की १०० बार पूजा करने से १०० शिवलिङ्गों की पूजा सिद्ध नहीं हो जाती।।६१।।

पुरश्चरणपदं पञ्चाङ्गे शक्तम्। तथा च—

जपहोमौ तर्पणञ्चाभिषेको विप्रभोजनम्।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमिष्यते ॥६२॥

तादृशञ्चेदं ग्रहणकालीनञ्च पुरश्चरणम्।

पुरश्चरण पद पञ्चाङ्ग पूजण में शक्त है। जैसा कि कहा भी गया है कि जप, होम, तर्पण, अभिषेक तथा ब्राह्मणभोजन—इन पञ्चाङ्ग की उपासना को ही इस लोक में पुरश्चरण कहते हैं। इसी प्रकार ग्रहणकालीन पुरश्चरण भी पञ्चाङ्ग पुरश्चरण है।।६२।।

तथा तन्त्रे—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते।
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः ।।६३।।
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः।
स्पर्शाद् विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।।६४।।

तन्त्र में कहा भी है—अथवा अब अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहते हैं। चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहण के पूर्व दिन उपवास करके शुद्ध होकर (समुद्र में जो नदी जाती है) जैसे गंगा, सिन्धु आदि के नाभि तक जल में खड़े होकर जब तक राहु के स्पर्श से मुक्ति (चन्द्रादि की) न हो जाय तब तक (अर्थात् ग्रहण समाप्त होने तक एकाग्रचित्त से मन्त्र जपे।।६३-६४।।

जपाद् दशांशतो होमं तथा होमात्तु तर्पणम्।
तर्पणाच्चाभिषेकश्चाभिषेकाद् विप्रभोजनम्।
एवं कृते तु मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा ।।६५।।

जप के पश्चात् उसका दशमांश होम करे तथा होम के अनन्तर उसका दशांश अभिषेक तथा अभिषेक के दशमांश ब्राह्मण भोजन कराये। इससे मन्त्र की उत्तम सिद्धि होती है।।६५।।

तथा—

दृष्ट्वा स्नात्वा सुसङ्कल्पो विमोक्षान्तं जपं चरेत्।
तावद् यजादिकं कुर्याद् ग्रहणान्ते शुचिः पुमान्।
एवं जपान् मन्त्रसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ।।६६।।

इसी प्रकार तन्त्र में कहते हैं कि मानव पवित्र होकर ग्रहण होते देखकर स्नान करके सम्यक् रूप से सङ्कल्प करके ग्रहण के मोक्ष होने तक जप करे। ग्रहण के पश्चात् उसी परिमाण में अर्थात् जप के दशांश परिमाण में यज्ञादि (होमादि) करे। इस प्रकार जप करने से मन्त्र-सिद्धि मिल जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है।।६६।।

योगिनीहृदये—

कल्पोक्तविधिना मन्त्री कुर्याद् होमादिकं ततः।
अथवा तद्दशांशेन होमादींश्च समाचरेत् ।।६७।।

योगिनीहृदय तन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रज्ञ साधक तदनन्तर शास्त्र में निर्दिष्ट (कल्पोक्त) विधि के अनुसार होमादि करे। अथवा जप के दशमांश होमादि आचरण करे।।६७।।

तथा—

अनन्तरं दशांशेन क्रमाद् होमादिकं चरेत्।
तदन्ते महती पूजां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।।६८।।
ततो मन्त्रस्य सिद्ध्यर्थं गुरुं सम्पूज्य तोषयेत्।
एवञ्च मन्त्रसिद्धिः स्याद् देवता च प्रसीदति।।६९।।

अन्य तन्त्र में भी कहा गया है कि तदनन्तर क्रम-क्रम से दशांश परिमाण में होमादि का अनुष्ठान करना चाहिये। तत्पश्चात् महती पूजा करे और ब्राह्मण-भोजन कराये। तत्पश्चात् मन्त्रसिद्धि के लिये गुरु का पूजन करके उनको सन्तुष्ट करे। ऐसा करने से देवता प्रसन्न होते हैं और मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।६८-६९।।

नद्यप्राप्तौ तु—

यद्वा पुण्योदके स्नात्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः।
ग्रहणादि विमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः।।७०।।

यदि नदी न मिले तब कहा गया है कि पूर्व दिन उपवास करके अगले दिन पवित्र जल से स्नान करके पवित्र होकर ग्रहण जबसे लगा है तब से लेकर मुक्ति का पर्यन्त मन्त्र-जप समाहित चित्त से करे।।७०।।

उपवासासामर्थ्ये तु—

अथवान्यप्रकारेण पौरश्चरणिको विधिः।
चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः।
स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः।।७१।।

उपवास का सामर्थ्य न होने पर तन्त्र में कहा है कि अब अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहा जाता है। चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण में साधक स्नान करके स्पर्शकाल से मोक्षपर्यन्त समाहित होकर मन्त्रजप करे।।७१।।

अत्र यद्यपि स्पर्शमोक्षयोरुत्पत्तिक्षणेऽवधारणमशक्यम्। यदा कदाचिद-वधारणन्तु न पुरश्चरणोपयोगि, तथापि असति प्रतिबन्धके यावता कालेन प्रथमं केनापि चक्षुषा तावदवधार्यते, तावानेव कालः स्पर्शमोक्षयोग्यो विवक्षणीयः। ग्रस्तोदिते ग्रस्तास्तयोस्तु न पुरश्चरणसिद्धिः। न चात्र ग्रहण-स्यैव निमित्ततयोक्तत्वाद् दर्शनमकिञ्चित्करम्।।७२।।

यहाँ स्पर्श तथा मोक्ष दोनों के ही (स्पर्शक्षण, मोक्षक्षण) उत्पत्तिक्षण को अवधारित नहीं किया जा सकता; क्योंकि किसी एक समय की अवधारणा पुरश्चरण में उपयोगी नहीं है। तथापि प्रतिबन्धक नहीं होने के कारण जिस परिमाण काल में किसी के चक्षु द्वारा स्पर्श तथा मोक्ष को अवधारित किया जाता है, उस परिणाम काल को ही स्पर्श तथा मोक्ष के योग्य कहा जायेगा। ग्रस्त होने के आदि में तथा ग्रस्त का अन्त होने के क्षण में पुरश्चरण सिद्ध नहीं होता। यहाँ ग्रहण को ही पुरश्चरण के निमित्त रूप में नहीं कहा जाने के कारण दर्शन अकिञ्चित्कर है।।७२।।

राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु ।
स्नानदानादिकं कुर्युर्निशि काम्यव्रतेषु च ।।७३।।

इत्यादौ राहुदर्शनपदमपि राहुर्दृश्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या ग्रहणपरमिति वाच्यम्।

चन्द्रे वा यदि वा सूर्ये दृष्टे राहौ महाग्रहे ।
अक्षयं कथितं पुण्यं तत्राप्यर्के विशेषतः ।।७४।।

राहुदर्शन, संक्रान्ति, विवाह, क्षय तथा वृद्धि में एवं काम्यव्रतसमूह में रात्रि में स्नान करना चाहिये—इत्यादि स्थल में भी 'राहुर्दृश्यतेऽनेन' अर्थात् राहु दृष्ट होता है इसके द्वारा—इस व्युत्पत्ति से निष्पन्न राहुदर्शन पद ग्रहणपरक है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि चन्द्र अथवा सूर्य के राहु महाग्रह से दृष्ट होने पर विशेष पुण्य (अक्षय) कहा गया है।।७३-७४।।

इत्यत्र राहौ दृष्टे इत्यभिधानात् 'राहुं दृष्ट्वाऽक्षयं नरः' इत्युक्तत्वात् यावद्दर्शनगोचर इति वचनाच्च। तच्च दर्शनं चाक्षुषमेव, न तु ज्ञानमात्रम्, चन्द्रसूर्योपरागस्य स्नानादौ संक्रान्तिवज्ज्ञातस्यैव निमित्तत्वाज्ज्ञाने प्राप्ते दर्शनोपादानस्य वैयर्थ्यापत्त्या तत्तदर्शनपदस्य चाक्षुषपरत्वात्, तत्रैव दृशेः शक्तत्वात् ।।७५।।

यहाँ 'राहौ दृष्टे' अर्थात् 'राहु देखा गया' यह कहा जाता है। 'राहुं दृष्ट्वाऽक्षयं नरः' अर्थात् मानव राहु को देखकर अक्षय पुण्यलाभ करता है—यह कहा गया और 'यावद् दर्शनगोचरः' यह भी वचन है। अतः दर्शन ही पुरश्चरण का निमित्त है। यह अकिञ्चित्कर नहीं है। यह दर्शन नेत्रों द्वारा किया गया दर्शन है; ज्ञानमात्र नहीं है। अतएव स्नानादि के विषय में संक्रान्ति की तरह चन्द्र-सूर्य का ग्रहण ज्ञात होना ही निमित्त है। अतः ज्ञान प्राप्त होने (की ग्रहण है) के वचन से दर्शन पद का उपादान व्यर्थ कहा जाय, वह दर्शन पद चाक्षुष (आँखों से देखा) दर्शन तात्पर्यक कहा जायेगा। क्योंकि दृश धातु की चाक्षुष दर्शन ही शक्ति है।।७५।।

यथोक्तं संवत्सरप्रदीपे—

चक्षुषा दर्शनं राहोर्यत्तद् ग्रहणमुच्यते ।
तत्र कर्माणि कुर्वीत गणनामात्रतो न तु ।।७६।।

संवत्सरप्रदीप ग्रन्थ में भी कहा गया है कि नेत्रों से ग्रहण देखना ही ग्रहण-निमित्त कर्म का प्रयोजक है। यह देखने पर ही कर्म करे (कि ग्रहण लगा गया है। गणनामात्र से कर्म न करे) ग्रहण को देखे विना गणनामात्र से कर्म न करे।।७६।।

तत्र ग्रहणमित्यस्य ग्रहणनिमित्तककर्मप्रयोजकमित्यर्थः। अत्र राहुदर्शनमाख्यातोपस्थापितस्नानादिकर्त्तुः सान्निध्यात् तन्निष्ठमेव लाघवात्। अन्यथा—

सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने ।
नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही ।।७७।।

इति विष्णुपुराणवचनात् स्वपुत्रस्यान्यकर्तृकमुखदर्शनेऽपि श्राद्धप्रसक्तेः।

इस श्लोक में 'ग्रहणम्' का अर्थ है—ग्रहणनिमित्तक कर्म का प्रयोजक। राहुदर्शन द्वारा उपस्थापित स्नानादि कर्त्ता के सान्निध्य के कारण कर्त्ता से ही सम्बद्ध है। अन्यथा सीमन्तोन्नयन में, नवजात अपने पुत्र के मुखदर्शन (प्रथमदर्शन) में गृही संयत होकर नान्दीमुख (श्राद्ध से) से पितृगण का पूजन करना चाहिये। इस विष्णुपुराण के वचन के अनुसार अपने पुत्र के अन्य द्वारा मुखदर्शन में भी नान्दीमुख श्राद्ध की आवश्यकता होगी।।७७।।

राहुं दृष्ट्वा क्षयं नरः—इत्यत्र क्त्वानिर्देशाच्चेति स्मार्त्ताः। हेमाद्रिरपि यावद्दर्शनगोचरस्तावत् पुण्यकालो यद्यस्तङ्गतो न दृश्यते न तदा पुण्यकाल इत्याह। माधवाचार्योऽपि ग्रस्तास्तमनपर्यन्तं दर्शनगोचरत्वात् तावान् पुण्यकालो भवतीति। युज्यते चैवम्। तथा च ग्रस्तास्तमिते वशिष्ठः—पूर्वमेव स्नानार्थं तिष्ठति नोर्ध्वमिति। पूर्वमूर्ध्वमित्यत्रास्तादित्यध्याहृत्यान्वयः ।।७८।।

'राहुं दृष्ट्वाऽक्षयं नरः' इस वचन के अनुसार देखने वाले को ही (ग्रहण देखने वाले को ही) कर्म का अधिकार है; अन्य का अधिकार नहीं है—यह स्मार्त्त कहते हैं। हेमाद्रि ने भी यही कहा है कि जब तक राहु देखता है, दर्शन का विषय है, तब तक राहुकाल है। यदि ग्रस्त चन्द्र अथवा सूर्य दृश्य नहीं होते, तब वहाँ पुण्यकाल (ग्रहण) नहीं है। माधवाचार्य भी यही कहते हैं कि ग्रस्त तथा अस्तगमन पर्यन्त चन्द्र अथवा सूर्य (ग्रहण) के विषय में उसी परिमाण में पुण्यकाल है (ग्रस्त होने से लेकर मोक्ष-

पर्यन्त)। यह कथन युक्तिसिद्ध है। वशिष्ठ भी यही कहते हैं कि पूर्व में ही स्नानार्थ अवस्थान करे, ग्रहण के पश्चात् में नहीं। पूर्व तथा ऊर्ध्व (वशिष्ठवचन में वर्णित) यहाँ 'अस्तां' (अस्त) का अध्याहार करके अन्वय अर्थात् अस्तगमन के पूर्व अवस्थान करे और अस्तगमन के ऊर्ध्व (पश्चात्) अवस्थान न करे।।७८।।

देवलोऽपि—

यथा स्नानञ्च दानञ्च सूर्यस्य ग्रहणे दिवा।
सोमस्यापि तथा रात्रौ स्नानदानं विधीयते ।।७९।।

देवल ऋषि भी कहते हैं कि दिन के सूर्यग्रहण में जिस प्रकार का स्नान-दान आदि विहित है, रात्रि में चन्द्रग्रहण में भी वही विहित है।।७९।।

निगमेऽपि—

सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहो भवेत्।
तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद् दानं न कुत्रचित् ।।८०।। इति।

निगम में भी कहा गया है कि जब रात्रि में सूर्यग्रहण होता है और दिन में चन्द्रग्रहण होता है, तब न तो स्नान करे और न ही दान करे।।८०।।

एतेनान्यकर्तृकदर्शने ग्रस्तास्तानन्तरञ्च यत् स्नानादिकमभिहितं नारायणोपाध्यायैस्तद्धेयमेव। एवञ्च ग्रस्तोदयग्रस्तास्तमनयोः पुरश्चरणं न सम्भवति, 'स्पर्शाद् विमुक्तिपर्यन्त'मित्यभिधानादिति स्मार्त्ताः। केचित्तु तत्पुरुषस्य प्रथमदर्शनकालावधिविमुक्तिपर्यन्तजपादेव पुरश्चरणसिद्धिः, स्पर्शपदस्य स्पृशावधारणपरत्वादित्याहुः ।।८१।।

अन्य के द्वारा ग्रहण दर्शन हुआ तथा ग्रस्तास्त के अनन्तर नारायणोपाध्याय द्वारा जो स्नान-दान कहा गया है, वह इस वचन के द्वारा हेय सिद्ध होता है। इसी प्रकार से स्मार्त्त भी कहते हैं कि ग्रस्तोदय तथा ग्रस्त के अस्तगमन में पुरश्चरण सम्भव नहीं है; क्योंकि कहा गया है कि 'स्पर्श से मुक्तिपर्यन्त'। किसी-किसी का मत है कि उस व्यक्ति द्वारा ग्रहण के 'प्रथम दर्शनकाल से लेकर ग्रहण मुक्ति-पर्यन्त' जप द्वारा ही पुरश्चरण सिद्ध होता है, अतएव स्पर्श पद स्पर्श के अवधारण का तात्पर्यक है।।८१।।

ननु ग्रहणे जप आवश्यकः श्राद्धं वेति। चेत्? अत्र केचित् जप एवावश्यकः।

श्राद्धादेरनुरोधेन यदि जाप्यं त्यजेन्नरः।
स भवेद् देवताद्रोही पितृन् सप्त नयत्यधः ।।८२।।

इति सनत्कुमारीयवचनादिति वदन्ति। तन्न चारु, तद्वचनमारब्धपुरश्चरण-विषयम्, त्यजेदिति निर्देशात्।

आरब्धे पुरश्चरणे यदि च ग्रहणं भवेत्।
तदा श्राद्धानुरोधेन जपं नैव परित्यजेत् ॥८४॥

इत्येकवाक्यत्वात्।

सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने।
अकुर्वाणस्तु यच्छ्राद्धं पङ्के गोरिव सीदति ॥८४॥

ग्रहण में जप आवश्यक है अथवा श्राद्ध? यदि कोई यह प्रश्न करे तब उत्तर में कोई कहेगा कि जप ही आवश्यक है, क्योंकि सनत्कुमार तन्त्र का वचन है कि यदि श्राद्धादि के कारण जप का त्याग कर देता है, तब वह देवता का द्रोही होगा तथा वह अपने सात पीढ़ी के पितरों को अधोगति में ले जायेगा।

यह सनत्कुमारीय वचन है। किन्तु यह बात उत्तम नहीं है; क्योंकि यह वचन पुरश्चरण-विषयक है (जिसे नहीं किया गया)। पुरश्चरण आरम्भ होने पर यदि ग्रहण लग जाता है, तब श्राद्ध के कारण कभी भी जप का परित्याग न करे—इस वचन के साथ इसकी एकवाक्यता है; क्योंकि राहु के दर्शन होने पर श्राद्ध न करने से अधोगति होती है। इसलिये राहु का दर्शन होने पर सर्वेश्वर को भी श्राद्ध करना चाहिये।।८३-८४।।

इत्यनेन नित्यत्वावधारणत्वाच्च। अत्र यदित्यस्य यस्मादित्यर्थः। तच्छ्राद्धमित्यपि क्वचित् पाठः। आरब्धपुरश्चरणकस्य ग्रहणकाललब्धेस्तु दिनपूर्वार्द्धसूर्यग्रहणे दिनचतुर्थयामाहोरात्रसाध्यरहस्यपुरश्चरणयोः शारदचतुर्थ्यादिरात्रिपुरश्चरणेऽहोरात्रसाध्यश्यामाद्वाविंशत्यक्षरमन्त्रपुरश्चरणे च यथासम्भवं रवीन्दोर्ग्रहणे सम्भवति ॥८५॥

इस वचन द्वारा श्राद्ध के नित्यत्व का अवधारण होता है। यहाँ 'यत्' का तात्पर्यार्थ है—यस्मात्। कहीं 'तच्छ्राद्धं' शब्द भी पाठ में देखा जाता है। पुरश्चरण आरम्भ करने वाले को ग्रहणकाल का लाभ हुआ, उस दिन के पूर्वार्द्ध में सूर्यग्रहण लगा। दिन के चतुर्थ याम में साध्य पुरश्चरण तथा अहोरात्र में साध्य रहस्य पुरश्चरण, शरद की चतुर्थी आदि रात्रि के पुरश्चरण तथा अहोरात्र में साध्य श्यामा का बाईस अक्षर मन्त्रों का पुरश्चरण जैसे सम्भव होता है, वह चन्द्र-सूर्यग्रहण में भी उसी प्रकार से सम्भव होता है।।८५।।

केचित्तु श्राद्धस्यादिः श्राद्धादिर्दानम्। तथाच दानपुरश्चरणयोः सम्भावनायां

पुरश्चरणमेव, श्राद्धपुरश्चरणयोः सम्भावनायान्तु श्राद्धमेव कार्यमिति वदन्ति। इति वचनात् ॥८६॥

कोई-कोई कहते हैं कि श्राद्ध के नित्यत्व के कारण श्राद्ध आवश्यक है; क्योंकि उसके न करने से पाप होता है—यह सुना गया है। 'आरब्ध' इत्यादि पूर्वोक्त वचनों से एकवाक्यता के कारण 'श्राद्धादेरनुरोधेन' यह वचन आरब्ध पुरश्चरण-विषयक है। यह पुरश्चरण काम्य है।

कहा गया है कि जो व्यक्ति चन्द्र तथा सूर्यग्रहण में विधिपूर्वक श्राद्ध का अनुष्ठान करते हैं, वे ब्राह्मण को पृथ्वीदान का फल प्राप्त करते हैं।।८६।।

तथा च नित्यकाम्यमेवेदम्। अतएव जपत्यागे देवताद्रोहः सप्तपुरुषाधोगतिश्च, श्राद्धत्यागे स्वस्यैव पापभागित्वमिति श्राद्धत्याग एव युक्त इति निरस्तम्, देवद्रोहादिवाचिवचनस्यारब्धपुरश्चरणत्यागपरत्वादिति साम्प्रतम् ॥८७॥

अत: यह पुरश्चरण नित्य तथा काम्य ही है। इसीलिये जपत्याग से देवता-द्रोह तथा सप्तपुरुष (सात पीढ़ी वाले पूर्वजों) की अधोगति होती है। श्राद्धत्याग से स्वयं का पापभागित्व होता है। इसलिये श्राद्धत्याग करना युक्त है, यह बात भी खण्डित होती है। क्योंकि देवद्रोहादि-बोधक वचन आरब्ध पुरश्चरण त्याग-विषयक ही है।।८७।।

परे तु जपपुरश्चरणयोर्द्वयोरेव नित्यतया पुत्रादिद्वारा श्राद्धं कुर्वन्नेव स्वयं पुरश्चरणं कुर्यादिति व्यवस्थापयन्ति। वयन्तु वचनव्याख्या यथा तथास्तु, ग्रहणे पुरश्चरणस्य सन्दिग्धसिद्धिकत्वान्निश्चितसिद्धिकं श्राद्धमेव युक्तमिति क्रमः ॥८८॥

अन्य लोग कहते हैं कि जप तथा पुरश्चरण दोनों ही नित्य हैं। पुत्रादि द्वारा श्राद्ध करवाकर स्वयं पुरश्चरण करे, यह व्यवस्था देते हैं। मैं कहता हूँ कि वचन की व्याख्या चाहे जो हो, ग्रहण में पुरश्चरण की सिद्धि संदिग्ध होने के कारण श्राद्ध की फलसिद्धि निश्चित होने के कारण श्राद्ध ही युक्त है।।८८।।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

स्वर्धून्यम्भः समानि स्युः सर्वाण्यम्भांसि भूतले।
कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥८९॥

छन्दोगपरिशिष्ट में कहते हैं कि चन्द्र तथा सूर्यग्रहण में भूतल के समस्त जल, यहाँ तक कि कूयें का जल भी स्वर्धुनी (गंगा) के समान हो जाता है। यह तथ्य नि:संदिग्ध है।।८९।।

ग्रहणनिमित्तकश्राद्धदीक्षापुरश्चरणादिकं मलमासे यदि कार्यम्।

नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन् मलिम्लुचे।
तीर्थस्नानं गणच्छायां प्रेतश्राद्धं तथैव च। इति।
चन्द्रसूर्यग्रहे स्नानं श्राद्धदानं जपादिकम्।
कार्याणि मलमासेऽपि नित्यं नैमित्तिकं तथा॥

इति कालमाधवीयधृतवचनाच्च।

ग्रहण-निमित्तक श्राद्ध, दीक्षा तथा पुरश्चरणादि यदि मलमास में करें तब इसी प्रकार बृहस्पति का वचन है कि मलमास में संयत होकर नित्य तथा नैमित्तिक कार्य करना चाहिये। इसी प्रकार तिथि, नक्षत्र के योगविशेष में (गणच्छाया में) तीर्थ तथा प्रेतश्राद्ध करे। कालमाधवीय ग्रन्थ में उद्धृत वचन है कि चन्द्र तथा सूर्यग्रहण में स्नान, श्राद्ध, दान तथा जपादि मलमास में भी करे (यह वचन मलमास में लगे ग्रहण के लिये कहा गया है)। उसी प्रकार नैमित्तिक, नित्य कर्म भी करे।

विशेष—मूल में इसका श्लोक नम्बर नहीं लिखा है।

वृद्धवशिष्ठः—

सप्तजन्मसु कुष्ठी स्यात् दुःखभोगी च सर्वदा॥९०॥

वृद्धवशिष्ठ का कथन है कि जो संक्रान्ति में तथा ग्रहण में स्नान (दान) नहीं करता, वह सात जन्म-पर्यन्त कुष्ठरोगी तथा दुःख का भागी होता है।।९०।।

व्याघ्रः—

आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतञ्च वह्निना।
जलं व्याध्यातुरः स्नायाद् ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा॥९१॥

एवंभूतं जलं यतोऽत उष्णवारिणापि स्नायादित्यर्थः।

व्याघ्र भी कहते हैं कि जल सूर्यकिरणों से पवित्र होता है; पुनः अग्नि से पवित्र होता है; अतः ग्रहण में व्याधिग्रस्त व्यक्ति गरम पानी से स्नान करे। जल इस रूप में (गर्मजल के रूप में) भी पवित्र है। इसलिये गरम जल से स्नान करना कर्त्तव्य है। यह श्लोक का अर्थ है।।९१।।

अशौचिना ग्रहणदर्शने साङ्गं स्नानं कर्त्तव्यम्, दानं श्राद्धञ्च न कर्त्तव्यम्। यथा स्मृतिः—

सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने।
स्नानमात्रन्तु कर्त्तव्यं दानश्राद्धविवर्जितम्॥९२॥

अशौची व्यक्ति ग्रहण दर्शन में साङ्ग (शिर से पैर तक) स्नान करे। स्नान करना कर्त्तव्य है, दान तथा श्राद्ध कर्त्तव्य नहीं है। जैसा कि स्मृति में कहते हैं—राहु दर्शन (ग्रहण) में जननाशौच तथा मरणाशौच दोष नहीं है। दान तथा श्राद्धरहित स्नान मात्र कर्त्तव्य है।।९२।।

भविष्ये—

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव मृतानां पिण्डकर्मसु।
महातीर्थे तु सम्प्राप्ते क्षतदोषो न विद्यते ।।९३।।

भविष्यपुराण में कहा है कि चन्द्र-सूर्यग्रहण में मृतगण के लिये कर्म (पिण्डादि श्राद्ध) में तथा महातीर्थ (गंगादि) की प्राप्ति में दोष नहीं है।।९३।।

महातीर्थे गङ्गादौ सम्प्राप्ते तत्तत् क्षेत्रवासादिना, न तु प्रथमप्राप्तिमात्रे, तथा सति शब्दानर्थक्यापत्तेः ।।९४।।

उन-उन क्षेत्रवासियों द्वारा गंगादि महातीर्थ की प्राप्ति, परन्तु प्रथम प्राप्तिमात्र नहीं, उस स्थिति में शब्दसमूह के आनर्थक्य की आपत्ति होगी।।९४।।

विशेष—तात्पर्य यह है कि जो महातीर्थों के क्षेत्र में रहते हैं, उनके लिये गंगादि महातीर्थ की प्राप्ति प्रथम प्राप्ति नहीं है।

दीक्षितेष्वभिषिक्तेषु व्रततीर्थपरेषु च।
तपोदानप्रसक्तेषु नाशौचमृतसूतके ।।९५।।

इति पराशरवचनेन तत्तीर्थाश्रितस्य तत्तीर्थनिमित्तककर्मणि जननमरण-शौचाभावोक्त्या क्षते सुतरामशौचाभावकल्पनायुक्तत्वात्। दीक्षितेष्विति। यजमानानां सोमयागादिदीक्षणीयेष्टौ कृतायां दीक्षितत्त्वं भवति। तेन दीक्षणीयेष्ट्या यजमानस्य यत् कर्त्तव्यं विहितम्, तत्राशौचं नास्ति। अभिषिक्तेषु प्राप्तवाजत्वाभिषेक क्षत्रियेषु तद्विशेषविहितकर्मणाशौचं नास्ति। व्रतपरो व्रतानुष्ठानप्रसक्तः। तीर्थपरः क्षेत्रवासादिना तन्निमित्तक-र्मानुष्ठानप्रसक्तः ।।९६।।

दीक्षित अथवा अदीक्षित भी यदि तीर्थ तथा व्रत में रत है, तपस्या तथा दान में प्रसक्त है, तो उसे जननाशौच तथा मरणाशौच नहीं लगता।

इस पराशरवचन द्वारा उन-उन तीर्थों के आश्रित व्यक्ति को उन-उन तीर्थनिमित्तक कर्म में जननाशौच तथा मरणाशौच का अभाव कहा गया है। उन्हें क्षत होने पर अशौच नहीं होगा। यह युक्तियुक्त है। 'दीक्षितेषु' से यह कहा गया है कि यजमानगण सोम-

यागादि इष्टि में दीक्षित होते हैं, जो दीक्षणीय है। इसमें दीक्षणीयेष्टि द्वारा जो कर्त्तव्य विहित है, उस कर्त्तव्य कर्म में उन्हें अशौच नहीं लगता। 'व्रतपर' का अर्थ है—व्रतानुष्ठान में लगा हुआ। तीर्थपर अर्थात् क्षेत्रवासादि द्वारा तन्निमित्तक कर्मानुष्ठान में तत्पर।।९५-९६।।

अत्र 'चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुद्ध्यती'त्यादिवचनात् ग्रहणे भोजनविधिनिषेधौ दृष्टोपरागविषयावेव, न तु सर्वविषयाविति, माना-भावात्, मुक्तिं दृष्ट्वेत्यादिना तस्यैव प्रकृतत्वाच्चेत्याचार्यचूड़ामणिमतम्, तन्न सम्यक् ।।१।।

इस ग्रहणप्रसङ्ग में 'चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुध्यति' अर्थात् सूर्य तथा चन्द्रग्रहण में भोजन करके प्राजापत्य व्रत के द्वारा शुद्ध होने पर इस वचनानुसार ग्रहण में भोजन की विधि तथा नियम प्रत्यक्ष दृष्ट उपराग-विषयक हैं, किन्तु समस्त ग्रहण विषयक नहीं हैं। इसका कोई प्रमाण नहीं है। 'मुक्तिं दृष्ट्वा' इत्यादि वचन के द्वारा वह दृष्ट उपराग ही अधिकृत हुआ है। यह जो आचार्य चूड़ामणि का वचन है, वह संगत नहीं है।।१।।

चन्द्रस्य यदि वा भानोर्यस्मिन्नहनि भार्गव! ।
ग्रहणन्तु भवेत्तत्र तत्पूर्वां भोजनक्रियाम् ।।२।।
नाचरेत् सग्रहे चैव तथैवास्तमुपागते ।
यावत् स्यान्नोदयस्तस्य नाश्नीयात् तावदेव तु ।
मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीत स्नानं कृत्वापरेऽहनि ।।३।।

इति विष्णुधर्मोत्तरेण सामान्यतो निषेधात्। सग्रहे—रविचन्द्रान्यत् रश्मिन्। तथैव—सग्रहत्वेनैव।

इसलिये कहा है—हे भार्गव! जिस दिन चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण हो, उस दिन ग्रहण के पूर्व भोजन क्रिया न करे। चन्द्र अथवा सूर्य के राहु ग्रह के साथ अस्तगमन करने पर जब तक उनका उदय न हो जाय तब तक भोजन न करे। दूसरे दिन ग्रहभुक्ति देखकर स्नान करके भोजन करना चाहिये।

इस विष्णुधर्मोत्तर पुराण-वचन द्वारा सामान्य रूप से ग्रहणमात्र में भोजन का निषेध है। सग्रहे अर्थात् राहु (ग्रह) के साथ स्थित रवि अथवा चन्द्र में से कोई एक। तथैव अर्थात् राहु ग्रास का काल।।२-३।।

चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुध्यति ।
तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ।।४।।

इति देवलवचनेन सामान्यतः प्रायश्चित्तविधानाच्च।

चन्द्र तथा सूर्यग्रहण में भोजन करने के दोष से प्राजापत्य द्वारा शुद्धि होती है। उस दिन भोजन करने से तीन रात व्रत उपवास से शुद्धि होती है। इस देवल ऋषि के वचन द्वारा सामान्यत: प्रायश्चित्त का विधान वर्णित है।।४।।

तस्मिन्नेव दिन इत्यस्य तद्दिवसीयनिषिद्धकालाभ्यन्तर इत्यर्थः। अत्र च पुत्रिणो गृहस्थस्य ग्रस्तास्तेऽपि नोपवासः।

आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
पारणञ्चोपवासञ्च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही ।।५।।

इति निषेधात्; किन्तु ग्रहणात् पूर्वं निर्दोषकाले परं वा किञ्चिद् भक्ष्यमिति संवत्सरप्रदीपमतं स्मार्त्तेनाप्यनुमतम्। तत्र पूर्वकल्पः श्राद्धादिकर्त्तृणां न युक्त इति वयम्। 'आदित्येऽहनि' इत्यादि वचनन्तु काम्योपवासतत्परायणपरम् ।।६।।

'तस्मिन्नेव दिन' अर्थात् उस दिन के निषिद्ध काल में। इस ग्रहण में पुत्रवान गृहस्थ का ग्रस्तास्त में भी उपवास का कर्त्तव्य नहीं होता; क्योंकि पुत्रवान् गृहस्थ को रविवार को, संक्रान्ति में, चन्द्र-सूर्यग्रहण में पारण तथा उपवास नहीं करना चाहिये।

इस वचन से उपवास का निषेध किया गया है। किन्तु ग्रहण के पूर्व तथा पश्चात् के निर्दोष काल में कुछ खा लेना चाहिये—इस संवत्सरप्रदीप ग्रन्थ के मत को स्मार्त्त लोगों ने भी अनुमत किया है। उनमें से पूर्वकल्प शुद्धादि कर्त्तव्य हेतु युक्त नहीं है, यह मेरा मत है। 'आदित्येऽहनि' वचन काम्य उपवास तथा उसके पारण के तात्पर्य अर्थ से युक्त है।।५-६।।

ग्रहणपूर्वभोजननिषेधे विशेषमाह गौतमः—

सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम्।
चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना ।।७।।

ग्रहण के पहले भोजन-निषेध के सम्बन्ध में गौतम कहते हैं कि बालक, वृद्ध तथा आतुर को छोड़कर कोई भी सूर्यग्रहण के चार याम (प्रहर) पूर्व भोजन न करे। चन्द्रग्रहण के तीन याम (प्रहर) पहले से भोजन नहीं करना चाहिये।।७।।

चन्द्रस्य ग्रस्तोदये वशिष्ठः—

ग्रस्तोदये विधौ पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत् ।।८।।

चन्द्र के ग्रस्तास्त सम्बन्ध में वशिष्ठ कहते हैं कि चन्द्र के ग्रस्तोदय के पूर्व भोजन न करे।।८।।

बालवृद्धातुरेषु मार्कण्डेयपुराणे—

सायाह्ने ग्रहणञ्चेत् स्यादपराह्ने न भोजनम्।
अपराह्ने न मध्याह्ने मध्याह्ने चेन्न संगवे।
संगवे ग्रहणं चेत् स्यान्न पूर्वं भोजनक्रियाम् ॥९॥

बालक, वृद्ध एवं आतुर के सम्बन्ध में मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि यदि सायंकालीन ग्रहण है, तब उस दिन अपराह्न में भोजन नहीं करना चाहिये। यदि अपराह्न में ग्रहण है, तब मध्याह्न में भोजन नहीं करना चाहिये। मध्याह्न में ग्रहण होने पर संगव में तथा संगव में ग्रहण होने पर उसके पूर्व भोजन नहीं करना चाहिये।।९।।

यत्तु ग्रस्तास्तस्थले तद्दिने उपवास एव, 'मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीथ ज्ञानं कृत्वा परेऽहनी'त्यादिवचनस्य पूर्वदिनभोजनव्यावर्त्तकतयैव सार्थकत्वादित्याचार्यचूड़ामणिमतम्। तन्न सम्यक्, परेऽहनि दृष्ट्वैव स्नात्वा भुञ्जीत, रोगादिना ग्रहणोत्तरदिने ज्ञानाकरणे तत्परदिने भोजने तु न ज्ञानदर्शनापेक्षेत्येतावतैव परेऽहनित्यादेः सार्थकत्वात् ॥१०॥

ग्रस्तास्त में उस दिन उपवास रखना कर्त्तव्य है। 'मुक्तिं दृष्ट्वा तु' इत्यादि वचन पूर्वदिन भोजन व्यावर्त्तक रूप से सार्थक होता है। यह जो चूड़ामणि का मत है, वह यथार्थ नहीं है। क्योंकि ग्रहण के पश्चात् दिन मुक्त चन्द्रमा को देखकर स्नान करके भोजनादि करना चाहिये। रोगग्रस्त द्वारा ग्रहण के पश्चात् दिनस्नान न करके भी भोजन किया जा सकता है, उससे स्नान तथा दर्शन (ग्रहण मुक्ति दर्शन, ग्रहण लगने पर दर्शन) की अपेक्षा नहीं की जा सकती। इतने मात्र से ही 'परेऽहनि' इत्यादि सार्थक हो जाता है।।१०।।

एवञ्च—

अर्द्धरात्रे व्यतीते तु यदा चन्द्रग्रहो भवेत्।
सायं तत्र न भुञ्जीथ न तु प्रातरभोजनम् ॥११॥

इति बृहन्नारदीयवचनस्यापि तदुक्तग्रस्तास्तेतरविषयत्वरूपसङ्कोचो न युक्तः, ग्रस्तास्तस्थले प्रातर्भोजनस्यैव शास्त्रार्थत्वात्, अतएव 'न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा' इति मनुवचनं ग्रहणेतरविषयम्, ग्रस्तास्तमितचन्द्रे प्रातर्भोजनस्याप्यनुज्ञानादिति नारायणोपाध्यायोऽप्याह ॥१२॥

यह भी कहा गया है कि अर्धरात्रि बीत जाने पर जब चन्द्रग्रहण हो तब (उससे पहले) सायंकाल भोजन न करे; परन्तु प्रातःकाल भोजन कर सकता है।

यह वृहन्नारदीय पुराण का वचन भी उसी प्रकार ग्रस्तास्त से भिन्न अन्य समस्त

विषयक है, ऐसा संकोच उचित नहीं है; क्योंकि ग्रस्तास्त स्थल में प्रातःभोजन ही शास्त्रार्थ है (उसी विषय पर यहाँ तात्पर्य प्रकट किया गया है)। अतएव 'न स्नानमाचरेत् भुक्त्वा' (भोजनोपरान्त स्नान नहीं करना चाहिये) यह मनु का वचन ग्रहण के अतिरिक्त अन्य विषय के लिये कहा गया है। यह ग्रहण के लिये नहीं कहा गया है। नारायण उपाध्याय कहते हैं कि चन्द्र के राहुग्रस्त होकर अस्तमित हो जाने पर प्रातःकाल भोजन की अनुमति मनु ने दिया है।।११-१२।।

एवञ्च ग्रस्तास्ते पूर्वं परतो वा उपवासव्याघातार्थं किञ्चिद् भुक्त्वा परदिने मुक्तिमवधार्य स्नानपूजापाकादिकं विधाय उदये सति मुक्तिं दृष्ट्वा भुञ्जीत। अन्यत्र तु दर्शनापेक्षा नास्ति। मुक्तौ जातायामेव स्नात्वा भुञ्जीत, ग्रस्तास्तोत्तरदिने मेघमालादिना मुक्त्यदर्शने तु उदयकालमवधार्यैव भुञ्जीत ॥१३॥

इस प्रकार चन्द्र के राहुग्रस्त होकर अस्तमित होने के पूर्व अथवा बाद में उपवास के व्याघात के लिये कुछ भोजन करके, अगले दिन मुक्ति के समय स्नान, पूजा, पाकादि करके चन्द्रमुक्ति का दर्शन करके स्नानोपरान्त भोजन करे। किन्तु ग्रहण दर्शन की अपेक्षा नहीं है। मुक्ति होते ही स्नान करके भोजन कर लेना चाहिये। ग्रस्तास्त के अगले दिन मेघमालादि द्वारा मुक्ति का दर्शन न होने से (अर्थात् बादलों के कारण मोक्ष का दर्शन न होने से) उदयकाल निश्चित करके भोजन करे।।१३।।

मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृश्यते।
आकलय्य तु तं कालं भुञ्जीथ स्नानपूर्वकम् ॥१४॥

इति वचनात्।

कहा गया है कि यदि बादलों के कारण आकाश में मुक्ति का दृश्य न दीखे, तब उस मुक्ति का काल निश्चय (पञ्चाङ्ग पत्रों से) करके स्नान करके भोजन करे।।१४।।

न चेदमग्रस्तास्तमितविषयम्, तावन्मात्रविषयत्वे प्रमाणाभावात्। प्रत्युत ग्रस्तास्तमितविषय एवेदं सार्थकम्, ग्रस्तास्तेतरत्र दर्शनापेक्षायां प्रमाणाभावात्, तत्र मुक्ते शशिनि भुञ्जीतेत्येतावन्मात्रस्यैवोक्तत्वात् ॥१५॥

उपर्युक्त वचन ग्रस्तास्तमित के अतिरिक्त अग्रस्त अस्तमित चन्द्र के विषय में नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस वचन के तावत् मात्र विषयत्व का प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु यह ग्रस्तास्तमित के विषय में सार्थक है। ग्रस्तास्त के अतिरिक्त अन्यत्र दर्शन करने का कोई प्रमाण न रहने के कारण (ऐसी स्थिति में जब कि बादल छाये हों) दर्शन

की अपेक्षा नहीं है। वहाँ इतना ही कहा गया है कि ग्रहण से चन्द्रमा की मुक्ति हो जाने पर भोजन करे।।१५।।

तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावन् मुक्तिर्न दृश्यते—इत्यादौ तु दर्शनावधारणम्।

यदैवास्तंगतश्चन्द्रो राहोराननगोचरः।
आकलय्य तु तं कालं क्रिया कार्या विचक्षणैः ।।१६।।

इति ब्रह्मपुराणैकवाक्यत्वात्। अत्र क्रिया स्नानपाकादिका भोजनेतरा।

जब तक चन्द्रमुक्ति का दर्शन न हो, तब तक ही विप्र अपवित्र है—इत्यादि वचन से जो दर्शन का वर्णन है, वही है—अवधारण। कहा गया है कि राहुग्रस्त चन्द्रमा जैसे ही अस्तगत हो जाय, उसी समय अवधारण करके विद्वान व्यक्ति क्रिया करे। इस ब्रह्मपुराण के वाक्य के साथ एकवाक्यता है। यहाँ क्रिया है—भोजन से भिन्न पाकादि, स्नानादि क्रिया।।१६।।

ग्रस्ते चास्तंगते त्विन्दौ कृत्वा मुक्त्यवधारणम्।
ज्ञात्वा पाकादिकं कुर्याद् भुञ्जीतेन्दूदये पुनः ।।१७।।

इत्येकवाक्यत्वात्। इन्दूदये इत्यदृष्ट्वेति शेषः।

चन्द्र के राहुग्रस्त होकर अस्तगमन करने पर मुक्ति का निश्चय करके स्नान करके पाकादि करे। पुनः चन्द्रोदय होने पर भोजन करे।।१७।।

एवं—

ग्रस्तावेवास्तमनन्तु रवीन्दु प्राप्नुतो यदि।
तयोः परेद्युरुदये स्नात्वाऽभ्यवहरेद् बुधः ।।१८।।

इति भृगुवचनेऽपि।

यदि सूर्य तथा चन्द्र राहुग्रस्त होते ही अस्तगमन करे तब अगले दिन उदय होने पर स्नान करके भोजन करना चाहिये—ऐसा भृगु का भी कथन है।।१८।।

अत्र शावाशौचे विशेषोत्पत्तौ तद्दिवसीयतत्पुरुषीयराहुदर्शनं हेतुः।

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।
स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत श्रृतमन्नं विवर्जयेत्।।१९।।

इति वचनात्। सूतकं शावाशौचं वक्ष्यमाणैकवाक्यत्वात्।

इस ग्रहणस्थल में शावाशौच की उपस्थिति उस दिन उस पुरुष द्वारा राहु-दर्शन का कारण है। शावाशौच—मरणाशौच, जो ग्रहण लगने पर होता है। मुक्ति पर

जननाशौच। राहुदर्शन से सभी वर्णों को सूतक (अशौच) लग जाता है। अतएव स्नान करके कर्म करे। पके अन्न का त्याग करे।

शृतमन्नं—पका अन्न।।१९।।

शृतं पक्वं श्रा पाके इत्यस्य क्तान्तस्य रूपम्। मुक्तौ तु ग्रहणादर्शिनामपि जननाशौचं जायते, मुक्तिमात्रस्य तद्धेतुत्वात्।

ग्रहणे शावमाशौचं विमुक्तौ सौतिकं स्मृतम्।
तयोः सम्पत्तिमात्रेण उपस्पृश्य क्रियाक्षमः ॥२०॥

उपस्पृश्य जलं स्नात्वेति यावत्।

'श्रा पाके', 'श्रा' धातु के उत्तर में 'क्त्वा' प्रत्यय से निष्पन्न शृत पद का अर्थ है—पक्व। पका हुआ। मुक्ति होने पर अदर्शित लोगों को भी जननाशौच लग जाता है; क्योंकि मुक्ति ही उसका हेतु है। इसके लिये ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि (ग्रहण लगने पर) ग्रहण में शावाशौच (मृतकाशौच) तथा मुक्ति होने पर जननाशौच (सूताशौच) लगता है। दोनों की उपस्थिति में जल से उपस्पर्श (स्नान) करके क्रियाक्षम होना चाहिये।।२०।।

तथाच स्नानापनेयमिदमशौचद्वयम्। तेन स्नानोत्तरपुनर्दर्शनेऽपि पुनरशौचोत्पत्त्या कर्मकाले दर्शनं युक्तम् ॥२१॥

दोनों अशौच स्नान से दूर हो जाते हैं। इसलिये स्नान के उपरान्त पुनः दर्शन (ग्रहण दर्शन) होने पर पुनः अशौच होता है और इसलिये कर्मकाल में दर्शन कहा गया है। (यह सब चन्द्र ग्रहण के लिये है)।।२१।।

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन।
नोपस्पृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसोगतम् ॥२२॥

इति वैधेतरत्वेन मनुना निषिद्धिश्च उपस्पृष्टं राहुग्रस्तम्। आदित्यमित्युपलक्षणम्।

उदीयमान (उगते) तथा अस्तगामी सूर्य का दर्शन कभी न करे। राहुग्रस्त, जलमध्यस्थ प्रतिबिम्बित सूर्य तथा मध्याह्नकालीन सूर्य का कदापि दर्शन न करे। इस वाक्य द्वारा मनुकर्तृक वैधदर्शन-भिन्नत्व रूप से (भिन्नता से) अन्य दर्शन निषिद्ध हो जाता है। उपस्पृष्ट का अर्थ है—राहुग्रस्त। 'आदित्यम्' चन्द्र का भी उपलक्षण है।।२२।।

ग्रहणेष्वनध्यायोऽपि दृष्टापरागविषयः, उपस्थितत्वादिति चूड़ामणिमतं न युक्तम्—

त्र्यहं न कीर्त्तयेद् ब्रघ्नं राज्ञो राहोश्च सूतके।

इति मनुवचनेन सामान्यतो निषेधात्। ग्रहणप्रयुक्तकालाशुद्धिश्च न दीक्षादौ, तत्र विशेषविधानम् ॥२३॥

ग्रहण में अनध्याय (अध्ययन न करना) भी दृष्ट उपराग का विषय है; इसलिये वह उपस्थित है। यह चूड़ामणि का मत है, जो समीचीन नहीं है; क्योंकि मनु का वचन है कि राजा का पुत्र जन्मादि अशौच में तथा राहुग्रस्त चन्द्र तथा सूर्य के उपरागरूप अशौच में तीन दिन वेदाध्ययन न करे। इससे सामान्य रूप से वेदाध्ययन का निषेध हो जाता है। दीक्षादि में ग्रहण में काल की अशुद्धि नहीं होती। वहाँ विशेष विधान है।।२३।।

ज्योतिषे—

जन्मसप्तेष्टरिप्फाङ्कदशमस्थे निशाकरे।
दृष्टोरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपि च ॥२४॥

रिप्फो—द्वादश। अङ्कोः—नवम। निधनं—सप्तम तारा। तथा च—

चतुर्थे दशमे चैव न कुर्याद् राहुदर्शनम्।

अत्र दशम इत्यत्र पञ्चम इति पाठो भ्रममूलकः, पूर्ववचनैकवाक्यतया दशम इत्यस्यैव युक्तत्वात् ॥२५॥

ज्योतिष में कहा गया है कि चन्द्रमा जन्मराशि से सप्तम, अष्टम, द्वादश तथा दशम स्थान में एवं जन्म नक्षत्र में तथा निधन तारा में अवस्थित होने पर और उस समय राहु दृष्ट होने पर अरिष्टप्रद होता है। रिप्फ—द्वादश स्थान (जन्म पत्र में), अन्कः—नवम, निधन—नवम तारा। इस प्रकार और कहा है कि चतुर्थ तथा दशम में राहु का दर्शन न करे। (अर्थात् गोचर से जब चन्द्रमा चतुर्थ तथा दशम हो उस दिन ग्रहण लगने पर ग्रहण न देखे)। यहाँ 'दशम' के स्थान पर पञ्चम का पाठ भ्रममूलक है। पूर्ववचन के साथ एकवाक्यता होने के कारण 'दशम' शुद्ध पाठ है।

ननु ज्योतिःशास्त्रोक्तजन्मचन्द्रादिराहुदर्शननिषेधो हिंसावत् रोगप्राप्तपरोऽस्तु, न तु वैधपरोऽपीति चेन्न ॥२६॥

एकरात्रमुपोष्यैव राहुं दृष्ट्वाक्षयं नरः।
पुण्यमाप्नोति कृत्वा च स्नानं दानं विधानतः ॥२७॥

इत्यनेन दर्शनोत्तरस्नानस्य पुण्यजनकत्वात् दर्शनस्यापि वैधत्वेन प्रकृतत्वादुपस्थितस्य वैधदर्शनस्यैव हि पर्युदासो न तु रागप्राप्तदर्शनस्य निषेधः,

अप्रकृतत्वेनाऽनुपस्थितेः। यथा दीक्षितो न ददातीत्यत्र 'अहरहर्दद्यादि'ति विधिप्राप्तस्य दानस्यैव निषेधो न तु रागप्राप्तस्यापि। तथा च सप्तम-चन्द्रादितरो 'राहुं दृष्ट्वा स्नायादि'त्यादिको विधिः।

ज्योतिष शास्त्रोक्त जन्मचन्द्रादि से (चन्द्र की गोचरगत स्थिति से) राहुदर्शन का निषेध छाग आदि जीवों की हिंसा की तरह रोगप्राप्त विषय में तात्पर्यक है, वैध दर्शनतात्पर्यक नहीं है, यदि ऐसा कोई कहे, तब उत्तर है कि नहीं, क्योंकि मानव एक रात उपवास करके राहु को देखकर विधिपूर्वक स्नान तथा दान करके पुण्य का लाभ प्राप्त करता है।

इस वचन द्वारा ग्रहण देखने के पश्चात् स्नान के द्वारा पुण्य-प्रदायक हेतुरूप दर्शन का वैधत्व वास्तविक होने पर भी वैध दर्शन का ही (चन्द्र के गोचरगत प्रभाव से ज्योतिष के अनुसार) निषेध कर दिया गया है। रागप्राप्त दर्शन का निषेध नहीं है; क्योंकि वह अप्रकृत है, इसलिये उसके बारे में कुछ नहीं कहा गया। जैसे 'दीक्षित व्यक्ति दान न करे' यह वचन है। यहाँ वचन है—'अहरहः दान करे।' यह विधिप्राप्त दान का निषेध है, किन्तु रागप्राप्त दान का निषेध नहीं है। जैसे सप्तम चन्द्र होने से राहु को देखकर स्नान करे, इत्यादि विधान है।।२६-२७।।

एवञ्च वैधदर्शनपर्युदासेऽपि निन्दाप्रायश्चित्तयोः श्रवणाद् रागप्राप्तदर्शनस्य प्रसह्यप्रतिषेधः ऋत्वभिगमनिर्गमपर्वणः पर्युदस्तत्वेऽपि तत्र रागप्राप्त-गमनस्य प्रसह्यप्रतिषेधवत्। तथाच सप्तमचन्द्रादौ राहुदर्शने पुण्यमेव न जायते। अतएव 'दृष्टो नष्टप्रदो राहुरि'ति च देशविशेषीयपाठोऽपि साधु युज्यते। एवञ्च जन्मचन्द्रादिनिषिद्धकालीनेतरराहुदर्शनमेव तत्तत् क्रियासु निमित्तम्। एवमेव स्मार्त्तादयः ॥२८॥

इस प्रकार वैधदर्शन के निषेध, निन्दा तथा प्रायश्चित्त का विधान है, इसलिये रागप्राप्त दर्शन का यह प्रसह्य प्रतिषेध है। जैसे पर्वकाल में ऋतुमती स्त्री से संसर्ग को निषिद्ध किया गया है तथापि रागप्राप्त स्थिति में इस संसर्ग का प्रसह्य प्रतिषेध हुआ है। इसी कारण सप्तम चन्द्रादि में राहुदर्शन से पुण्य नहीं होता। अतएव ऐसी स्थिति में 'दृष्ट्वाऽनिष्टप्रदो राहुः' राहु देखना अनिष्टप्रद है—यह पाठ सुसङ्गत प्रतीत होता है। इस कारण जन्मचन्द्रादि ज्योतिष में कहे गये निषिद्ध समय को छोड़कर अन्य (जन्मचन्द्रादि स्थिति की विहित स्थिति में) काल में राहु का दर्शन (जप-होमादि) उन-उन क्रियाओं का निमित्त हो जाता है। स्मार्त्त भी ऐसा ही कहते हैं।।२८।।

केचित् तु निषिद्धकालीनचाक्षुषमपि निमित्तमनिष्टजनकमपि भवत्येव

किन्तु ग्रहणकाले तत् परतो वा प्रतीकारः कार्य इति वदन्ति। अनिषिद्ध-चन्द्रादाववैधार्थराहुदर्शनमप्यनिष्टजनकमिति प्रसङ्गाद् विवेचितमित्यास्तां विस्तरः ॥२९॥

किसी का मत है कि निषिद्ध काल में भी ग्रहण को देखना उन-उन क्रियाओं का कारण है अनिष्टजनक होने पर भी; परन्तु ग्रहणकाल में अथवा उसके पश्चात् इस अनिष्ट का प्रतिकार करना कर्त्तव्य है। (जब ज्योतिषानुसार चन्द्रादि निषिद्ध न हो) अनिषिद्ध चन्द्रादि विषय में अवैधार्थ राहुदर्शन भी अनिष्टप्रद होता है, यह प्रसङ्गतः विवेचित हो चुका। अधिक विस्तार का प्रयोजन नहीं है।।२९।।

इदमत्रावधेयं—पञ्चाङ्गातिरिक्तेऽहोरात्रजपादौ पुरश्चरणपदं गौणं जपमात्र-परम्। तत्र होमादिकं नास्ति, प्रमाणाभावात्। एवं पञ्चाङ्गपुरश्चरणे कृत एव खलु पुरश्चरणे शान्तिवश्याभिचारादिप्रयोगे चाधिकारः न त्वन्यथा। अथ जपहोमतर्पणाभिषेकब्राह्मणभोजनानां पञ्चानामेव समं प्राधान्यमिति साम्प्रदायिकः। जपोऽङ्गी अन्यच्चतुष्टयमङ्गमिति केचित् ॥३०॥

यहाँ यह समझना चाहिये कि साधना के पञ्चाङ्ग से भिन्न अहोरात्र जपादि में पुरश्चरण पद गौण है। जपमात्र तात्पर्यक है। इसमें होमादि नहीं है; क्योंकि ऐसा प्रमाण नहीं मिलता। इसलिये पञ्चाङ्ग पुरश्चरण करने से ही खण्ड पुरश्चरण में तथा वश्य, शान्ति, अभिचारादि प्रयोग का अधिकार प्राप्त होता है; अन्यथा अधिकार नहीं मिलता। जप, होम, तर्पण, अभिषेक तथा ब्राह्मणभोजन ये पञ्चाङ्ग हैं, जिनकी समान प्रधानता है। यह सम्प्रदायविद् कहते हैं। किसी-किसी का मत है कि जप अङ्गी (प्रधान) है एवं होम, तर्पण, अभिषेक तथा ब्राह्मणभोजन उसके सहायक हैं।।३०।।

●

अथ पुरश्चरणप्रयोगः

तावद्भूमे परिग्रहं कृत्वा पुरश्चरणारम्भात् प्राक् तृतीयदिवसे क्षौरादिकं विधाय वेदिकायाश्चतुर्दिक्षु क्रोशं क्रोशद्वयं वा क्षेत्रं चतुरस्त्रमाहारादिविहारार्थं परिकल्प्य तत्र कूर्मचक्रानुगुणं मण्डपं विधाय एकभक्तं कुर्यात् ॥१॥

अब पुरश्चरण प्रयोग कहा जाता है। शास्त्रोक्त परिमाण वाली भूमि पर अधिकार करके पुरश्चरण के तीन दिन पूर्व क्षौरादि करके वेदी के चारो ओर क्रोश (कोस) परिणाम अथवा दो कोस चौकोर भूमि आहारादि के लिये और विचरण के लिये मन ही मन तय कर ले। वहाँ कूर्मचक्र के अनुकूल मण्डल-निर्माण करके एक बार ही भोजन का नियम बनाये।।१।।

ततः परदिने स्नानादिकं विधाय अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षाणामन्यतमस्य वितस्तिमात्रान् दशकीलान् ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फड़िति मन्त्रेणाष्टोत्तरशताभिमन्त्रितान् वेदिकायाः पूर्वाद्यष्टदिक्षु इन्द्रेशानयोर्निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये च ॥२॥

ॐ ये चात्र विघ्नकर्त्तारो दिवि भुव्यन्तरीक्षगाः ।
विघ्नभूताश्च ये चान्ये मम मन्त्रस्य सिद्धिषु ॥३॥

मयैतत् कीलितं क्षेत्रं परित्यज्य विदूरतः ।
अपसर्पन्तु ते सर्वे निर्विघ्ना सिद्धिरस्तु मे ॥४॥

इत्यनेन निखन्य तेषु ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फड़िति मन्त्रेणाऽस्त्रं सम्पूज्य पूर्वाद्यष्टदिक्षु इन्द्रादीन् इन्द्रेशानयोर्मध्ये ब्रह्माणं निर्ऋतिवरुणयोर्मध्येऽनन्तं ॐ भूर्भुवःस्वरिन्द्रलोकपाल इहागच्छेत्यादिक्रमेणावाह्य पञ्चोपचारैः पूजयेत् ॥५॥

उसके अगले दिन स्नानादि करके पीपल, यज्ञोडुम्बर, पाकड में से किसी एक की एक बित्ता नाप वाले १० कीलों को लाकर उनको १०८ बार 'ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' मन्त्र से अभिमन्त्रित करके वेदी की पूर्वादि आठों दिशाओं में तथा पूर्व, ईशान तथा नैर्ऋत्य और वरुण कोण के बीच में श्लोक ३ तथा ४ पढ़ते हुये इस मन्त्र से जमीन खोदकर उसमें 'ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' द्वारा अस्त्र की पूजा करके,

पूर्वादि आठ दिशाओं में इन्द्रादि आठों दिक्पालों का, पूर्व तथा ईशान के मध्य में ब्रह्मा का एवं नैर्ऋत्य तथा वरुण के मध्य में अनन्त का—'ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्र लोकपाल इहागच्छ इहागच्छ' इस प्रकार के मन्त्र से आवाहान करके पञ्चोपचार से पूजन करना चाहिये।।२-५।।

ततो मध्यस्थाने क्षेत्रपालं वास्त्वीशञ्च सम्पूज्य सर्वविघ्नविनाशार्थं गणेशं पूजयेत्। यथा 'ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रं श्री अमुकः मत्कर्त्तव्यामुक-देवतामुकमन्त्रपुरश्चरणकर्मणि अशेषविघ्नविनाशार्थं गणेशपूजनमहं करिष्ये' इति संकल्प्य वेदिमध्ये पञ्चोपचौरर्गणेशं पूजयेत्। ततो माष-भक्त्यादिना पूजितदेवताभ्यो बलिं दद्यात् ॥६॥

तदनन्तर मध्य में क्षेत्रपाल तथा वास्तुदेवता की पूजा करके सर्वविघ्न-विनाश के लिये गणेश का पूजन करे। प्रथमतः 'ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्री अमुकः मत्कर्त्तव्यामुकदेवतामुकमन्त्रपुरश्चरणकर्मणि अशेषविघ्नविनाशार्थं गणेशपूजनमहं करिष्ये' से सङ्कल्प करके वेदी के मध्य में पञ्चोपचार से श्रीगणेश का पूजन करना चाहिये।।६।।

ततः—

ॐ ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।
मातरोऽप्यु रुपाश्च गणाधिपतयश्च ये ॥७॥
विघ्नभूताश्च ये चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः ।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥८॥

इत्यनेन दशदिक्षु भूतेभ्यो बलिं दद्यात्।

तत्पश्चात् बलि देकर (सात्विक बलि) माष (उर्द) का बनाकर बलि दे) श्लोक संख्या सात तथा आठ को पढ़कर दशो दिशाओं में भूतसमूह को बलि प्रदान करना चाहिये।।७-८।।

ततः 'ॐ अद्येत्यादि अमुकदेवशर्मा ज्ञाताज्ञातयावत् पापक्षयकामोऽष्टोत्तर-सहस्रामुकदेवतागायत्रीजपमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य तत्तद् गायत्रीं तावज्जप्त्वा उपवासं हविष्यं वा कुर्यात्। ततः परदिने उषसि स्नानादि विधाय स्वस्तिं वाच्य 'अद्यामुकमास्यमुकराशिस्थभास्करेऽमुकपक्षेऽ-मुकतिथावारभ्य अमुकगोत्रः अमुकः इष्टमन्त्रमुच्चार्य इत्यस्यामुक-देवतामन्त्रस्य सिद्धिकामस्तल्लक्षजपतत्करणकायुतहोमसहस्रतर्पण-शताभिषेकभोजनजन्यदशब्राह्मणतृप्त्युत्पादनरूपपञ्चाङ्गपुरश्चरणमहं करिष्ये' इति सङ्कल्पं विधाय जपं कुर्यात्। ततो जपपूर्तौ जपदशांशेन

होमस्ततो होमदशांशेन तर्पणं ततस्तर्पणदशाशेनाभिषेकः। ततोऽभिषेक-दशांशसंख्याब्राह्मणान् मिष्ठान्नैर्भोजयेत्। अथवा प्रत्यहमेव जपानु-साराद्धोमादिकं कर्त्तव्यम्। ततो ब्राह्मणभोजनान्ते देवताया महतीं पूजां कृत्वा गुरुं सम्पूज्य तस्मै दक्षिणां दद्यात्। यथा—ॐ अद्येत्यादि कृतैत-दमुकदेवतामुकमन्त्रपुरश्चरणकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनं वह्नि-दैवतं अमुकदेवशर्मणे गुरवेऽहं सम्प्रददे इति। ततोऽच्छिद्रावधारणम् ॥९॥

तदनन्तर 'ॐ अद्येत्यादि अमुकदेवशर्मा ज्ञाताज्ञात यावत् पापक्षयकामोऽष्टोत्तर-सहस्रामुकदेवतागायत्रीजपमहं करिष्ये' सङ्कल्प द्वारा गायत्री-जप का सङ्कल्प करके मन्त्र के देवता की गायत्री का १००० बार जप कर उपवास करे अथवा हविष्य भक्षण करे। अगले दिन उषा काल में स्नानादि के पश्चात् स्वस्तिवाचन करके 'ॐ अद्यामुकमास्य-मुकराशिस्थभास्करेऽमुकपक्षेऽमुकतिथावारभ्य अमुकगोत्रः अमुकः इष्टमन्त्रमुच्चार्य (यहाँ इष्ट मन्त्र कहे) इत्यस्यामुकदेवतामन्त्रस्य सिद्धिकामस्तल्लक्षजपतत्करणायुतहोम-सहस्रतर्पणशताभिषेकभोजनजन्यदशब्राह्मणतृप्त्युत्पादनरूपपञ्चाङ्गपुरश्चरणमहं करिष्ये' सङ्कल्प करके जपारम्भ करे।

तत्पश्चात् जपसंख्या पूर्ण हो जाने पर उसका दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक करना चाहिये। अभिषेक के दशांश की संख्या में ब्राह्मणों को मिष्ठान्न के साथ भोजन कराये। अथवा जप के संख्यानुसार होम प्रभृति कर्त्तव्य है। ब्राह्मण- भोजन के अन्त में देवता की महती पूजा करे। तत्पश्चात् गुरु की पूजा करके ॐ अद्येत्यादि कृतैतदमुकदेवतामुकमन्त्रपुरश्चरणकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनं वह्निदैवतं अमुकदेवशर्मणे गुरवेऽहं सम्प्रददे' कहकर दक्षिणा प्रदान करके अच्छिद्रावधारण करे।।९।।

अथ ग्रहणपुरश्चरणविधिः

यथा—ॐ अद्येत्यादि राहुग्रस्ते निशाकरे दिवाकरे वा अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा इत्यन्तमुच्चार्य इष्टमन्त्रमुच्चार्य इत्यस्यामुकदेवतामन्त्रस्य सिद्धिकामो ग्रासाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपरूपपुरश्चरणमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य तावत्कालं जपेत्। अत्र न्यासाद्यपेक्षा नास्ति, व्यवधायकत्वात्। ततो मुक्ता-वधारणे—

ॐ उत्तिष्ठ गम्यतां राहो! त्यज्यतां सूर्यसङ्गमः।
कर्मचाण्डालयोगोत्थं कुरु पापक्षयं मम॥

इत्युच्चार्य स्नायात्। सूर्येत्यत्र क्वचिच्चन्द्रः। ततो आचारादर्घ्यमपि चन्द्राय सूर्याय वा दद्यात् ॥१०॥

अब ग्रहण में पुरश्चरण का विधान कहते हैं। 'ॐ अद्येत्यादि राहुग्रस्ते निशाकरे दिवाकरे वा अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा इत्यन्तमुच्चार्य इष्टमन्त्रमुच्चार्य इत्यस्यामुकदेवतामन्त्रस्य सिद्धिकामो ग्रासाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपरूपपुरश्चरणमहं करिष्ये' से सङ्कल्प करके राहु ग्रास से मुक्ति-पर्यन्त (ग्रहण समाप्त होने तक) पूरे समय तक इष्ट मन्त्र का जप करे। बिना रुके जप में न्यासादि से बाधा होती है। अतएव न्यासादि न करे। तत्पश्चात् जब निश्चय हो जाय कि राहुग्रास से मुक्ति मिल गई है (ग्रहण समाप्त है) तब—

ॐ उत्तिष्ठ गम्यतां राहो! त्यज्यतां सूर्यसङ्गमः।
कर्मचाण्डालयोगोत्थं कुरु पापक्षयं मम।।

पढ़कर स्नान करना चाहिये। स्नान में जब सूर्यग्रहण हो तब 'सूर्यसङ्गमः' कहे और चन्द्रग्रहण के समय 'चन्द्रसङ्गमः' कहे। तदनन्तर जिसका ग्रहण हो, उसे अर्घ्य प्रदान करे।।१०।।

ततस्तद्दिने तत्परदिने वा स्नानादिकं विधाय ॐ अद्येत्यादि कृतैतद्ग्रहणकालीनेयत्संख्यजपदशांशहोमं दशांशहोमद्विगुणजपं वाहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य तथा कुर्यात्। ततः ॐ अद्येत्यादि होमदशांशतर्पणमहं करिष्ये इति तथा कृत्वा पुनरद्येत्यादि तर्पणदशांशाभिषेकमहं करिष्ये इति तथा कृत्वा पुनरद्येत्यादि अभिषेकदशाशं ब्राह्मणभोजनमहं कारयिष्ये इति सङ्कल्प्य तथा कुर्यात्। दक्षिणादिकञ्च पूर्ववत् ।।११।।

तदनन्तर उसी दिन अथवा दूसरे दिन स्नानादि करके 'ॐ अद्येत्यादि कृतैतद् ग्रहणकालीनेयत्संख्यजपदशांशहोमं दशांशहोमद्विगुणं जपं वाहं करिष्ये' यह सङ्कल्प करके सङ्कल्प के अनुरूप जपसंख्या का दशांश होम अथवा होम में असमर्थ होने पर होमसंख्या का दूना जप करे। तदनन्तर 'ॐ अद्येत्यादि होमदशांशतर्पणमहं करिष्ये' कहकर होम की संख्या के दशांश का तर्पण करना चाहिये। पुनः ॐ अद्येत्यादि तर्पणदशांश-अभिषेकमहं करिष्ये' कहकर तर्पण के दशांश का अभिषेक करे। पुनः ॐ अद्येत्यादि अभिषेकदशांशं ब्राह्मणभोजनमहं करिष्ये' सङ्कल्प लेकर ब्राह्मणभोजन कराये। पूर्ववत् दक्षिणादि प्रदान कर संतुष्ट करे।।११।।

अथ रहस्यपुरश्चरणम्

यथा कालीतन्त्रे—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते।
कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम् ।।१२।।

पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः ।
निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्धमानतः कानने वने ।।१३।।

अब रहस्यपुरश्चरण कहा जा रहा है। कालीतन्त्र में कहा गया है कि अब अन्य प्रकार का पुरश्चरण कहा जा रहा है। मंगलवार अथवा शनिवार को एकत्र किये गये नरमुण्ड को पञ्चगव्य से; विशेषतः चन्दनादि मिश्रित जल छिड़क कर उपवन में अथवा वनभूमि में आधे हाथ का गड्ढा बनाकर उसमें गाड़ दे।।१२-१३।।

तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्त्रं यदि मानतः ।
एकाकी प्रजपेन्मन्त्री स भवेत्कल्पपादपः ।।१४।।

यदि मन्त्रज्ञ साधक उस रात्रि-पर्यन्त वहाँ मन्त्र का १००० जप करता है तब वह कल्पवृक्ष-तुल्य हो जाता है।।१४।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
शवमानीय तद्द्वारे तेनैव परिखन्य च ।।१५।।
तद्दिनात्तद्दिनं यावत्तावदष्टोत्तरं शतम् ।
स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ।।१६।।

तेनैव हस्तार्द्धमानेनैव।

अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहते हैं। शनि अथवा मंगल को शव लाकर उसे पृथ्वी में आधा हाथ खोदकर गाड़ दे। उस दिन यावत् काल १०८ बार मन्त्र-जप करे। ऐसा करने से वह व्यक्ति सर्वसिद्धि का अधिपति हो जायेगा, यह निःसंदिग्ध है। तेनैव = आधा हाथ परिणाम का।।१५-१६।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।।१७।।
सूर्योदयं समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम् ।
तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।।१८।।

अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहा जा रहा है। शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी को सूर्यास्त से सूर्योदय-पर्यन्त निरातंक होकर जप करे। इससे समस्त सिद्धि प्राप्त हो जाती है और वह सिद्धीश्वर हो जाता है।।१७-१८।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यन्तं विशेषतः ।।१९।।
भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्त्रकम् ।
जपेदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये ।।२०।।

अष्टम्यादि नवम्यान्तमुपवासपरो भवेत्।
स भवेत्सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ॥२१॥

अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहते हैं। शरत्काल की चतुर्थी से नवमी तक भक्ति- भाव से विशेष रूप से देवी का पूजन करके एकाकी हो निर्जन अन्धकार गृह में १००० जप करे। अष्टमी से नवमी-पर्यन्त उपवास करे। ऐसा व्यक्ति निसंदिग्ध रूप से सिद्धीश्वर हो जाता है।।१९-२१।।

तावत्सहस्रकमिति षड्दिवससाध्यत्वाद् षट्सहस्रमिति तान्त्रिकाः। तत्तत् संख्यया च प्रत्यहं रात्रौ जपेदित्यर्थः ॥२२॥

तावत्सहस्रकम्—अर्थात् जप छः दिन करना है, नित्य १००० जप करे। यह तान्त्रिकों का मत है। १००० प्रत्येक रात्रि को जपे।।२२।।

मुण्डलमालातन्त्रे—

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णाष्टमी भवेत्।
सहस्रसंख्यजप्तेन पुरश्चरणमिष्यते ॥२३॥

मुण्डमालातन्त्र के अनुसार कृष्णपक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके अगली कृष्णाष्टमी तक प्रतिदिन १००० जप करना पुरश्चरण में अभिप्रेत है।।२३।।

कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे।
अष्टमीनवमीरात्रौ पूजां कुर्याद् विशेषतः ॥२४॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से लगाकर नवमी-पर्यन्त महोत्सव से विशेषतः अष्टमी तथा नवमी की रात्रि को देवी का पूजन करना चाहिये।।२४।।

दशम्यां पावनं कुर्यान्मत्स्यमांसादिभिर्युतम्।
षट्सहस्रं जपेन्नित्यं भक्तिभावपरायणः ॥२५॥

तदनन्तर दशमी को मत्स्य, मांसादि के साथ पारण करे। भक्ति तथा भावपरायण होकर प्रतिदिन छः हजार जप (कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से नवमी तक) करे।।२५।।

चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी।
तावज्जप्ते महेशानि! पुरश्चरणमिष्यते।
केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्धा भवन्ति हि ॥२६॥

हे महेशानि! चतुर्दशी से प्रारम्भ करके अगली चतुर्दशी-पर्यन्त नित्य ६००० जप पुरश्चरण में अभिप्रेत है। केवल जपमात्र से मन्त्र सिद्ध हो जाता है (होमादि तर्पणादि आवश्यक नहीं है)।।२६।।

सूर्योदयं समारभ्य यावत् सूर्योऽस्तगो भवेत्।
तावज्जप्ते महेशानि! पुरश्चरणमिष्यते ॥२७॥

हे महेशानि! सूर्योदय से प्रारम्भ करके जबतक सूर्य अस्त होते हैं, तब तक जप करना भी पुरश्चरण कहा जाता है।।२७।।

●

अथ वीरसाधनम्

तदुक्तं वीरतन्त्रे—

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि।
कृष्णपक्षे विशेषेण साधयेद् वीरसाधनम्॥१॥
तत्सार्द्धप्रहरे यामे गते च सुरसुन्दरि!।
शवं वापि चितां वापि नीत्वा गत्वा यथासुखम्।
साधयेत् स्वहितं मन्त्री मन्त्रध्यानपरायणः॥२॥
भयं नैव तु कर्त्तव्यं हास्यं तत्र विवर्जयेत्।
चतुर्दिशं निरीक्षेत मन्त्रमेव समभ्यसेत्॥३॥

अब वीरसाधन कहते हैं। वीरतन्त्र में कहा है कि शुक्ल तथा कृष्णपक्ष में से किसी पक्ष की चतुर्दशी या अष्टमी को, विशेष करके कृष्णपक्ष की चतुर्दशी किंवा अष्टमी को वीरसाधन करे।

भगवान् कहते हैं—हे सुरसुन्दरि! चतुर्दशी अथवा अष्टमी की रात्रि का आधा प्रहर व्यतीत हो जाने पर मन्त्रध्यानी मन्त्रज्ञ साधक शव अथवा चिता लेकर सुखपूर्वक जाकर अपने हितार्थ साधन करे। वहाँ भय एवं हास्य वर्जित है। चारो ओर निरीक्षण करे एवं पुनः पुनः जप करे॥१-३॥

तत्र पूजाद्रव्यम्—

सामिषान्नगुडं छागं मधुपायसपिष्टकम्।
नानाफलञ्च नैवेद्यं स्वस्वकल्पोक्तसाधितम्॥४॥
चितास्थानं समानीय सुहृद्भिः शस्त्रपाणिभिः।
समानगुणसम्पन्नैः साधयेद् वीतभीः स्वयम्॥५॥

अब वीरपूजनार्थ द्रव्य कहते हैं। यह भी वीरतन्त्र में ही कहा गया है। समान गुण-सम्पन्न हाथों में शस्त्र लिये हुये सुहृदों द्वारा उस कल्पोक्त प्रकार से साधित सामिष अन्न, गुड़, छाग, मधु, पायस, पिष्टक, नाना प्रकार के फल, नैवेद्य चिता के पास लाकर स्वयं भयरहित हो साधना करे॥४-५॥

योगिनीहृदये—

बल्यर्थं सामिषान्नञ्च गुड़ं छागं तथा मधु।
पिष्टकं परमान्नञ्च पयोमूलं फलं तथा ॥६॥
सप्तपात्रं बलिं कृत्वा चतुष्पात्रं चतुर्दिशि।
पात्रत्रयं सदा मध्ये स्थापयेन्मनुनाऽमुना ॥७॥

योगिनीहृदय में कहा है कि बलि के लिये सामिष अन्न, गुड़, छाग, मधु, पिष्टक, परमान्न, दुग्ध, फल-मूल लाकर सात पात्रों में बलि सज्जित करके चारो ओर उसमें से चार पात्र रखे तथा मध्य में तीन पात्र रखे। रखते समय तत्तत् पात्रों को मन्त्र से स्थापित करना चाहिये।।६-७।।

गुरुं वा भ्रातरञ्चैव ब्राह्मणान् वापि सुव्रताम्।
अन्यानपि च रक्षार्थं किञ्चिद् दूरे निवेशयेत् ॥८॥

गुरु को, भ्राता को, नियम-परायण ब्राह्मण को तथा अन्य व्यक्तियों को रक्षार्थ कुछ दूर बैठाये।।८।।

अथ चितालक्षणम्

यथा—

असंस्कृता चिता ग्राह्या न तु संस्कारसंस्कृता।
चाण्डालादिषु संप्राप्ता केवलं शीघ्रसिद्धिदा ॥९॥

अब चिता का लक्षण कहते हैं। तन्त्र में कहा गया है कि संस्कृत चिता का ग्रहण न करे। चाण्डालादि से प्राप्त चिता शीघ्र सिद्धि देती है।।९।।

अथाधिकारिलक्षणम्

महाबलो महाबुद्धिर्महासाहसिकः शुचिः।
महास्वच्छो दयावांश्च सर्वभूतहिते रतः ॥१०॥

अब इस साधना के अधिकारी का लक्षण कहते हैं। जो महाबली, महासाहसी, पवित्र, महास्वच्छ, दयावान् तथा सभी का हित चाहने वाले हैं, उनका ही इस साधना में अधिकार कहा गया है।।१०।।

तत्र प्रथमं सामान्यार्घ्यं विधाय स्वस्तिं वाच्य सङ्कल्पं कुर्यात्। ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा अमुकमन्त्रसिद्धिकामः श्मशान-साधनमहं करिष्ये इति ॥११॥

प्रथमतः सामान्यार्घ्य अर्पण करके स्वस्तिवाचन करके सङ्कल्प करना चाहिये। सङ्कल्प श्लोक ११ में लिखे अनुसार ॐ अद्येत्यादि इत्यादि करे।।११।।

तन्त्रान्तरे—

वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैर्भूषितः पूर्वसम्मुखः ।
अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण प्रोक्षयेद् यागभूतलम् ॥१२॥

अस्त्रान्तमूलमन्त्रेणेति। फट्कारान्तेन मूलमन्त्रेणेत्यर्थः।

वस्त्र, अलङ्कार तथा भूषण द्वारा भूषित होकर पूर्वमुख होकर बैठे तथा 'फट्' से अन्त होने वाले मन्त्र से भूमि को शुद्ध करने हेतु जल छिड़के।।१२।।

ततो गणेशं बटुकं योगिनीं मातृकां सम्पूज्य अस्त्रमन्त्रेणात्मानं संरक्ष्य—

ॐ ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः ।
पिशाचा सिद्धयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥१३॥
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरप्रियः ।
सिद्धिदास्ता भवन्त्वत्र तथा च मम रक्षकाः ॥१४॥

इति वीरतन्त्रोक्तमन्त्रेण प्रणतिपूर्वकं पुष्पाञ्जलित्रयं क्षिपेत्।

तत्पश्चात् गणेश, बटुक, योगिनी तथा मातृका का पूजन करके 'फट्' मन्त्र द्वारा आत्मा की रक्षा करके श्लोक १३ तथा १४ को पढ़कर प्रणाम करके पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। दोनों श्लोकों का अर्थ है कि जो देवगण, भयानक राक्षसगण, पिशाचगण, सिद्धगण, यक्षगण, गन्धर्वगण, अप्सरागण, योगिनीगण, मातृगण, भूतगण, समस्त खेचर, स्त्रीगण जो इस श्मशान में संस्थित हैं, वे यहाँ सिद्धिप्रद तथा मेरे रक्षक हों।।१३-१४।।

ततः पूर्वादिदिक्चतुष्टये श्मशानाधिपतिं भैरवं कालभैरवं महाकालभैरवञ्चावाह्य सम्पूज्य बलिं दद्यात्। दक्षिणदिग्बलौ प्रणवमायाद्यो मन्त्रः। अन्येषु त्रिषु प्रणवकूर्चाद्यः। यथा पूर्वे श्मशानाधिपतिं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य ॐ हुं श्मशानाधिप इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहेति बलिं दद्यात्। दक्षिणे भैरवं पूर्ववत् सम्पूज्य ॐ ह्रीं भैरव भयानक! इममित्यादि। पश्चिमे कालभैरवं सम्पूज्य ॐ हुं कालभैरव! श्मशानाधिप इममित्यादि। उत्तरे पूर्ववन्महाकालभैरवं सम्पूज्य ॐ हुं महाकालभैरव! श्मशानाधिप! इममित्यादि ॥१५॥

तदनन्तर पूर्वादि चार दिशाओं में क्रमानुसार श्मशानाधिपति, भैरव, कालभैरव तथा महाकालभैरव का आवाहन एवं पूजन करके बलि प्रदान करे। दक्षिण दिशा की बलि में प्रणव तथा मायाबीज का उच्चारण करे। (मायाबीज = ॐ ह्रीं)। अन्य तीन

दिशा की बलि हेतु प्रणव को कूर्च से युक्त करके (ॐ हुं) बलि प्रदान करना होगा। जैसे पूर्व में श्मशानाधिपति का पूजन पञ्चोपचार से करके 'ॐ हुं श्मशानाधिप इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा।' दक्षिण में भैरव का पूजन करके 'ॐ ह्रीं भैरव भयानक इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्न- निवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा।' पश्चिम में पञ्चोपचार से कालभैरव का पूजन करके बलि प्रदान मन्त्र से 'ॐ हुं कालभैरव! इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा' से बलि प्रदान करे। उत्तर में महाकाल भैरव का पञ्चोपचार द्वारा पूजन करके इस मन्त्र से बलि प्रदान करे—'ॐ हुं महाकाल भैरव! इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा'।।१५।।

चितामध्ये ततो दद्याद् बलित्रयमनुत्तमम्।
कालरात्रि! महाकालि! कालिके! घोरनिस्वने!।
गृहाणेमं बलिर्मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम्।।१६।।

तदनन्तर चिता के बीच में 'ॐ कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनिस्वने गृहाणेमं बलिं मात: देहि सिद्धिमनुत्तमाम् स्वाहा' इस मन्त्र से बलि प्रदान करना चाहिये।।१६।।

कालिकायै बलिं दत्त्वा भूतनाथाय दापयेत्।
शब्दान्ते भूतनाथान्ते श्मशानाधिप! इत्यपि।
प्रणवाद्येन मनुना दापयेद् बलिमुत्तमम्।।१७।।

कालिका को बलि देकर भूतनाथ को बलि देनी होगी। बलिमन्त्र इस प्रकार है। पहले प्रणव (ॐ), तदनन्तर 'हुं' शब्द के अन्त में 'भूतनाथ' तदनन्तर 'श्मशानाधिप' तथा 'इमं इत्यादि लगाये। मन्त्रोद्धार है—'ॐ हुं भूतनाथ श्मशानाधिप इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा'।।१७।।

शब्दान्ते सर्वगणनाथायान्ते चाधिपाय च।
श्मशानमस्तके दत्त्वा पूर्ववच्च समुद्धरेत्।।१८।।
ताराद्येन बलिं दत्त्वा पञ्चगव्येन सुन्दरि।
अद्भिः संप्रोक्षणं कृत्वा पीतवस्त्रं न्यसेत्ततः।।१९।।

आदि में प्रणव तदनन्तर 'हुं' शब्द के अन्त में 'सर्वगणनाथाय' तत्पश्चात् 'श्मशान' शब्द के मस्तक पर अर्थात् आगे 'अधिपाय' लगाकर 'इयं बलिं' इत्यादि से मन्त्रोद्धार करे। मन्त्र होगा—ॐ हुं सर्वगणनाथाय श्मशानाधिपाय इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा। भगवान्

कहते हैं—हे सुन्दरि! ऊपर लिखे मन्त्र से बलि देकर पञ्चगव्य तथा जल से प्रोक्षण करके वहाँ पीत वस्त्र बिछाये।।१८-१९।।

भूर्जे वा वटपत्रे वा तत्र पीठमनूं न्यसेत्।
पीठमास्तीर्य तस्मिन् वै बद्धवीरासनस्ततः।
वीरार्दनेन देवेशि! रक्षां दिक्षु प्रकल्पयेत्॥२०॥

हे देवेशि! भोजपत्र अथवा वटपत्र पर पीठमन्त्र लिखे। उसके ऊपर पीठ बिछाकर उसके ऊपर वीरासन से बैठकर मन्त्र द्वारा दिक् समूह में रक्षा करे (रक्षामन्त्र पढ़े)।।२०।।

अस्यार्थः—भूर्जपत्रादौ तत्तत्कल्पोक्तपीठमन्त्रं लिखित्वा तत्र व्याघ्रचर्मादि पीठमास्तीर्य तत्र वीरासनक्रमेणोपविश्य वीरार्दनमन्त्रेण चतुर्दिक्षु रक्षां कुर्यात्। वीरार्दनमन्त्रस्तु 'हुं हुं ह्लीं ह्लीं कालिके! घोरदंष्ट्रे! प्रचण्डे! चण्डनायिके! दानवान् दारय दारय हन हन शववीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हुं फट्' ॥२१॥

इसका अर्थ है कि भोजपत्रादि पर इस प्रयोग (कल्पोक्त) के पीठमन्त्र को लिखकर उस पर व्याघ्रचर्मादि का आसन बिछाकर उस पर वीरासन से बैठकर वीरार्दनमन्त्र द्वारा चारो ओर रक्षा करे। वीरार्दन मन्त्र ऊपर मूल संस्कृत में अंकित है।।२१।।

अनेन मन्त्रितं लोष्ट्रं दश दिक्षु विनिक्षिपेत्।
तन्मध्ये भैरवो देवि! न विघ्नैरभिभूयते॥२२॥
यदि प्रमादाद् देवेशि! साधको भयविह्वलः।
ततस्तैस्तैः सुहृद्वर्गैः रक्षितो नाभिभूयते॥२३॥

भगवान् कहते हैं कि हे देवि! इस मन्त्र से अभिमन्त्रित लोष्ट्र को दशो दिशाओं में फेंके। उससे मध्य में बैठा साधक विघ्नों से प्रभावित नहीं होता।

हे देवि! यदि प्रमादवशात् साधक भयविह्वल हो जाता है तब उसके सुहृद् वर्ग (जो वहाँ सशस्त्र कुछ दूर पर खड़े रहते हैं) उसकी रक्षा करें, ताकि साधक विघ्नभय से प्रभावित न हो।।२२-२३।।

ततः श्वेतार्क-कपूर-सित-वाद्यालतूलैर्निर्मितं वर्त्तिकं दीपं संस्थाप्य तत्र 'ॐ देवास्त्रेभ्यो नमः' इत्यस्त्रं सम्पूज्य तं कुलदीपमध्येऽस्त्रमन्त्रेण निखनेत्।

हते तस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूयते॥२४॥

तदनन्तर सफेद मदार, कपूर, श्वेत बड़ेला की रुई से निर्मित बत्ती से दीपक स्थापित करके 'ॐ देवास्त्रेभ्यो नमः' मन्त्र द्वारा अस्त्र-पूजन करके उस अस्त्र से खोदे

कुलदीप के नीचे के गर्त्त (गढ़े) में रख दे। यदि यह प्रदीप (साधनाकाल में) बुझ जाता है तब साधक विघ्नों से अभिभूत होता है।।२४।।

ततस्तत्तत्कल्पोक्तभूतशुद्ध्यादिन्यासजालं षोढ़ादिकं विधाय इष्टदेवतां सम्पूज्य 'ॐ अद्येत्यादि अमुकमन्त्रसिद्धिकामोऽमुकमन्त्रस्यामुकसंख्य-जपमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य देवताध्यानपूर्वकं मन्त्रं जपेत् ॥२५॥

तदनन्तर इस साधना के नियम (कल्पोक्त) के अनुसार भूतशुद्धि प्रभृति न्याससमूह तथा षोढ़ा न्यास करके इष्टदेवता की पूजा करके 'ॐ अद्येत्यादि अमुकमन्त्रसिद्धि-कामोऽमुकमन्त्रस्यामुकसंख्यजपमहं करिष्ये' इस मन्त्र द्वारा सङ्कल्पपूर्वक देवता का ध्यान करे तथा मन्त्रजप करे।।२५।।

जपनियमन्तु—

एकाक्षरीं यदि जपेद्दिक्सहस्रं ततो जपेत्।
द्व्यक्षरेऽष्टसहस्रं स्यात् त्र्यक्षरे चायुतार्द्धकम् ॥२६॥
अतः परन्तु मन्त्रज्ञो गणान्तकसहस्रकम्।
निशायां वा समारभ्य उदयास्तं समाचरेत् ॥२७॥

जप का नियम इस प्रकार है—यदि इष्टमन्त्र १ अक्षर का है तब मन्त्रज्ञ साधक १० हजार जप करे। दो अक्षर का होने पर आठ हजार जप करना चाहिये। तीन अक्षर के मन्त्र का पाँच हजार जप करना चाहिये। आठ अक्षर के मन्त्र का १००८ जप करना चाहिये। जप को रात्रि से प्रारम्भ करके प्रातःकाल-पर्यन्त जपना चाहिये। दिक्सहस्रं = दस हजार। अयुतार्द्धकम् = दस हजार का आधा। गजान्तकसहस्रकम् = १००८।।२६-२७।।

यद्यसह्यभयं कर्णे नेत्रे वस्त्रेण बन्धयेत्।
ततोर्द्धरात्रपर्यन्तं यदि किञ्चिन्न लक्ष्यते।
जयदुर्गाख्यमन्त्रेण तेनैव सर्षपान् क्षिपेत् ॥२८॥

स च ॐ दुर्गे! दुर्गे! रक्षणि स्वाहेति।

यदि असह्य भय हो तब वस्त्र से दोनों कान तथा आँखों को बाँध लेना चाहिये। यदि अर्द्धरात्रि-पर्यन्त कुछ भी देखने में न आये तब 'ॐ.दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा' मन्त्र से चतुर्दिक सरसों फेंके।।२८।।

तथा—

ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्या गोसवस्तृप्तिकारकः।
पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः।
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः ॥२९॥

इसी तरह ॐ तिलोसि से मम रक्षक: तक पढ़ते हुये चारो ओर तिल फेंकना चाहिये। दिशाओं में तथा ईशानादि कोणों में भी तिल फेंके। तदनन्तर सात पैर आगे चलकर फिर वहीं आकर बैठ जाय। पुन: देवपूजन करके जप करना चाहिये। फिर यदि 'वर ग्रहण करे' कहे तब उसे सत्य मानकर अर्थात् यदि देवता वर देने को कहे तब उसे सत्य मान कर वर माँगे।।२९।।

यथा—

वरं वरय इत्युक्ते साधकः स्थिरमानसः।
सत्यं तु कारयित्वा च वरयेद् वरमुत्तमम्।।३१।।
जपादौ तु बलिं दत्त्वा पश्चादपि बलिं हरेत्।
जपान्ते जपमध्ये वा देहि देहीति भाषिते।
तथापि च बलिं दद्यान्माहिषं वापि छागलम्।।३२।।

बलिश्च यवपिष्टमयः।

तन्त्र में कहा है कि 'वर ग्रहण करो' यह बोलने पर साधक स्थिर चित्त होकर उसे सत्य कराने के लिये उत्तम वर माँगे। जप के आदि में बलि देकर अन्त में भी बलि प्रदान करे। जप के अन्त में या जप के मध्य में देहि देहि बोलने पर तब पुन: महिष अथवा बकरे की बलि प्रदान करे। यह बलि यव (जौ) के आटे की होती है।।३१-३२।।

यदा बलिं प्रार्थयते नरं कुञ्जरमेव वा।
दिनान्तरेऽपि दास्यामि स्वीकृत्य स्वगृहं व्रजेत्।
अपरेऽह्नि ततो दद्यात् पिष्टेन नरकुञ्जरान्।।३३।।

तन्त्र में कहा गया है कि यदि मनुष्य अथवा हाथी की बलि माँगे तब अगले दिन देने की बात कहकर अपने घर चला जाय। अगले दिन जौ के आटे से मनुष्य अथवा हाथी की आकृति बनाकर बलि प्रदान करे।।३३।।

यथा तन्त्रान्तरे—

यवक्षोदमयं वापि शालिक्षोदमयं तथा।
चन्द्रहासेन विधिवत् तत्तन्मन्त्रेण घातयेत्।।३४।।

तन्त्रान्तर में कहा है कि जौ के आटे से अथवा शालिधान्य के चूर्ण से नर अथवा हाथी बनाकर मन्त्र से खड्ग (चन्द्रहास) द्वारा उसका छेदन करे।३४।।

योगिनीहृदये—

जपान्ते च बलिं दद्याद् देवतायै यथाविधि।

माहिषं छागलं वापि गृहीत्वा वरमेव च।
गृहं गच्छेत् स्वसुहृदा सार्द्धं सहृष्टमानसः ॥३५॥

ततो गुरवे तत्पुत्राय तत्पत्न्यै वा दक्षिणां दद्यादिति वीरसाधनम्।

योगिनीहृदय में कहते हैं कि जप के अन्त में यथाविधि देवता (वीर) को महिष अथवा छाग की बलि निवेदन करे। वर ग्रहण करके सन्तुष्ट चित्त से घर जाय। तत्पश्चात् अपने गुरु को, गुरुपत्नी तथा गुरुपुत्र को दक्षिणा प्रदान करे।।३५।।

●

अथ शवसाधनम्

भावचूड़ामणौ—

शून्यागारे नदीतीरे पर्वते निर्जनेऽपि वा।
बिल्वमूले श्मशाने वा तत्समीपे वनस्थले॥१॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि।
भौमवारे तमिस्रायां साधयेत्सिद्धिमुत्तमाम्॥२॥

अब शवसाधन कहते हैं। भावचूड़ामणि ग्रन्थ में कहा गया है कि शून्य गृह में, नदीतट पर, पर्वत, निर्जन स्थान, बेलवृक्ष के नीचे, श्मशान में, श्मशान के निकटवर्त्ती स्थान तथा वनस्थल में दोनों पक्षों की अष्टमी अथवा चतुर्दशी को जब मंगलवार पड़े तब अंधेरी रात में उत्तम सिद्धि-हेतु साधना करे।।१-२।।

माषभक्तञ्च बल्यर्थं धूपदीपादिकं तथा।
तिलाः कुशाः सर्षपाश्च स्थापनीयाः प्रयत्नतः॥३॥

बलि के लिये माषकलाई, धूप, दीपादि, तिल, कुश तथा सरसों को यत्न से स्थापित करना चाहिये।।३।।

अथ शवसाधनप्रयोगः

अथ पूर्वोक्तान्यतमस्थानं गत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय पूर्वमुखः मूलान्ते फट्कारं दत्त्वा यागभूमिं सम्प्रोक्ष्य गुरुं गणेशं वटुकं योगिनीञ्च पूर्वादि चतुर्दिक्षु सम्पूज्य पूर्वोक्तवीरार्दनमन्त्रं भूमौ विलिख्य 'ये चात्रे'ति पूर्वोक्तमन्त्रेण भूमौ पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणम्य श्मशानाधिपतिभ्यः पूर्वोक्तक्रमेण बलिं दत्त्वा अघोरमन्त्रेण शिखां बद्ध्वा, सुदर्शनमन्त्रान्ते आत्मानं रक्षरक्षेति हृदि हस्तं दत्त्वात्मरक्षां कुर्यात्॥४॥

अघोरमन्त्रस्तु ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरुप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट्। सुदर्शनमन्त्रस्तु—ॐ सहस्रारे हुं फट्।

ततः पूर्वोक्तक्रमेण भूतशुद्धिं न्यासजालञ्च विधाय जयदुर्गामन्त्रेण दिक्षु सर्षपान् विकीर्य तिलोऽसीति मन्त्रेण तिलांश्च विकीर्य विहितशवसमीपं गच्छेत्॥५॥

तदनन्तर पूर्वोक्त स्थानों में से (जो अच्छा लगे) अन्यतम स्थान में जाकर सामान्य अर्घ्य प्रदान करके पूर्वाभिमुखी होकर मूल मन्त्र के अन्त में 'फट्' लगाकर उस भूमि का प्रोक्षण (शुद्ध) करके गुरु, गणेश, बटुक तथा योगिनीसमूह का पूर्वादि चारो दिशाओं में पूजन करके भूमि पर वीरार्दन मन्त्र लिखे (यह मन्त्र वीरसाधना में देखें)। तदनन्तर वीरसाधन में लिखे श्लोक १३ तथा १४ (ॐ ये चात्र संस्थिता इत्यादि) से वहाँ तीन पुष्पाञ्जलि अर्पित करने के अनन्तर प्रणाम करके श्मशानाधिपति गण को वीरासाधन में बताये गये क्रम तथा मन्त्रों से बलि प्रदान करके नीचे लिखे गये अघोर मन्त्र को पढ़ते हुये शिखाबन्धन करे और सुदर्शन मन्त्र हृदय पर हाथ रखकर पढ़ते हुये आत्मरक्षा करे। सुदर्शन मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ सहस्रारे हुं फट् आत्मानं रक्ष रक्ष'। तत्पश्चात् वीरसाधन में अंकित भूतशुद्धि तथा न्यासादि करके जयदुर्गा मन्त्र से (जो वीरसाधन में लिखा है) दशो दिशाओं पर सरसों को फेंकना होगा। तत्पश्चात् शान्ति के लिये (भूत-पिशाचादि से) वीरसाधना में अंकित श्लोक २९ को पढ़ते हुये ईशानादि चारो कोणों में तिल फेंके और शव के पास जाय।।४-५।।

ग्राह्यशवनिर्णयः

भावचूड़ामणौ—

यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं पयोमृतम्।
वज्रविद्धं सर्पदष्टं चण्डालं चाभिभूतकम्॥६॥
तरुणं सुन्दरं शूरं रणे नष्टं समुज्ज्वलम्।
पलायनविशून्यञ्च सम्मुखे रणवर्त्तिनम्॥७॥

भावचूड़ामणि के अनुसार लाठी से भेदित, शूल तथा खड्ग-प्रहार से मृत, जल से मृत, बिजली गिरने से मृत, साँप काटने से मृत, भूतादि की सवारी से मृत, युद्ध में मृत तरुण चाण्डाल जो सुन्दर हो, के शव को लाये। जो वीर युद्ध में पलायन करके न मरा हो, आमने-सामने के युद्ध में मरा हो, ऐसा शव प्रशस्त है।।६-७।।

भैरवतन्त्रे—

यष्टिप्रसृतिविद्धं वा चाभिभूतं जले मृतम्।
शवमानीय कर्त्तव्यं नाहरेत् स्वेच्छया मृतम्॥८॥

भैरवतन्त्र में कहते हैं कि लाठी वगैरह से मृत, भूतादि की सवारी से मृत, जल में डूबकर मृत शव को लाकर साधना करे। जो अपने-आप मरा हो, उसका शव कदापि न ग्रहण करे।।८।।

स्त्रीवश्यपतितास्पृश्यनववर्जं हि भूवरम्।
अव्यक्तलिङ्गं कुष्ठिं वा वृद्धभिन्नं शवं हरेत्॥९॥

न दुर्भिक्षमृतञ्चापि न पर्युषितमेव वा।
स्त्रीजनञ्चेदृशं रूपं सर्वथा परिवर्जयेत् ॥१०॥

स्त्री के वशीभूत, पतित्त, अछूत, बिना मूँछ वाले, नपुंसक, कुष्ठ रोगी तथा वृद्धावस्था से जो न मरा हो, ऐसे शव को न लाये। अकाल पड़ने से मृत व्यक्ति तथा दुर्गन्धयुक्त शव को भी नहीं लाना चाहिये। ऊपर लिखे शवों के अतिरिक्त स्त्री का भी शव नहीं लाना चाहिये।।९-१०।।

कालीतन्त्रे—

ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेद्वीरसाधनम्।
महासत्त्वाः प्रशस्ताः स्युः प्रधाने वीरसाधने।
शूद्राः प्रयोगकर्तॄणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धये ॥११॥

कालीतन्त्र में कहते हैं कि ब्राह्मण तथा गोमय (?) शव का परित्याग करके वीरसाधना करनी चाहिये। वीरसाधनार्थ मनुष्य का शव प्रशस्त है। प्रयोगकर्त्ता को समस्त सिद्धि-हेतु शूद्र का शव लेना लाभकारी होता है।।११।।

एवमुक्तशवं गृहीत्वा मूलमन्त्रेण पूजास्थानमानयेत्। तत्समीपं गत्वा ॐ हुं फडिति शवमभ्युक्ष्य ॐ हुं मृतकाय नमः फडिति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा शवं स्पृष्ट्वा प्रणमेत् ॥१२॥

ऐसे लक्षण वाले शव को मूल मन्त्र पढ़कर ग्रहण करके पूजा-स्थान पर लाना चाहिये। शव का अभ्युक्षण जल से 'ॐ हुं फट्' से करके उस शव पर तीन बार पुष्पाञ्जलि 'ॐ हुं मृतकाय नमः फट्' मन्त्र से देकर शव को छूकर शवमन्त्र से शव को प्रणाम करे।।१२।।

शवमन्त्रः—

ॐ वीरेश! परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर।
आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्क शङ्करः।
वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने ॥१३॥

इति शवमन्त्रेण तं प्रणम्य 'ॐ हुं मृतकाय नमः' इति क्षालयित्वा सुगन्धि-जलेन स्नापयित्वा वाससा जलमुत्तोल्य धूपैर्धूपयित्वा चन्दनादिना शवं प्रलिप्य शवस्य कटिदेशं धृत्वा पूजास्थानमानयेत्। तत्र कुशशय्यायां पूर्वशिरसं शवं स्थापयेत् ॥१४॥

मूलोक्त शवमन्त्र से उसे प्रणाम करने के पश्चात् 'ॐ हुं मृतकाय नमः' मन्त्र द्वारा

उसे सुगन्धित जल से स्नान कराकर वस्त्र से जल पोंछकर धूप से धूपित करके चन्दनादि का लेप शव पर करके शव को कमर से पकडकर पूजास्थान पर लाये। तत्पश्चात् वहाँ पहले से बिछी कुश की शय्या पर उसका शिर पूर्व की ओर करके उसे स्थापित करे।।१३-१४।।

एलालवङ्गकर्पूरजातीखादिरमार्द्रकम्
ताम्बूलं तन्मुखे दत्त्वा शवं कुर्यादधोमुखम् ।।१५।।
तत्पृष्ठं चन्दनेनापि विलिप्य प्रयतः सुधीः ।
बाहुमूलादिकट्यन्तं चतुरस्रं विधाय च ।।१६।।
मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसमन्वितम् ।
पीठमन्त्रं लिखेन्मध्ये तत्तत्कल्पविधानतः ।।१७।।

ॐ ह्रीं फडिति मन्त्रेण पीठमन्त्रं लिखेत्। तदुपरि कम्बलादीन्न्यसेत् ।।१८।।

तदनन्तर इलायची, लौंग, कपूर, खदिर, अदरख तथा ताम्बूल शव के मुख में रखकर उसे उलटा कर दे अर्थात् पेट के बल लिटाये। संयत चित्त सुधी साधक शव की पीठ पर चन्दन से लेप करके बाहुमूल से कमरपर्यन्त स्थान में एक चतुरस्र मण्डल बनाकर उसमें आठ दलयुक्त चतुर्द्वारयुक्त पद्म का अंकन करके उसके मध्य अपने कल्पोक्त विधान के अनुसार पीठमन्त्र लिखे। पीठमन्त्र है—ॐ ह्रीं फट्। इसे लिखने के पश्चात् शव के पीठ पर पीठमन्त्र लिखकर उसके ऊपर कम्बलादि का आसन बिछाना चाहिये।।१५-१८।।

तन्त्रान्तरे—

गत्वा शवस्य सान्निध्यं धारयेत् कटिदेशतः ।
यद्युपद्रावयेत् तस्य दद्यान् निष्ठीवनं शवे ।
पुनः प्रक्षालनं कृत्वा जपस्थाने समानयेत् ।।१९।।

अन्य तन्त्र में कहा है कि—शव के पास जाकर उसकी कमर पकड़े। यदि शव कुछ उपद्रव करता है तो शव के ऊपर निष्ठीवन छोड़े। पुनः शव का मन्त्र से प्रक्षालन करके उसे जपस्थान पर लाये।।१९।।

ततो द्वादशाङ्गुलयज्ञकाष्ठानि दशदिक्षु संस्थाप्य तेषु इन्द्रादिदशदेवताः सम्पूज्य सामिषान्नेन बलिं दद्यात्। तत्रायं क्रमः—ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये वज्रहस्ताय ऐरावतवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः इति पाद्यादि-भिरभ्यर्च्य बलिं दद्यात्। ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा एष

माषभक्तबलिरिन्द्राय स्वाहा इत्यनेन। एवं रां अग्नये तेजोऽधिपतये शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः इति सम्पूज्य ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये इममित्यादिना बलिं दद्यात्। ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय सपरिवाराय सायुधा-येत्यादिनाभ्यर्च्य ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये इममित्यादिना बलिं दद्यात्। ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतयेऽसिहस्तायाश्ववाहनाय सपरिवारायेत्या-दिनाभ्यर्च्य ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोधिपतये इममित्यादिना बलिं दद्यात्। ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकरवाहनायेत्यादिनाभ्यर्च्य ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये इममित्यादिना बलिं दद्यात्। ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये अङ्कुशहस्ताय हरिणवाहनाय सपरिवारायेत्यादिना-भ्यर्च्य ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये इममित्यादिना बलिं दद्यात्। ॐ कुं कुबेराय यक्षाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिवारायेत्यादिना-भ्यर्च्य ॐ कुं कुबेराय यक्षाधिपतये इममित्यादिना बलिं दद्यात्। ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय सपरिवारायेत्यादिना अभ्यर्च्य ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये इममित्यादिना बलिं दद्यात्। इन्द्रेशानयोर्मध्ये ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंसवाहनाय पद्महस्ताय सपरिवारायेत्यादिनाभ्यर्च्य ॐ आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये इममित्यादिना बलिं दद्यात्। निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय रथवाहनाय सपरिवारायेत्यादिनाभ्यर्च्य ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये इममित्यादिनां बलिं दद्यात्। ततः सर्वभूतबलिं दद्यात्। सर्वत्र सामि-षान्नेन ॥२०॥

तदनन्तर १२ अंगुल की यज्ञकाष्ठ की कील दशो दिशाओं में पूर्ववत् स्थापित करके उनमें इन्द्रादि दश देवताओं की पूजा करके सामिष अन्न से बलि प्रदान करना चाहिये। अब इस प्रकार से बलि प्रदान करे, जैसा कि लिखा जा रहा है।

इन्द्रपूजा पाद्यादि से करे—ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये वज्रहस्ताय ऐरावतवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः।

इन्द्रबलि इस मन्त्र से प्रदान करे—ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा। एष माषभक्तबलिरिन्द्राय स्वाहा।

इसी प्रकार से अग्निमन्त्र से अग्नि को बलि प्रदान करे; सर्वप्रथम अग्नि का पूजन

करे—ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः। इस मन्त्र से पूजनादि के पश्चात् ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा, एष माषभक्तबलिरग्नये स्वाहा— इस मन्त्र से बलि प्रदान करे।

इसके अनन्तर यमराज का पूजन इस मन्त्र से करे—ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः। तदनन्तर बलि इस मन्त्र से प्रदान करे—ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्नविनाशनं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा, एष माषभक्तबलिः यमाय स्वाहा।

तदनन्तर निर्ऋति का पूजन इस मन्त्र से करना चाहिये—ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोधिपतयेऽसिहस्तायाश्ववाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः। अब पूजनोपरान्त इस मन्त्र से बलि प्रदान करना चाहिये—ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा, एष भाषभक्तबलिं निर्ऋतये स्वाहा।

अब वरुण का इस मन्त्र से पूजन करे—ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकरवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः। पूजनोपरान्त इस मन्त्र से बलि प्रदान करे—ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा, एष माषभक्तबलिं वरुणाय स्वाहा।

अब वायुमन्त्र से वायु का पूजन करना होगा—ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये अङ्कुशहस्ताय हरिणवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः। पूजन के उपरान्त इस मन्त्र से बलि प्रदान करे—ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा एष माषभक्तबलिं वायवे स्वाहा।

तदनन्तर कुबेर का पूजन इस मन्त्र से करना होगा—ॐ कुं कुबेराय यक्षाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः। तत्पश्चात् इस मन्त्र द्वारा बलि प्रदान करना चाहिये—ॐ कुं कुबेराय यक्षाधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्नविनाशनं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा, एष माषभक्तबलिं कुबेराय स्वाहा।

अब ईशान का पूजन इस मन्त्र द्वारा करे—ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः। तत्पश्चात् इस मन्त्र द्वारा बलि प्रदान करना चाहिये—ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा, एष माषभक्तबलिं ईशानाय स्वाहा।

अब ब्रह्मा का पूजन इस मन्त्र से करना चाहिये—ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंसवाहनाय पद्महस्ताय सपरिवाराय सायुधाय नमः। पूजनोपरान्त इस मन्त्र से बलि प्रदान करे—ॐ आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा, एष माषभक्तबलिं ब्रह्मणे स्वाहा।

तदनन्तर अनन्त का पूजन इस मन्त्र से करना होगा—ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय रथवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः। तदनन्तर इस मन्त्र से बलि प्रदान करना चाहिये—ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा, एष माषभक्तबलिं अनन्ताय स्वाहा।

इसके अनन्तर सर्वभूतबलि देनी चाहिये। सर्वत्र सामिष अन्न की बलि प्रदान करनी चाहिये।।२०।।

ततः—

अधिष्ठातृदेवताभ्यो बलिञ्च हारयेत्ततः।
चतुःषष्टियोगिनिभ्यो डाकिनीभ्योऽपि सन्दिशेत् ॥२१॥

तदनन्तर अधिष्ठात्री देवों को बलि देकर ६४ योगिनी तथा डाकिनीगण को बलि प्रदान करे।।२१।।

अथ पूजासामग्रीं समीपे उत्तरसाधकं दूरे संस्थाप्य मूलान्ते ह्रीं फट् शवासनाय नमः इति शवं सम्पूज्य ह्रीं फडन्तमूलमुच्चार्याश्वारोहणे क्रमेण शवोपर्युपविश्य स्वपादतले कुशान् दत्त्वा स्वकेशान् प्रासार्य जूटिकां बद्ध्वा गुरुं गणपतिं देवीञ्च नमस्कृत्य प्राणायामषड़ङ्गन्यासौ कृत्वा पूर्वोक्तवीरार्दनमन्त्रेण दशदिक्षु लोष्ट्रान् विक्षिप्य सङ्कल्पं कुर्यात्। ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवतासन्दर्शनकामोऽ-मुकमन्त्रस्यामुकसंख्यजपमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, ॐ ह्रीं आधार-शक्तिकमलासनाय नमः इत्यासनं सम्पूज्य स्ववामतः शवसमीपे अर्घ्यादिकं संस्थाप्य शवजूटिकायां पीठपूजां कृत्वा षोडशोपचारैर्दशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा देवीमभ्यर्च्य शवमुखे देवीं गन्धादिना तर्पयेत्। ततः शवादुत्थाय सम्मुखे गत्वा इमं मन्त्रं पठेत् ॥२२॥

ॐ वशो मे देवदेवेश मम वीरसिद्धिं देहि देहि देहि महाभाग कृताश्रय-परायण ॥२३॥

तदनन्तर अपने पास पूजा सामग्री रखकर कुछ दूर पर उत्तर साधक (गुरु) को

बैठाकर मूल मन्त्र के पश्चात् 'ह्रीं फट् शवासनाय नमः' मन्त्र से शव का पूजन करके 'हुं फट्' मन्त्र के अन्त में मूल मन्त्र का उच्चारण करके शव पर इस प्रकार बैठे, जैसे घोड़े पर बैठते हैं। अपने दोनों चरणों के नीचे कुशा रखकर बैठना चाहिये। अब अपने केशों को फैलाकर जूड़ा बाँधे और गुरु, गणपति तथा देवी को प्रणाम करके प्राणायाम एवं षड‌ङ्ग न्यास करके वीरसाधना प्रसङ्ग में कहा गया वीरार्दन मन्त्र पढ़ते हुये दशो दिशाओं में लोष्ट्र फेंककर इस प्रकार सङ्कल्प करे। 'ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा अमुकदेवता- सन्दर्शनकामोऽमुकमन्त्रस्यामुकसंख्यजपमहं करिष्ये।

तत्पश्चात् आसन मन्त्र से आसन की पूजा करे। आसन पूजा-मन्त्र है—ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः। अब अपने वाम भाग की ओर शव के पास अर्घ्यादि रखकर शव के जूड़े में पीठ पूजा करके १६ उपचार अथवा दशोपचार अथवा पञ्चोपचार से देवी का पूजन करके शवमुख में देवी का तर्पण गन्धादि द्वारा करना चाहिये। तत्पश्चात् शव से उठकर सामने जाकर मूलोक्त मन्त्र पढ़े। इस का अर्थ है—हे देवेश! मेरे वश में हो जाओ। मुझे वीरसिद्धि प्रदान करो। हे महाभाग! मुझे वीरसिद्धि प्रदान करो। हे अश्रितवत्सल! मुझे वीरसिद्धि प्रदान करो।।२२-२३।।

ततः पट्टसूत्रेण बद्ध्वा शवचरणौ दृढौ रक्षयेत्। मूलेन,

मद्वशो भव देवेश। वीरसिद्धिकृतास्पद!।
ॐ भीम! भीरुभयाभाव! भव्यमोचन! भावुक!।
त्राहि मां देवदेवेश! शवानामधिपाधिप! ॥२४॥

इत्यनेन शवस्य पादतले त्रिकोणयन्त्रमुल्लिखेत्।

तत्पश्चात् शव के दोनों पैरों को पट्टसूत्र से दृढ़ रूप से बाँधे। तदनन्तर भूल मन्त्र के साथ मूलोक्त मन्त्रश्लोक को पढ़े। मन्त्र का अर्थ है—हे देवेश, मेरे वश में हो जाओ। हे वीरसिद्धि कृत्य के आश्रय! हे भीम! हे भयग्रस्तों के भयनिवारक! हे भवमोचन! हे भावुक! हे देवेदेवेश! हे शवसमूह अधिपों के अधिपति! मेरी रक्षा करो।।२४।।

ततः शवोपर्युपविश्य हस्तद्वयं पार्श्वयोः प्रसार्य तदुपरि कुशान् दत्त्वा तदुपरि स्वपादं निधाय पुनः प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि गुरुं हृदि देवीं ध्यात्वा ओष्ठौ सम्पुटौ कृत्वा विहितमालया मौनीभूय विगतभीजपेत् ॥२५॥

अत्र श्मशानसाधनक्रमेण जपः कार्यः। यद्यर्द्धरात्रपर्यन्तं किञ्चिन्न लक्ष्यते तदा पूर्ववत् सर्षपतिलविकिरणं सप्तपदगमनञ्च कृत्वा जपेत्। भये जाते सत्येवं पठेत् ॥२६॥

यथा—

यत्प्रार्थ्यते बलित्वेन दातव्यं कुञ्जरादिकम्।
दिनान्तरे च दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे ॥२७॥
इत्युक्त्वा संस्कृतेनैव निर्भयश्च पुनर्जपेत्।
ततश्चेन्मधुरं वह्नि वक्तव्यं मधुरं ततः ॥२८॥

ततो यदि स्वनाम मधुरं कथयति, तदा त्वं अमुकी इति सत्यं कुरु। कृते वरं प्रार्थयेत्। यदि कदापि सत्यं न करोति वरञ्च न ददाति, तथा पुनर्जपेत् ॥२९॥

इसके पश्चात् शव के ऊपर बैठकर उस शव के दोनों हाथ फैलाकर उस पर कुशा रखे और उसपर दोनों ओर अपने पैर रखकर पुनः तीन बार प्राणायाम करके मस्तक में गुरु का तथा हृदय में देवी का ध्यान करे और दोनों ओठों को बन्द कर भय का त्याग करके मौनी होकर विहित माला से जप करे।

यहाँ श्मशान साधनक्रम से ही जप करना उचित है। यदि आधी रात तक कुछ भी न दिखलाई पड़े, तब पहले की ही तरह सरसों तथा तिल उन-उन मन्त्रों द्वारा दिशाओं में छिड़के तथा सात पैर चलकर पुनः साधना स्थान पर आ जाय। यदि भय लगे तब इस प्रसंग के श्लोक २७ का पाठ करे। जिसका अर्थ है कि तुमने बलिरूप में मुझसे हाथी इत्यादि चाहा था, वह मुझे देना है। कल तुमको दूँगा। तुम अपना नाम बतलाओ। यह संस्कृत श्लोक २७ पढ़कर कहे। अन्य भाषा में न कहे और यह श्लोक पढ़कर पुनः जप करे। इस पर यदि देवी अपना नाम मधुर स्वर में कहती हैं तब साधक को भी मधुर स्वर में बोलना चाहिये।

तदनन्तर यदि देवी अपना नाम मधुर स्वर में बोलती है तब साधक यह कहे 'तुम अमुक देवी हो, यह सत्य करो' (यहाँ अमुक की जगह देवी द्वारा बतलाया नाम लगाये)। देवी जब इस पर 'हाँ' करें कि वे वही देवी हैं, तब उनसे वर माँगना चाहिये। यदि वह 'हाँ' न करे तथा वर भी न दे तब पुनः जप करना चाहिये।।२५-२९।।

सत्यं कृते वरं लब्ध्वा सन्त्यजेच्च जपादिकम्।
फलं जातमिति ज्ञात्वा जूटिकां मोचयेत्ततः ॥३०॥
शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य मोचयेत्पादबन्धनम्।
पादचक्रं मोचयित्वा पूजाद्रव्यं जले क्षिपेत् ॥३१॥
शवं जले तु गर्त्ते वा निक्षिप्य स्नानमाचरेत्।
ततस्तु स्वगृहं गत्वा बलिं दद्याद् दिनान्तरे ॥३२॥

तन्त्र में कहा गया है कि जब देवी साधक के पूछने पर 'हाँ' कहे तब उनसे वर लेकर जपादि का समापन करे। फल प्राप्त हो गया, यह जानकर अपना बालों का जूड़ा खोलकर बाल खोल ले।

तदनन्तर शव को धोकर स्थान पर रखकर उसके पैरों का बन्धन खोल देना चाहिये, तत्पश्चात् पूजाद्रव्यादि सब जल में फेंक दे। शव को भी जल में अथवा गड्ढे में फेंककर स्नान करे। तत्पश्चात् अपने घर लौटकर अगले दिन (जैसी देवी ने मांगी थी) बलि प्रदान करे।।३०-३२।।

मन्त्रस्तु—अग्रिमरात्रौ येषां यजमानोऽहं ते गृह्णन्तु इमं बलिम्।

अथ तैर्याचितानश्वान् नरकुञ्जरशूकरान्।
दत्त्वा पिष्टमयानन्ते कर्त्तव्यं समुपोषणम् ।।३३।।

बलि मन्त्र है—'अग्रिमरात्रौ येषां यजमानोऽहं ते गृह्णन्तु इमं बलिम्' अर्थात् रात्रि में मैं जिनका यजमान था, वे यह बलि ग्रहण करें। अब तन्त्रमतानुसार देवतागण द्वारा माँगी गयी मनुष्य, हाथी आदि जो भी बलि देना साधक ने स्वीकार किया था, उसी आकृति की बलि उड़द की दाल की पिष्टि से बनाकर प्रदान करके उपवास करे।।३३।।

परेऽह्नि नित्यक्रियां कृत्वा पञ्चगव्यं पिवेत्। ततः पञ्चविंशतिसंख्यकान् ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।।३४।।

अगले दिन नित्याक्रियादि के पश्चात् पञ्चगव्य पीना चाहिये और पच्चीस ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।।३४।।

तन्त्रान्तरे—

परेऽह्नि नित्यमाचर्य पञ्चगव्यं पिवेत्ततः।
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चविंशतिसंख्यकान्।
सप्तपञ्चविहीनान् वा क्रमेणैव दशावधि ।।३५।।

तन्त्र में भी कहा गया है कि अगले दिन नित्यक्रिया का आचरण करके साधक पञ्चगव्य का पान करे तथा पच्चीस ब्राह्मणों को भोजन कराये। इसमें अशक्त व्यक्ति बीस को अथवा अट्ठारह को अथवा दस ब्राह्मण को भोजन कराये।।३५।।

ततः स्नात्वा च भुक्त्वा च निविशेदुत्तमं स्थलम्।
यदि न स्याद् विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां ब्रजेत् ।।३६।।

तत्पश्चात् स्नानोपरान्त भोजन करके उत्तम स्थान पर बैठे। ब्राह्मणभोजन नहीं कराने वाला साधक निर्धन हो जाता है।।३६।।

तेन चेन्निर्धनत्वे स्यात् तदा देवी प्रकुप्यति।
त्रिरात्रं वाथ षड्रात्रं नवरात्रं तु गोपयेत् ॥३७॥

इस प्रकार निर्धन हो जाने पर देवी क्रुद्ध हो जाती हैं। तीन रात, छः रात, अथवा नौ रात तक स्वयं एकान्तवास करना चाहिये।।३७।।

स्त्रीशय्यां यदि गच्छेत्तु तदा व्याधिं विनिर्दिशेत्।
गीतं श्रुत्वा तु वधिरो निश्चक्षुर्नृत्यदर्शनात् ॥३८॥

यदि इस बीच स्त्री की शय्या पर जाता है तो साधक व्याधि से ग्रस्त हो जाता है। गीत सुनने वाला बहरा तथा नृत्य देखने वाला अन्धा हो जाता है।।३८।।

यदि वक्ति दिने वाक्यं तदाऽस्य मूकतो भवेत्।
पञ्चदशदिनं यावद् देहे देवस्य संस्थितिः ॥३९॥

साधक यदि दिन में बात करे तो वह मूक हो जाता है; क्योंकि पन्द्रह दिनों तक उसके देह में देवता की स्थिति रहती है।।३९।।

न स्वीकुर्याद् गन्धपुष्पे बहिर्याति यदा यदा।
तदा वस्त्रं परित्यज्य गृह्णीयाद् वसनान्तरम् ॥४०॥

गन्ध तथा पुष्प इन दिनों ग्रहण न करे। जब-जब बाहर जाय तब-तब वस्त्र का परित्याग करके अन्य वस्त्र धारण करे।।४०।।

गोब्राह्मणविरुद्धञ्च न कुर्याच्च कदाचन।
दुर्जनं पतितं क्लीबं न स्पृशेच्च कदाचन ॥४१॥

इस अवधि से देवता, गो तथा ब्राह्मण के विरुद्ध कदापि आचरण न करे। दुर्जन, पतित तथा नपुंसक का स्पर्श भी न करे।।४१।।

देवगोब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशेच्छुचिः।
प्रातर्नित्यक्रियान्ते च बिल्वपत्रोदकं पिवेत् ॥४२॥

पवित्र होकर प्रतिदिन देवता, गाय तथा ब्राह्मण का चरणस्पर्श करे। प्रातःकाल नित्य क्रिया के अन्त में बिल्वपत्र के जल का पान करे।।४२।।

ततः स्नात्वा तु गङ्गायां प्राप्ते षोडशवासरे।
स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य तर्पणान्ते नमः पदम् ॥४३॥
एवं शतत्रयादूर्ध्वं देवान् सन्तर्पयेज्जलैः।
स्नानतर्पणहीनेन न स्याद् देवस्य तर्पणम् ॥४४॥

इत्यनेन विधानेन सिद्धिमाप्नोति साधकः।
इह भुक्त्वा वरान् भोगानन्ते याति हरेः पदम् ॥४५॥

ततः दक्षिणां दत्त्वाऽच्छिद्रमवधारयेत् ॥४६॥

इति शवसाधनम्

सोलहवें दिन प्रातःकाल गंगास्नान करके स्वाहान्त मन्त्र का उच्चारण करके तर्पण पद के अन्त में नमः पद लगाये। इस प्रकार जल के द्वारा देवताओं को ३०० तर्पण करे। स्नान तथा तर्पण से रहित व्यक्ति से देवता तृप्त नहीं होते। इस प्रकार के साधन से सिद्धि तथा अन्त में हरिपद की प्राप्ति होती है एवं इस लोक में भी समस्त भोग उपलब्ध होते हैं। तत्पश्चात् दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करे।।४३-४६।।

●

अथ योगिनीसाधनम्

सुन्दरीसाधनं भूतडामरे—

अथ प्रातः समुत्थाय कृत्वा स्नानादिकं शुभम्।
प्रासादञ्च समासाद्य कुर्यादाचमनं ततः ॥१॥
प्रणवान्ते सहस्रारे हुं फड्दिग्बन्धनं चरेत्।
प्राणायामं ततः कुर्यान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥२॥
षडङ्गं मायया कुर्यात् पद्ममष्टदलं लिखेत्।
तस्मिन् पद्मे महामन्त्रं जीवन्यासं समाचरेत्।
पीठे देवीं समभ्यर्च्य ध्यायेद् देवीं जगत्प्रियाम् ॥३॥

अब योगिनी-साधन कहते हैं। भूतडामर में कहते हैं कि प्रात: उठकर स्नानादि शुभकार्य करके प्रासाद (हौं) का ग्रहण (उच्चारण) करके आचमन करे। तत्पश्चात् प्रणव के अन्त में सहस्रारे हुं फट् लगाकर (ॐ सहस्रारे हुं फट्) उसके द्वारा दिग्बन्धन करे। तत्पश्चात् मन्त्रवित् साधक मूल मन्त्र से प्राणायाम करे। मायाबीज के द्वारा (ह्रीं द्वारा) षड़ङ्ग न्यास करे। पीठ देवी का ध्यान करके सुन्दरी देवी का ध्यान करे।।१-३।।

पूर्णचन्द्राननां गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम्।
पीनोत्तुङ्गकुचां वामां सर्वेषामभयप्रदाम् ॥४॥

ध्यान यह है—पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली, गौरी, विचित्र वस्त्र धारण करने वाली, पीन तथा उन्नत स्तनों वाली अभयप्रदा वामा का ध्यान करे।।४।।

इति ध्यात्वा च मूलेन दद्यात्पाद्यादिकं ततः।
पुनर्धूपं निवेद्यैव नैवेद्यं मूलमन्त्रतः।
गन्धचन्दनताम्बूलं कर्पूरञ्च सुशोभनम् ॥५॥

उक्त मूर्त्ति का ध्यान करके मूल मन्त्र द्वारा पाद्यादि प्रदान करे। तत्पश्चात् पुन: धूप निवेदन करके नैवेद्य निवेदन करना चाहिये। अतिसुन्दर गन्ध चन्दन तथा ताम्बूल प्रदान करना चाहिये।।५।।

प्रणवान्ते भुवनेशी आगच्छ सुरसुन्दरि!।
वह्नेर्भार्या जपेन्मन्त्रं त्रिसन्ध्याञ्च दिने दिने ॥६॥

सहस्रैकं प्रमाणेन ध्यात्वा देवीं सदा बुधः।

विद्वान् साधक सदैव देवी का ध्यान करके प्रणव के अन्त में भुवनेशी (ह्रीं) आगच्छ सुरसुन्दरि वह्निजाया (स्वाहा) अर्थात् (मन्त्रोद्धार होता है)—ॐ ह्रीं आगच्छ सुरसुन्दरि स्वाहा' मन्त्र का तीनों सन्ध्या में एक-एक हजार जप करे।।६।।

मासान्ते व्याप्य दिवसं बलिपूजां सुशोभनाम्।
कृत्वा च प्रजपेन्मन्त्रं निशीथे याति सुन्दरी।।७।।

मासान्त में पूरे दिन अत्यन्त सुन्दर भाव से बलिदान के साथ पूजा करके रात्रि में जप करने पर सुन्दरी देवी प्रकट होती है।।७।।

सुदृढं साधकं मत्वा याति सा साधकालये।
सुप्रसन्ना साधकाग्रे सदा स्मेरमुखी ततः।।८।।

वह देवी साधक का मन दृढ़ करके उसके घर आती है और सुप्रसन्ना होकर साधक के सम्मुख हास्यमुखी होकर रहती है।।८।।

दृष्ट्वा देवीं साधकेन्द्रो दद्यात्पाद्यादिकं शुभम्।
सुचन्दनं सुमनसो दत्त्वाऽभिलषितं वदेत्।
मातरं भगिनीं वापि भार्यां वा भक्तिभावतः।।९।।

साधक देवी को देखकर संयत चित्त होकर पवित्र पाद्यादि प्रदान करे तथा सुन्दर चन्दन देकर साधक देवी को माता, बहन अथवा भार्या रूप में देखकर अपना अभिलषित विषय कहे।।९।।

यदि माता तदा वित्तं द्रव्यञ्च सुमनोहरम्।
भूपतित्वं प्रार्थितं यद्भविष्यतीति तत्पुनः।।१०।।

यदि देवी माता होती है तब धन, मनोहर द्रव्य, भूपतित्व, जो भी उनसे प्रार्थना किया जाय, देवी कहती हैं कि उसपर ऐसा ही हो।।१०।।

यद्यत् प्रार्थयते सर्वं ददाति सा दिने दिने।
पुत्रवत् लालयेल्लोके सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्।।११।।

देवी साधकश्रेष्ठ को वह सब प्रदान करती है, यह निश्चित है। साधक और भी जो-जो प्रार्थना करता है, देवी साधक को नित्य वह देती है और लोक में उसका पुत्र के समान पालन करती है। यह सत्य तथा सुनिश्चित है।।११।।

दिव्यकन्यां समानीय नागकन्यां दिने-दिने।

भ्रातृवत् पालितं लोके कामनाभिर्मनोगतैः।
स्वसा ददाति द्रव्यञ्च दिव्यवस्त्रं तथैव च ॥१२॥

यदि देवी स्वसा (बहन) बनती हैं, तब वे मनोहर वस्त्र तथा द्रव्य देती हैं। प्रतिदिन दिव्य कन्या, नागकन्या को लाती हैं तथा मनोगत काम्य विषयसमूह देकर साधक का इस लोक में भाई के समान पालन करता हैं।।१२।।

भार्या स्याद्यदि वा देवी साधकस्य मनोहरा।
राजेन्द्रः सर्वराजानां संसारे साधकोत्तमः ॥१३॥
यद्यद्भवति भूतञ्च भविष्यतीति यत्पुनः।
तत् सर्वं साधकेन्द्राय निवेदयति तत्पुनः ॥१४॥

यदि वे देवी साधक की मनोहरा भार्या बनती हैं तब साधक संसार के समस्त राजाओं का राजा हो जाता है। जो हो रहा है, हो चुका है अथवा होने वाला है, देवी वह सब साधक से पुनः पुनः बतलाती है।।१३-१४।।

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गतिः सर्वत्र निश्चितम्।
यद्यद् ददाति सा देवी कथितुं नैव शक्यते ॥१५॥
तया सार्द्धञ्च सम्भोगं करोति साधकोत्तमः।
अन्यस्त्रीगमनं त्यक्त्वा चान्यथा नश्यति ध्रुवम् ॥१६॥

अस्या मन्त्रस्तु ॐ ह्रीं आगच्छ सुन्दरि स्वाहेति, इत्येकसुन्दरीनाम्नी।

स्वर्ग, मृत्यु लोक तथा पाताल में सर्वत्र साधक की गति निश्चित हो जाती है। देवी जो-जो साधक को देती हैं, मैं उसे नहीं कह सकता। साधक अन्य स्त्री का त्याग करके उनके साथ सम्भोग करे; अन्यथा उसका अवश्य विनाश होता है। देवी का मन्त्र है—ॐ ह्रीं आगच्छ सुन्दरि स्वाहा। यह सुन्दरी नामक योगिनी है।।१५-१६।।

अथ मनोहरासाधनम्

अथ नदीतीरं गत्वा पूर्ववत् कार्यं कृत्वा चन्दनैर्मण्डलं लिखित्वा तत्र स्वमन्त्रं विलिख्यावाह्य धारयेत् ॥१७॥

अब मनोहरा-साधन कहते हैं। नदी के तीर पर जाकर पूर्ववत् वह सब कार्य करे, जो सुन्दरी-साधन में कहा गया है। चन्दन से मण्डल लिखकर उसमें देवी का मन्त्र लिख कर उनका आवाहन करके नीचे लिखा ध्यान करे।।१७।।

ध्यानम्—

कुरङ्गनेत्रां शरदिन्दुवक्त्रां विद्याधरां चन्दनगन्धलिप्ताम्।
चीनांशुकां पीनकुचां मनोज्ञां श्यामां सदा कामदुघां विचित्राम् ॥१८॥

हरिण के नेत्र के समान सुन्दर नेत्र वाली, शरत्कालीन चन्द्र के समान मुख वाली, विम्बफल के समान अधरों वाली, चन्दन-गन्ध से लिपटी, चीन वस्त्र पहनने वाली, स्थूल स्तनों वाली, मनोज्ञा, श्यामवर्णा, कामधेनु के समान अभीष्ट देने वाली विचित्ररूपा देवी का ध्यान करना चाहिये।।१८।।

एवं ध्यात्वा विधिवत् सम्पूज्य प्रत्यहमयुतसंख्यया जपेत्। मासान्ते आनिशीथं जपेत्। ततो निशीथे सागता वरं वरय भाषते। ततः साधकः प्राणायामं षड़ङ्गञ्च मायया कृत्वा पाद्याद्यैः सद्यो मांसबलिना च पूजयेत् ॥१९॥

इस प्रकार से ध्यान करके विधिवत् पूजा करके नित्य दस हजार जप करे। मास के अन्तिम दिन रात्रि-पर्यन्त जप करना चाहिये। तत्पश्चात् रात्रि में देवी का आगमन होता है और वे कहती हैं—वर माँगो। तत्पश्चात् साधक को प्राणायाम तथा मायाबीज (ह्रीं) से षड़ङ्ग न्यास करके पाद्यादि उपचारों से तथा मद्य-मांस की बलि से उनकी पूजा करना चाहिये।।१९।।

ततोऽर्चिता प्रसन्ना सा पुष्णाति प्रार्थितञ्च यत्।
स्वर्णशतं साधकाय ददाति सा दिने-दिने ॥२०॥
सावशेषं व्ययं कुर्यात्स्थिते तत्तु न दास्यति।
अन्यस्त्रीगमनं तस्य न भवेत्सत्यमीरितम् ॥२१॥

तन्त्र में कहा गया है कि तत्पश्चात् वह अर्चिता देवी प्रसन्न होकर साधक का प्रार्थित वर प्रदान करती है और पोषण करती हैं। वे प्रतिदिन साधक को १०० स्वर्णमुद्रा प्रदान करती है। उस स्वर्ण मुद्रा को पूर्ण रूप से व्यय करे। उसमें से कुछ भी बचाकर रखने पर वे फिर नहीं देती। साधक अन्य स्त्री से गमन भी न करे। यह सत्य कहा गया है।।२०-२१।।

अस्य मन्त्रस्तु—ॐ ह्रीं आगच्छ मनोहरे स्वाहा। यथा—तारं मायागच्छ मनोहरे पावकवल्लभा ॥२२॥ इत्यन्या।

इनका मन्त्र है—ॐ ह्रीं आगच्छ मनोहरे स्वाहा। जैसा तन्त्र में कहा है—तार (ॐ) माया ह्रीं आगच्छ मनोहरे तथा पावकवल्लभा (स्वाहा)। ये अन्य यक्षिणी हैं।।२२।।

अथ कनकावतीसाधनम्

गत्वा वटतले देवीं पूजयेत् साधकोत्तमः।
प्राणायामं षडङ्गञ्च माययाऽथ समाचरेत् ॥२३॥

अब कनकावती का साधन कहते हैं। तन्त्र में कहा है कि साधकोत्तम वटवृक्ष के नीचे जाकर देवी-पूजन करे। प्रथमतः मायाबीज (ह्रीं) से प्राणायाम तथा षडङ्गन्यास करे।।२३।।

सद्यो मांसबलिं दत्त्वा पूजयेत्तां समाहितः ।
अर्घ्यमुच्छिष्टरक्तेन दद्यात् तस्यै दिने-दिने ।।२४।।

समाहित होकर देवी को मांस की बलि देकर पूजा करे। प्रतिदिन उच्छिष्ट रक्त से उन देवी को अर्घ्य प्रदान करे।।२४।।

प्रचण्डवदनां गौरीं पक्वबिम्बाधरां पराम् ।
रक्ताम्बरधरां बालां सर्वकामप्रदां शुभाम् ।।२५।।

प्रचण्ड वदना, पके विम्बफल के समान अधरों वाली, रक्त वस्त्र पहने हुये, बाला, सर्वकामप्रदा, श्रेष्ठा गौरी का ध्यान करे।।२५।।

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमयुतं साधकोत्तमः ।
सप्तदिनं समभ्यर्च्य अष्टमे विधिवच्चरेत् ।
कायेन मनसा वाचा पूजयेच्च दिने-दिने ।।२६।।

इस प्रकार ध्यान करके साधकश्रेष्ठ १००० जप करे। सात दिन तक सम्यक् रूप से अर्चना करके आठवें दिन विधिवत् पूजन करे। मनसा, वाचा, कर्मणा प्रतिदिन पूजा करता रहे।।२६।।

तारं मायां तथा कूर्चं रक्षकर्मणि तद्बहिः ।
आगच्छ कनकान्ते च वति स्वाहा महामनूः ।।२७।।

तार (ॐ) माया (ह्रीं) इसी प्रकार कूर्च (हूं) रक्षकर्मणि उसके आगे आगच्छ कनका शब्द के पश्चात् वति स्वाहा लगाये। यह महामन्त्र है। मन्त्र हुआ—ॐ ह्रीं हुं रक्ष कर्मणि आगच्छ कनकावति स्वाहा।।२७।।

आनिशीथं जपेन्मन्त्रं बलिं दत्त्वा मनोरमम् ।
साधकेन्द्रं दृढ़ं ज्ञात्वा सायाति साधकालये ।।२८।।

मनोहर बलि देकर रात भर जप करे। (कितना जप करना है, नहीं अंकित है। अतः प्रतिदिन दस हजार जप करना चाहिये)। साधक की दृढ़ता देखकर देवी उसके घर आती है।।२८।।

साधकेन्द्रोऽपि तां दृष्ट्वा दद्यादर्घ्यादिकं ततः ।
ततः सपरिवारेण भार्या स्यात् कामभोजनैः ।
वस्त्रभूषादिकं त्यक्त्वा याति सा निजमन्दिरम् ।।२९।।

तत्पश्चात् साधक उनको देखकर अर्घ्यादि प्रदान करे। तत्पश्चात् वे अभीष्ट भोजन द्वारा सपरिवार साधक की भार्या बन जाती हैं। प्रतिदिन वस्त्र-भूषणादि छोड़कर देवी अपने गृह को लौट जाती हैं।।२९।।

एवं भार्या भवेन्नित्यं साधकाज्ञानुरूपतः।
आत्मभार्यां परित्यज्य भवेत्ताञ्च विचक्षणः ॥३०॥

इत्यपरा।

साधक की आज्ञा के अनुरूप वे नित्य उसकी पत्नी बनती हैं। विचक्षण साधक अपनी भार्या का परित्याग करके उसको अपना बनाये। ये अन्य यक्षिणी हैं।।३०।।

अथ कामेश्वरीसाधनम्

अथ कामेश्वरीं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम्।
पूर्ववत् सकलं कृत्वा भूर्जपत्रे गोरोचनया प्रतिमां निर्माय शय्यामारूह्य सहस्त्रैकप्रमाणेन मासमेकं जपेत्, घृतेन मधुना वा दीपं दद्यात् ॥३१॥

अब सर्वकाम-फलप्रदा कामेश्वरी का साधन कहते हैं। समस्त कृत्य पूर्ववत् करके भोजपत्र पर गोरोचन से इनकी प्रतिमा अंकित कर शय्या पर इनका आवाहन करना चाहिये। एक मास बिना भंग किये एक हजार नित्य जप करना चाहिये। घृत अथवा मधु से दीपक जलाना चाहिये।।३१।।

ध्यानम्—

कामेश्वरीं शशाङ्कास्यां चलत्खञ्जनलोचनाम्।
सदा लोलगतिं कान्तां कुसुमास्त्रशिलीमुखाम् ॥३२॥

एवं ध्यात्वा मन्त्रं जपेत्। सा निशीथे याति।

ध्यान—चन्द्र के समान कान्तिपूर्ण मुख वाली, खञ्जन पक्षी के नेत्र के समान चञ्चल नेत्र वाली, ज्योतियुक्ता, पुष्प के बाण तथा धनुष-धारिणी कामेश्वरी देवी का ध्यान करे। इस प्रकार ध्यान करके मन्त्र-जप करने पर रात्रि में देवी साधक के समीप आती है।।३२।।

स्त्रीभावेन तदा तस्यै दद्यात् पाद्यादिकं ततः ॥३३॥
सा सुखेन निशां नीत्वा दत्त्वा च विपुलं धनम्।
वस्त्रालङ्कारद्रव्यादीन् प्रभाते याति निश्चितम् ॥३४॥

तब साधक उनको स्त्रीभाव से पाद्यादि प्रदान करे। तदनन्तर वह देवी सुख से रात्रि व्यतीत कर विपुल धन, वस्त्र, अलङ्कार, द्रव्यादि प्रदान कर प्रातःकाल चली जाती हैं।।३३-३४।।

प्रणवं भुवनेशी चागच्छ कामेश्वरि! ततः।
वह्नेर्भार्या महामन्त्रं साधकानां सुखावहम् ॥३५॥

प्रणव (ॐ) भुवनेशी (ह्रीं) आगच्छ कामेश्वरि तदनन्तर वह्निभार्या (स्वाहा)। मन्त्रोद्धार होगा—ॐ ह्रीं आगच्छ कामेश्वरि स्वाहा।।३५।।

अथ रतिसुन्दरीसाधनम्

सुवर्णवर्णगौराङ्गीं सर्वालङ्कारभूषिताम्।
नूपुराङ्गदहाराणां रम्याञ्च पुरुरेक्षणाम् ॥३६॥

अब रतिसुन्दरी-साधन कहा जाता है। उनके ध्यान का अर्थ है कि रतिसुन्दरी सुवर्ण के वर्ण वाली, गौराङ्गी, समस्त अलङ्कार से भूषिता, नूपुर, अङ्गद तथा हारयुक्ता, मनोहरा, कमलनयनों वाली है।।३६।।

इत्येवं पुत्तलीपटे निर्माय ध्यात्वा सम्पूज्य जपेदष्टसहस्रमानेन प्रत्यहम् ॥३७॥

मासान्ते समयं प्राप्य निशीथे याति सुन्दरी।
ततस्तामर्चयेद् भक्त्या जातीकुसुममालया ॥३८॥

एक पट्ट पर इसी ध्यान में वर्णित मूर्त्ति का अङ्कन करके ध्यान करते हुये प्रतिदिन ८००० जप करना चाहिये। एक मास का अन्त होने पर रतिसुन्दरी यक्षिणी साधक के पास आती है। आने पर चमेली की माला से उनका पूजन भक्तिसहित करना चाहिये।।३७-३८।।

भूत्वा भार्या च सा तस्मै ददाति वाञ्छितं वरम्।
भूषादिकं परित्यज्य प्रभाते याति सा ध्रुवम्।
त्यक्त्वा भार्यां भजेत्ताञ्च अन्यथा नश्यति ध्रुवम् ॥३९॥

वे भार्या होकर साधक को मनचाहा वर देती हैं। वे प्रातः अपने भूषण-वस्त्रादि का त्याग कर चली जाती हैं। अपनी पत्नी का त्याग करके इनका वरण करे; अन्यथा निश्चय ही साधक का नाश होता है।।३९।।

तारमाया तथागच्छ रतिसुन्दरि पदन्ततः।
वह्निजायाष्टसाहस्त्रं जपेन्मन्त्रं दिने दिने ॥४०॥

तार (ॐ) माया (ह्रीं) तथागच्छ रतिसुन्दरि वह्निजाया (स्वाहा) यह मन्त्र है। दिन प्रतिदिन आठ हजार मन्त्र का जप करे। मन्त्रोद्धार इस प्रकार से है—ॐ ह्रीं आगच्छ रतिसुन्दरि स्वाहा।।४०।।

अथ पद्मिनीसाधनम्

स्वगृहे शिवसान्निध्ये पूर्ववच्चन्दनेन मण्डलं कृत्वा तत्र मूलमन्त्रं लिखित्वा—

पद्माननां श्यामवर्णां पीनोत्तुङ्गपयोधराम्।
कोमलाङ्गीं स्मेरमुखीं रक्तोत्पलदलेक्षणाम् ॥४१॥

अब पद्मिनी-साधन कहते हैं। अपने गृह में शिव के निकट पूर्ववत् चन्दन द्वारा मण्डल अंकित करके वहाँ मूल मन्त्र लिखकर पद्मासना, श्यामवर्णा, पीन उत्तुङ्ग (ऊँचा) स्तनधारिणी, कोमलाङ्गी, किञ्चित् हास्यमुखी, रक्त कमलपत्र के समान नयनों वाली पद्मिनी का ध्यान करना चाहिये।।४१।।

इति ध्यात्वा सम्पूज्य कृष्णप्रतिपदादिमासे सहस्रं प्रत्यहं जपेत्। मासान्ते पूर्णिमायां विधिवत् पूजयेत्। आनिशीथं जपेत्। ततः सागत्य भार्या भवति, धनादि ददाति। अन्या स्त्री त्याज्या। मन्त्रस्तु ॐ ह्रीं आगच्छ पद्मिनि स्वाहा।

यथा वेद्याद्यं भुवनेशी चागच्छ पद्मिनि ठद्वयम् ॥४२॥

इस प्रकार ध्यान करके कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से एक मास तक नित्य एक हजार जप करे। मासान्त में पूर्णिमा पड़ेगी। उस दिन विधिवत् पूजन करे। रात्रिपर्यन्त जप भी करे। तदनन्तर साधक के पास आकर पद्मिनी यक्षिणी उसकी भार्या बन जाती है और धनादि देती है। पद्मिनी के आने पर अन्य स्त्री का त्याग कर देना चाहिये।

तन्त्र में कहा गया है कि वेदाद्य (ॐ) भुवनेशी (ह्रीं) आगच्छ पद्मिनि तथा ठद्वय (स्वाहा) यह इनका मन्त्र है। मन्त्रोद्धार है—ॐ ह्रीं आगच्छ पद्मिनि स्वाहा।।४२।।

अथ नटिनीसाधनम्

ततो वक्ष्ये महाविद्यां विश्वामित्रेण धीमता।
ज्ञात्वा यां साधिता विद्या बला चातिबला प्रिये ॥४३॥

अब नटिनी-साधन कहते हैं। इनको महाविद्या नटिनी कहते हैं। भगवान् कहते हैं कि हे प्रिये! धीमान् विश्वामित्र ने जिसे जानकर बला तथा अतिबला विद्या का साधन किया था, वह यही विद्या है।।४३।।

प्रणवान्ते महामाया नटिनि पावकप्रिया।
महाविद्येऽकथिता गोपनीया प्रयत्नतः ॥४४॥

प्रणव के अन्त में महामाया (ह्रीं) नटिनि तथा पावकप्रिया (स्वाहा) है। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं नटिनि स्वाहा। इसे महाविद्या कहते हैं। इन्हें यत्न से गुप्त रखना चाहिये।।४४।।

अशोकमूले गत्वा—

त्रैलोक्यमोहिनीं गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम्।
विचित्रालङ्कृतां रम्यां नर्त्तकीवेशधारिणीम् ॥४५॥

अशोक वृक्ष की जड़ में बैठकर अर्थात् वृक्ष के नीचे बैठकर गौराङ्गी, विचित्र वस्त्रों वाली, विचित्र आभूषणों से अलङ्कृता रम्या नर्त्तकी वेशधारिणी नटिनी का ध्यान करना चाहिये।।४५।।

एवं ध्यात्वा सम्पूज्य दिने-दिने सहस्रं जपेत्। मासान्ते मांसोपहारादिभिरद्भिरर्चयेत् ॥४६॥

इस प्रकार ध्यान करके सुन्दर रूप से पूजा करके नित्य एक हजार जप करे। मास समाप्त होने पर मांसादि उपहारों से उनका पूजन करे।।४६।।

अर्द्धरात्रौ भयं दत्त्वा किञ्चित् साधकसत्तमे।
सुदृढं साधकं मत्वा याति सा साधकालयम् ॥४७॥
विद्याभिः सकलाभिश्च किञ्चित्स्मेरमुखी ततः।
वरं वरय शीघ्रं त्वमिति भूयः प्रभाषते ॥४८॥

अर्धरात्रि में देवी साधक को कुछ भय दिखलाकर उसकी दृढ़ता की परीक्षा लेकर उसके सम्मुख आती है। तदनन्तर हास्यमुखी नटिनी यह कहती है कि तुम शीघ्र सभी विद्याओं के साथ वर माँगो।।४७-४८।।

ततः मातरं भगिनीं भार्यां वा कुर्यात्। सा तु पूर्ववत् फलं ददाति। मन्त्रस्तु—ॐ ह्रीं नटिनि स्वाहेति॥४९॥

तत्पश्चात् साधक अपने भाव के अनुसार उनकी भावना माँ, बहन अथवा भार्या रूप में करे। वे उसे पूर्ववत् फल (जैसा अन्य यक्षिणीगण प्रसन्न होकर देती हैं) प्रदान करती है। इनका मन्त्र है—ॐ ह्रीं नटिनि स्वाहा।।४९।।

अथ मधुमतीसाधनम्

महाविद्यां प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ॥५०॥

भूर्जपत्रे कुङ्कुमेन स्त्रियं विलिख्य तद्बहिरष्टदलं पद्ममालिख्य न्यासादिकं कृत्वा ध्यात्वा जीवन्यासं कृत्वा त्रिसंध्यं प्रत्यहमुपचारैरर्चयेत् ॥५१॥

भोजपत्र पर कुङ्कुम द्वारा एक स्त्री की मूर्त्ति अंकित करके उसके बाहरी भाग में एक अष्टदल कमल अंकित करे। तत्पश्चात् न्यासादि द्वारा ध्यान करके जीवन्यास करे तथा तीनों सन्ध्या में उपचारों सहित उनका पूजन करता रहे।।५०-५१।।

ध्यानन्तु—

शुद्धस्फटिकसङ्काशां नानारत्नविभूषिताम्।
मञ्जीरहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डिताम् ।।५२।।

ध्यान इस प्रकार करे—मधुमती देवी शुद्ध स्फटिक के समान, नाना रत्नों वाली, नूपुर (मञ्जीर), हार, केयूर तथा रत्नकुण्डल से विभूषित है।।५२।।

कृष्णप्रतिपदामारभ्य दिने-दिने सहस्रं जपेत् ।।५३।।
पूर्णिमायां दिवारात्रौ च विशेषतः पूजयेत् ।।५४।।

कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ करके नित्य १००० जपे। पूर्णिमा को (क्योंकि पूर्णिमा को १ मास पूर्ण हो जायेगा) दिन-रात विशेष रूप से पूजन करे।।५३-५४।।

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले यद्वस्तु विद्यते प्रिये।
आनीय दीयते सत्यं साधकाज्ञानुरूपतः ।।५५।।

भगवान् कहते हैं—हे प्रिये! स्वर्ग, मृत्युलोक तथा पाताल में जो कुछ विद्यमान है, साधक की आज्ञा से उसे लाकर मधुमती प्रदान करती है।।५५।।

स्वर्णशतं तदा तस्मै ददाति सा दिने दिने।
तस्या वरप्रदानेन चिरञ्जीवी निरामयः ।।५६।।
सर्वज्ञः सुन्दरः श्रीमान् सर्वगो भवति ध्रुवम्।
अन्यस्त्रीगमनं त्याज्यमन्यथा नश्यति ध्रुवम्।।५७।।

वे प्रतिदिन साधक को १०० स्वर्णमुद्रा देती हैं। साधक उनके वरदान से निश्चय ही सर्वज्ञ, चिरंजीवी, निरोग, श्रीमान्, सुन्दर तथा सर्वज्ञ हो जाता है। अन्य स्त्री से गमन न करे, अन्यथा साधक निश्चय ही नष्ट हो जाता है।।५६-५७।।

तारं माया तथागच्छानुरागिनि! मैथुनप्रिये!।
वह्निभार्या मनुः प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।।५८।।

तार (ॐ), माया (ह्रीं) तथा उसके पश्चात् आगच्छानुरागिनि! मैथुनप्रिये तथा वह्निभार्या (स्वाहा) यह इनका सर्वसिद्धिदायक मन्त्र है। मधुमती का मन्त्रोद्धार यह है—ॐ ह्रीं आगच्छानुरागिणि मैथुनप्रिये स्वाहा।।५८।।

एषा मधुमती तु स्यात् सर्वसिद्धिप्रदा प्रिये!।
गुह्याद् गुह्यतरा विद्या तव स्नेहात् प्रकाशिता ।।५९।।

भवगान् कहते हैं—हे प्रिये! सर्वसिद्धि देने वाली गुप्त से भी गुप्त यह विद्या तुमसे कही, जो मधुमती की विद्या है।।५९।।

अथ प्रमोदासाधनम्

ताराप्रदीपे—

प्रणवं भुवनेशानि प्रमोदायै द्विठावधिः।
अर्द्धरात्रे समुत्थाय सहस्त्रं प्रजपेन्मनूम्।
मासमेकं ततो देवी निधिञ्च दर्शयेद् ध्रुवम्॥६०॥

ताराप्रदीप के अनुसार प्रणव (ॐ), भुवनेशानि (ह्रीं) 'प्रमोदाय' तथा द्विठ (स्वाहा) इस मन्त्र का अर्धरात्रि में उठकर एक मासपर्यन्त प्रतिदिन एक हजार जप करे। इससे मासान्त के दिन देवी अवश्य निधिदर्शन कराती हैं। मन्त्र है—ॐ ह्रीं प्रमोदायै स्वाहा।।६०।।

एतद्विषये भार्यादिभावो न नियतः। ताराप्रदीपादौ यक्षिणीमध्यगणितापि धनदा लक्ष्मी प्रस्तावे वक्ष्यते। एता नव यक्षिण्यः॥६१॥

इसमें भार्यादिभाव नियत नहीं किया गया है (अर्थात् भार्या-भगिनीभाव न रखे मातृभाव सबके लिये विहित है)। इनको यद्यपि ताराप्रदीप में यक्षिणी के स्थान पर धनदा लक्ष्मी कह गया है। (ताराप्रदीप में) इन नौ यक्षिणी का उल्लेख है, जिनका यहाँ वर्णन किया गया।।६१।।

तत्रैव पृच्छामः—रे!,

यदि कालमतिक्रम्य ना गच्छति न सिध्यति।
क्रोधेनानेन चाक्रम्य जपेदष्टसहस्त्रकम्॥६२॥
तथाकृते समायाति वाञ्छितार्थं प्रयच्छति।
यदि नायाति चैतेन अक्षि मूर्ध्नि स्फुटत्यपि।
रौरवे नरके वापि पातयेत् क्रोधभूपतिः॥६३॥

वहीं पर प्रश्न किया गया है कि यदि समय बीत जाय और यक्षिणी न आये और न ही सिद्धि हो तब क्या करना चाहिये? उत्तर है कि तब क्रोधमन्त्र से आकर्षण करके १००८ जप करना चाहिये। क्रोधमन्त्र से यक्षिणी मन्त्र को पुटित करके यह जप किया जाता है।

इस प्रकार से जप करने पर वे साधक के पास आकर साधक को इच्छित वर प्रदान करती हैं। यदि इतने पर भी नहीं आयेंगी तब (यक्षिणी के भगवान् क्रोधभूपति क्रोधभैरव उसके चक्षु तथा मस्तक को विदीर्ण करके उसे रौरव नरक में गिरा देते हैं।।६२-६३।।

क्रोधेन—क्रोधमन्त्रेण। आक्रम्य—पुटितं कृत्वा। क्रोधमन्त्रश्च—ॐ हुं फट् अमुकयक्षिणि ह्रीं यः हुं हुं फट् ॥६४॥

क्रोध—अर्थात् क्रोधभैरव मन्त्र से। आक्रम्य—पुटित करके। क्रोधमन्त्र है—ॐ हुं फट् अमुकयक्षिणि ह्रीं यः हुं हुं फट्।।६४।।

अथैतन्मुद्राः

मुष्टिमन्योन्यमास्थाय कनिष्ठे वेष्टयेदुभे।
प्रसार्याकुञ्च्य तर्जन्यौ कार्यौ तावङ्कुशाकृती।
इयं क्रोधाङ्कुशी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षणक्षमा ॥६५॥

अब इनकी मुद्रा को कहा जाता है। परस्पर दोनों हाथ की मुट्ठी बनाकर दोनों कनिष्ठा को उसमें लपेट कर दोनों तर्जनी फैलाते हुये तथा संकुचित करके उसे अङ्कुश की तरह करे। यह है—क्रोधाङ्कुशी मुद्रा। यह त्रैलोक्य का आकर्षण करती है।।६५।।

अनया पूर्वोक्तक्रोधमन्त्रेणाकर्षयेत् ॥६६॥

इस क्रोधाङ्कुशी मुद्रा से पूर्वोक्त क्रोधमन्त्र का आकर्षण करना चाहिये।।६६।।

पाणिं समौ विधायातां विपरीतं मध्यमाद्वयम्।
कृत्वा तिर्यगनामान्ते बाह्यतः स्थापयेद् बुधः ॥६७॥
तर्जन्यभिनिविष्टेन कनिष्ठागर्भसंस्थिता।
अङ्गुष्ठेनाह्वयेत् सर्वां यक्षिणीं मुद्रयाऽनया ॥६८॥

दोनों हथेलियों को समान करके विपरीत मध्यमाद्वय को टेढ़ा करके विद्वान् व्यक्ति उसे बाहर अनामिका के अन्त में स्थापित करे। कनिष्ठा अन्दर रहेगी। तर्जनी से अंगूठे को पकड़े। यह मुद्रा समस्त यक्षिणियों का आवाहन करने के लिये उपयुक्त है।।६६-६८।।

आवाहनमन्त्रस्तु—ॐ ह्रीं आगच्छागच्छ अमुकयक्षिणि स्वाहा ॥६९॥

आवाहन मन्त्र है—ॐ ह्रीं आगच्छागच्छ अमुकयक्षिणि स्वाहा। अमुक के स्थान पर यक्षिणी का नाम कहना चाहिये।।६९।।

कृत्वान्योन्यमुभे मुष्टी प्रसार्य मध्यमाद्वयम्।
सम्मुखीकरणी मुद्रा यक्षीणां मनुनाऽमुना ॥७०॥

मन्त्रश्च—ॐ महायक्षिणि मैथुनप्रिये स्वाहा।

परस्पर दोनों हथेली की मुट्ठी बनाकर मध्यमा को फैलाये। यह सम्मुखीकरण मुद्रा है। इसके द्वारा यक्षिणियों का सम्मुखीकरण करना चाहिये। मन्त्र है—ॐ महायक्षिणि मैथुनप्रिये स्वाहा।।७०।।

अन्योन्यमुष्टिमास्थाय प्रसार्याकुञ्चयेदुभे ।
कनिष्ठे चापि मुद्रेयं सान्निध्यकरणी स्मृता ॥७१॥

मन्त्रश्च—ॐ क्लीं भोगेश्वरि स्वाहा।

परस्पर दोनों मुष्टि बनाकर दोनों कनिष्ठिका फैलाकर आकुंचित करने से सान्निध्यकारिणी मुद्रा बनती है। मन्त्र है—ॐ क्लीं भोगेश्वरि स्वाहा।।७१।।

कृत्वा मुष्टिं ततोऽन्यान्यं षट्वाकारं हृदि न्यसेत् ।
वक्ष्यमाणेन मनुना युक्ता स्नपनकर्मणि ॥७२॥

मन्त्रस्तु—ॐ क्ष्मीं हृदयाय नमः।

मुष्टि बनाकर उसे षट्वाकृति अन्य मुष्टि के बीच में स्थापित करे। तदनन्तर निम्न मन्त्र का इस मुद्रा के स्नपन में प्रयोग करे। मन्त्र है—ॐ क्ष्मीं हृदयाय नम:।।७२।।

कृत्वा मुष्टिं ततोऽन्यान्यं तर्जनीमपि मध्यमाम् ।
प्रसार्य गन्धप्रमुखी मुद्रा मन्त्रसमन्विता ॥७३॥

मन्त्रस्तु—ॐ सर्वमनोहारिणिः स्वाहेति मन्त्रेण गन्धाद्यैः सम्पूजयेत्।

तत्पश्चात् अन्योन्य मुष्टि बनाकर तर्जनी तथा मध्यमा को फैलाये। इससे गन्धप्रमुखी मुद्रा बनती है। यह मन्त्रसमन्विता है। मन्त्र है—सर्वमनोहारिणि स्वाहा। इस मन्त्र से गन्धादि द्वारा पूजन करना चाहिये।।७३।।

आह्वानमुद्रया वामाङ्गुष्ठेनापि विसर्जयेत् ।
यक्षिणीं मनुनानेन वक्ष्यमाणेन पूजिताम् ॥७४॥

मन्त्रस्तु—ह्रीं गच्छ गच्छ अमुकयक्षिणि पुनरागमनाय स्वाहा ॥७५॥

इस मन्त्र से पूजिता यक्षिणी को आह्वान मुद्रा द्वारा वामाङ्गुष्ठ से विसर्जन करे। मूलोक्त मन्त्र में अमुक के स्थान पर यक्षिणी का नाम लेना चाहिये।।७४-७५।।

अथ षट्किन्नरीसाधनम्

अथ मनोहारीसाधनम्

ॐ मनोहारिणि स्वाहा। शैलशृङ्गमास्थायाष्टसहस्रं जपेत्। जपान्ते रात्रौ मांसादिभिरभ्यर्च्य जपेत्।

सार्द्धरात्रे समागत्य भार्या भवति सुन्दरी ॥७६॥

अब षट्किन्नरी का साधन कहते हैं। मनोहारिणी किन्नरी का मन्त्र है—'ॐ

मनोहारिणि स्वाहा। पर्वत के शिखर पर बैठकर इस मन्त्र का १०८ जप करे। जपान्त में मांस आदि द्वारा अर्चना करे। सुन्दरी अर्धरात्रि में आकर भार्या बनती है।।७६।।

सुभगासाधनम्

ॐ सुभगे स्वाहा।

पर्वते निर्जने वापि विहारे वाऽयुतं जपेत्।
भार्या भूय ददात्यष्टौ दीनारान् प्रत्यहं मुदा ॥७७॥

अब सुभगा किन्नरी का साधन कहते हैं। इसका मन्त्र है—ॐ सुभगे स्वाहा। पर्वत पर, निर्जन में अथवा विहारभूमि में इसके मन्त्र का १०००० जप करे। तत्पश्चात् किन्नरी पत्नी बनकर सर्वदा आनन्द प्रदान करती हुई प्रतिदिन आठ दीनार (स्वर्ण मुद्रा) प्रदान करती है।।७७।।

विशालनेत्रासाधनम्

ॐ विशालनेत्रे स्वाहा।

नीचगातटमासाद्य जपेदयुतसंख्यकम्।
सम्पूज्य सकलां रात्रिं प्रजपेद्रजनीक्षये ॥७८॥

फलं पूर्ववत्। नीचगा = नदी ॥७९॥

अब विशालनेत्रा किन्नरी-साधन कहते हैं। मन्त्र है—ॐ विशालनेत्रे स्वाहा। इसका नदी के तट पर बैठकर १०००० जप करे। समस्त रात्रि पूजा करके रात्रि के अन्त तक मन्त्र जपे। इसका फल भी पूर्ववत् है।।७८-७९।।

सुरतप्रियासाधनम्

ॐ सुरतप्रिये स्वाहा।

नीचगासङ्गमे रात्रौ जपेदष्टसहस्रकम्।
जपान्ते तु समागत्य आत्मानं दर्शयत्यपि ॥८०॥
स्थित्वा पूरो द्वितीयेऽह्नि वचनं भाषते पुनः।
तृतीये दिवसे प्राप्ते भार्या भवति कामिता ॥८१॥
ददात्यष्टौ दिनाराणि प्रत्यहं दिव्यवाससी ॥८२॥

अब सुरतप्रिया किन्नरी का साधन कहते हैं। मन्त्र है—सुरतप्रिये स्वाहा। नदी के संगम के किनारे १००८ जप उक्त मन्त्र का करे। जपान्त में वे आकर साधक को दर्शन देती हैं। पुन: द्वितीय दिन (जपान्त में) वे प्रार्थना करने पर भार्या बन जाती हैं और प्रतिदिन (जाते समय सुबह) आठ दीनार एवं दिव्य मनोहारी वस्त्र प्रदान करती हैं।।८०-८२।।

सुमुखासाधनम्

ॐ सुमुखे स्वाहा।

शैलमूर्द्धन्यन्वहं मांसाहारेणायुतकं जपेत् ।
जपान्ते पुरतः स्थित्वा चुम्बत्यालिङ्गयत्यपि ॥८३॥

दीनाराष्टकं ददाति।

अब सुमुखा किन्नरी का साधन कहते हैं। मन्त्र है—ॐ सुमुखे स्वाहा। श्येन (बाज) पर बैठकर (बाजचर्म पर) प्रतिदिन मांसाहार देकर १०००० मन्त्र का जप करे। जपान्त में सुमुखा किन्नरी आकर साधक का चुम्बन-आलिङ्गन करती हैं एवं आठ दीनार नित्य देती हैं।।८३।।

दिवाकरमुखीसाधनम्

ॐ दिवाकरमुखि स्वाहा।

शैलभूमिं समास्थाय जपेदयुतसंख्यकम् ।
रात्रावभ्यर्च्य प्रजपेन्मनूनष्टसहस्रकम् ॥८४॥

फलं पूर्ववत्।

अब दिवाकरमुखी किन्नरी का साधन कहते हैं। पर्वतशिखर पर बैठकर १०००० जप करे। मन्त्र है—ॐ दिवाकरमुखि स्वाहा। रात्रि में अर्चना करके पुनः १००८ जप करे। फल पूर्ववत् है।।८४।।

●

अथ पिशाचीसाधनम्

उल्कामुखीसाधनम्

ताराप्रदीपे—

तारं उल्कामुखि महापिशाचि तदनन्तरम्।
देहि युग्मं समारभ्य दापयाग्निप्रिया ततः ॥१॥
रात्रौ प्रदीपतैलेन पादौ संभृक्ष्य यत्नतः।
ततः सुप्त्वा जपेन्मन्त्रमेकविंशतिवासरान् ॥२॥

अब पिशाची साधनान्तर्गत उल्कामुखी पिशाची का साधन कहा जाता है। ताराप्रदीप के अनुसार इनका मन्त्र है—तार (ॐ) 'उल्कामुखि महापिशाचि' तदनन्तर देहि देहि कहकर 'दापय' कहे, तदनन्तर अग्निप्रिया (स्वाहा) लगाये। इस प्रकार उल्कामुखी महापिशाची का मन्त्र होता है—ॐ उल्कामुखी महापिशाचि देहि देहि दापय स्वाहा।

रात्रि में यत्नपूर्वक दीपक के जलने से बचा तेल दीपक से लेकर दोनों पैरों में मलकर इक्कीस रात्रिपर्यन्त शयन करते (लेटे हुये) हुये मन्त्र जप करे।।१-२।।

ततः सिद्धा च सा देवी पिशाची वरदा भवेत्।
प्रत्यहं परितुष्टा सा दद्यात् कार्षापणं ततः ॥३॥

इससे सिद्ध होकर वह पिशाची देवी वर प्रदान करती है एवं नित्य सन्तुष्ट होकर एक कार्षापण (मुद्रा) प्रदान करती है।।३।।

खरमुखीसाधनम्

मन्त्रस्तु—ॐ खरमुखि! महापिशाचि! देहि देहि दापय स्वाहा।

तारं खरमुखी! महापिशाचि! तदनन्तरम्।
देहि युग्मं समाभाष्य दापयाग्निप्रिया ततः ॥४॥
पूर्वोक्तेन विधानेन जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
चतुर्विंशतिकं नित्यं पणं दद्यात् प्रमोदिता ॥५॥

अब खरमुखी महापिशाची साधन कहते हैं। तार (ॐ) 'खरमुखि महापिशाचि'

तदनन्तर दो बार 'देहि देहि' तत्पश्चात् 'दापय' अन्त में अग्निप्रिया लगाये (स्वाहा)। इस प्रकार से ऊपर लिखा मन्त्र होता है। साधक पूर्वोक्त विधान से मन्त्र का जप करे। इससे देवी प्रसन्न होकर नित्य २४ पण (मुद्रा विशेष) प्रदान करती है।।४-५।।

मधुमतीपिशाचीसाधनम्

अथ वक्ष्ये मधुमतीं सिद्धविद्याञ्च कामदाम्।
यस्याः सकृज्जपेनैव सिद्धो भवति मानवः ।।७।।
विश्वरूपे पदं वाच्यं पिशाचि तदनन्तरम्।
वशद्वितयमाभाष्य मायान्ते वह्निवल्लभा ।।८।।

अब मधुमती पिशाची का साधन कहते हैं, जिनके मात्र एक बार जप से ही मानव सिद्ध हो जाता है। पहले विश्वरूप पद उसके अनन्तर पिशाचि कहे। दो बार वश कहे (वश वश)। तदनन्तर माया (ह्रीं) और अन्त में वह्निवल्लभा (स्वाहा) कहे। मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—विश्वरूपे पिशाचि ह्रीं स्वाहा।।७-८।।

ध्यानन्तु—

दीर्घाकारां कृष्णवर्णां ललद्दीर्घपयोधराम्।
लोलया जिह्वया गात्रं लिहन्तीं सर्वतो निजम् ।।९।।

ध्यान इस प्रकार है—दीर्घाकृति, कृष्ण वर्ण वाली, हिलते हुये दीर्घ स्तनों वाली, लाल जिह्वा द्वारा अपने शरीर को लेपित करने वाली पिशाची का स्वरूप है।।९।।

तथा—

शय्यायां प्रजपेन्नित्यमष्टोत्तरशतं नरः।
ततो वीर्यवती भूत्वा सर्वज्ञं कारयेन्नरम्।
बलिदानं प्रदद्याच्च भोजनान्ते च साधकः ।।१०।।

अन्य तन्त्र में कहा गया है कि साधक नित्य शय्या पर १०८ बार इस मन्त्र का जप करे। इससे पिशाची वीर्यवती होकर मनुष्य को सर्वज्ञ बना देती है। साधक भोजन के पश्चात् जूठे बचे अन्न से बलि प्रदान करे।।१०।।

बलिमन्त्रस्तु—

विश्वरूपे! महाभागे! पैशाचत्वप्रचारिणि! ।
उच्छिष्टमन्नं दास्यामि गृहाण प्रीतमानसा ।।११।।

बलिमन्त्र का अर्थ है—हे विश्वरूपे! हे महाभागे! हे पैशाचत्व-प्रचारिणि! उच्छिष्ट अन्न देता हूँ। तुम प्रसन्न होकर ग्रहण करो।।११।।

नमामि वरदां देवीं मोहिनीं सर्वकामदाम्।
हयग्रीवां मधुमतीं रौद्रीं शङ्करवल्लभाम् ॥१२॥
सदा प्रसाददात्री च जननी च भवेत्सदा।
जरामृत्युग्रहहन्त्री शत्रुसंघविमर्दिनी ॥१३॥

अब प्रणाममन्त्र कहते हैं—मैं वरदा, मोहिनी, सर्वकामप्रदा, हयग्रीवा, रौद्री, मधुमती, शंकर को प्रिय देवी को प्रणाम करता हूँ। वे सर्वदा कृपा करने वाली जननी हैं। वे जरा, मृत्यु, ग्रहदोष का नाश करने वाली तथा शत्रुओं का मर्दन करने वाली हैं।।१२-१३।।

मतिदा भोगदा नित्या स्मरणात् सर्वसिद्धिदा।
कदाचिद् भ्रामयन्ती सा भार्यारूपधरा सती ॥१४॥

वे सर्वदा भोगदा हैं तथा उनका स्मरण समस्त सिद्धि को देने वाला है। वे कभी-कभी पत्नी का रूप धर कर साधक को भ्रमित करती हैं।।१४।।

तदा कामवशात् शान्तं मोहयन्ती च साधकम्।
नगरे नगरे ग्रामे देशे देशे वने वने ॥१५॥
गृहीत्वा साधकं नित्यं यामिन्यां प्रमदा इव।
प्रक्रीड़माना सहसा चत्वरे चत्वरे गिरौ ॥१६॥
सुगन्धिकुसुमैर्नित्यं चन्दनागुरुलेपनैः।
नानाभागैः परिष्कृत्य रससिद्धिरसायनैः ॥१७॥
मेषकुक्कुटहंसैश्च वराहमहिषामिषैः।
नानाविधैः स्वादुमांसैर्गव्यमांसमनोहरैः ॥१८॥
अन्नं प्रमोदजननं भृङ्गारैः शीतलं जलम्।
कर्पूराक्तञ्च ताम्बूलं ददाति बहुलं मधु ॥१९॥

हे वरानने! तब वे कामवेश में आकर साधक को मोहित करती हैं। वह पिशाची नित्य साधक को नगर-नगर, ग्राम-ग्राम, देश-देश में ले जाकर रात्रि में उसके साथ उसकी स्त्री की तरह क्रीड़ा करती हैं। पर्वत पर सुगन्धि, पुष्प, चन्दन, अगरु द्वारा उसे सज्जित करके नाना भोग, रस, सिद्धि तथा रसायन; मेष, कुक्कुट, हंस, वराह तथा महिष का मांस; नाना प्रकार के स्वादिष्ट मांस तथा मनोहर गव्य मांस के साथ प्रसन्नता देने वाले अन्न, शीतल जल, कपूरमिश्रित ताम्बूल तथा प्रचुर शहद प्रदान करती हैं।।१५-१९।।

हर्म्यं पर्यङ्कशयनं सुन्दरं प्रतिमन्दिरम्।
निर्माय निशि सा देवी साधकं भक्तिमानसम्॥२०॥

हर्म्य, पर्यङ्क, सुन्दर गृह का निर्माण रात्रि में करके वह देवी भक्तिचित्त वाले साधक को दान करती हैं।।२०।।

मुहुर्मुहुः प्रपश्यन्त्यालिङ्गन्ती च मुहुर्मुहुः।
नक्तञ्च रमते सा तु रुद्राणी शङ्करं यथा॥२१॥

वह देवी साधक को देखती हुई पुनः पुनः उसका आलिङ्गन करती है जिस प्रकार रात्रि में रुद्राणी तथा शंकर के साथ रमण करती है, उसी प्रकार उसके साथ रमण करती है।।२१।।

अथ यक्षिण्यादिसाधने समयनिर्णयः

वसन्ते साधयेद् धीमान् हविष्याशी जितेन्द्रियः।
उज्जटे प्रान्तरे वापि कामरूपे विशेषतः॥२२॥

अब यक्षिणी आदि के साधन का समयनिर्णय बतलाते हैं। धीमान् साधक हविष्यान्न का भक्षण करके जितेन्द्रिय होकर वसन्त ऋतु में उज्जट, प्रान्तर, विशेषतः कामरूप प्रदेश में यह साधना करे।।२२।।

देव्याश्च सेवकाः सर्वे परञ्चात्राऽधिकारिणः।
तारकब्रह्मणो भृत्यं विनाप्यत्राधिकारिणः॥२३॥

एतेन शैवादिभिरपि कर्त्तुं शक्यते इत्यायातम्। इति यक्षिणीसाधनम्।

देवी के सभी साधक इस विद्या के अधिकारी हैं। तारक ब्रह्म के अतिरिक्त सभी इसके अधिकारी हैं। स्पष्ट है कि शैवगण भी इसकी साधन कर सकते हैं।।२३।।

अथादर्शनसिद्धिः

अर्कशाल्मलिकार्पासपट्टपङ्कजतन्तुभिः।
पञ्चभिर्वर्त्तिकाभिश्च नृकपालेषु पञ्चसु।
नारतैलेन दीपाः स्युः कज्जलं तेषु कारयेत्॥२४॥
पञ्चस्थानीयजातन्तु एकीकुर्यात् प्रयत्नतः।
मन्त्रयित्वाञ्जने नेत्रे देवैरपि न दृश्यते॥२५॥

अब अदर्शनसिद्धि कहते हैं। मदार के तन्तु, शाल्मलि (शमी) के तन्तु, कपास के तन्तु, रेशम के तन्तु तथा पद्मतन्तु—इन पाँच तन्तु से अलग-अलग पाँच बत्ती बनाये (अर्थात् प्रत्येक के तन्तु से १ बत्ती)। अब पाँच नरकपाल में नरतैल से पाँच

दीप जलाये। उसी नरकपाल में ही काजल बनाये। इन पाँचों नरकपाल दीपों में जल रही बत्ती से नरकपाल में पारे गये काजल को नीचे लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करके दोनों नेत्र में काजल लगाये। ऐसा करने पर वह देवताओं को भी नहीं दिखलायी पड़ेगा।।२४-२५।।

मन्त्रश्च—ॐ हुं फट् कालि कालि महाकालि मांसशोणितं खादय खादय देवि मा पश्यतु मानुषेति हुं फट् स्वाहा इति मन्त्रेणाष्टोत्तर-सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा कज्जलं नेत्रे दत्त्वा त्रैलोक्यादृश्यो भवति ॥२६॥

इत्यञ्जनसिद्धिः

ऊपर ॐ हुं से फट् स्वाहा तक मन्त्र से १००८ बार अभिमन्त्रित उक्त काजल को दोनों नेत्रों में लगाने से त्रैलोक्य में वह साधक अदृश्य हो जाता है।।२६।।

अथ सिद्ध्यन्तरम्

अथवा कृष्णमार्जारमेकं घातेन घातयेत्।
कुजे चतुष्पथे रात्रौ निखनेन्मन्त्रितं ततः ॥२७॥

अब अन्य सिद्धि को कहा जाता है। एक काले बिडाल को एक ही आघात में मारकर मंगलवार की रात्रि में उसे चौराहे पर अभिमन्त्रित करके गाड़ दे।।२७।।

तत्र मोचां समारोप्य यावत् पत्रं प्रजायते।
तावद् भुक्त्वा हविष्यान्नं प्रतिरात्रे जपेद्विभिः ॥२८॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु एकाकी दीपवर्जितः।
उत्पन्नं पत्रमालोक्य स्थित्वा निश्छिद्रमानयेत् ॥२९॥

वहाँ पर एक केले के जड़ का रोपण करे। जब तक उसमें पत्ता न आ जाय तब तक हविष्यान्न भोजन करके निडर होकर अन्धकार में (बिना दीप जलाये) १००८ मन्त्र-जप करे। जब कदली (केला) में पत्ता निकल आये तब उसका एक बिना छिद्र वाला पत्ता लेकर घर आ जाय।।२८-२९।।

तत्र भुक्त्वा हविष्याशी तद्दिने तटिनीतटे।
तमानीय सुहृत्सङ्गः क्षालयेन्मन्त्रमुच्चरन् ॥३०॥

उस दिन हविष्यान्न का उस पत्ते में भोजन करके अपने बन्धुगण के साथ वह पत्ता लेकर नदी में जाकर (अकेले कदापि न जाय) पत्ता को मन्त्र पढ़ते हुये धोये।।३०।।

ततः स्रोतोमुखं वत्स! यदस्थि प्रतिगच्छति।
तदानीय यजेत्तत्र कालिकां घोरनिस्वनाम् ॥३१॥

हे पुत्र! स्रोत की ओर जो अस्थि जाय तब उस अस्थि को लेकर उस अस्थि से घोरनिस्वना कालिका का पूजन करे (यहाँ अस्थि कहाँ से आई, यह स्पष्ट नहीं है)।।३१।।

अभिमन्त्र्य सहस्रन्तु कालीमन्त्रं प्रयत्नतः।
सिद्धाञ्जनो भवेन्मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ।।३२।।

मन्त्र का ज्ञाता साधक १००० काली मन्त्र से उसको अभिमन्त्रित करके उससे सिद्धाञ्जन बनाये। इसमें तनिक भी संदेह करना उचित नहीं है।।३२।।

चन्दनागुरुकस्तूरीमिश्रितं चास्थिघर्षितम्।
कृत्वा तिलकमादाय सर्वं जयति साधकः ।।३३।।

चन्दन, अगुरु, कस्तूरी को उस अस्थि से घिसकर उसका तिलक लगाकर साधक सबको जीत लेता है।।३३।।

कुलमीनं कुलान्नञ्च कुलमद्यं कुलेश्वरि।
कुलस्थाने समानीय दत्त्वा द्रव्यैः प्रयत्नतः ।।३४।।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु जप्त्वा भूमिस्थले स्थितः।
भूमौ फूत्कारमात्रेण विवरं तत्र जायते ।।३५।।

हे कुलेश्वरि! शकुलादि कुलमत्स्य, कुलान्न (भूजा अन्न), कुलमद्य इन सबको कुल स्थान पर लाकर यत्नपूर्वक देवी को देकर १००८ मन्त्र पढ़कर भूमि पर अवस्थित हो। तत्पश्चात् भूमि पर उसके फूत्कारमात्र से वहाँ विवर हो जाता है।।३४-३५।।

शतयोजनदूरे वा यत्र साध्यस्थितिर्भवेत्।
तत्रैव गमनं तस्य भूतलान्तःप्रसर्पिणः ।।३६।।

उस भूतल विवर से साधक वहाँ तक जा सकता है, जहाँ तक साध्य अवस्थित है, वह (सैकड़ों योजन तक) द्रुतरूप से चला जायेगा।।३६।।

एवं विवरमध्ये तु पराक्षकुहरेऽपि वा।
कायसङ्कोचमासाद्य गच्छत्यविकलो नरः ।।३७।।

वह व्यक्ति उस विवर से अथवा गवाक्ष (रोशनदान) के छिद्र से भी देह सिकोड़ कर विना व्याकुल हुये जा सकता है।।३७।।

दुर्गामन्त्रं विना वत्स कालीमन्त्रं तथैव च।
सिद्धयः कालनाथेश! जायन्ते न कथञ्चन ।।३८।।

हे कालनाथ! हे ईश! हे वत्स! विना दुर्गामन्त्र अथवा विना कालीमन्त्र के कोई भी सिद्धि नहीं मिलती।।३८।।

अथ मन्त्रसिद्धिलक्षणम्

मनोरथानामक्लेशसिद्धिरुत्तमलक्षणम् ।
मृत्यूनां हरणं तद्वद् देवतादर्शनं तथा ।।३९।।

अब मन्त्रसिद्धि का लक्षण कहते हैं। उत्तम सिद्धि का लक्षण है—मनोरथ सिद्धि, मृत्यु का हरण। इसी प्रकार देवता का दर्शन भी सिद्धि का लक्षण है।।३९।।

प्रयोगक्लेशसिद्धिः सिद्धेस्तु लक्षणं परम् ।
परकायप्रवेशश्च पुरप्रवेशनं तथा ।।४०।।

तथा प्रयोगों में क्लेशरहित सिद्धि उत्तम सिद्धि का लक्षण है। परकाय-प्रवेश, पुर में प्रवेश भी उत्तमसिद्धि का ही लक्षण है।।४०।।

ऊर्ध्वोत्क्रमणमेवं हि चराचरपुरे स्थितिः ।
खेचरीमेलनञ्चैव तत्कथाश्रवणादिकम् ।।४१।।
भूच्छिद्राणि प्रपश्येत्तु तदुत्तमस्य लक्षणम् ।
ख्यातिर्भूषणवाहादिलाभः सुचिरजीवनम् ।।४२।।
नृपाणां तद्गणानाञ्च वशीकरणमुत्तमम् ।
सर्वत्र सर्वलोकेषु चमत्कारकरः सुखी ।।४३।।
रोगोपहरणं दृष्ट्या विषापहरणं तथा ।
पाण्डित्यं लभते मन्त्री चतुर्विधमयत्नतः ।।४४।।

ऊर्ध्वगमन, चराचर के अभ्यन्तर में गति, खेचरी के साथ मिलन, उनसे वार्त्ता, भूमि- विवर का दर्शन—यह सब उत्तम सिद्धि के लक्षण हैं। ख्याति, वाहन-भूषणादि की प्राप्ति, दीर्घ जीवन, नृपगण तथा उनके परिषदगण का वशीकरण, सभी स्थान तथा लोक में विस्मयकारी आचरण, सुख—यह सब मध्यम सिद्धि के लक्षण हैं। देखने मात्र से रोगहरण भी मध्यम सिद्धि का ही लक्षण है। इस मध्यम सिद्धि में ही साधक को विना प्रयत्न चतुर्विध पाण्डित्य प्राप्त होता है।।४१-४४।।

वैराग्यञ्च मुमुक्षुत्वं त्यागिता सर्ववश्यता ।
अष्टाङ्गयोगाभ्यसनं भोगेच्छापरिवर्जनम् ।।४५।।
सर्वभूतेष्वनुकम्पा सार्वज्ञादिगुणोदयः ।
इत्यादिगुणसम्पत्तिर्मध्यसिद्धेस्तु लक्षणम् ।।४६।।

वैराग्य, मुमुक्षुत्व, त्याग, सर्ववशीकरण, अष्टाङ्गयोग का अभ्यास, भोगेच्छा से रहित होना, सब भूतों पर कृपा, सर्वज्ञता आदि गुण—यह सब मध्यम सिद्धि के लक्षण कहे गये हैं।।४५-४६।।

ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम्।
नृपाणां तद्गणानाञ्च वात्सल्यं लोकवश्यता ।।४७।।
महैश्वर्यं धनित्वञ्च पुत्रदारादिसम्पदः।
अधमाः सिद्धयः प्रोक्ता मन्त्रिणां प्रथमभूमिका।
सिद्धमन्त्रस्तु यः साक्षात् स शिवो नात्र संशयः ।।४८।।

ख्याति-वाहन-भूषणादि की प्राप्ति, दीर्घ जीवन, नृप तथा उनके परिवार का वात्सल्य, लोकवश्यता, महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति, धनपतित्त्व, पुत्र-स्त्री का लाभ—यह सब अधम सिद्धि के लक्षण हैं। यह मन्त्रसिद्धि की प्रथम भूमिका है। जिन्होंने मन्त्र सिद्ध किया है, वे निःसंदिग्ध रूप से साक्षात् शिव होते हैं।।४७-४८।।

महाकपिलपञ्चरात्र-नारायणीययोः—

मन्त्रं यः साधयेदेकं जपहोमार्चनादिभिः।
क्रियाभिर्भूरिभिस्तस्य सिद्ध्यन्त्यन्येऽल्पसाधनात् ।।४९।।
सम्यक् सिध्येकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किञ्चन।
बहुमन्त्रविदः पुंसः का कथा शिव एव सः ।।५०।।

महाकपिलपाञ्चरात्र तथा नारायणीय तन्त्र में कहते हैं कि जिनके द्वारा एक भी मन्त्र जप, होम, अर्चना तथा अनेक क्रिया द्वारा सिद्धि की गई है, उनके द्वारा की गई अल्प साधना से ही अन्य मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। जिनके द्वारा एक भी मन्त्र सम्यक् प्रकार से सिद्ध कर लिया गया है, उनके लिय कुछ भी असाध्य नहीं है। जो अनेक मन्त्र सिद्ध कर चुके हैं, वे साक्षात् शिव हैं। उनके सम्बन्ध में क्या कहा जाय?।।४९-५०।।

अथ मन्त्रसिद्धेरुपायः

गौतमीये—

सम्यगनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते।
पुनस्तेनैव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ।।५१।।
पुनरनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते।
ततस्तेनैव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो न संशयः ।।५२।।

अब मन्त्रसिद्धि का उपाय कहते हैं। गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि सम्यक् प्रकार से अनुष्ठित मन्त्र यदि सिद्ध नहीं है तब उसी प्रकार से उसकी सिद्धि का अनुष्ठान

करे। इससे वह निश्चय ही सिद्ध होगा। यदि पुनः अनुष्ठित मन्त्र भी सिद्ध नहीं होता, तब उस विधि के अनुसार उसका पुनः अनुष्ठान करे। इससे वह अवश्य सिद्ध हो जायेगा। यह निःसंदिग्ध है।।५१-५२।।

पुनः सोऽनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते।
उपायास्तस्य कर्त्तव्याः सप्त शङ्करभाषितः ।।५३।।

पुनः अनुष्ठित होने पर भी वह मन्त्र यदि सिद्धि न हो, तब शंकर द्वारा कथित सात उपाय का अवलम्बन करना चाहिये।।५३।।

भ्रामणं रोधनं वश्यं पीड़नं पोषशोषणे।
दहनान्तं क्रमात् कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।।५४।।

मन्त्र का भ्रामण, रोधन, वश्य, पीड़न, पोषण, शोषण एवं दहन क्रमशः करे। इससे मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।५४।।

भ्रामणं वायुबीजेन ग्रथनं क्रमयोगतः।
तन्मन्त्रं यन्त्रे त्वालिख्य सिह्लकर्पूरकुङ्कुमैः ।।५५।।
उशीरचन्दनाभ्याञ्च मन्त्रं संग्रथितं लिखेत्।
क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तल्लिखितं क्षिपेत् ।।५६।।

उस मन्त्र का वायुबीज से क्रमशः ग्रथन करे। यह भ्रामण कहलाता है। सिह्ल (तुरंग से निकला गन्ध द्रव्य), कपूर तथा कुङ्कुम के साथ उशीर तथा चन्दन द्वारा मिले घोल से यन्त्र लिखकर उस पर संग्रथित मन्त्र लिखे। दुग्ध, घृत तथा मधुमिश्रित द्रव में उस यन्त्र को छोड़े।।५५-५६।।

पूजनाज्जपनाद्धोमात् भ्रामितः सिद्धिदो भवेत्।
भ्रामितोऽपि न सिद्धः स्याद्रोधनं तस्य कारयेत् ।।५७।।

पूजा, जप तथा होम से भ्रामित होने पर मन्त्र सिद्धिप्रद हो जाता है। यदि भ्रामित होने से भी सिद्ध न हो तब उसका रोधन करना चाहिये।।५७।।

सारस्वतेन बीजेन सम्पुटीकृत्य सञ्जपेत्।
एष रुद्धो भवेत् सिद्धो न चेदेतद्वशीकुरु ।।५८।।

सारस्वत बीज से मन्त्र को पुटित करके जप करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र रुद्ध होकर सिद्ध होगा। यदि इससे भी सिद्ध न हो तब वशीकरण करना चाहिये।।५८।।

अलक्तं चन्दनं कुष्ठं हरिद्रा मादनं शिला।
एतैस्तु मन्त्रमालिख्य भूर्जपत्रे सुशोभनम् ।।५९।।

धार्यः कण्ठे भवेत्सिद्धः पीड़नं वास्य कारयेत्।
अधरोत्तरयोगेन पदानि परिजप्य वै।
ध्यायेच्च देवतां तद्वदधरोत्तररूपिणीम्।।६०।।

आलता, चन्दन, कूठ, हल्दी, मदना, शिलाजीत द्वारा (स्याही बनाकर) इससे भोजपत्र पर मन्त्र लिखकर गले में धारण करे। इससे वह सिद्ध होगा। सिद्ध न होने पर उसका पीड़न करे। मन्त्र का व्युत्क्रम रूप से (उलटा, जैसे—राम का उलटा मरा) मन्त्र के पद का जप करके मन्त्र देवता का भी उलटा ध्यान करे। अर्थात् देवता के पैर ऊपर हैं और शिर नीचे है।।५९-६०।।

विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वाक्रम्य चाङ्घ्रिणा।
तथाभूतेन मन्त्रेण होमः कार्यो दिने दिने।।६१।।

मदार के पौधे के दूध से लिखे मन्त्र को पैर से स्पर्श करके उसी प्रकार उलटे मन्त्र का उच्चारण करके प्रतिदिन हवन करे।।६१।।

अस्यार्थः अधरोत्तरयोगेन व्युत्क्रमेण मन्त्रपदानि जपेत्। मन्त्रस्यान्तपदम् आदौ आदिपदञ्चान्ते दत्त्वा जपेत्। देवताञ्च अधरोत्तररूपिणीम् ऊर्ध्व-पादामधःशिरसं ध्यायेत्। तथा अर्कक्षीरेण लिखित्वा तत्पात्रं पादेन स्पृष्ट्वा तथाभूतेन व्युत्क्रमोच्चारितेन मन्त्रेण होमः कार्य इति।।६२।।

इस श्लोक का अर्थ है कि मन्त्र का उलटा जप करे। मन्त्र का अन्तिम पाद आदि में तथा आदि पाद अन्त में देकर जपना व्युत्क्रम जप कहलाता है। मन्त्रदेवता का भी ध्यान ऊपर की ओर पैर है और नीचे शिर है—इस प्रकार करे। इसी प्रकार मदार के दूध द्वारा मन्त्र लिखकर उस पात्र का स्पर्श पैर से करे और व्युत्क्रम से उच्चारित मन्त्र द्वारा होम करे।।६२।।

पीड़ितो लज्जयाविष्टः सिद्धः स्यादथ पोषयेत्।
बालायास्त्रितयं बीजं आद्यन्ते तस्य योजयेत्।।६३।।

इस बार पीड़ित हुआ मन्त्र लज्जायुत होकर सिद्ध होगा। यदि इससे भी सिद्ध न हो तब पोषण करे। इसमें मन्त्र के आदि में तथा अन्त में बाला का तीन बीज (मन्त्र) योजित करना चाहिये।।८३।।

गोक्षीरमधुनालिख्य विद्यां पाणौ विधारयेत्।
पोषितोऽयं भवेत् सिद्धो न चेत्कुर्वीत शोषणम्।।६४।।

गोदुग्ध तथा मधु को मिलाकर विद्या को (भोजपत्र में) लिखकर हाथ में धारण

करे। इस प्रकार का पोषित मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इतने पर भी सिद्ध न होने पर उसका शोषण करना चाहिये।।६४।।

द्वाभ्याञ्च वायुबीजाभ्यां मन्त्रं कुर्याद् विदर्भितम्।
एषा विद्या गले धार्या लिखित्वाऽध्वरभस्मना ।।६५।।

दो वायुबीज (यं यं) द्वारा मन्त्र को विदर्भित कर यज्ञभस्म से (भोजपत्र पर) लिखकर गले में धारण करे।।६५।।

शोषितोऽपि न सिद्धश्चेद् दहनीयोऽग्निबीजतः।
आग्नेयेन तु बीजेन मन्त्रस्यैकैकमक्षरम् ।।६६।।
आद्यन्तमध ऊर्ध्वञ्च योजयेद् दाहकर्मणि।
ब्रह्मवृक्षस्य तैलेन मन्त्रमाल्लिख्य धारयेत्।
कण्ठदेशे ततो मन्त्रः सिद्धः स्याच्छङ्करोदितम् ।।६७।।

मन्त्र शोषित होने पर भी सिद्ध न हो तब अग्निबीज (रं) द्वारा मन्त्र का दहन करना चाहिये। ऐसी स्थिति में पलाशबीज के तेल से मन्त्र को इस विधि से लिखना होगा— मन्त्र के एक-एक अक्षर के आदि में, अन्त में, ऊपर तथा नीचे 'रं' बीज को लगाकर लिखना होगा (भोजपत्र पर लिखना होगा)। लिखकर उसे गले में धारण करने से मन्त्र सिद्ध होता है। यह शंकर भगवान् का कथन है।।६६-६७।।

इत्येतं कथितं सम्यक् केवलं तव भक्तितः।
एकेनैव कृतार्थः स्याद् बहुभिः किमु सुव्रते ।।६८।।

हे सुव्रते! तुम्हारी भक्ति के वशीभूत होकर इसे मैंने कहा है। इससे मानव कृतार्थ हो जाता है। अधिक कहने का क्या प्रयोजन है।।६८।।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धिस्तु कारणम्।
मातृकापुटितं कृत्वा मन्त्रं च प्रजपेत् सुधीः।
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्या तदन्ते केवलं मनूम् ।।६९।।

अब मन्त्रसिद्धि का अन्य उपाय कहते हैं। सुधी साधक अपने मन्त्र को मातृका वर्णों से पुटित करके क्रम से तथा उत्क्रम से (अनुलोम तथा विलोम) सौ आवृत्ति करके जप करे। इसके पश्चात् अन्त में केवल मन्त्र का जप करे।।६९।।

एवञ्च प्रत्यहं कुर्याद् यावल्लक्षं समाप्यते।
निश्चितं मन्त्रसिद्धिः स्यादित्युक्तं तन्त्रवेदिभिः ।।७०।।

जब तक मन्त्र जप एक लाख न हो जाय, तब तक नित्य जप करना चाहिये। इस नियम से मन्त्र सिद्ध होता है। यह तन्त्र के ज्ञाता कहते हैं।।७०।।

•

अथ मन्त्रदोषाः

अथ मन्त्राणां दोषादयो निरूप्यन्ते। मुण्डमालातन्त्रे—

ईश्वर उवाच

भुवनेशी महाविद्या देवराजेन वै पुरा।
आराधिता महाविद्या वीर्यहीनाऽभवत्तदा ॥१॥

अनन्तर मन्त्रों के दोष निरूपित किये जा रहे हैं। मुण्डमाला तन्त्र में ईश्वर कहते हैं कि पूर्वकाल में देवराज इन्द्र ने महाविद्या भुवनेश्वरी की आराधना की थी। उन्होंने सिद्धि न मिलने पर देवी को अभिशाप दिया था। इसी से महाविद्या वीर्यहीन हो गई।।१।।

एकाक्षरी वीर्यहीना वाग्भवेनोज्ज्वलीकृता।
कामराजाख्यविद्या या विद्धा सा पुष्पधन्वना ॥२॥
शरेन पीडिता पूर्वं भुवनेश्या प्रतिष्ठिता।
कुमारी या च विद्येयं त्वया शप्ता पतिव्रते ॥३॥
केवलं शिवरूपेण शक्तिरूपेण केवलम्।
मया प्रतिष्ठितं विद्या तारा चन्द्रस्वरूपिणी ॥४॥

अभिशाप पाकर शक्तिहीना भुवनेश्वरी एकाक्षरी विद्या (ह्रीं) वाग्भव बीज से उज्वलीकृत होती है (उनका इन्द्रजनित अभिशाप हट जाता है)। कामराज नामक जो विद्या है, वह पहले कामदेव मदन द्वारा विद्धा है। उसके बाण द्वारा पीड़िता अभिशप्ता है। वह बाद में भुवनेश्वरी (ह्रीं) द्वारा प्रतिष्ठिता (शापमुक्ता) होकर स्थित है। हे पतिव्रते! यह जो कुमारी (बाला) विद्या है, यह तुम्हारे द्वारा अभिशप्ता है। यह मेरे द्वारा शिवरूप (ह) द्वारा तथा शक्तिरूप (स) द्वारा शापमुक्ता हो सकी है। इसी प्रकार तारा विद्या (त्रीं) भी चन्द्रस्वरूपिणी (सकारयुक्त स्त्रीं) होकर शापमुक्ता हो गयी है।।२-४।।

भैरव्यादिविद्यामधिकृत्य—

सुप्ता दग्धा क्रीलिता च सैव संहाररूपिणी।
मदोन्मत्ता मूर्च्छिता च हीनवीर्या च स्तम्भिता।
छिन्ना रुद्धा च विद्धा च निर्बीजं शक्तिहीनिका ॥५॥

भैरव्यादि विद्या के सम्बन्ध में कहते हैं कि वह संहाररूपिणी विद्या सुप्ता, दग्धा, कीलिता, मदोन्मत्ता, मूर्च्छिता, हीनवीर्या, स्तम्भिता, छिन्ना, रुद्धा, निर्वीर्या तथा शक्तिहीना हो गयी है।।५।।

तथा विश्वसारे निबन्धे च—

छिन्नो रुद्धः शक्तिहीनः पराङ्मुख उदीरितः।
वधिरो नेत्रहीनश्च कीलितः स्तम्भितस्तथा।।६।।
दग्धस्त्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृतः।
भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्च्छितः।।७।।
हृतवीर्यश्च हीनश्च प्रध्वस्तो बालकः पुनः।
कुमारश्च युवा प्रौढो वृद्धो निस्त्रिंशकस्तथा।।८।।
निर्बीजः सिद्धिहीनश्च मन्दः कूटस्तथा पुनः।
निरंशकः सत्त्वहीनः केकरो बीजहीनकः।।९।।
अतिदृप्तोऽङ्गहीनः स्यादतिक्रुद्धः समीरितः।
अतिक्रूरश्च सव्रीड़ः शान्तमानस एव च।।१०।।
स्थानभ्रष्टश्च विकलो निःस्नेहः परिकीर्त्तितः।
अतिवृद्धः पीड़ितश्च वक्ष्याम्येषाञ्च लक्षणम्।।११।।

विश्वसारतन्त्र में तथा शारदातिलक (निबन्ध) में कहते हैं कि मन्त्र के दोष इस प्रकार होते हैं—छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, पराङ्मुख, वधिर, नेत्रहीन, कीलित, स्तम्भित, दग्ध, त्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुषुप्त, मन्दोन्मत्त, मूर्च्छित, हृतवीर्य, हीन, प्रध्वस्त, बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निस्त्रिंशक, निर्बीज, सिद्धिहीन, मन्द, कूट, निरंशक, सत्त्वहीन, केकर, बीजहीन, धूमित, आलिङ्गित, मोहित, क्षुधार्त्त, अतिदृप्त, अंगहीन, अतिक्रुद्ध, अतिक्रूर, सव्रीड़, शान्तमानस, स्थानभ्रष्ट, विकल, निःस्नेह, अतिवृद्ध एवं पीड़ित। ये मन्त्र के उनचास दोष होते हैं।।६-११।।

मनोर्यस्यादि मध्यान्तेष्वानिलं बीजमुच्यते।
संयुक्तं वा वियुक्तं वा स्वराक्रान्तं त्रिधा पुनः।
चतुर्धा पञ्चधा वापि स मन्त्रश्छिन्नसंज्ञकः।।१२।।

जिस मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त में वायुबीज (यं) अक्षरों के अन्त में संयुक्त अथवा वियुक्त अः है अथवा शक्तिबीज तीन प्रकार के, चार प्रकार के या पाँच प्रकार के दीर्घस्वर आ ई ऊ ऐ औ द्वारा युक्त होकर ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं रूप से हैं, उसे छिन्न मन्त्र कहते हैं।।१२।।

आदिमध्यावसानेषु भूबीजद्वयलाञ्छितः ।
रुद्धमन्त्रः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिविवर्जितः ॥१३॥

जिस मन्त्र के आदि, मध्य अथवा अन्त में दो भूबीज लगा हो, वह रुद्ध मन्त्र होता है। यह भोग तथा मोक्ष से रहित होता है।।१३।।

मायात्रितत्त्वश्रीबीजरावहीनस्तु यो मनुः ।
शक्तिहीनः स कथितो यस्य मध्ये न विद्यते ॥१४॥
कामबीजं मुखे माया शिवस्यङ्कुशमेव वा ।
असौ पराङ्मुखः प्रोक्तो हकारो बिन्दुलाञ्छितः ।
आद्यन्तमध्येष्विन्दुर्वा न भवेद् वधिरः स्मृतः ॥१५॥

जो मायाबीज (ह्रीं) से रहित है अथवा त्रितत्त्व (हुं अथवा ॐ) से रहित है, अथवा श्रीबीज (श्रीं) से रहित है अथवा राव (फ्रें) से रहित है, उसे शक्तिहीन मन्त्र कहा जाता है। जिस मन्त्र के आदि में कामबीज (क्लीं), मध्य में मायाबीज (ह्रीं) तथा अन्त में अंकुशबीज (क्रों) नहीं है, उसे पराङ्मुख मन्त्र कहा जाता है। जिस मन्त्र के आदि में बिन्दु, संयुक्त हकार (हं) अथवा बिन्दुयुक्त इन्दु (सं) नहीं है अथवा अन्त में बिन्दुसंयुक्त ह (हं) अथवा बिन्दुसंयुक्त इन्दु (सं) नहीं है, उसे वधिर मन्त्र कहा जाता है।।१४-१५।।

पञ्चवर्णा मनुर्यः स्याद् रेफार्केन्दुविवर्जितः ।
नेत्रहीनः स विज्ञेयो दुःखशोकामयप्रदः ॥१६॥

जो मन्त्र पाँच वर्णों का है, परन्तु उन पाँच वर्णों में 'र', 'ह', 'स' नहीं है, उसे नेत्रहीन मन्त्र कहा जाता है। उनमें 'र' न रहने से दुःख, अर्क (ह) न रहने से शोक तथा इन्दु (स) न रहने पर रोग होता है।।१६।।

आदिमध्यावसानेषु हंसः प्रासादवाग्भवौ ।
हंकारो बिन्दुमान् जीवो शवश्चापि चतुष्कलः ।
माया नमामि च पदं नास्ति यस्मिन् स कीलितः ॥१७॥

जिस मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त में हंसः, प्रासादबीज (हौं) तथा वाग्भवबीज (ऐं) नहीं है अथवा बिन्दुयुक्त 'ह' (हं), बिन्दुयुक्त जीव (सं), अथवा राव (फ्रें) अथवा चतुष्कल (हुं) अथवा माया (ह्रीं) अथवा नमामि पद नहीं है, वह कीलित मन्त्र होता है।।१७।।

एकं मध्ये द्वयं मूर्ध्नि यस्मिन्नस्तपुरन्दरौ ।
विद्यते स तु मन्त्रस्तु स्तम्भितं सिद्धिवर्जितः ॥१८॥

जिस मन्त्र के मध्य में एक अस्त्र (फट्) अथवा पुरन्दर (ल), अन्त में दो पुरन्दर (ल) अथवा दो अस्त्र (फट्) है, उसे स्तम्भित मन्त्र कहा है। यह मन्त्र सिद्धि से रहित होता है।।१८।।

वह्निर्वायुसमायुक्तो यस्य मन्त्रस्य मूर्द्धनि।
सप्तधा दृश्यते तत्तु दग्धं मन्त्रं प्रचक्षते ॥१९॥

जिस मन्त्र की मूर्द्धा में (अधोदेश में नीचे अथवा ऊपर) वह्नि (र) तथा वायु (य) युक्त होकर सात स्थानों में परिलक्षित हो, उसे पण्डित दग्ध मन्त्र कहते हैं।।१९।।

अस्त्रं द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टाभिर्दृश्यतेऽक्षरैः।
त्रस्तः सोऽभिहितो यस्य मुखे न प्रणवः स्थितः।
शिवो वा शक्तिरथवा भीताख्यः स प्रकीर्त्तितः ॥२०॥

जिस मन्त्र में दो, तीन, छ अथवा आठ अक्षरों के साथ अस्त्र (फट्) रहता है, उसे त्रस्त मन्त्र कहा जाता है। जिस मन्त्र के आदि में प्रणव नहीं है और शिव (ह) अथवा शक्ति (स) नहीं है, उसे भीत मन्त्र कहा जाता है।।२०।।

आदौ मध्ये तथा चान्ते यस्य मार्णचतुष्टयम्।
स एव मलिनो मन्त्रः सर्वविघ्नसमन्वितः ॥२१॥

जिस मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त में सब मिलाकर चार 'म' वर्ण देखा जाय, वह मलिन मन्त्र होता है, उससे समस्त दुःख मिलता है एवं वह समस्त विघ्नों से युक्त होता है।।२१।।

यस्य मध्ये दकारो वा कवचं मूर्द्धनि द्विधा।
अस्त्रं तिष्ठति मन्त्रः स तिरस्कृत उदाहृतः ॥२२॥

जिस मन्त्र के मध्य में 'द' अथवा कवच (हुं) हो तथा मस्तक में (अन्त में) दो अस्त्र (फट्) हो, उसे तिरस्कृत मन्त्र कहा जाता है।।२२।।

द्योद्वयं हृदये शीर्षे वषडस्त्रञ्च मध्यतः।
यस्यासौ भेदितो मन्त्रः सर्वशास्त्रविवर्जितः ॥२३॥

जिस मन्त्र के हृदय में (आदि में) द्योद्वय (ॐ ॐ), शीर्ष (अन्त में) में वषट् तथा मध्य में अस्त्र (हुं) हो, उसे भेदित मन्त्र कहा गया है, यह सभी शास्त्रों में विवर्जित कहा गया है।।२३।।

त्रिवर्णो हंसहीनो यः सुषुप्तः स उदाहृतः।
मन्त्रो वाऽप्यथवा विद्या सप्ताधिकदशाक्षरः।
फट्कारपञ्चकादिर्यो मदोन्मत्त उदाहृतः ॥२४॥

वर्णत्रय-युक्त जो मन्त्र 'हंस' रहित है, वह सुषुप्त होता है। जो मन्त्र अथवा विद्या अट्ठारह अक्षर वाली है तथा आदि में पाँच 'फट्' से युक्त है, वह मदोन्मत्त मन्त्र कहलाता है।।२४।।

तद्वदस्त्रं स्थितं मध्ये यस्य मन्त्रः स मूर्च्छितः ।
विरामस्थानगं यस्य हतवीर्यः स उच्यते ॥२५॥

इस प्रकार जिस मन्त्र के मध्य में अस्त्र अर्थात् पञ्च 'फट्' लगा है (पाँच बार 'फट्' लगा है) उसे मूर्च्छित मन्त्र कहा गया है। जिस मन्त्र के विराम में (अन्त में) अस्त्र (फट्) है, वह हतवीर्य मन्त्र होता है।।२५।।

आदौ मध्ये तथा चान्ते चतुरस्त्रयुतो मनुः ।
ज्ञातव्यो हीन इत्येष यः स्यादष्टादशाक्षरः ॥२६॥

जिस अट्ठारह अक्षरों वाले मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त (सबको मिलाकर) में चार अस्त्र (फट्) लगे हों, वह हीन मन्त्र होता है।।२६।।

एकोनविंशत्यर्णो वा यो मन्त्रस्तारसंयुतः ।
हृल्लेखाङ्कुशबीजाढ्यप्रध्वस्तं तं प्रचक्षते ॥२७॥

जो एकोनविंशति वर्ण का मन्त्र तार (ॐ) युक्त तथा हृल्लेखा (ह्रीं) तथा अङ्कुश (क्रों) बीज से भूषित होता है, वह प्रध्वस्त मन्त्र कहलाता है।।२७।।

सप्तवर्णो भवेद् बालः कुमारोऽष्टाक्षरः स्मृतः ।
षोडशार्णो युवा प्रौढ़श्चत्वारिंशल्लिपिर्मनुः ॥२८॥

सात अक्षरों वाला मन्त्र बाल एवं आठ अक्षरों वाला मन्त्र कुमार कहा गया है। सोलह अक्षरों वाला मन्त्र युवा तथा चौबीस अक्षरों वाला मन्त्र प्रौढ़ होता है।।२८।।

त्रिंशदर्णश्चतुःषष्टिवर्णो मन्त्रः शताक्षरः ।
चतुःशताक्षरश्चापि वृद्धः स परिकीर्त्तितः ॥२९॥

तीस, चौंसठ, एक सौ एवं एक सौ चार अक्षरों वाला मन्त्र वृद्ध मन्त्र कहलाता है।।२९।।

नवाक्षरो ध्रुवो युक्तो मनुर्निस्त्रिंश ईरितः ।
यस्यावसाने हृदयं शिरोमन्त्रश्च मध्यतः ॥३०॥
शिखा वर्म च न स्यातां वौषट् फट्कार एव वा ।
शिवशक्त्यर्णहीनो वा स निर्बीज उदाहृतः ॥३१॥

ध्रुव (ॐ) से युक्त नव अक्षरों वाला मन्त्र निस्त्रिंश (घातक) कहा जाता है। जिस

मन्त्र के अन्त में हृदय (नमः) शिरोमन्त्र (स्वाहा) लगा है तथा वर्म (हुं) है अथवा शिखा (वषट्) और वर्म (हुं) लगा है, 'वौषट्' अथवा 'फट्' नहीं लगा है अथवा शिववर्ण (ह) तथा शक्ति वर्ण (स) नहीं लगा है, वह मन्त्र निर्बीज होता है।।३०-३१।।

एषु स्थानेषु फट्कारः षोढ़ा यस्मिन् प्रदृश्यते।
स मन्त्रः सिद्धिहीनः स्यान्मन्दः पङ्क्त्याक्षरो मनुः ॥३२॥

जिस मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त को मिलाकर छः 'फट्' लगे हों, वह सिद्धिहीन मन्त्र होता है। दशाक्षर मन्त्र को मन्द मन्त्र कहा गया है।।३२।।

कूट एकाक्षरो मन्त्रः स एवोक्तो निरंशकः।
द्विवर्णः सप्तहीनः स्याच्चतुर्वर्णस्तु केकरः ॥३३॥

एकाक्षर मन्त्र को कूट मन्त्र अथवा निरंशक मन्त्र कहा जाता है। दो अक्षर का मन्त्र सत्त्वहीन मन्त्र कहा जाता है। चार वर्ण से युक्त मन्त्र को केकर मन्त्र कहते हैं।।३३।।

षडक्षरो बीजहीनः सार्द्धसप्ताक्षरो मनुः।
सार्द्धद्वादशवर्णो वा धूमितः स तु निन्दितः ॥३४॥

छः अक्षरों वाला मन्त्र बीजहीन एवं साढ़े सात अक्षरों वाला अथवा साढ़े बारह अक्षरों वाला मन्त्र धूमित होता है। यह लोक में निन्दित होता है।।३४।।

सार्द्धबीजत्रयस्तद्वदेकविंशतिवर्णकः।
विशत्यर्णं त्रिंशदर्णो यः स्यादालिङ्गितस्तु सः ॥३५॥

साढ़े तीन बीजों वाला मन्त्र भी धूमित मन्त्र होता है। इक्कीस वर्ण युक्त अथवा बीस तथा तीस वर्ण से युक्त मन्त्र को आलिङ्गित मन्त्र कहा जाता है।।३५।।

द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो मोहितः परिकीर्त्तितः।
चतुर्विंशतिवर्णो यः सप्तविंशतिवर्णकः ॥३६॥

क्षुधार्त्तः स तु विज्ञेयश्चतुर्विंशतिवर्णकः।
एकादशाक्षरो वापि पञ्चविंशतिवर्णकः।
त्रयोविंशतिवर्णो वा मन्त्रो दृप्त उदाहृतः ॥३७॥

बत्तीस अक्षर के मन्त्र को मोहित एवं चौबीस अथवा सत्ताईस अक्षर वाले मन्त्र को क्षुधार्त्त कहा गया है। चौबीस अक्षर, ग्यारह अक्षर तथा पच्चीस अक्षर अथवा तेईस अक्षर वाले मन्त्रों को दृप्त मन्त्र कहा जाता है।।३६-३७।।

षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रः षट्त्रिंशद्वर्णकस्तथा।
त्रिंशदेकोनवर्णो वाऽप्यङ्गहीनः स एव च ॥३८॥

छब्बीस अथवा छत्तीस वर्ण वाले तथा उन्तीस अक्षर वाले मन्त्र को अंगहीन मन्त्र कहा जाता है।।३८।।

अष्टाविंशत्यक्षरो य एकत्रिंशदथापि वा।
अतिक्रुद्धः स विज्ञेयो निन्दितः सर्वकर्मसु ॥३९॥

अट्ठाईस अक्षर वर्ण तथा इकतीस अक्षर से युक्त मन्त्रों को अतिक्रुद्ध कहा गया है; ये समस्त कर्म में निन्दित होते हैं।।३९।।

चत्वारिंशतमारभ्य त्रिषष्टिर्यावता भवेत्।
तावत्संख्या निगदिता मन्त्राः सव्रीड़संज्ञकाः ॥४०॥

चालीस अक्षर से आरम्भ करके एक-एक अक्षर की वृद्धि करके तिरेसठ अक्षर पर्यन्त'जितने भी मन्त्र हैं अर्थात् चालीस अक्षर वर्ण से लगाकर तिरेसठ अक्षर वर्ण तक के सभी मन्त्र सव्रीड कहे गये हैं।।४०।।

पञ्चषष्ट्यक्षरा ये स्युर्मन्त्रास्ते शान्तमानसाः॥४१॥
एकोनशतपर्यन्तं पञ्चषष्टाक्षरादितः।
ते सर्वे कथिता मन्त्राः स्थानभ्रष्टा न शोभनाः ॥४२॥

जो मन्त्र पैंसठ अक्षर के होते हैं, उन्हें शान्तमानस कहा गया है। पैंसठ अक्षर से एक-एक अक्षर बढ़ते हुये अर्थात् ६५, ६६, ६७, ६८ इत्यादि से निन्यानवे अक्षर तक के सभी मन्त्र स्थानभ्रष्ट होते हैं।।४१-४२।।

त्रयोदशाक्षरा ये स्युर्मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः।
विकलास्तेऽभिधीयन्ते शतं सार्द्धं शतं तु वा ॥४३॥
शतद्वयं द्विनवतिरेकहीनाऽथवापि सा।
शतत्रयं वा यत्संख्या निःस्नेहास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥४४॥

जो मन्त्र तेरह अक्षर वाले हैं अथवा जो मन्त्र पचास अक्षरों वाले हैं अथवा जो दो सौ बानबे अथवा एक सौ बानबे अक्षर वाले हैं अथवा तीन सौ इक्यानबे अक्षर वाले हैं अथवा तीन सौ अक्षर वाले हैं, उन्हें निःस्नेह मन्त्र कहते हैं।।४३-४४।।

चतुःशतमथारभ्य यावद्वर्णसहस्रकम्।
अतिवृद्धः स मन्त्रस्तु सर्वशास्त्रविवर्जितः ॥४५॥

जो मन्त्र चार सौ से लगाकर एक हजार अक्षर के होते हैं, वे सभी मन्त्र अतिवृद्ध कहे गये हैं तथा सभी शास्त्रों द्वारा विवर्जित हैं।।४५।।

सहस्रार्णाधिका मन्त्राः दण्डका पीड़िताह्वयाः ।
द्विसहस्राक्षरा मन्त्राः खण्डशः शतधा कृताः ॥४६॥
ज्ञातव्याः स्तोत्ररूपास्ते मन्त्रा एते यथास्थिताः ।
तथा विद्याश्च बोद्धव्या मन्त्रिभिः सर्वकर्मसु ॥४७॥

दो हजार से अधिक अक्षर वाले मन्त्र १००-१०० के खण्ड में होने पर उसे स्तोत्र रूप से पीड़ित मन्त्र कहा गया है। जिन-जिन संख्या के मन्त्र दोषयुक्त कहे गये हैं, उसी संख्या की विद्या भी दोषयुक्त होती है।।४६-४७।।

दोषानिमानविज्ञाय यो मन्त्रं भजतेऽबुधः ।
सिद्धिर्न जायते सम्यक् कल्पकोटिशतैरपि ॥४८॥

जो साधक इन दोषों को न जानकर मन्त्र जपता है, उसे शतकोटि कल्प में भी सम्यक् सिद्धि नहीं मिलती।।४८।।

तन्त्रान्तरे—

एकाक्षरं समारभ्य यावन्मन्त्राः षडक्षराः ।
बालान्ते भैरवेणोक्ता मन्त्रा विंशतिवर्णकाः ॥४९॥
प्रौढ़ा ज्ञेयास्ततोऽन्ये ये ते मन्त्राः स्थविरा मताः ।
स्त्रीरूपा वह्निजायान्ता मन्त्रा ये तु नमोऽन्तकाः ॥५०॥

तन्त्रान्तर में कहते हैं कि एक अक्षर से लेकर छः अक्षर तक वाले जितने भी मन्त्र हैं, सभी बाल हैं, ऐसा भैरव ने कहा है। बीस वर्ण वाले मन्त्र प्रौढ़ होते हैं। बीस से अधिक वर्ण वाले मन्त्र स्थविर कहे जाते हैं। 'स्वाहा' से अन्त होने वाले मन्त्र स्त्रीरूप हैं एवं 'नमः' से अन्त होने वाले मन्त्रों को अन्तक (नपुंसक) कहा गया है।।४९-५०।।

रामार्चनचन्द्रिकायाम्—

आरभ्यैकाक्षरं मन्त्रा बाला आषोड़ाशाक्षरात् ।
तत आविंशतेः प्रौढ़ास्तेभ्योऽन्ये स्थविरा मताः ॥५१॥

रामार्चनचन्द्रिका के अनुसार एक से लगाकर सोलह अक्षर तक के मन्त्रों को बालक कहा गया है। सोलह से बीस तक वर्ण वाले मन्त्र प्रौढ़ तथा उससे अधिक वर्ण वाले स्थविर मन्त्र होते हैं।।५१।।

मन्त्रदोषशान्तिः

अथ मन्त्राणां दोषशान्तिः। तदुक्तं तत्रैव—

छिन्नादि दुष्टा ये मन्त्रास्तन्त्रे तन्त्रे निरूपिताः ।
ते सर्वे सिद्धिमायान्ति मातृकार्णप्रभावतः ॥५२॥

मातृकार्णैः पुटीकृत्य मन्त्रं विद्यां विशेषतः ।
शतमष्टोत्तरं पूर्वं प्रजपेत् फलसिद्धये ।।५३।।
तदा मन्त्रो महाविद्या यथोक्तफलदा भवेत् ।।५४।।

अब मन्त्रों की दोष-शान्ति कहते हैं। रामार्चनचन्द्रिका में ही कहा गया है जिन छिन्नादि दुष्ट मन्त्रों को तन्त्रों में कहा गया है, उन सबमें मातृका वर्ण के प्रभाव से सिद्धि मिलती है। फलसिद्धि के लिये मन्त्र अथवा विद्या को विशेष रूप से मातृका वर्णों द्वारा पुटित करके १०८ बार उनका जप करना चाहिये। ऐसा करने पर ही मन्त्र अथवा महाविद्या यथोक्त फल देने वाले होते हैं।।५२-५४।।

मातृकापुटितं कृत्वा मध्ये वर्णं निधाय च ।
मन्त्रवर्णांस्ततः कुर्यात् शोधनं तन्त्रसम्मतम् ।।५५।।

दोनों ओर मातृकाओं के मध्य में मन्त्रवर्ण को रखकर पुटित करके मन्त्रों का तन्त्र-सम्मत विधि से शोधन करना चाहिये।।५५।।

तथा बद्ध्वा तु यो मुद्रां सङ्कोच्याधारपङ्कजम् ।
तदुत्पन्नमन्त्रवर्णान् कुर्वतश्च गतागतान् ।।५६।।
ब्रह्मरन्ध्रावधि ध्यात्वा वायुमापूर्य कुम्भयेत् ।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं मन्त्रदोषोपशान्तये ।।५७।।

इस प्रकार से योनिमुद्रा की रचना करके आधार पद्म को संकुचित करके उस मूलाधारोत्पन्न वर्णों को ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त गमनागमनकारी की भावना करके वायु पूरित करके कुम्भक करना चाहिये। कुम्भक-काल में मन्त्रदोष की शान्ति के लिये १००० जप भी करना चाहिये।।५६-५७।।

तथा—

एषु दोषेषु प्राप्तेषु मायां काममथापि वा ।
क्षिप्त्वा वादौ श्रियश्चैव तद्दूषणविमुक्तये ।।५८।।

अन्यत्र भी कहा गया है कि इन सब दोषों की शान्ति के लिये मन्त्र के आदि में मायाबीज (ह्रीं) कामबीज (क्लीं) तदनन्तर श्रीबीज (श्रीं) लगाकर जप करे।।५८।।

तथा—

तारसम्पुटिता वापि दुष्टमन्त्राणि सिध्यति ।
यस्य यत्र भवेद्भक्तिः सोऽपि मन्त्रोऽस्य सिध्यति ।।५९।।

इसी प्रकार से और भी कहते हैं कि तार (ॐ) से पुटित करके मन्त्रजप करने

से दुष्ट मन्त्र भी सिद्ध हो जाते हैं। जिसकी जिस मन्त्र में भक्ति होती है, उसे वही मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।५९।।

तथा—

प्रणवो मातृकादेवी हृल्लेखेत्यमृतं त्रयम्।
अमृतत्रयसंयोगाद् दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥६०॥

और भी कहते हैं कि प्रणव (ॐ), मातृका वर्ण तथा हृल्लेखा (ह्रीं) अमृतत्रय हैं। इनके योग से दुष्ट मन्त्र भी सिद्ध हो जाते हैं।।६०।।

अथ बालसंस्कार:

मधुलाजाभ्यां नाड़ीच्छेदात् प्राक् स्वर्णशलाकया यज्ञदारुशिखया श्वेतदूर्वया वा बालकस्य जिह्वामोष्ठं वा दक्षिणपाणिना त्रिवारं सम्मार्ज्य तत्र पिता प्रत्येकं पङ्क्त्याकारेण मूलमन्त्रं विलिख्य देवीं पूजयेत् ।।१।।

अब बालक का संस्कार कहते हैं। नाड़ी-छेदन (नार काटना) से पूर्व मधु तथा लावा द्वारा बालक की जिह्वा तथा ओठ को साफ करके स्वर्णशलाका अथवा यज्ञकाष्ठ के अग्रभाग से अथवा श्वेत दूर्वा से बालक की जीभ तथा ओठ पर पंक्ति के आकार से मूल मन्त्र लिखकर देवी का पूजन करे।।१।।

तदुक्तं मत्स्यसूक्ते—

अथवा मधुलाजाभ्यां जिह्वायां बालकस्य च ।
नाड़ीच्छेदाद्यथापूर्वं लिखेत् स्वर्णशलाकया ।।२।।

मत्स्यसूक्त में कहा गया है कि बच्चे की नार काटने के पूर्व बालक की जिह्वा को मधु तथा लावा (धान के लावा) द्वारा साफ करके उस पर स्वर्ण की शलाका से मूल मन्त्र लिखे।।२।।

मूलमन्त्रं लिखेन्मन्त्री यस्यौष्ठे श्वेतदूर्वया ।
वाक्योच्चारणतो बालो वाग्मी द्रुतकविर्भवेत् ।।३।।

जिसके ओठ पर सफेद दूर्वा से मूल मन्त्र लिखा जाता है, वह बालक बोलने लायक आयु प्राप्त होने पर वाग्मी तथा द्रुत कवि हो जाता है।।३।।

नैमित्तिकसंस्कारानन्तरमेव मन्त्रलिखनं कार्यम्।।४।।
तदुक्तं महोग्रे—

जन्मसंस्कारकं नाम पुत्रे जाते प्रशस्यते ।
जिह्वायान्तु लिखेन्मन्त्रं यज्ञदारुकुशेन वा ।।५।।
वारत्रयन्तु संमार्ज्य दक्षिणेनैव पाणिना ।
मूलमुच्चार्य प्रत्येकं पङ्क्तिं कुर्यात् सुशोभनम् ।।६।।

नैमित्तिक जातकर्म संस्कारोपरान्त मन्त्र-लेखन करना चाहिये। महोग्रतन्त्र में कहते हैं कि पुत्र उत्पन्न होने पर जन्मसंस्कार प्रशस्त है। यज्ञ के काष्ठ द्वारा अथवा कुश से मन्त्र लिखे। मूल मन्त्र पढ़ते हुये दाहिने हाथ से जिह्वा तथा ओठ का तीन बार मार्जन करके ओठ पर सुदृश्य पंक्ति लिखे।।४-६।।

आदौ संस्कारकः कर्त्तव्यस्तदन्ते विलिखेन् मनूम्।
गन्धचन्दनपुष्पैश्च पूजयेत् तारिणीं शिवाम्॥७॥

प्रथमतः जन्म संस्कार करके तब मन्त्र लिखे। गन्ध, चन्दन, पुष्प द्वारा परम कल्याणमयी शिवा तारिणी का पूजन करे।।७१॥

उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थापयेत् पीठमुत्तमम्।
पूजयेत् तारिणीं देवीं नानाभक्ष्यैः सुशोभनैः।
कविर्वाग्मी भवेत् पुत्रः सत्यवादी जितेन्द्रियः॥८॥

उत्तराभिमुख होकर उत्तम पीठ स्थापित करे। नाना प्रकार के भक्ष्य द्रव्यों से तारिणी देवी का पूजन करने से पुत्र कवि, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय होता है।।८।।

अत्र तारिणीपदमुपलक्षणम्, देवीमात्रमेव बोद्धव्यम्, बृहच्छ्रीक्रमादितन्त्रे बालसंस्कारदर्शनात्। तदुक्तं तत्रैव—

बालकस्य तु जिह्वायां त्रिदिनाभ्यन्तरे लिखेत्॥९॥
मधुना श्वेतदूर्वाभिर्यद्वा स्वर्णशलाकया।
अमूं वाग्भवकूटञ्च लिखेद्वै जननान्तरम्॥१०॥

यहाँ तारिणी पद अन्य देवियों का भी उपलक्षण है अर्थात् एक उदाहरण दिया गया है। सभी देवियों का ही यहाँ ग्रहण करना चाहिये। इसके लिये बृहत् श्रीक्रमादि ग्रन्थों में बालक-संस्कार देखा जा सकता है। वहाँ भी यह कहते हैं कि बाल संस्कार के तीन दिनों के भीतर जिह्वा पर श्वेत दूर्वा, मधु अथवा स्वर्णशलाका से वाग्भव कूट लिखे।।९-१०।।

एतेन तद्दिनाशक्तै त्रिरात्राभ्यन्तर इति सूचितम्। अमूमिति भैरव्या वाग्भव कूटमित्यर्थः। केचित्तु एकादशाहे देवीं सम्पूज्य मन्त्रं लिखेदित्याहुः। अथ पिता यदि दूरस्थस्तदा पितृव्यो मातुलो वा मन्त्रं लिखेत्॥११॥

यदि जन्म के साथ ही लिखने का अवसर न मिले तब तीन दिन के अन्दर लिखे, इस वचन से यह ज्ञात होता है। 'अमूं' का अर्थ है--तारिणी देवी का वाग्भव कूट। किसी का मत है कि ग्यारहवें दिन देवी का पूजन करके मन्त्र लिखे। यदि पिता दूरस्थ स्थान, देश में है तब जन्म के अनन्तर मामा या चाचा को मन्त्र लिखना चाहिये।।११।।

यथा महोग्रे—

पितुर्भ्राता लिखेन्मन्त्रं मातुर्भ्राताऽथवा पुनः।
पिता चैव लिखेन्मन्त्रं नान्य एव कदाचन॥१२॥

जैसा कि महोग्र तन्त्र में कहा गया है कि पिता का भ्राता अथवा माता का भ्राता सन्तान पर मन्त्र लिखे अथवा पिता ही मन्त्र लिखे। इनके अतिरिक्त कोई भी मन्त्र न लिखे।।१२।।

मातुः क्रोड़े तु संस्थाप्य दर्भानास्तीर्य यत्नतः।
शान्तिं कुर्याद् बालकस्य ब्राह्मणैः सह साधकः ॥१३॥

माता की गोद में बालक को रखकर उसे कुशा से आवृत करके साधक ब्राह्मण के द्वारा बालक की शान्ति कराये।।१३।।

शान्तिमन्त्रस्तु 'ॐ इमं पुत्रं कामयतः कामजानां इहैव हि देवेभ्यः पुष्णाति सर्वमिदं मज्जननं शिवशक्तिस्तारायै केशवेभ्यस्तारायै रुद्रेभ्य उमायै शिवाय शिवयशसे' इत्यनेन कुशोदकाभ्यां शान्तिं कुर्यादिति ॥१४॥

शान्ति मन्त्र मूल में 'ॐ इमं' से लेकर 'शिवयशसे' तक कहा गया है। इस मन्त्र को पढ़ते हुये कुशा के जल से बालक की शान्ति करे।।१४।।

अत्र कुलाचारो निरूप्यते। तत्र शिवाबलिः। कुलचूड़ामणौ—
बिल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वापि साधकः।
मांसप्रधाननैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ॥१५॥

अब कुलाचार कहा जाता है। उसमें शिवाबलि के सम्बन्ध में। कुलचूड़ामणि ग्रन्थ में कहा गया है कि साधक बेलवृक्ष के नीचे, प्रान्तर में अथवा श्मशान में मांसप्रधान नैवेद्य सन्ध्याकाल में शिवा (श्रृगाल) को प्रदान करे।।१५।।

कालि कालीति वक्तव्ये तत्रोमा शिवरूपिणी।
पशुरूपधरायाति परिवारगणैः सह ॥१६॥

काली, काली कहकर पुकारने से वहाँ शिवारूपिणी उमा पशुरूप धारण करके परिवारगण के साथ आती है।।१६।।

भुक्त्वा रौति यदेशान्यां मुखमुत्तोल्य सुन्दरम्।
तदैव मङ्गलं तस्य नान्यथा कुलभूषण! ॥१७॥

हे कुलभूषण! यदि नैवेद्य खाकर शिवागण ईशान कोण में मुख उठाकर मधुर स्वर में आवाज करें, तब साधक का मंगल होता है, अन्यथा उसका मंगल नहीं होता।।१७।।

अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेच्छिवाम्।
नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम् ॥१८॥

नित्य अन्नदान से शिवा को तृप्त करना चाहिये। श्राद्ध, सन्ध्यावन्दन तथा पितृतर्पण भी नित्य करना चाहिये।।१८।।

तथैव कुलसेवानां नित्यता कुलपूजने।
पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने॥१९॥
शिवारावेण तस्याशु सर्वं नश्यति निश्चितम्।

इस प्रकार कुलपूजा में कुलसेव्यगण की नित्यता है अर्थात् इसे नित्य करे और जो निर्जन स्थान में शिवादेवी की पूजा नहीं करता उसके सर्वस्व को शिवा अपने राव से नष्ट कर देती हैं। यह निश्चित है।।१९।।

जपपूजाविधानानि यत्किञ्चित् सुकृतानि च।
गृहीत्वा सा प्रमादाय शिवा रोदिति निर्जने॥२०॥

वह शिवा उस साधक के जप-पूजादि का जितना भी फल है उसका हरण कर अर्थात् लेकर नैवेद्य प्रसाद के लिये निर्जन में रुदन करती हैं।।२०।।

एकया भुज्यते यत्र शिवया देव भैरव!।
तत्रैव सर्वशक्तीनां प्रीतिः परमदुर्लभा॥२१॥

हे देव! हे भैरव! जहाँ एक भी शिवा भोजन करती है, वहाँ समस्त शक्तियों की परम दुर्लभ प्रीति (साधक को) मिलती है।।२१।।

राजादिभयमापन्ने देशान्तरतयादिके।
शुभाशुभानि कर्माणि विचिन्त्य बलिमाहरेत्॥२२॥

यदि राजादि से भय हो, देशान्तर में भय उपस्थित हो तो अपने शुभ तथा अशुभ कर्मों का चिन्तन करके (उनके निराकरणार्थ) शिवा देवी को बलि प्रदान करनी चाहिये।।२२।।

गृह्ण देवि! महाभागे! शिवे! कालाग्निरूपिणि!।
शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव॥२३॥

बलि मन्त्र यह है—हे देवि! महाभागे! शिवे! कालाग्निरूपे! बलि ग्रहण करिये और शुभाशुभ फल को स्पष्ट कहिये।।२३।।

एवमुच्चार्य दातव्यं बलिं कुलजनप्रियः।
यदि नो भुज्यते वत्स! तदा नैव शुभं भवेत्॥२४॥

कुलजनप्रिय साधक इस प्रकार से श्लोक २३ को कहते हुये शिवा को बलि

प्रदान करे। यदि शिवा उसका भोजन न करें तब साधक के लिये अशुभ होता है।।२४।।

शुभं यदि भवेत्तत्र भुज्यते तदशेषतः।
एवं ज्ञात्वा महादेव! शान्तिस्वस्त्ययनं चरेत्॥२५॥

इति शिवाबलिः

यदि अन्त में शिवा भोजन ग्रहण कर लेती हैं, तब शुभ होता है। हे महादेव! इस प्रकार से शुभाशुभ (शिवा से) जानकर शान्ति-स्वस्त्ययन करना चाहिये।।२५।।

कुलाचारनिरूपणम्

कालीतन्त्रे—

अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत्कृतेऽमृतमश्नुते।
सर्वभूतहिते युक्तः समयाचारपालकः॥२६॥

अब कुलाचार का निरूपण कहते है। कालीतन्त्र में कहा गया है कि जिस आचार का अनुष्ठान करके मोक्षरूपी अमृत प्राप्त होता है, वह कुलाचार कहलाता है। समयाचार (कुलाचार)परायण व्यक्ति सब भूतों के हित में लगा रहता है।।२६।।

अनित्यकर्मसन्त्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः।
मन्त्राराधनमात्रेण शिवभावनतत्परः॥२७॥

अनित्य कर्म का त्याग करके वह नित्य अनुष्ठान में लगा रहता है। वह मन्त्रों की आराधना के द्वारा शिवभावना से ओत-प्रोत रहता है।।२७।।

परस्यां देवतायाञ्च सर्वकर्मनिवेदकः।
अस्य मन्त्रार्चने श्रद्धामन्यमन्त्रप्रपूजनम्॥२८॥
कुलस्त्रीवीरनिन्दाञ्च तद्द्रव्यस्यापहारणम्।
स्त्रीषु रोषं प्रहारञ्च वर्जयेन्मतिमान् सदा॥२९॥

परमदेवता को समस्त कर्मफल का निवेदन करे। बुद्धिमान साधक अन्य मन्त्र की अर्चना में श्रद्धा न रखे। अन्य मन्त्र की पूजा, कुलस्त्री तथा वीरसाधक की निन्दा से दूर रहे। इनके द्रव्यादि का अपहरण कदापि नहीं करना चाहिये। स्त्री जाति के प्रति रोष तथा प्रहार का सदैव वर्जन करना चाहिये।।२८-२९।।

स्त्रीमयञ्च जगत्सर्वं स्वयं तावत्तथा भवेत्।
कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यां समाहितः॥३०॥

समस्त जगत् के स्त्रीमय होने की भावना करे एवं स्वयं भी स्त्रीमय हो जाय।

कुलात् (कौल के यहाँ उत्पन्न) स्त्री को देखकर समाहित चित्त से उसे नमस्कार करना चाहिये।।३०।।

यदि भाग्यवशाद् देवि! कुलदृष्टिः प्रजायते।
तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् ।।३१।।

तासां भगादिनां देवीनाम्।

हे देवि! यदि भाग्य से कुलदर्शन हो जाय, तब वहीं उसकी मानस पूजा करनी चाहिये। तासां का अर्थ है—भगरूप देवी अथवा जिनके नाम के आगे 'भग' शब्द लगा हो (जैसे भगवती), वैसी देवी।।३१।।

यथा—

भगिनीं भगचिह्नाञ्च भगास्यां भगमालिनीम्।
भगदन्तां भगाक्षीञ्च भगकर्णीं भगत्वचाम् ।।३२।।
भगनासां भगस्तनीं भगस्थां भगसर्पिणीम्।
सम्पूज्य ताभ्यो गन्धाद्यैर्मानसैर्गुरुमेव च।
नमस्कृत्य यथान्यायं स्वयमक्षोभितः सुधीः ।।३३।।

जैसे भगिनी, भगचिह्ना, भगास्या, भगमालिनी, भगदन्ता, भगाक्षी, भगकर्णी, भगत्वचा, भगनासा, भगस्तनी, भगस्था, भगसर्पिणी तथा गुरु की मानस गन्धादि उपचार से पूजा करके नमस्कार करके विद्वान् साधक स्वयं अक्षुब्ध रहे।।३२-३३।।

बालां वा यौवनोन्मत्ताः वृद्धां वा सुन्दरीं तथा।
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विभावयेत् ।।३४।।

बाला, यौवन से मत्त, वृद्धा अथवा सुन्दरी अथवा घिनौनी लगने वाली, महान् दुष्टा चाहे जैसी भी स्त्री हो, साधक उसे भी देवीरूप ही माने।।३४।।

तासां प्रहारं निन्दाञ्च कौटिल्यमप्रियं तथा।
सर्वथैव न कुर्यात्तु अन्यथा सिद्धिरोधकृत् ।।३५।।

उन पर प्रहार, उनकी निन्दा, उनसे कुटिलता दिखलाना, अप्रिय कार्य करना इत्यादि कभी न करे; अन्यथा सिद्धि में अवरोध आता है।।३५।।

स्त्रियो देवास्त्रियः प्राणाः स्त्रियश्चैव विभूषणम्।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि ।।३६।।

स्त्री ही देवता, प्राण तथा अलङ्कार हैं, यह भावना करे। सदा स्त्रीसङ्गी बने। अन्य स्त्री न मिलने पर अपनी स्त्री का ही संग करे।।३६।।

विपरीतरता सा तु भविता हृदयोपरि।
तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलम्।
तद्धस्तावचितं द्रव्यं देवताभ्यो निवेदयेतत् ।।३७।।

तद्धस्तावचितं तद्धस्ताद् गृहीतम्।

वह स्त्री विपरीतरति में आसक्त होकर साधक के हृदय के ऊपर स्थित होगी। उस स्त्री के हाथ से गृहीत पुष्प, उसके हाथों से लिया जल, उसके द्वारा हाथों में रखा द्रव्य देवता को निवेदन करे।।३७।।

तथा—

उच्छिष्टं भक्षयेत् स्त्रीणां ताभ्यो नोच्छिष्टमर्पयेत्।
स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशेषात् पूजनं महत् ।।३८।।

उनके जूठन को सदा ग्रहण करे; परन्तु स्त्रीगण को कभी भी अपना जूठन नहीं देना चाहिये। विशेषतः उनका पूजन उत्तम रूप से करना कर्त्तव्य है, उनसे द्वेष भी नहीं करना चाहिये।।३८।।

जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्ध्वं जपं चरेत्।
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् विशेषात्कुलजां शुभाम्।
भक्षन् ताम्बूलमन्यांश्च भक्ष्यद्रव्यान् यथारुचि ।।३९।।

महाशङ्खं नृमुण्डम्।

जपस्थान में महाशङ्ख (नरमुण्ड) का स्थापन करके स्त्री का गमन, स्पर्श, दर्शन करके विशेषतः कुलजा शुभा स्त्री को देखकर रुचि के अनुसार भक्ष्य द्रव्य, ताम्बूलादि का भक्षण करते-करते नृमुण्ड के ऊपर जप करना चाहिये।।३९।।

वीरतन्त्रे—

दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादिनियमो न च।
जपे न कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि ।।४०।।

वीरतन्त्र में कहा गया है कि इस महामन्त्र की साधना में दिशा, काल, आसन का कोई नियम नहीं है। इसमें जपकाल का, पूजादि का तथा बलि का भी कोई नियम नहीं होता।।४०।।

स्वेच्छानियम उक्तश्च महामन्त्रस्य साधने।
न विशेषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि ।।४१।।

इस महामन्त्र की साधना में अपनी इच्छा ही नियम होता है। दिवा अथवा रात्रि की, सन्ध्या की, महानिशा की कोई भी विशेषता इसमें नहीं है।।४१।।

सर्वदा पूजयेद् देवीमस्नातः कृतभोजनः।
महानिश्यशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत्॥४२॥

बिना नहाये ही अथवा भोजन करके भी, चाहे जिस स्थिति में हो, देवी का पूजन सर्वदा करता रहे। महानिशा में अपवित्र स्थान में भी मन्त्र से देवी को बलि अर्पित की जा सकती है।।४२।।

यत्तु—

रात्रावेव महापूजा कर्त्तव्या वीरवन्दिते।
न दिने सर्वथा कार्या शासनान्मम सुव्रते॥४३॥

तत् पुनः कुलपूजाविषयम्।

हे वीरवन्दिते! शास्त्रों के अनुसार रात्रि में ही महापूजा करनी चाहिये। हे सुव्रते! मेरे शासन (उपदेश) के अनुसार दिन में किसी भी प्रकार से देवी-पूजन न करे। यह विधान कुलपूजा के ही लिये है।।४३।।

तन्त्रान्तरे—

दिवा न पूजयेद् देवीं रात्रौ नैव प्रपूजयेत्।
सर्वदा पूजयेद् देवीं दिवारात्रौ च साधकः॥४४॥

तन्त्रान्तर में कहते हैं कि साधक दिन में अथवा रात्रि में पूजा न करे। सदा दिन-रात पूजन करता रहे।।४४।।

एतद्विषयविभागस्तु तत्रैव—

दिवा न पूजयेद् वीरो रात्रौ पशुर्न पूजयेत्।
सर्वदा पूजयेद् दिव्यो दिवारात्रौ च साधकः॥४५॥

वहीं पर इस विषय का विभाग भी कहा गया है। वीराचारी साधक दिन में पूजन न करे। पश्वाचारी रात्रि में पूजन न करे; परन्तु दिव्याचारी दिन-रात सदा पूजन कर सकता है।।४५।।

महानिशोक्ता तत्रैव—

अर्द्धरात्रात्परं यच्च मुहूर्त्तद्वयमेव च।
सा महारात्रिरुद्दिष्टा तद्दत्तमक्षयन्तु वै॥४६॥

वहीं कहा गया है कि अर्द्धरात्रि के उपरान्त जो दो मुहूर्त्त हैं, उसे ही महारात्रि (महानिशा) कहा जाता है। उस समय जो भी अर्चनादि की जाती है, उसका फल अक्षय होता है।।४६।।

गान्धर्वे—

पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्रं यदि नित्यशः ।
तदा वादी स्वसिद्धान्तहतः क्षितितलं व्रजेत् ।।४७।।

गन्धर्वतन्त्र में कहा गया है कि पृथ्वी (कुलस्त्री) को ऋतुमती देखकर (१६) दिन प्रतिदिन सहस्र मन्त्र का जप करना चाहिये। ऐसा करने पर उसका विरोधी उससे पराजित होकर लज्जा के मारे वह मानो भूमि में गड़ जाता है।।४७।।

नित्यश इति षोडशदिनं यावदित्यर्थः। पृथिवीं कुलस्थाने भगमित्यर्थः ।।४८।।

नित्यशः अर्थात् रोज १६ दिन तक। पृथिवी अर्थात् कुलस्थान अर्थात् भगप्रदेश (योनि)।।४८।।

तथा—

पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयो यतमानसः ।
कवितां लभते सोऽपि अमृतत्त्वञ्च गच्छति ।।४९।।

इसी प्रकार और भी कहते हैं कि जो साधक पर्वत (कुलस्त्री के स्तन पर) हाथ रखकर निर्भय होकर संयत चित्त से १००० मन्त्रजप करता है, वह कवित्व तथा अमृतत्त्व की प्राप्ति करता है।।४९।।

अत्रापि सहस्रमिति सम्बध्यते। पर्वतः स्तनः ।।५०।।

इस श्लोक में भी १००० पद का ही सम्बन्ध (अन्वय) होगा अर्थात् १००० मन्त्र जप करना चाहिये। पर्वत = स्तन।।५०।।

नीलतन्त्रे—

पद्मं दृष्ट्वा तथा बिम्बं खञ्जनं शिखरं तथा ।
चामरं रविबिम्बञ्च तिलपुष्पं सरोरुहम् ।।५१।।
त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुभभावतः ।
सुखं प्रसादं सुमुखं सुलोचनं सुहास्यकम् ।।५२।।
सुवेशं सुगतिञ्चैव सुगन्धं सुखमेव च ।
लभते च यथासंख्यं शृणु पार्वति! सादरम् ।।५३।।

नीलतन्त्र में भगवान् कहते हैं कि हे पार्वति! आदर के साथ सुनो। पद्म, बिम्ब, खंजन, शिखर, चामर, सूर्यबिम्ब, तिलपुष्प, सरोरुह तथा त्रिशूल—इनको देखकर विशुद्ध मन से १०० जप करके (क्रम-क्रम से जप करके) संख्यानुसार मुख, प्रसाद, सुमुख, सुलोचन, सुहास्य, सुवेश, सुगति, सुगन्ध तथा सुख का यथाक्रम से लाभ करे।।५१-५३।।

पद्मं मुखम्। बिम्बमधरं। खञ्जनं चक्षुः। शिखरं मस्तकम्। चामरं केशम्। रविबिम्बं सिन्दूरम्। तिलपुष्पं नासिकाम्। सरोरुहं नाभिम्। त्रिशूलं त्रिवलीम् ॥५४॥

श्लोक में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये—पद्म = मुख, बिम्ब = अधर, खञ्जन = नेत्र, शिखर = मस्तक, चामर = केश, रविबिम्ब = सिन्दूर, तिलपुष्प = नासिका, सरोरुह = नाभि, त्रिशूल = त्रिवली रेखा।।५४।।

भावचूड़ामणौ—

एकाकी निर्जने देशे श्मशाने विजने वने।
शून्यागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत् सदा ॥५५॥

भावचूड़ामणि के अनुसार निर्जन देश में, श्मशान में, निर्जन वन में, खाली मकान में अथवा नदी के किनारे एकाकी शंकारहित होकर विचरण करे।।५५।।

कालिकापुराणे—

यः शिवाविरुतं श्रुत्वा शिवदूतीं शुभप्रदाम्।
प्रणमेत्साधको भूत्वा तस्य कामः करे स्थितः ॥५६॥

कालिकापुराण के अनुसार जो साधक शिवा का रव (बोलना) सुनकर शुभप्रदा शिवदूती को दण्डवत् प्रणाम करता है, उसे इच्छित वस्तु हस्तगत होती है।।५६।।

कुलचूड़ामणौ—

पर्वते विपिने वापि निर्जने शून्यमण्डपे।
चतुष्पथे जलमध्ये यदि दैवाद् गतिर्भवेत् ॥५७॥
क्षणं स्थित्वा मनूं जप्त्वा नत्वा गच्छेद्यथासुखम्।
गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितः ॥५८॥

कुलचूड़ामणि में कहते हैं कि यदि कभी दैवात् पर्वत, निर्जन वन, शून्य मण्डप, चौराहा अथवा जल में जाना पड़े तब वहाँ क्षणमात्र रुककर मन्त्रजप करके नमस्कार करके आनन्दपूर्वक जाये। गृद्ध को देखकर अलक्षित होकर महाकाली को प्रणाम करे।।५७-५८।।

क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जाम्बुकीं यमदूतिकाम्।
कुररं श्येनभूकाकौ कृष्णमार्जारमेव च ॥५९॥

क्षेमंकरी, जम्बुकी, यमदूतिका, कुरर, बाज, काक तथा काले बिलाव को देखकर निम्न श्लोक का पाठ करे।।५९।।

कृशोदरि! महाचण्डे! मुक्तकेशि! बलिप्रिये! ।
कुलाचारप्रसन्नास्ये! नमस्ते शङ्करप्रिये! ॥६०॥

हे कृशोदरि! महाचण्डे!, मुक्तकेशि! बलिप्रिये! हे कुलाचार को देखकर प्रसन्न होने वाली शंकरप्रिये! तुमको नमस्कार है।।६०।।

श्मशानञ्च शवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन् ।
प्रणम्यानेन मनुना मन्त्री सुखमवाप्नुयात् ॥६१॥
घोरदंष्ट्रा करालास्ये! किचिशब्दनिनादिनि! ।
घोरघोररवास्फाले नमस्ते चितिवासिनि! ॥६२॥

श्मशान अथवा शव को देखकर प्रदक्षिणक्रम से अनुगमन करते-करते श्लोक संख्या ६२ को पढ़ना चाहिये। इससे मन्त्रज्ञ साधक को सुख मिलता है। इस श्लोक का अर्थ है—हे घोरदंष्ट्रे! हे करालमुखि! किचि शब्द से निनाद करने वाली! घोर घोर रव से मुँह फाड़ने वाली! चितिवासिनि! तुमको नमस्कार है।।६१-६२।।

रक्तवस्त्रं तथा पुष्पं विलोक्य त्रिपुराम्बिकाम् ।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमाविमं मन्त्रं पठन्नरः ॥६३॥

रक्त वस्त्र तथा पुष्प को देखकर साधक निम्न मन्त्र का पाठ करते-करते त्रिपुराम्बिका को भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करे।।६३।।

बन्धूकपुष्पसङ्काशे! त्रिपुरे! भयनाशिनि! ।
भाग्योदयसमुत्पन्ने! नमस्ते वरवर्णिनि ॥६४॥

मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—हे बन्धूकपुष्प के समान रक्तवर्ण वाली! हे त्रिपुरे! हे भयनाशिनि! हे भाग्योदय पर उत्पन्न होने वाली वरवर्णिनि! तुमको नमस्कार है।।६४।।

कृष्णवस्त्रं तथा पुष्पं राजानं राजपूरुषम् ।
हस्त्यश्वरथशस्त्राणि फलकान् वीरपूरुषान् ॥६५॥
महिषं कुलदेवञ्च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम् ।
प्रणम्य जयदुर्गां वा स च विघ्नैर्न लिप्यते ॥६६॥
जयदेवि! जगद्धात्रि! त्रिपुराद्ये! त्रिदैवते! ।
भक्तेभ्यो वरदे देवि! महिषघ्नि! नमोऽस्तु ते ॥६७॥

काला वस्त्र तथा काला पुष्प, राजा, राजपुरुष, हाथी, घोड़ा, शस्त्र, ढाल (फलक), वीरपुरुष, महिष तथा कुलदेवता को देखकर महिषमर्दिनी अथवा दुर्गा को प्रणाम करने से विघ्न अपना प्रभाव नहीं डाल पाते। प्रणाम मन्त्र का अर्थ है—हे देवि,

हे परमेश्वरि, हे जगद्धात्रि, हे त्रिपुरे, हे आद्ये, हे त्रिदैवते! तुम्हारी जय हो। हे भक्तों को वर देने वाली, हे देवी महिषघ्नि! (महिषासुर को मारने वाली) तुमको प्रणाम है।।६५-६७।।

मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यं मांसं वरस्त्रियम्।
दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणम्य विमृशेन्मनूम्।।६८।।

मदिराभाण्ड को देखकर अथवा मछली, मांस, सुन्दर स्त्री को देखकर नीचे लिखा मन्त्र 'घोरविघ्नविनाशाय' इत्यादि पढ़कर भैरवी देवी को प्रणाम करे।।६८।।

घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये।
नमामि वरदे देवि मुण्डमालाविभूषिते।।६९।।

मन्त्रार्थ है—हे देवि! हे मुण्डमाला-विभूषिते! हे वरदे! भीषण विघ्नों के विनाश के लिये तथा कुलाचार की (साधना की) उन्नति के लिये तुमको नमस्कार है।।६९।।

रक्तधारसमाकीर्णवदने त्वां नमाम्यहम्।
सर्वविघ्नहरे! देवि! नमस्ते हरवल्लभे।।७०।।

हे रक्तधारा से समाकीर्ण मुख वाली! तुमको प्रणाम करता हूँ। तुम समस्त विघ्नों को हरने वाली शंकरवल्लभा हो। तुम्हें मेरा प्रणाम है।।७०।।

एतेषां दर्शने चैव यदि नैवं प्रकुर्वते।
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते।।७१।।

यदि इनका दर्शन होने पर भी साधक शक्तिमन्त्र के साथ ऐसा कार्य नहीं करता है तब उसे किसी प्रकार की सिद्धि नहीं मिलती।।७१।।

कुलचूड़ामणौ—

कुलवारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः।
योगिनीपूजनं तत्र प्रधानं कुलपूजनम्।।७२।।
यथा विष्णुतिथौ विष्णुः पूजितो वाञ्छितप्रदः।
तथा कुलतिथौ दुर्गा पूजिता वरदायिनी।।७३।।

कुलचूड़ामणि में कहते हैं कि कुलवार को, कुलाष्टमी को, विशेषतः चतुर्दशी को योगिनीपूजा ही प्रधान कुलपूजा होती है। जैसे विष्णुतिथि में विष्णु पूजित होने पर प्रसन्न होकर मनचाहा फल देते हैं, उसी प्रकार कुलतिथि में दुर्गा पूजिता होकर वर देती हैं।।७२-७३।।

अथ कुलवारादिनियमः

कुलवारादिनियमन्तु यामले—

रविचन्द्रौ गुरुः शौरिश्चत्वारश्चाकुला इमे।
भौमशुक्रौ कुलाख्यो हि बुधवारः कुलाकुलः ॥७४॥

कुलवारादि का नियम यामल में इस प्रकार कहा गया है—रवि, चन्द्र, बृहस्पतिवार तथा शनि—यह अकुल हैं। मंगल-शुक्र—ये दोनों कुल हैं तथा बुधवार कुलाकुल है।।७४।।

द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृतम्।
विषमाश्चाकुलाः सर्वाः शेषाश्च तिथयः कुलाः ॥७५॥

द्वितीया, दशमी, षष्ठी को कुलाकुल कहते हैं। विषमा तिथियाँ अकुल होती हैं एवं शेष समस्त तिथियाँ कुल कहलाती हैं।।७५।।

वारुणार्द्राभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदाहृतम्।
कुलानि समधिष्ण्यानि शेषाणि चाकुलानि च ॥७६॥

वारुण (श्रवण) नक्षत्र, आर्द्रा, अभिजित्, मूल को कुलाकुल कहा गया है। सम नक्षत्रों को कुल नक्षत्र तथा शेष बचे नक्षत्र अकुल कहलाते हैं।।७६।।

तिथिवारे च नक्षत्रे अकुले स्थायिनो भयम्।
कुलाख्ये जयिनो नित्यं साम्यञ्चैव कुलाकुले ॥७७॥

अकुल वार, तिथि तथा नक्षत्र में कार्यरत (साधना) होने से भय; कुलवार, तिथि तथा नक्षत्र में कार्यरत होने से जय तथा कुलाकुल वार, तिथि तथा नक्षत्र में कार्य करने से सुफल अथवा कुफल कुछ भी नहीं प्राप्त होता।।७७।।

एवं कुलवारादौ कर्म कुर्यात्। कुलकर्म सर्वथा गोपनीयम् ॥७८॥

इसलिये कुलवारादि में साधन कर्म करना चाहिये और इसे सर्वथा गोपनीय रखना चाहिये।।७८।।

यथा नीलतन्त्रे—

निर्जने चैव कर्त्तव्यं न चैवं जनसन्निधौ।
किंवा पक्षिपतङ्गादिदर्शनेनैव कारयेत् ॥७९॥
पाताले मण्डपे वापि गह्वरे सुनियन्त्रिते।
निश्छिद्रमण्डपे वापि कर्त्तव्यं न च सन्निधौ ॥८०॥

जैसा कि नीलतन्त्र में कहा गया है कि निर्जन में कुलकर्म करना चाहिये। जनसमूह

में कुलकर्म करना अनुचित है। यहाँ तक कि पक्षी-पतंग आदि भी उसे न देखें। पाताल में, मण्डप में अथवा पर्वत गुफा में अथवा छिद्ररहित मण्डप में कुलकार्य करना चाहिये। जनसम्पर्क वाले स्थान में कुलकर्म कभी नहीं करना चाहिये।।७९-८०।।

कुलपुष्पं कुलं द्रव्यं कुलपूजां कुलं जपम्।
कुलं कुलपतिश्चैव कुलमालां कुलाकुलम्।।८१।।
कुलचक्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत्।
प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्प्रकाशाद्बन्धनादिकम्।।८२।।

कुलपुष्प, कुलद्रव्य, कुलपूजा, कुलजप, कुल, कुलपति, कुलमाला, कुलाकुल, कुलचक्र तथा कुलध्यान के सम्बन्ध में पूर्णतः गोपनीयता रखनी चाहिये। इसका प्रकाशन करने से सिद्धिहानि होती है और बन्धनादि भी प्राप्त होते हैं।।८१-८२।।

प्रकाशान्मन्त्रनाशः स्यात्प्रकाशात् कुलहिंसनम्।
प्रकाशान्मृत्युलाभः स्यान्न प्रकाश्यं कदाचन।।८३।।

इसके प्रकाशन से मन्त्रनाश तथा कुलहिंसा का पाप होता है, मृत्यु तक हो जाती है। अतएव इसका प्रकाशन कदापि नहीं करना चाहिये।।८३।।

पूजाकाले च देवेशि! यदि कोऽप्यत्र गच्छति।
दर्शयेद् वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं तथा स्तवम्।।८४।।

हे देवेशि! यदि पूजाकाल में कोई वहाँ आ जाय तब उसे वैष्णवी मुद्रा दिखानी चाहिये, साथ ही विष्णुन्यास तथा विष्णुस्तव का पाठ करना चाहिये (ताकि वह यही समझे कि यहाँ वैष्णवी पूजादि हो रही है और कुलपूजा गोपनीय रहे)।।८४।।

प्रकाशाद्यदि गुप्तिः स्यात्तत्प्रकाशान्न दूषणम्।
गोपनाद्यदि व्यक्तिः स्यान्न गुप्तिः सा विधीयते।।८५।।

यदि यह साधना ज्ञात हो जाय तब भी यदि कुलकार्य गोपनीय रहता है, तो कोई दोष नहीं होता और गोपन रहने पर भी यदि व्यक्त हो जाय, तो ऐसी गोपनीयता विहित नहीं है (अर्थात् ऐसी गोपनीयता किस काम की, जिसमें सब व्यक्त ही हो जाय)।।८५।।

कदाचिद् देहहानिस्तु न चागुप्तिः कदाचनः।
वरं पूजा न कर्त्तव्या न च व्यक्तिं कदाचन।।८६।।

कभी देहनाश भले ही हो जाय; परन्तु गोपनीयता बनी रहनी चाहिये। इससे अच्छा तो यही है कि यदि गोपनीयता भंग होने की आशंका हो तो कुलपूजा न करना ही उचित है।।८६।।

अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः ।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ।
साधकः प्रातरुत्थाय नमस्कुर्यात् कुलद्रुमम् ॥८७॥

कौलगण अन्दर से शाक्त, बाहर से शैव एवं सभा में वैष्णव का व्यवहार करते हैं। इस प्रकार से कौल साधक अनेक रूप धारण कर पृथ्वी पर विचरण करता रहता है। साधक को प्रातः उठकर कुलद्रुम (कुलवृक्ष) को प्रणाम करना चाहिये।।८७।।

कुलद्रुमा यथा रुद्रयामले—

पादाघातादशोका वदनमदिरया केशरः कर्णिकार-
श्चूतो वीक्षासहाभ्यां तिलकतरुनमेरुः पियालश्च गीत्या ।
संलापात् कर्णिकारः कुरुबकतरुरालिङ्गनात् सिन्धुवारः
कादम्बः कामिनीनामुदयति नियतं स्पर्शनाच्चम्पशाखी ॥८८॥

कुलद्रुम के सन्दर्भ में रुद्रयामल में कहा गया है कि कामिनी के पदाघात से अशोक वृक्ष, मुखमदिरा द्वारा सिंचन से बकुलवृक्ष तथा कर्णिकारवृक्ष, दर्शन तथा हास्य से आम्र वृक्ष, संगीत से तिलक (तिल), नमेरु (रुद्राक्ष) तथा पियाल वृक्ष, वाक्य द्वारा कर्णिकार एवं कुरुवक वृक्ष, आलिङ्गन से सिन्धुवार (निर्गुण्डी) एवं कदम्ब तथा स्पर्श द्वारा चम्पक वृक्ष सर्वदा मुकुलित उदित होता है।।८८।।

तथा च श्रुतिः—दशकुलवृक्षाणामनुपप्लव इति। अनुपप्लवोऽनुपहतिः। कार्य इति शेषः। ते च—

श्लेष्मातककरञ्जौ च बिल्वाश्वत्थकदम्बकाः ।
निम्बो वटोडुम्बरौ च धात्री चिञ्चा दश स्थिताः ॥८९॥

कुलवृक्ष के विषय में श्रुति में कहा गया है कि दश कुलवृक्ष को कभी भी नष्ट न करे। वे हैं—श्लेष्मान्तक (सोनालू), करञ्ज, बिल्व, पीपल, कदम्ब, नीम, बरगद, गूलर, आँवला तथा चिंचा।।८९।।

तथा—

न स्वपेत्कुलवृक्षाधो न चोपप्लवमाचरेत् ।
दृष्ट्वा भक्त्या नमस्कुर्याच्छेदयेन्न कदाचन ॥९०॥

तन्त्र में और भी कहा गया है कि कुलवृक्ष के नीचे कभी भी शयन न करे। उनको नष्ट भी न करे; अपितु उन्हें देखकर भक्ति से प्रणाम करे। कभी भी उनका छेदन करना उचित नहीं होता।।९०।।

प्रयोगसारे—

विभीतकार्ककारञ्जस्नूहिच्छायां न चाश्रयेत्।
स्तम्बदीपमनुष्याणामन्येषां प्राणिनां तथा ॥९१॥

प्रयोगसार में कहते हैं कि विभीतक (बहेड़ा), करञ्ज तथा स्नूही वृक्ष की छाया में शयन नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार स्तम्ब (तृणादि के गुच्छों के नीचे), दीप, मनुष्य तथा अन्यान्य प्राणीगण की छाया का भी आश्रय नहीं करना चाहिये।।९१।।

शैवागमे—

शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः शक्तिर्ब्रह्मा जनार्दनः।
शक्तिरिन्द्रो रविः शक्तिः शक्तिश्चन्द्रो ग्रहा ध्रुवम्।
शक्तिरूपं जगत्सर्वं यो न जानाति स नारकी ॥९२॥

शैवागम में कहा गया है कि शक्ति शिव है, शिव ही शक्ति हैं। शक्ति ही ब्रह्म तथा जनार्दन है। शक्ति ही इन्द्र, सूर्य, चन्द्र तथा ग्रह है। यह निश्चित है। समस्त जगत् शक्तिरूप है। जो यह नहीं जानता, वह नारकी है।।९२।।

वृथा न गमयेत्कालं द्यूतक्रीड़ादिना सुधीः।
गमयेद् देवतापूजाजपयागस्तवादिना ॥९३॥

सुधी साधक जुआ इत्यादि क्रीड़ा में समय को व्यर्थ न करे; अपितु देवता की पूजा, जप, याग, स्तव आदि में कालयापन करे।।९३।।

वीराणां जपयज्ञस्तु सर्वकाले प्रशस्यते।
सर्वदेशे सर्वपीठे कर्त्तव्यो नात्र संशयः ॥९४॥

वीराचारी साधक हेतु जप तथा यज्ञ सर्वदा प्रशस्त हैं। सभी पीठ में, सभी देश में इसे कर्त्तव्य मानना चाहिये। यह निःसंदिग्ध है।।९४।।

सर्वपीठ इति सिद्धपीठेष्वित्यर्थः। तेषु च कामरूपादि दशपीठानि प्रधानतया पराणि चोपपीठतया ज्ञातव्यानि। तेषां नामानि च ताराषोढ़ान्यासे सुन्दरी-पीठन्यासे बृहन्नन्दीकेश्वरपुराणोक्तदेवीपूजादौ च यथायोग्यमवसे-यानि ॥९५॥

सर्वपीठ अर्थात् समस्त सिद्धपीठ। इसमें कामरूपादि दस पीठ प्रधान हैं और शेष को उपपीठ कहा गया है। उनका नाम ताराषोढ़ान्यास में, त्रिपुरसुन्दरी के पीठन्यास में तथा बृहद् नन्दिकेश्वर पुराणोक्त देवी पूजादि प्रसङ्ग में यथोक्त रूप से जाना जा सकता है।।९५।।

अथ पीठोपपीठादयः

यथा—

कामरूपं तथा जालन्धरपूर्णगिरिस्तथा।
उड्डीयानं तथा वाराणसी चाथ ज्वलन्तिका ॥१॥
मायावती चाष्टपुरी अयोध्या चैव काञ्चिका।
दशैतानि प्रधानानि पीठानि क्रमतो विदुः ॥२॥

जैसे तन्त्र में कहा गया है कि कामरूप, जालन्धर, पूर्णगिरि, उड्डीयान, वाराणसी, ज्वलन्तिका, मायावती, अष्टपुरी, अयोध्या तथा काञ्ची—ये यथाक्रम से दस प्रधान पीठ हैं।।१-२।।

अथ पीठं महाचीनं नेपालं पौण्ड्रवर्धनम्।
पुरस्थिरं कान्यकुब्जं पीठमर्बुदनामकम् ॥३॥
आम्रातकेश्वरं पीठमेकाम्रञ्च ततः परम्।
त्रिस्रोतपीठमतुलं कामकोट्टमथाऽपरम् ॥४॥
भृगोः पुरञ्च केदारं पीठं चन्द्रपुरं ततः।
श्रीपीठं पीठमोङ्कारं मालवं भद्रकं तथा ॥५॥
देवीकोट्टञ्च गोकर्णं पीठं मङ्गलकोट्टकम्।
मारुतेश्वरपीठञ्चाट्टहासं विरजं तथा ॥६॥
अथ राजगृहं पीठं महापथमपि ध्रुवम्।
एलापूरं कोनलगिरिः पीठं बाणेश्वरं तथा ॥७॥
जयन्ती चोज्जयन्याख्यं हरिद्राख्यञ्च पीठकम्।
क्षीरिकापीठमतुलं हस्तिनापुरनामकम् ॥८॥
उड्डीशञ्च प्रयागञ्च षष्ठीशं पीठमुच्यते।
जलेश्वराख्यं मलयं श्रीशैलाख्यं तथोत्तमम् ॥९॥
मेरुर्महेन्द्रपीठञ्च वामनं पीठमुच्यते।
हिरण्यपुरकं पीठं महालक्ष्मीपुरं तथा ॥१०॥
छायाछत्रपुरं पीठं करवीरपुरं परम्।
काश्मीरं नैमिषञ्चैव कालिघट्टं विराटकम् ॥११॥

किष्किन्ध्या कीकटं कालञ्जरं सागरसङ्गमः।
चतुःषष्टिरियं प्रोक्ता पीठानां तन्त्रसम्मता ॥१२॥

अब उपपीठ कहते हैं (पहले दस प्रधान पीठ कहा जा चुका है)। यहाँ चौवन पीठ का वर्णन उपपीठ रूप से हैं—महाचीन, नेपाल, पौण्ड्रवर्धन, पुरस्थित, कान्यकुब्ज, अर्बुद, आम्रातकेश्वर, एकाम्र, त्रिस्रोत, कामकोट्ट, भृगुपुर, केदार, चन्द्रपुर, श्रीपीठ, ॐकारपीठ, मालव, भद्रक, देवीकोट्ट, गोकर्ण, मंगलकोट्ट, मारुतेश्वर, अट्टहास, विरज, राजगृह, महापक्ष, एलापुर, कोनलगिरि, बाणेश्वर, जयन्ती, उज्जयिनी, हरिद्रा, क्षीरिका, हस्तिनापुर, उड्डीश, प्रयाग, षष्ठीश, जलेश्वर, मलय, श्रीशैल, मेरु, महेन्द्रपीठ, वामन, हिरण्यपुर, महालक्ष्मीपुर, छायाछत्रपुर, करवीरपुर, काश्मीर, नैमिष, कालीघट्ट, विराट, किष्किन्धा, कीकट, कालञ्जर और सागरसंगम। पहले के दस तथा यह चौवन, सब मिलाकर चौंसठ संख्या पीठों की कही गई है।।३-१२।।

पर्वताः सरिताः सर्वा सर्वाः काननभूमयः।
अनादिशिवलिङ्गानि सिद्धस्थानानि सर्वशः ॥१३॥

समस्त पर्वत समस्त नदियाँ, समस्त काननभूमि तथा अनादि शिवलिङ्गसमूह सभी सिद्धस्थान हैं।।१३।।

यत्र लक्षं बलिर्दत्तो यत्र दत्तो बलिर्नरः।
तत्सर्वं सिद्धपीठं स्यात्तत्र जापे महत्फलम् ॥१४॥

जहाँ एक लाख बलि दी गई हो, जहाँ नरबलि दी गई हो, वह सब सिद्धपीठ हैं। वहाँ जप का महान् फल होता है।।१४।।

तन्त्रचूडामणौ यन्त्रलिखनानुवृत्तौ—

पशोरालोकनं न स्यात्तथा कुर्वीत यत्नतः।
यदि दैवात् पशोरग्रे लिखनं विद्यते क्वचित्।
समाङ्गक्षतिरेवात्र क्रियते पापबुद्धिना ॥१५॥

तन्त्रचूड़ामणि ग्रन्थ में कहा गया है कि यन्त्रलेखन के क्रम में पशु का दर्शन न हो, यह यत्न करना चाहिये। यदि कहीं दैवात् पशु के आगे यन्त्रलेखन हो जाय तब पापबुद्धि साधक के अंग का क्षय करती है।।१५।।

कुङ्कुमेन चन्दनेन रक्तेन चन्दनेन वा।
लिखेन्मन्त्रं महादेव! सावधानः स्मृतागमः ॥१६॥

हे महादेव! साधक सावधान होकर आगम का स्मरण करके कुंकुम से, चन्दन से अथवा रक्तचन्दन से मन्त्र को लिखे।।१६।।

स्वयम्भुकुसमेनैव कुण्डगोलेन वा पुनः ।
सर्वसिद्धिस्तदा तस्य जायते देव! निश्चितम् ॥१७॥

स्वयम्भू कुसुम से अथवा कुण्डगोलक से मन्त्र लिखे। हे देव! इससे सभी सिद्धियाँ निश्चित रूप से मिलती हैं।।१७।।

पशुरत्रादीक्षितः। स्वयम्भुकुसुमम् प्रथमार्त्तवरजः। कुण्डगोलोद्भवेन रजसा वेत्यर्थः ॥१८॥

यहाँ पशु अर्थात् अदीक्षित व्यक्ति। स्वयम्भुकुसुम का तात्पर्य है—कन्या के प्रथम ऋतुकाल का रज (रक्त)। कुण्डगोलोद्भव अर्थात् रजः द्वारा।।१८।।

यथा—

आनीय प्रमदां नित्यां दीक्षितां नवयौवनाम् ।
स्वकान्तां परकान्तां वा घृणालज्जाविवर्जिताम् ॥१९॥
प्राङ्मुखेनोपविष्टस्तु निशायामर्द्धरात्रके ।
हेतुयुक्तं स ताम्बूलं कृत्वा न्यासं विधाय च ।
न्यासजालं ततः कृत्वा तत्र सम्पूज्य देवताम् ॥२०॥

तन्त्र में कहते हैं कि वीराचारी साधक सर्वदा दीक्षिता, नवयौवना, प्रमत्ता, घृणा-लज्जा से रहित अपनी पत्नी अथवा परस्त्री को लाकर उसके सामने रात्रि में पूर्वमुख बैठकर हेतु (कारण) युक्त ताम्बूल का भक्षण करके स्वयं न्यास करे तथा उस प्रमदा में (स्त्री में) न्यास करके वहाँ देवपूजन करे।।१९-२०।।

मौलौ कुन्तलकर्षणं नयनयोराचुम्बनं गण्डयो-
र्दन्तेनाधरपीड़नं हृदि हतिर्मुष्ट्या च नाभौ भगे ।
कक्षाकण्ठकपोलमण्डलकुचश्रोणीषु देया नखाः
सीमन्ते लिखनं नखैरुरसिजां गृह्णीत गाढं ततः ॥२१॥

तदनन्तर उस स्त्री के मस्तक के केश का आकर्षण करे। दोनों नेत्र तथा दोनों कपोल का उत्तम रूपेण चुम्बन करे। दाँतों से उसके ओठों को दबाये। मुष्टि से उसके हृदय पर (हल्का) आघात करे। नाभि में, भग में, कटिबन्ध में, कण्ठ में, कपोलों में, स्तनद्वय में तथा नितम्बों में अपने नख का आघात करे। सीमन्त पर नख से अंकन करे। वक्ष के स्तनों को प्रगाढ़ रूप से पकड़े।।२१।।

कुर्वीत विरतं मनोभवगृहे मातङ्गलीलायितम् ।
जङ्घाङ्गुष्ठपदोरुगुल्फहननं चान्योन्यतः कामिनोः ॥२२॥

कामगृह में सर्वदा हाथी की लीला के समान (कामलीला) लीला करे। परस्पर जङ्घा, अँगूठा, पैर, ऊरु तथा गुल्फ को बाहु द्वारा दबाये।।२२।।

आं ईं क्लीं क्लें अमुकीं द्रावय द्रावय स्वाहा इति विन्यसेत्। ऐं क्लीं चपले चपलचित्ते! रेतो मुञ्च मुञ्च इति पठेत् ॥२३॥

तदनन्तर मूलोक्त मन्त्र का पाठ करे।।२३।।

ब्लूं क्लीं ह्रीं क्लीं च देवेशि! द्रावणी बीजमुत्तमम्।
तस्या योनौ न्यसेद् विद्यां मैथुनञ्च तदाचरेत् ॥२४॥

हे देवेशि! 'ब्लूं क्लीं ह्रीं क्लीं' यह उत्तम द्रावणी बीज है। उस प्रमदा की योनि में इस विद्या का न्यास करे। तदनन्तर उसके साथ मैथुन करे।।२४।।

शुद्धमन्त्रौषधेनैव योनेः प्रमथनं चरेत्।
मथ्यमाने पुरस्तस्य जायते तत्त्वमुत्तमम् ॥२५॥

शुद्ध मन्त्रौषधि से उसकी योनि को ग्रथित करे। योनि मथित होकर उसके पश्चात् उत्तम तत्त्व उत्पन्न होगा (योनि से स्खलन होगा)।।२५।।

गृह्णीयात् तत्प्रयत्नेन द्रव्यं कुण्डोद्भवं शुभम्।
निःशङ्कमाहितं द्रव्यं गृहीत्वा पूजयेत् सदा ॥२६॥

उस शुभ कुण्डोद्भव द्रव्य को अति यत्न से ग्रहण करके रखना चाहिये। उस स्थापित द्रव्य को ग्रहण करके सर्वदा पूजा करनी चाहिये।।२६।।

सान्निध्यं जायते देवी सर्वकाममुपालभेत्।
कुण्डोद्भवामृतं द्रव्यं कथितं दुर्लभं सदा ॥२७॥

इससे देवी का सान्निध्य प्राप्त होता है। साधक की कामना पूर्ण होती है। इस प्रकार अतिगोपनीय यह दुर्लभ अमृत मैंने तुझे बताया।।२७।।

पञ्चयामले—

चर्व्यं चोष्यं निवेद्याथ वस्त्रालङ्करणादिकम्।
पूजयेदक्षतैः शुद्धैस्तस्याः मदनमन्दिरम् ॥२८॥

पञ्चयामल में कहा गया है कि तदनन्तर चबाने वाले, चूसने वाले खाद्य तथा वस्त्रालंकारादि निवेदित करके शुद्ध अक्षत से उसके मदनमन्दिर (योनि) का पूजन करना चाहिये।।२८।।

भावयेत् कामभावेन तासु तत्त्वं न चोत्सृजेत्।
शुद्धमन्त्रौषधेनैव मथयेन्मदनालये ॥२९॥

कामभाव से उसकी भावना करे। उसमें (मदनमन्दिर में) तत्त्व (वीर्य) उत्सर्जित न करे। सम्भोग गृह में उक्त मन्त्रौषधि द्वारा उस प्रमदा (स्त्री) को मथित करे।।२९।।

मथ्यमाने पुरस्तस्य जायते तत्त्वमुत्तमम्।
गृह्णीयात्तत् प्रयत्नेन द्रव्यं कुण्डोद्भवं शुभम्॥३०॥

उस प्रमदा के मथित होने पर उससे उत्तम तत्त्व उत्पन्न होगा। उस कुण्डोद्भव द्रव्य को यत्न के साथ ग्रहण करना चाहिये।।३०।।

मन्त्रौषधं यथा—

मायागच्छपदं शुक्रस्तम्भनकारिणि ठद्वयम्।
अनेनार्कोपरागे च जातीमूलं समानयेत्॥३१॥

अब मन्त्रौषध कहते हैं। जैसे माया (ह्रीं) तदनन्तर आगच्छ शुक्रस्तम्भनकारिणि तथा ठद्वय (स्वाहा) कहे। मन्त्रोद्धार होता है—ह्रीं आगच्छ शुक्रस्तम्भनकारिणि स्वाहा। इस मन्त्र को पढ़ते हुये सूर्यग्रहणकाल में (अर्कोपरागे) जातीमूल (चमेली की जड़) लाये।।३१।।

एतद् धृत्वा साधकेन्द्रः शुक्रस्तम्भनमाचरेत्।
गोलोद्भवं तथा देवी गृह्यते परमन्तु यत्॥३१॥

इसे धारण करने से साधकश्रेष्ठ का शुक्र-स्तम्भन होता है। हे देवि! जो श्रेष्ठ गोलोद्भव द्रव (रजः) है, उसे ऐसे ग्रहण करे।।३२।।

कुलजां दीक्षितां मत्तां पतिहीनां विचक्षणाम्।
शक्तियोग्यां सुरूपाञ्च अनपत्यां समानयेत्॥३३॥
सुन्दरीं शोभनां दिव्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
द्विरष्टवर्षदेशीयां सदा कामाभिलाषिणीम्॥३४॥

कुलजा, दीक्षिता, मत्ता, पतिहीना, विचक्षणा, शक्तियोग्या, सुरूपा, अपुत्रा, सुन्दरी, शोभना, स्थूल तथा ऊँचे स्तनों वाली, षोडश वर्ष से कम आयु वाली, सर्वदा कामाभिलाषिणी रमणी को (इस कार्य हेतु) लाये।।३३-३४।।

पूर्वोक्तक्रमयोगेन कृत्वा न्यासादिकं ततः।
तत्त्वं प्रगृह्य यत्नेन पूजार्थं साधकोत्तमः॥३५॥
इदं गोलोद्भवं द्रव्यं देवतातृप्तिकारकम्।
अनेन पूजयेद्या हि सर्वकाममुपालभेत्॥३६॥

तत्पश्चात् साधक पूर्वोक्त क्रम से न्यासादि सम्पन्न करके पूजार्थ यत्नपूर्वक तत्त्व

(रजः) को रखे। यह देवता को तृप्त करने वाला गोलोद्भव तत्त्व होता है। जो इस तत्त्व से देवी की अर्चना करता है, उसे समस्त काम (इच्छित) का लाभ प्राप्त होता है।।३५-३६।।

स्वयम्भुं कथयिष्यामि पूजार्थं साधकस्तदा।
आनीय प्रमदां दिव्यां प्रमत्तां यौवनोन्नताम् ॥३७॥
दीक्षितां मूलमन्त्रेण सुनासां चारुहासिनीम्।
सर्वदानन्दहृदयां घृणालज्जाविवर्जिताम् ॥३८॥
गुरुभक्तां सुवेशाञ्च देवतापूजने रताम्।
यथा तन्त्रानुसारेण कृत्वा न्यासान् प्रगृह्य च ॥३९॥
तस्यास्तु मदनागारे पूजयेत् परमेश्वरीम्।
स्वयमक्षोभितो भूत्वा साधकः पूजनं चरेत् ॥४०॥

अब स्वयम्भुकुसुम का वर्णन करते हैं। साधक दिव्य, प्रमत्ता, यौवनोन्नता, मूल मन्त्र से दीक्षिता, सुनासा, चारुहासिनी, सर्वदा आनन्द चित्ता, घृणा-लज्जारहिता, गुरु की भक्ति करने वाली, सुवेशा तथा देवपूजारता प्रमदा को लाकर तन्त्र के अनुसार न्यासादि करके उसके मदनगृह (योनि) में परमेश्वरी का पूजन करे। साधक स्वयं (कामभाव से) अविचलित रहकर देवी का पूजन करता रहे।।३७-४०।।

स्वेच्छा ऋतुमती शक्तिः साक्षाद् देवी सुरेश्वरी।
तस्या पुष्पं स्वयं यत्तत् रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥४१॥

स्वेच्छा ऋतुमती शक्ति साक्षात् देवी सुरेश्वरी हैं। उनका जो स्वयं पतित पुष्प (रक्त) है, उसकी रक्षा यत्न से करे।।४१।।

वस्त्रालङ्कारपुष्पैश्च शक्तिञ्च पूजयेत् सदा।
यथाकाले यथापुष्पं स्वयं यद् गोपयेत्सकृत् ॥४२॥
गृहीत्वा तत्प्रयत्नेन स्वयम्भुकुसुमं चरेत्।
विद्यां स्वप्नावतीं जप्त्वा क्षिप्रमाकर्षणादिकम् ॥४३॥

वस्त्र, आभूषण तथा पुष्प से सदा शक्ति की पूजा करे। जिस पुष्प (शोणित) को एक बार गोपन करके रखा था, उसे लेकर अनुष्ठान करना चाहिये। साक्षात् उस स्वयम्भु पुष्प से सम्यक् रूपेण अर्चना करे। स्वप्नावती विद्या का जप करके शीघ्र आकर्षणादि करे।।४२-४३।।

देवताश्च महानागा राक्षसा दानवाश्च ये।
राजानश्च स्त्रियः सर्वा नित्यं वश्या भवन्ति हि ॥४४॥

समस्त देवता, महानाग, राक्षस, दानव, राजा तथा जितनी भी स्त्रियाँ हैं, सभी सर्वदा वश में हो जाते हैं।।४४।।

स्वयम्भुकुसुमं द्रव्यं त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम्।
क्वचित् गन्धर्वराजेन लभ्यते वा न वा विभो! ॥४५॥

यह स्वयम्भुपुष्प त्रैलोक्य में अतिदुर्लभ है। किसी गन्धर्व ने भी इसे प्राप्त किया है अथवा नहीं, यह भी संदिग्ध है।।४५।।

यदि तल्लभ्यते देव! लाक्षारससमन्वितम्।
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च वटीं कृत्वा तु गोपयेत् ॥४६॥

हे देव! यदि यह मिल जाय तब इसे लाक्षारस से युक्त करके कस्तूरी तथा कुङ्कुम से लिप्त करके वटी बनाकर गोपनीय रूप से उसे रखे।।४६।।

यन्त्रराजं समालिख्य पूजयेद्यदि साधकः।
एतेनाक्षरयोगेन मधुसिद्धं समालभेत् ॥४७॥

यदि साधक मूल मन्त्र को यन्त्रराज पर लिखकर पूजन करे तब उनको मधुमती विद्या सिद्ध हो जाती है।।४७।।

●

अथ भावरहस्यम्

यथा समयातन्त्रे—

देव्युवाच

तत्तद् भावरहस्यं मे प्रकाशय कृपामय! ।
येन भावेन देवेश! विद्येयं वशगा भवेत् ॥१॥

अब भावरहस्य कहा जाता है। जैसाकि समयातन्त्र में देवी कहती हैं कि हे देवेश! जिस-जिस भाव से यह विद्या वशवर्त्तिनी हो जाती है, हे कृपामय! उस-उस भाव का रहस्य मुझसे कहिये।।१।।

ईश्वर उवाच

त्रिविधस्तु भवेद्भावो दिव्यो वीरः पशुः क्रमात् ।
उत्तमो मध्यमश्चैव निन्दितः शक्तिसाधने ॥२॥

ईश्वर कहते हैं—शक्ति साधन के तीन भाव हैं—दिव्य, वीर तथा पशु। इनमें से यथाक्रम से दिव्य को उत्तम, वीर को मध्यम तथा पशु को अधम भाव कहा जाता है।।२।।

कथ्यते दिव्यभावस्तु य उत्तम उदाहृतः ।
पुंस्त्रीरूपं समाश्रित्य जगदेतत् प्रवर्त्तते ॥३॥

अब उत्तम दिव्य भाव को कहते हैं। इसका आश्रयण करके ही स्त्री तथा पुरुष के रूप से यह जगत् चलता रहता है (अर्थात् स्त्री तथा पुरुष से जगत् चलता रहता है)।।३।।

शिवशक्तिमयं सर्वमभेदेनैव पश्यति ।
न विधिर्न निषेधोऽस्ति कार्याकार्यविचारणा ।
यद्यत् सुखकरं लोके तत्तदेव हि चिन्तयेत् ॥४॥

दिव्य भाव में अभेद से सब स्थान पर शिव-शक्तिमय अभेद दर्शन होता है। उसमें कोई विधि-निषेध नहीं है। कार्य-अकार्य का विचार नहीं है। इस लोक में जो-जो सुखकर है, उसकी-उसकी ही अनुभूति होती है।।४।।

वीरश्च परमेशानि! विद्योपासनभावने ।
सदा शिवमयो भूत्वा समयोपासनं चरेत् ॥५॥

समया शक्तिः।

हे परमेशानि! विद्या की उपासना में तथा भावना में साधक जब शिवमय होकर शक्ति (समया) की उपासना करता है, तब वह वीर होता है।।५।।

पुंसो रूपं स्त्रिया रूपं शिवशक्त्यादिकं प्रिये! ।
तत्तदात्मतया पश्येज्जगदेतच्चराचरम् ॥६॥

हे प्रिये! शिव-शक्त्यादि सब कुछ पुरुषस्वरूप तथा स्त्रीस्वरूप है। इस चराचर जगत् को शिव-शक्तिस्वरूप देखना चाहिये।।६।।

देशे वा नगरे ग्रामे चत्वरे वा चतुष्पथे ।
पर्वतस्य गुहामध्ये शिखरे वा मनोहरे ॥७॥
तद्वदेकतरौ स्थाने प्रान्तरे निर्जनेऽपि वा ।
शून्यागारे नदीकूले उद्याने कानने शुभे ॥८॥
प्रदीपमालासुभगे रम्ये वा भूमिसद्मनि ।
जपहोमादिभिर्युक्तो देव्याः पूजां समाचरेत् ॥९॥

देश में अथवा नगर में, ग्राम में अथवा चौराहे पर, पर्वत की गुफा में अथवा पर्वतशिखर पर अथवा मनोहर स्थान में, इसी प्रकार एक तरु स्थान (पेड़ के पास) अथवा प्रान्तर किंवा निर्जन स्थान में अथवा शून्य गृह में, नदी के तट पर अथवा बाग में अथवा सुन्दर कानन में अथवा दीपमालिका से शोभित मनोहारी स्थान में अथवा मनोहर भूमि में या पथ में जप-होमादि से युक्त होकर देवी की पूजा करनी चाहिये।।७-९।।

यतः सा परमेशानी स्त्रीरूपा जगति स्थिता ।
तस्माद्विधानतो देवि! पूजयेत्ताः प्रयत्नतः ॥१०॥

हे देवि! यह परमेशानी स्त्रीरूपेण जगत् में अवस्थिता है। अतः यथाविधान से स्त्रीगण का पूजन करना चाहिये।।१०।।

द्वितीयवत्सरादूर्ध्वमष्टवर्षावधि प्रिये! ।
बालेति कीर्त्तिता द्रव्यैः पूजयेद् बालकप्रियैः ॥११॥

हे प्रिये! द्वितीय वर्ष से ऊपर आठ वर्ष तक के उम्र की बालिका को बाला कहते हैं। बालकों को प्रिय लगने वाले द्रव्यों से इस बालिका का पूजन करना चाहिये।।११।।

ततः षड्वर्षपर्यन्तं विज्ञेया हि कुमारिका ।
तस्मादष्टदशाब्दान्तं ज्ञातव्यो वीरवन्दिते ॥१२॥

युवतीति समाख्याता प्रमदाभावगर्विता।
विशेषतः पूजनीया नानाद्रव्यैर्मनोहरैः ॥१३॥

आठ वर्ष के पश्चात् और छः वर्ष पर्यन्त अर्थात् १४ वर्ष पर्यन्त स्त्री को कुमारी कहते हैं। हे वीरवन्दिते! इस प्रकार १४ वर्ष से आरम्भ करके अट्ठारह वर्ष अर्थात् ३२ वर्ष तक वाली स्त्री को युवती कहते हैं। वह प्रमदाभाव से गर्वित होती है। मनोहर नाना द्रव्य से उसका पूजन करना चाहिये।।१२-१३।।

ततोऽष्टादशपर्यन्तं योषितो भावतत्पराः।
सामान्याः शक्तयस्तास्तु सम्पूज्या वीरवन्दिते! ॥१४॥

हे वीरवन्दिते! अब ३२ से प्रारम्भ करके १८ वर्ष पर्यन्त अर्थात् ५० वर्ष-पर्यन्त स्त्रीगण भावपरायण रहते हैं। वे सामान्य शक्ति हैं। ये भी पूज्य हैं।।१४।।

ततोऽपि दशपर्यन्तं यदि वैदग्ध्यसंयुता।
कामसंसक्तहृदया योषाः स्युः समयार्चने ॥१५॥

इस प्रकार और दश वर्ष अर्थात् ६० वर्ष-पर्यन्त यदि वे रसिकता से युक्त तथा कामासक्त चित्त वाली हैं तब शक्तिपूजन में उनको भी प्रयुक्त किया जा सकता है।।१५।।

षष्टिवर्षाधिकानान्तु द्रव्यैः सन्तोषणं चरेत्।
न ग्राह्याः परमेशानि! समयार्चनकर्मणि ॥१६॥

६० वर्ष से अधिक की स्त्रियों को नाना द्रव्य से सन्तुष्ट करे। हे परमेशानि! समया (शक्ति) पूजा कार्य में उनको नहीं लेना चाहिये।।१६।।

गुर्वर्चनं विना देवि! विना योषित्प्रपूजनम्।
सिद्धिर्न जायते देवि! जपहोमादिपूजनैः ॥१७॥

हे देवि! गुरु की अर्चना विना तथा स्त्री के पूजन के विना जप-होमादि पूजन में सिद्धि नहीं मिलती।।१७।।

योषित् प्रपूजने देवि! यस्योपेक्षा प्रवर्त्तते।
मन्त्राः पराङ्मुखास्तस्य देवता विमुखी यतः ॥१८॥

हे देवि! स्त्री की पूजा में जो उपेक्षा करते हैं, मन्त्र उनसे मुह मोड़ लेते हैं; अतः देवता भी उससे विमुख हो जाते हैं।।१८।।

एका चेत् पूजिता शक्तिः पूजिताः सर्वदेवताः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शक्तीनां पूजनं चरेत् ॥१९॥

यदि एक भी शक्ति (स्त्री) की पूजा हो जाती है तब उससे समस्त देवता पूजित हो जाते हैं। अतएव सर्व प्रयत्न से शक्ति का पूजन करना चाहिये।।१९।।

दृष्ट्वा तु प्रमदां रम्यां देवीं ध्यात्वा हृदम्बुजे।
वीरः परामृशेद् विद्यां तस्याः सन्तोषणं चरेत् ॥२०॥

वीर साधक मनोरमा स्त्री को देखकर हृदय कमल में देवी का ध्यान करके विद्या का स्मरण करे तथा उसके सन्तोष का विधान करे।।२०।।

पुष्पगन्धानुलेपाद्यैरभावे प्रियभाषितैः।
तदाज्ञापालनेनैव तद्वशत्वं समाचरेत् ॥२१॥

पुष्प-गन्धादि के अनुलेपनादि द्वारा, इन सबके न होने पर प्रिय भाषण द्वारा तथा उसकी आज्ञा के पालन द्वारा उसे वश में करने का आचरण करे।।२१।।

युवतीनां कुमारीणामिष्टसम्भाषणैः प्रिये!।
परिहासवचोभिश्च तासां प्रियचिकीर्षितैः ॥२२॥
एका चेत् युवती क्वापि पूजिता जगतीतले।
पूजिता शक्तयः सर्वा योगिन्यः सर्वदेवताः ॥२३॥
लीलालास्यप्रकाशैश्च तासामालोकनादिभिः।
विहरेत् सततं वीरस्तदा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥२४॥

हे प्रिये! युवती तथा कुमारी को प्रिय लगने वाली बातचीत से, परिहास वाक्य से तथा उनका प्रिय करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। इस संसार में कहीं भी यदि एक युवती की पूजा साधक द्वारा कर दी जाती है तब उसी से समस्त शक्ति, समस्त योगिनी तथा समस्त देवगण पूजित हो जाते हैं। लीला-लास्य के प्रकाशन द्वारा स्त्री को देखने के अनन्तर उसके सन्तोष का विधान करके वीर साधक सदा विहार करे। इससे वह सिद्धियों का अधिपति हो जाता है।।२२-२४।।

दृष्ट्वा तु प्रमदां वीरस्तस्याः कृत्वा प्रियं प्रिये।
देवीं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं कृतकृत्यो भवेत्स्वयम् ॥२५॥

हे प्रिये! वीर साधक प्रमदा को देखकर उसका प्रिय करके देवी का ध्यान करे और मन्त्र जपे। इससे वह कृतकृत्य हो जाता है।।२५।।

सस्मेरवदनं तासां वक्षोजयुगलं तथा।
दृष्ट्वा स्मृत्वा परां विद्यां सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥२६॥

उनके मन्दहास्यमय मुख तथा स्तनयुगल को देखकर पराविद्या का स्मरण करके साधक उत्तम सौभाग्य प्राप्त करता है।।२६।।

विलोक्य नाभिकूपस्तु स्मृत्वा विद्यां भवेत् शिवः।
यदि पश्यति भोग्येन पूर्णं तं योनिमण्डलम् ॥२७॥
स्मृत्वा विद्यां तदा वीरो ध्यात्वा कामकलामपि।
आनन्दहृदयो भूत्वा तद्दिनं सफलं स्मरेत्।
अवश्यमिष्टं लभते तस्मिन्नहनि निश्चितम् ॥२८॥

उनके नाभिगृह को देखकर साधक पराविद्या का स्मरण करके शिवरूपता प्राप्त करते हैं। यदि भाग्य से कोई पूर्ण योनिमण्डल का दर्शन करता है, तब वीर साधक जिसने ऐसा दर्शन किया है, विद्या का तथा कामकला का स्मरण तथा ध्यान करके आनन्दचित्त होकर उसी दिन स्मरण करे। उसे उसी दिन इष्टलाभ होना निश्चित है।।२७-२८।।

समये पशुभावस्तु निन्दितस्याद्य एव च।
कथ्यते कौतुकेनैवमिदानीं श्रूयतां प्रिये! ॥२९॥

शक्ति-साधना के निन्दित भावों में पशुभाव प्रथम है। हे प्रिये! यहाँ वह पशुभाव कौतूहल के साथ कहता हूँ, उसे सुनो।।२९।।

सविकल्पः सदा देवि! संशयात्मा क्रियारतः।
सन्देहनिन्दानिरतः स्नानमात्रात्मशुद्धिकृत् ॥३०॥

हे देवि! पशु सदा विकल्प चित्त तथा संदेहपूर्ण हृदय वाला होता है; किन्तु वह क्रिया में रत होकर भी दिव्यादि भाव के प्रति निन्दा तथा सन्देह का भाव रखता है। वह मात्र स्नान को ही आत्मशुद्धि समझता है।।३०।।

उपवासव्रतपरः फलमूलाशनप्रियः।
इतिहासपुराणादिकथाश्रवणतत्परः ॥३१॥

वह उपवास तथा व्रत में लगा हुआ तथा फल मूल खाने को प्रिय मानने वाला और इतिहास-पुराण की कथा सुनने में तत्पर रहने वाला होता है।।३१।।

तत्रापि शक्तिकल्पोक्तप्रसङ्गेषु पराङ्मुखः।
त्रिरात्रादि व्रती युक्तस्तीर्थपर्यटनादिषु ॥३२॥

तथापि वह शक्तिकल्प के प्रसंगों को सुनने से विमुख रहता है। वह त्रिरात्रादि व्रत-परायण तथा तीर्थाटनादि में लगा रहता है।।३२।।

हयमेधादियज्ञेषु हिंसासन्दिग्धचेतनः।
कायक्लेशेन धर्मेण सादरः क्लेशमानसः ॥३३॥

अश्वमेधादि यज्ञादि में हिंसा के प्रति वह संदिग्ध चित्त रहता है। शरीर को कष्ट देने वाले धर्म के द्वारा क्लिष्ट होकर भी उसे आदर की दृष्टि से देखता है।।३३।।

परदोषानुसन्धायी विमूढः कुलदूषकः।
न मांसं मत्स्यमश्नाति न तैलेनानुलेपनम् ।।३४।।

वह दूसरे के दोष को देखने वाला, विमूढ़ एवं कुलदूषक होता है। मत्स्य-मांस का भोजन नहीं करता और तेल का लेपन भी नहीं करता।।३४।।

ताम्बूलं नादृतं खादेत्त्यजेत् योषित्कथामपि।
अनृतौ न स्त्रियं गच्छेदृतौ गच्छेत्स्वकं स्त्रियम् ।।३५।।

पशु ताम्बूल नहीं खाता। स्त्रीगण से बात नहीं करता। जबतक ऋतुकाल न हो सहवास भी नहीं करता। ऋतुकाल में ही अपनी स्त्री के पास जाता है।।३५।।

कदाचिदपि देवेशि! पथि दृष्ट्वा वराङ्गनाम्।
व्रजत्यधोमुखो भूत्वा दूरं याति समीपतः।
एवं बहुविधो भावः कथितः समयार्चने ।।३६।।

हे देवेशि! रास्ते में कदाचित् वराङ्गना को देखकर अधोमुख होकर गमन कर जाता है। दूर-दूर रहता है। इस प्रकार से अनेक भाव से शक्तिपूजन कहा गया है।।३६।।

समयातन्त्रे—

आनन्दार्थं साधकेन्द्रो मादकद्रव्ययोगतः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति सदाशिवमयो भवेत् ।।३७।।

समयातन्त्र के अनुसार साधक श्रेष्ठ आनन्द के लिये मादक द्रव्य लेकर समस्त सिद्धि प्राप्त करते हैं और उससे वे सदा शिवमय रहते हैं।।३७।।

सदा कालं जपेद्विद्यां सदा ध्यानं समाचरेत्।
सदा कालं गुरुं नत्वा सहस्रारे तदाज्ञया ।।३८।।
मूलाधारात्समुत्थाप्य कुण्डलीं कुलवर्त्मना।
अकुलस्थे मनो वश्यं विधाय समयेश्वरि ।।३९।।
तस्मादुत्थितधाराभिराप्लाव्य च निजां तनूम्।
आनीय कुण्डलीं शक्तिं पुनर्मूले नियोजयेत् ।।४०।।

सभी समय विद्या का जप करते रहना चाहिये। सभी समय उसका ध्यान करना चाहिये। सभी समय गुरु को प्रणाम कर उनकी आज्ञा लेकर मूलाधार से कुण्डलिनी को जगाकर कुलपथ से सहस्रार में परमात्मा में मन को लगाना चाहिये। हे समयेश्वरि!

उस सहस्रार तक उत्थित धारासमूह द्वारा अपने शरीर को आप्लावित करके पुनः कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार में स्थापित करना चाहिये।।३८-४०।।

इति भावः परः कामकलां ध्यात्वा निजां तनूम्।
सर्वसिद्धिं समासाद्य साधको मरणं त्यजेत्।।४१।।

इति कुलाचारनिरूपणम्

अपने देह को कामकलारूप से ध्यान करके समस्त सिद्धियों का लाभ करके साधक मृत्युजयी होता है।।४१।।

●

अथान्तर्यागः

यथा समयातन्त्रे—

ततश्च भुक्तिमुक्त्यर्थमन्तर्यागं समाचरेत्।
मूर्ध्नि पद्मं सहस्रारं श्वेतवर्णमधोमुखम्॥१॥

अब अन्तर्याग कहा जाता है। समयातन्त्र के अनुसार तत्पश्चात् भोग तथा मुक्ति के लिये अन्तर्याग का अनुष्ठान करे। मस्तक में अधोमुखी सहस्रार कमल है।।१।।

तस्य मध्यस्थितं ध्यायेद् गुरुं शान्तं सशक्तिकम्।
तयोः पदाम्बुजं नत्वा तयोराज्ञां प्रगृह्य च॥२॥
मूलाधारे कुण्डलाख्या प्रसुप्तभुजगाकृतिम्।
उद्यदादित्यसङ्काशं विद्युच्चारुनिभद्युतिम्॥३॥
ताञ्च मूर्त्तिमतीं ध्यात्वा स्वयम्भुलिङ्गयोगतः।
रसयित्वा पुनस्ताञ्च तेजोरूपाञ्च कुण्डलीम्॥४॥

उस सहस्रार पद्म के मध्य में स्थित शक्तियुक्त शान्त गुरु का ध्यान करे। शक्ति तथा गुरु के चरणकमल को प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर मूलाधार में प्रसुप्त सर्प के समान आकृति वाली उदीयमान सूर्य के समान विद्युत् के समान चारु द्युति वाली कुण्डलिनी शक्ति का मूर्त्तिमती ध्यान करके स्वयंभूलिङ्ग मिलन से उस तेजोरूपा कुण्डलिनी को आनन्दित करे।।२-४।।

तां समुत्थाप्य तत्पद्मभेदेन कमलानने!।
स्वाधिष्ठानपद्ममन्यन्मणिपूरञ्च सुन्दरि॥५॥
सुषुम्नान्तःपथेनैव चालयेत्तामनाहतम्।
लिङ्गेन रसयित्वा तु पूर्ववत् साधकोत्तमः॥६॥
पूर्ववत् प्रकृतिं नीत्वा भित्वाऽनाहतपङ्कजम्।
विशुद्धाख्यां कण्ठदेशे नयेदाज्ञाख्यपङ्कजम्॥७॥
ईश्वराख्येन लिङ्गेन भ्रुवोर्मध्ये च पूर्ववत्।
रसयित्वा कुण्डलिनीं पूर्ववच्चालयेत् क्रमात्॥८॥
सहस्रारे समुत्थाप्य कुण्डलीं कुण्डलाकृतिम्।
देवीं रूपवतीं कामसमुल्लासविहारिणीम्॥९॥

हे कमलानने! हे सुन्दरि! इस पद्मभेद से उसे जगाकर स्वाधिष्ठान, तत्पश्चात् मणिपूर तथा अनाहत पद्मों में क्रमशः चालित करे। साधकश्रेष्ठ उसे पूर्ववत् रसमय लिङ्ग के साथ मिलन से आनन्दित करके पूर्ववत् अनाहत का भेदन करके उसे कण्ठदेशस्थ विशुद्ध पद्म में तथा पुनः उसका भेदन करते हुये भ्रूमध्य के आज्ञाचक्र में ले जाय। वहाँ उसे ईश्वर नामक लिङ्ग के साथ मिलन कराकर कुण्डलिनी को आनन्दित करके पूर्ववत् उन कुण्डलाकृति देवी रूपवती कामसमुल्लास-विहारिणी कुण्डलिनी को उत्थापित करके पूर्ववत् क्रमशः सहस्रार पद्म-पर्यन्त ले जाय।।५-९।।

सहस्रदलमध्यस्थं चन्द्रमण्डलमध्यगम्।
चिदानन्दमयज्ञानं रूपं ध्यायेत् सदाशिवम्।।१०।।
स्वच्छस्फटिकसङ्काशं सर्ववक्तारमव्ययम्।
कारणं सर्वभूतानां श्वेतप्रेताकृतिं प्रभुम्।
लिङ्गानन्दस्वभावन्तु परमानन्दरूपिणम्।।११।।

सहस्रदल-मध्यस्थ चन्द्रमण्डल मध्यगत सदाशिव का शुद्ध स्फटिक के समान, सर्वत्र, अव्यय, सर्वभूतों के कारण, श्वेत प्रेताकार, लिङ्गानन्दस्वरूप, परमानन्दरूपी, चिदानन्दमय ज्ञानरूप से ध्यान करे।।१०-११।।

ततो भगवतीं भाव्यं भगानन्दसुखावहाम्।
तेन संयोजयेत्तान्तु कामसिञ्चनकारिणीम्।।१२।।

तदनन्तर भगानन्द सुखावह भगवती की भावना करके कामसिद्धिकारिणी भगवती को उन सदाशिव के साथ मिलन कराये।।१२।।

अन्योन्यसङ्गमोल्लाससमुत्कण्ठितयोः परम्।
सामरस्यं तयोः कुर्यात् संयोगानन्दलक्षणम्।।१३।।

साधक परस्पर मिलन के उल्लास से समुत्कण्ठित दोनों के संयोगानन्द-स्वरूप परम सामरस्य का अनुभव करे।।१३।।

तदुद्भवामृतस्यन्दरसपूर्णमहार्णवैः।
निमज्जन् सुधया देहं देवतांस्तर्पयेत्तया।।१४।।

उस सामरस्य से उत्पन्न अमृत रस से परिपूर्ण महार्णव में निमज्जित होकर (अपने स्वात्मबोध को निमज्जित कराकर) उस सुधा से देवता तथा देह का तर्पण करना चाहिये।।१४।।

स्वयमेनां सुधाधारां पीत्वा पीत्वा पुनः पुनः।
तत्कुलामृतपातेन मत्तवद् विचरेत्ततः।।१५।।

साधक स्वयं भी इस सुधाधारा का पुनः पुनः पान करके इस कुलामृत-पान द्वारा मत्त होकर जगत् में विचरण करता है।।१५।।

एवमानन्दहृदयो भूत्वा साधकसत्तमः ।
निर्विकल्पेन मनसो बहिर्यागं समाचरेत् ।।१६।।

इस प्रकार से आनन्दपूर्ण हृदय वाला होकर साधकों में उत्तम व्यक्ति निर्विकल्प मन से बहिर्याग (होमादि) का अनुष्ठान करे।।१६।।

एवञ्च—

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पतित्वा धरणीतले ।
उत्थाय च पुनः पीत्वा जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।।१७।।

इत्यादि वचनमप्येतत् परमिति ध्येयम्।

और भी कहा गया है कि इस सुधा का पान करके, बार-बार पान करके धरणीतल (मूलाधार) में प्रत्यावर्तन करे। पुनः उठकर पान करे। ऐसा साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। यह समस्त वचन अन्तर्याग के लिये कहा गया है।।१७।।

अथान्तर्यागस्य प्रकारान्तरम्

यथा तन्त्रान्तरे—

अथान्तर्यजनं वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम् ।
गुरुं ध्यात्वा प्रकुर्वीत यथापूर्वं विशालधीः ।।१८।।

अब अन्तर्याग को प्रकारान्तर से कहते हैं, जैसा कि अन्य तन्त्र में कहा गया है। विशाल बुद्धि वाला साधक गुरु का ध्यान करके पूर्व में कही गयी विधि से अन्तर्याग करे।।१८।।

स्नात्वा च विमले तीर्थे पुष्करे हृदयाश्रिते ।
विन्दुतीर्थेऽथवा स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।१९।।

हृदय में स्थित (अथवा हृदयाश्रित) पुष्कर तीर्थ में अथवा बिन्दुतीर्थ में स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता।।१९।।

अथवा—

इडासुषुम्नाशिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाम्बुपूर्णे वहतः शरीरे ।
ब्रह्माम्बुभिः स्नाति तयोः सदा यः किन्तस्य गाङ्गैरपि पौष्करैर्वा ।।२०।।

इति स्नानम्।

अथवा इस शिवतीर्थ रूप शरीर में ज्ञानपूर्ण इडा और सुषुम्नारूपी दो नदियाँ प्रवाहित हैं। इनके ज्ञानरूपी जल में जो स्नान करता है, उसका गंगा अथवा पुष्कर में स्नान का कोई प्रयोजन नहीं है।।२०।।

शिवशक्त्योः समायोगो यस्मिन् काले प्रजायते।
सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां समाधेस्तु प्रजायते ॥२१॥

इति सन्ध्या।

जब शिव-शक्ति का मिलन होता है तभी कुलनिष्ठ कौल के लिये सन्ध्या होती है। यह समाधि से जन्म लेती है।।२१।।

मूलाधारात् कुण्डलिनीं सोमसूर्यादिरूपिणीम्।
उत्थाय बिन्दुं निर्भिद्य देवतां तेन तर्पयेत् ॥२२॥

सोम, सूर्य तथा अग्निरूपी कुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर बिन्दुभेद करके उस बिन्दु द्वारा देवता का तर्पण करे।।२२।।

नवरत्नेश्वरे—

चन्द्रार्कानलसंघट्टाद् गलितं यत् परामृतम्।
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत् परदेवताम् ॥२३॥
ब्रह्मरन्ध्रादधोभागे यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम्।
कलासारेण सम्पूर्णं तर्पयेत्तेन खेचरीम् ॥२४॥

इति तर्पणम्।

नवरत्नेश्वर में कहा गया है कि चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि के संघट्ट (चालन-मन्थन) से जो परामृत गलित होता है, उस दिव्य अमृत द्वारा परमदेवता का तर्पण करना चाहिये। ब्रह्मरन्ध्र के अधोभाग में उत्तम चान्द्रपात्र है, वह कलासार के द्वारा सम्पूर्ण है। उसके द्वारा खेचरी का तर्पण करना चाहिये।।२३-२४।।

अथ ध्यानम्—

किरणस्थं तदग्निस्थं तदा भास्करमध्यगम्।
महाशून्ये लयं कृत्वा पूर्णस्तिष्ठति योगिराट् ॥२५॥

अब ध्यान कहते हैं—ऐसा योगिराज किरणस्थ, अग्निस्थ तथा भास्कर के मध्यगत महाशून्य में (स्वयं को) लय करके पूर्णत्व प्राप्त करके अवस्थान करता है।।२५।।

अथवा—

निरालम्बे पदे शून्ये यत्तेज उपजायते ।
तद्गर्भमभ्यसेन्नित्यं ध्यानमेतद्धि योगिनाम् ॥२६॥

तद्गर्भमिति अन्तःकरणस्थमभ्यसेदित्यर्थः ।

अथवा निरालम्ब शून्य पद में जिस तेज का आविर्भाव होता है, उसे अन्त:करणस्थ करने का अभ्यास करे। यह योगियों का ध्यान होता है।।२६।।

अथ पूजा—मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य हृदयादर्कमण्डलं नीत्वा सहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतचन्द्रान्तसुधाधारया मूलमन्त्रं स्मरन् सिञ्चेदिति ॥२७॥

अब पूजा कहते हैं—मूलाधार से कुण्डलिनी को उठाकर हृदय से सूर्यमण्डल में लाये और सहस्रदल कमल की कर्णिका के अन्तर्गत चन्द्र के मध्यस्थ सुधाधारा द्वारा मूल मन्त्र का जप करते हुये उसका सिंचन करे।।२७।।

तथा—

अर्चयन् विषयैः पुष्पैस्तत्क्षणात् तन्मयो भवेत् ।
न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहंभावेन पूजयेत् ॥२८॥

तन्मयेति तदेकत्वं ज्ञानं सोऽहमिति।

और विषय रूप पुष्प से पूजा करते-करते तत्क्षण तन्मय हो जाय। यह तन्मयता बुद्धि ही न्यास है। 'सोऽहं भाव से पूजन करना चाहिये।।२८।।

तन्मय पद का अर्थ है—पूज्य देवता के साथ यह भाव कि 'यह मैं हूँ'।

मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोतानि परिभावयेत् ।
तामेव परमे व्योम्नि परमामृतबृंहिते ।
दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजाहोमादिभिर्विना ॥२९॥ इति।

मन्त्र के अक्षर कुण्डलिनी में ग्रथित हैं, यह भावना करनी चाहिये। बाह्य जप होमादि के विना ही यह भावना आत्मसाक्षात्कार कराती है।।२९।।

चिच्छक्तौ कुण्डलिन्याम्। प्रोतानि ग्रथितानि। तामेव चिच्छक्तिमेव व्योम्नि आत्मनीत्यर्थः ॥३०॥

चिच्छक्तौ = कुण्डलिनी में। प्रोतानि = ग्रथित। तामेव = चिच्छक्ति में ही। व्योम्नि = आत्मा में।।३०।।

अथ होमः—आत्मानमपरिच्छिन्नं विभाव्यात्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मरूपं चतुरस्त्रचित्कुण्डमानन्दमेखलायुतं अर्द्धमात्राकृतियोनिविभूषितं नाभौ ध्यात्वा तन्मध्यस्थज्ञानाग्नौ जुहुयात् ॥३१॥

अब होम कहते हैं। आत्मा की अपरिच्छिन्न रूप से भावना करके आनन्दरूप मेखला से युक्त अर्द्धमात्राकृति योनि (अर्द्धमात्रा ही जिसकी योनि है) विभूषित आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मस्वरूप का चतुरस्त्र चित्कुण्ड नाभि में ध्यान करके उसका इसी ज्ञानाग्नि में हवन करे।।३१।।

यथा मूलान्ते—

नाभिचैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्त्रुचा।
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहं स्वाहा ॥३२॥

अनेन प्रथमाहुतिम्।

मूलमन्त्र के अन्त में 'नाभिचैतन्य' इत्यादि से ज्ञानप्रदीप्त नाभि-स्थित चैतन्यरूप अग्नि में हविः से भरे मनरूप स्त्रुवा द्वारा मैं अक्षवृत्ति अर्थात् इन्द्रियवृत्तिसमूह का हवन करता हूँ। इस प्रकार से मन्त्रार्थ का स्मरण करते हुये ऊपर मूल संस्कृत में कहे मन्त्रश्लोक द्वारा प्रथम आहुति (अन्तर्याग में) प्रदान करे। (उक्त मन्त्र श्लोक ३२ में कहा गया है)। अर्थात् पहले अपने गुरु से प्राप्त मूल मन्त्र लगाये, तदनन्तर यह श्लोक पढ़कर स्वाहा कहे। यह प्रथम आहुति होती है।।३२।।

मूलान्ते—

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्त्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा ॥३३॥

इति द्वितीयाहुतिम्।

तत्पश्चात् मूल मन्त्र के अन्त में यह लगाये कि धर्म तथा अधर्मरूप हवि से दीप्त आत्मरूप अग्नि में सुषुम्ना मार्ग से मनोरूप स्त्रुवा से मैं नित्य अक्षवृत्ति का अर्थात् इन्द्रियवृत्ति का हवन करता हूँ। पहले गुरु-प्रदत्त मन्त्र कहकर इस श्लोक को पढ़े और अन्त में स्वाहा कहकर मानसिक भावनात्मक आहुति प्रदान करे। यह द्वितीय आहुति होती है।।३३।।

मूलान्ते—

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्त्रुचा।
धर्माधर्मफलस्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहं स्वाहा ॥३४॥

इति तृतीयाहुतिं जुहुयात्।

तदनन्तर गुरु से प्राप्त मूल मन्त्र के अन्त में ऊपर लिखा यह श्लोक लगाकर अन्त में स्वाहा का उच्चारण करना चाहिये। श्लोक का अर्थ है कि प्रकाश तथा आकाशरूप हस्तद्वय से धारण किये गये उन्मनीरूप स्रुवा से धर्म तथा अधर्मरूप स्नेहपूर्ण (तैलीय पदार्थ से पूर्ण) अक्षवृत्तिसमूह (इन्द्रियवृत्तिसमूह) का मैं होम करता हूँ। यह तृतीय आहुति होती है।।३४।।

ततो मूलान्ते—

अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने
मायान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकाशभूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधादि शिवावसानं स्वाहा ।।३५।।

इति चतुर्थाहुतिः जुहुयात्।

अब गुरु से प्राप्त मूल मन्त्र के अन्त में यह श्लोक पढ़कर स्वाहा कहे। श्लोक का अर्थ है—अन्तः में विना ईन्धन के प्रज्वलित मायारूप अन्धकार की परिपन्थी (निवारण करने वाले) अद्भुत भाव से मरीचि की विकासभूमि जो संवित् रूप कोई अग्नि है, उसमें पृथ्वी से लेकर शिव तक के समस्त विश्व का मैं होम करता हूँ। अन्तर्याग में इस प्रकार की भावना द्वारा आहुति प्रदान करे। यह चतुर्थ आहुति होती है।।३५।।

इत्यन्तर्यजनं कृत्वा साक्षाद् ब्रह्ममयो भवेत्।
न तस्य पुण्यपापानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।।३६।।

अयमन्तर्यागो ज्ञानिनामेव।

इस प्रकार अन्तर्याग करने वाला साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है। उसे पुण्य-पाप का स्पर्श नहीं होता। वह निश्चित ही जीवन्मुक्त हो जाता है। यह अन्य का कर्त्तव्य नहीं है। इसे केवल ज्ञानी ही कर सकते हैं।।३६।।

●

अथ कुमारीपूजा

यामले—

एकवर्षा भवेत् सन्ध्या द्विवर्षा सा सरस्वती।
त्रिवर्षा च त्रिधामूर्त्तिश्चतुर्वर्षा च कालिका ॥१॥

अब कुमारी-पूजन कहते हैं। यामल के अनुसार कन्या एक वर्ष की सन्ध्या, दो वर्ष की सावित्री, तीन वर्ष की त्रिधामूर्त्ति तथा चार वर्ष की कालिका कहलाती है।।१।।

सुभगा पञ्चवर्षा च षड्वर्षा च उमा भवेत्।
सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा च कुञ्जिका ॥२॥
नवभिः कालसन्दर्भा दशभिश्चाऽपराजिता।
एकादशे च रुद्राणी द्वादशाब्दे तु भैरवी ॥३॥
त्रयोदशे महालक्ष्मिर्द्विसप्ता पीठनायिका।
क्षेत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे चाम्बिका मता ॥४॥

पञ्चवर्षीया कन्या को सुभगा तथा षड्वर्षीया को उमा कहते हैं। सात वर्ष की कन्या को मालिनी तथा अष्टवर्षीया को कुञ्जिका कहते हैं। नव वर्षीया को कालसन्दर्भा तथा दश वर्षीया को अपराजिता कहा गया है। ग्यारहवें वर्ष की कन्या को रुद्राणी कहते हैं तथा द्वादशवर्षीया का नाम भैरवी कहा गया है। त्रयोदश वर्षीया को महालक्ष्मी एवं द्विसप्ता (चौदह वर्षीया) को पीठनायिका कहते हैं। पन्द्रह वर्षीया को क्षेत्रज्ञा एवं सोलह वर्षीया को अम्बिका कहते हैं।।२-४।।

एवं क्रमेण सम्पूज्या यावत्पुष्पं न विद्यते।
प्रतिपदादि पूर्णान्तं वृद्धिभेदेन पूजयेत् ॥५॥

जब तक कन्या को ऋतु न हो जाय (ऋतुमती न हो जाय) तब तक उनकी पूजा इस क्रम से करे। प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा-पर्यन्त तिथि की वृद्धि तथा वयोवृद्धि भेद से कुमारी का पूजन करे।।५।।

महापर्वसु सर्वेषु विशेषाच्च पवित्रके।
महानवम्यां देवेशि! कुमारीञ्च प्रपूजयेत् ॥६॥
महानवम्यां यत्नेन स्नानाभरणभोजनैः।
कुमारी पूजनीया च भूषणीया च भूषणैः ॥७॥

हे देवेशि! समस्त महापर्व के दिनों में, पवित्र दिन में तथा महानवमी में विशेष भाव से कुमारी का पूजन करना चाहिये। महानवमी में स्नान, आभरण और भोजन के साथ यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये तथा भूषण से उसे भूषित करना चाहिये।।६-७।।

विधियुक्तं कुमारीभिर्भोजयेच्चैव भैरवीम्।
पाद्यमर्घ्यं तथा धूपं कुसुमं चन्दनं शुभम्॥८॥
भक्तिभावेन सम्पूज्य कुमारीभ्यो निवेदयेत्।
प्रदक्षिणत्रयं कुर्यादादौ मध्ये तथान्ततः।
पश्चाच्च दक्षिणा देया रजतस्वर्णमौक्तिकैः॥९॥

कुमारीगण के साथ भैरवी को विधिपूर्वक भोजन कराये। भक्तिभाव से पूजा करके कुमारीगण को पाद्य, अर्घ्य, धूप, पुष्प तथा सुगन्धित चन्दन प्रदान करे। उनकी पूजा के आदि में, मध्य में तथा अन्त में प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर चाँदी, स्वर्ण और मोती के साथ दक्षिणा देकर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये।।८-९।।

तथा—

विवाहयेत् स्वयं कन्यां ब्रह्महत्या विनश्यति।
गोहत्या च स्त्रीहत्या सर्वं पापं प्रणश्यति॥१०॥
यो यस्य पुण्यकाले तु कन्यादानं प्रकल्पयेत्।
भुक्तिमुक्तिफलं तस्य सौभाग्यं सर्वसम्पदः।
रुद्रलोके वसेन्नित्यं त्रिनेत्रो भगवान् हरः॥११॥

तन्त्र में कहा गया है कि साधक कन्या का विवाह कराये। इससे ब्रह्महत्या, गोहत्या तथा स्त्रीहत्या के साथ-साथ अन्य सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पुण्य काल में कन्यादान का निश्चय कर लेता है उसे भोग, सौभाग्य तथा सम्पत्ति का लाभ होता है एवं अन्त में मोक्षफल प्राप्त करके रुद्ररूप होकर रुद्रलोक में निवास करता है।।१०-११।।

तीर्थकोटिसहस्राणि अश्वमेधशतानि च।
तत्फलं लभते सद्यो यस्तु कन्यां विवाहयेत्॥१२॥
बालुकाः सागरे ज्ञेयास्तावदब्दसहस्रकम्।
एकैककुलमुद्धृत्य रुद्रलोके महीयते॥१३॥

वह एक कुल का उद्धार करके (कन्या के कुल का विवाह कराकर) उतने सहस्र वर्षों तक रुद्रलोक में पूजित होता है जितने कि सागर के किनारे बालुका कण होते हैं। उसे एक हजार करोड़ तीर्थगमन का तथा एक सौ अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।।१२-१३।।

कन्यादानन्तु तत्तद्देवताप्रीतये इति सम्प्रदायः। वस्तुतस्तु तत्तद्वर्षीयायाः कन्यायास्तत्तत् परिभाषामनुसन्धाय देवीबुद्ध्या शिवरूपत्वेन ध्याताय सम्प्रदानाय दानं साधीयः ॥१४॥

कन्यादान उन-उन देवता की प्रीति के लिये किया जाता है, यह किन्हीं का कथन है। वास्तव में उस वर्ष की कन्या का वह नाम अनुसन्धान करे (जैसे एक वर्ष की कन्या सन्ध्या कहलाती है)। अब उस कन्या की देवीबुद्धि से भावना करे तथा स्वयं को शिवरूप माने। यह कन्यादान श्रेष्ठ होता है। इस भावना से कन्यादान करना चाहिये।।१४।।

विशेष—कुमारी-पूजा से जपादि सभी सफल हो जाते हैं, यह ज्ञानार्णव तन्त्र का वचन है।

अथ यद्यपि दूतीयागात्मककुलपूजा शक्तिशोधनकुलपुरश्चरणानि वीर-भावपूजा पञ्चमाश्रमिणामेव साध्यतया कर्त्तव्यतया चेदानीमनुपयुक्तानि तथापि तेषां विनोदायैव निरूप्यन्ते ॥१५॥

यद्यपि दूतीयागात्मक कुलपूजा शक्तिशोधन, कुलपुरश्चरण तथा वीरभाव की पूजा पञ्चमाश्रमी द्वारा ही साध्य है तथा मात्र उसी के लिये है, इस समय इस पञ्चमाश्रमी विधि को लुप्तप्राय जानकर उसकी अब प्रयोजनीयता नहीं है, तथापि (बौद्धिक) विनोदार्थ उसे निरूपित किया जा रहा है।।१५।।

●

अथ दूतीयागः

तत्रादौ विजयास्वीकारः विजयाकल्पे—

संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी।
संवित् प्रयोगस्तेनेह पूजादौ साधकोत्तमैः।
कर्त्तव्याश्च महापूजा करणीया सुनिश्चितैः ॥१॥

अब दूतीयाग कहते हैं। इसमें सर्वप्रथम विजया स्वीकार करना होगा (पान = ग्रहण)। विजयाकल्प में कहते हैं—विजया (संविदा) तथा आसव के बीच संविदा ही गरीयसी अर्थात् श्रेष्ठ है। इसलिये दूतीयाग की पूजा के आदि में साधकश्रेष्ठ द्वारा संवित् (भांग) का प्रयोग कर्त्तव्य है। इसके पश्चात् स्थिरचित्त साधक को महापूजा करनी चाहिये।।१।।

सा च चतुर्विधा शुक्ल-रक्त-पीत-कृष्णपुष्पभेदात् ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा च ॥२॥

यह चार प्रकार की होती है—शुक्ल को ब्राह्मणी, रक्त को क्षत्रिया, पीत को वैश्या तथा कृष्ण को शूद्र कहा जाता है। यह पुष्पभेद (विजया के पुष्प) से विभाग किया गया है।।२।।

तासां शुद्धिस्तु—

ॐ संविदे! ब्रह्मसम्भूते! ब्रह्मपुत्रि! सदानघे! ।
भैरवानाञ्च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा ॥३॥

ॐ ब्राह्मण्यै नमः स्वाहा।

ब्राह्मणी विजया के शुद्धिमन्त्र का अर्थ है कि हे संविदे, ब्रह्मभूत, हे ब्रह्मपुत्रि, हे सदा निष्पापे! भैरवों की तृप्ति हेतु तुम सदा पवित्र हो जाओ। मन्त्र है—ॐ ब्राह्मण्यै नमः स्वाहा।।३।।

ॐ सिद्धिमूले करे देवि! मूलाधारप्रबोधिनि! ।
राजपुत्रिवशङ्करि! शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि ॥४॥

ॐ क्षत्रियायै नमः स्वाहा।

क्षत्रिया विजया का स्तुति मन्त्रार्थ है—हे सिद्धिमूलकारिणि! हे देवि! हे मूलाधार का प्रबोधन करने वाली! हे राजपुत्रियों को वश में करने वाली, हे शत्रुकण्ठ-त्रिशूलिनि! तुम पवित्र हो जाओ। मन्त्र है—ॐ क्षत्रियायै: नम: स्वाहा।।४।।

ॐ अज्ञानेन्धनदीप्त्यग्निज्ञानाग्निज्वालरूपिणि! ।
आनन्दास्याहुतिं मत्वा सम्यक् ज्ञानं प्रयच्छं मे ॥५॥

ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा।

अब वैश्या विजया का स्तुति मन्त्र कहा जाता है। हे अज्ञानरूप ईन्धन से दीप्त अग्नि की अग्निशिखा ज्ञानाग्निस्वरूपिणि! हे सिद्धिमूलकारिणि! तुम हमारे अन्दर ज्ञानरूप अग्निशिखा-स्वरूपिणी हो, तुम आनन्दरूप समिधा द्वारा आहुति ग्रहण करके हमें सम्यक् ज्ञान प्रदान करो। ज्ञानरूप अग्नि को प्रज्ज्वलित करके उसमें आनन्दाहुति प्रदान करो। मन्त्र है—ह्रीं वैश्यायै नम: स्वाहा।।५।।

ॐ नमस्यामि नमस्यामि योगमार्गप्रदायिनि! ।
त्रैलोक्यविजये देवि! समाधिफलदा भव ॥६॥

श्रीं शूद्रायै स्वाहा।

अब शूद्रा विजया का स्तुतिमन्त्र कहा जाता है—हे योगमार्ग देने वाली! तुमको नमस्कार है। हे त्रैलोक्यविजये! मुझे समाधि का फल प्रदान करो। मन्त्र है—श्रीं शूद्रायै स्वाहा।।६।।

इत्येतैः प्रत्येकज्ञाने प्रत्येकं शोधयेत् इति।

इस प्रकार चारो वर्ण की विजया का ज्ञान प्राप्त कर मूलोक्त (ऊपर लिखे) मन्त्रों से सबका शोधन करना चाहिये।

सर्वासां शोधनं ॐ अमृते! अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धिं देहि अमुकं मे वशमानय स्वाहेति मन्त्रेण। प्रत्येकाज्ञाने त्वनेनैव। ततस्तदुपरि मूलमन्त्रं सप्तधा जप्त्वावाहनादिधेनुयोनिमुद्राः प्रदर्श्य दिग्बन्धनछोटिकातालत्रयदिव्यदृष्टिप्रायःपार्ष्णिघातैर्विघ्नान्निरस्य मूलमन्त्रेण ब्रह्मरन्ध्रे तया गुरुं सप्तधा सङ्केतमुद्रया सन्तर्प्य मूलान्ते अमुकदेवतां तर्पयामि स्वाहेति त्रिधा सन्तर्प्य ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि! स्वाहेति सङ्केतमुद्रया तत्त्वमुद्रया वा तां स्वीकुर्यात् ॥७॥

ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या शूद्रा का ज्ञान रहने पर प्रयोगानुसार जिस वर्ण का लेना हो, उसका तदनुरूप मन्त्र से शोधन करना चाहिये। सबके शोधन में 'ॐ अमृते,

अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धिं देहि अमुकं मे वश्यमानय स्वाहा' यह मन्त्र कहे। इत्यादि का स्मरण करते हुये ऊपर लिखे मन्त्रों से विजया का शोधन करे। यदि विजया की जाति (वर्ण) समझ में नहीं आती तब इसी मन्त्र से विजयाशोधन करे, जो 'ॐ अमृते' इत्यादि यहाँ अङ्कित है। अब विजया पर सात बार मूल मन्त्र का जप कर आवाहनादि मुद्रा, धेनु तथा योनि मुद्रा प्रदर्शित करके तीन बार ताली बजाकर चुटकी बजाकर दसो दिशाओं का बन्धन करके दिव्यदृष्टि (चारो ओर दृष्टि घुमाकर) से तथा पार्ष्णि के आघात द्वारा सकल विघ्न का निवारण करके मूल मन्त्र से उस सङ्केत मुद्रा द्वारा ब्रह्मरन्ध्र का सात बार तर्पण करके मूल मन्त्र के अन्त में 'अमुकदेवतां तर्पयामि स्वाहा' मन्त्र से तीन बार इष्टदेवता का तर्पण करे (अमुक के स्थान पर देवता का नाम लगाये)। अब यह मन्त्र पढ़कर विजया को संकेत मुद्रा द्वारा अथवा तत्त्व मुद्रा द्वारा ग्रहण करे। मन्त्र है—'ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि स्वाहा।।७।।

अथ यजनप्रकारः

रात्रौ प्रहरे गते ताम्बूलपूर्णमुखः सन् रक्तचन्दनलिप्ताङ्गो रक्तमाला-रक्तवसनवान् कुलनायिकामानीय उद्वर्त्तनादिकां विधाय पुष्पादिभूषित-विचित्रतूलिकोपर्युपवेशयेत् ।।८।।

अब यजन का प्रकार कहा जाता है। रात्रि का एक प्रहर बीतने पर मुख में ताम्बूल रखकर अंगों पर लाल चन्दन लगाये तथा लाल माला एवं रक्त वस्त्र पहनकर कुलनायिका को लाकर उसका उद्वर्त्तन आदि करके पुष्पादि से उसकी पूजा करके विचित्र सिंहासनस्थ तूलिका के ऊपर बैठाये।।८।।

उत्तरतन्त्रे—

नटी कपालिकी वेश्या पुक्कशी नापिताङ्गना।
रजकी रञ्जकी चैव सैरिन्ध्री च सुवासिनी ।।९।।
झटिका घटिका चैव तथा गोपालकन्यका।
विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः ।।१०।।
गुरुभक्ता देवभक्ता घृणालज्जाविवर्जिताः।
संगोपनरताः प्रायस्तरुण्यः सर्वसिद्धिदाः ।।११।।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि नटी, कापालिकी, वेश्या, चाण्डाली, नाऊ की स्त्री, धोबिन, कपड़ा रंगने वाली, दासी, सुवासिनी, झटिका, घटिका तथा गोपालकन्या—यदि ये सब रसिकता से युक्त हों तब ये कुलनायिका हो सकती हैं। गुरुभक्ता, देवभक्ति

करने वाली, घृणा तथा लज्जा से रहित एवं गुप्त स्थान में रमण करने वाली तरुणी प्राय: सर्वसिद्धिप्रदा होती है।।९-११।।

कुमारीतन्त्रे—

नटी कापालिकी वेश्या रजकी नापितकन्यका।
ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका।
मालाकारस्य कन्या च नव कन्या प्रकीर्त्तिताः ।।१२।।

ब्राह्मणी ब्राह्मणविषये।

कुमारीतन्त्र के अनुसार नटी, कापालिकी, वेश्या, धोबिन, नाऊ की स्त्री, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपालकन्या तथा मालिन—इन नौ को कुलनायिका कहा गया है। ब्राह्मणी केवल ब्राह्मण साधक के लिये कुलकन्या होती है; अन्य के लिये वह वर्जित है।।१२।।

तथा—

व्यङ्गाङ्गीं विकृताङ्गीं वा सविकल्पकमानसीम्।

साथ ही व्यङ्गाङ्गी अर्थात् विकलाङ्गी, विकृत अंग वाली, संदिग्ध चित्त वाली भी वर्जित है।

वर्षीयसीं पापरतां हुङ्कारीमर्थलोलुपाम्।
अभक्तमानसां दीनां वर्जयेत् साधकोत्तमः ।।१३।।
अर्थाद्वा कामतो वापि सौख्यादपि च यो नरः।
लिङ्गयोनिरतो मन्त्री रौरवं नरकं व्रजेत् ।।१४।।

वृद्धा, पापिन, हुङ्कार करने वाली, लालची, अभक्तिचित्त तथा दीना कामिनी को किसी भी श्रेष्ठ साधक को साधनार्थ ग्रहण नहीं करना चाहिये। जो मन्त्रज्ञ साधक धनबल से, काम के वशीभूत होकर, सुख के लोभ से लिङ्ग-योनि व्यापार में रत रहता है, उसे रौरव नरक प्राप्त होता है।।१३-१४।।

ततो भूतशुद्ध्या विधाय कुलनायिकाङ्गे कराङ्गन्यासमातृकान्यासादिकं कृत्वा मकारपञ्चकं शोधयेत् ।।१५।।

तदनन्तर भूतशुद्धि प्रभृति करके कुलनायिका के अंगों में कराङ्गन्यास तथा मातृका न्यास करने के पश्चात् मकारपञ्चक का शोधन करे। मकारपञ्चक हैं—मत्स्य, मांस, मदिरा, मुद्रा तथा मैथुन।।१५।।

तत्रादौ मदिराशोधनम्—

एकमेव परंब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥१६॥
सूर्यमण्डलसम्भूते! वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये! देवि! शुक्रशापाद् विमुच्यताम्॥१७॥
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि।
तेन सत्येन मे देवि! ब्रह्महत्यां व्यपोहतु॥१८॥

प्रथमत: मदिरा-शोधन के क्रम में साधक मदिरापात्र का स्पर्श करते हुये उपरोक्त तीनों श्लोकों को पढ़े। इसका अर्थ है—परब्रह्म एक ही है। वही स्थूल-सूक्ष्म दोनों है। मैं उसके द्वारा तुम्हारा कच ऋषिकृत ब्रह्महत्या के पाप का नाश करता हूँ।

हे सूर्यमण्डल से उत्पन्न! हे वरुणालयसम्भवे! हे 'अमा' बीजों वाली! हे देवि! तुम शुक्रशाप से मुक्त हो जाओ। यदि वेदों का प्रणव बीज ब्रह्मानन्दमय है तब हे देवि! उस सत्य द्वारा तुम्हारा ब्रह्महत्याजनित पाप नष्ट हो जाय।।१६-१८।।

ततः—ॐ वां वीं वूं वैं वीं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः इति तदुपरि दशधा जप्त्वा, ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः सुधा कृष्णपापं विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहेति दशधा प्रजप्य मूलमन्त्रमष्टधा जप्त्वा च देवतामयीं तां विचिन्तयेदिति द्रव्यशुद्धिः॥१९॥

तदनन्तर ॐ वां वीं वूं वैं वीं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः मन्त्र का दस बार जप करके इसे भी दस बार जपे—ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः सुधा कृष्णपापं विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा। तदनन्तर आठ बार मूल मन्त्र का जप करके उस सुरा की देवतामयी रूप से भावना करे। इससे सुरा द्रव्य शुद्ध हो जाता है।।१९।।

तन्त्रे—

मदिरायां मैथुने च जातिचिन्तां न कारयेत्।

तन्त्र में कहा है कि मदिरा तथा मैथुन में जाति-चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

तथा—

संशोधनमनाचर्य स्त्रीषु मद्येषु साधकः।
आचार्यः सिद्धिहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति सुन्दरी॥२०॥

और भी कहते हैं कि आचार्य साधक स्त्री का तथा मद्य का संशोधन किये विना

यदि कर्म करता है तब उसे सिद्धि की हानि होती है तथा सुन्दरी क्रुद्ध हो जाती है।।२०।।

मद्येषु मुख्यानुकल्पेषु। मांसमुद्राप्रक्रिया त्वग्रे वक्ष्यते ।।२१।।

मद्येषु का अर्थ है—मुख्य तथा अनुकल्प मद्यसमूह। मांस तथा मुद्रा की प्रक्रिया आगे कही जायेगी।।२१।।

अथ शक्तिशोधनम्

भावचूड़ामणौ—

अदीक्षितकुलासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते।
तत्कथाश्रवणञ्चेत् स्यात्तत्तल्पगमनं यदि ।।२२।।
न कुलीनः कथं देवि! पूजयेत् परमेश्वरीम्।
अभिषेकाद् भवेच्छुद्धिमन्त्रस्योच्चारबिन्दुभिः ।।२३।।

अब कुलनायिका का शोधन कहते हैं। भावचूड़ामणि ग्रन्थ के अनुसार यदि अदीक्षित व्यक्ति कुलनायिका से संसर्ग करे तो उसकी सिद्धिहानि होती है। हे देवि! यदि ऐसा व्यक्ति कुलनायिका से बात करता है अथवा उसकी शय्या पर शमन करता है तब वह कैसे पूजा करेगा? उसकी शुद्धि अभिषेक से तथा मन्त्रोच्चार से पवित्र किये जल से होती है अर्थात् कुलीन (कुल में दीक्षित) व्यक्ति को परमेश्वरी की पूजा के लिये पहले कुलनायिका को तथा शय्या को शुद्ध करना चाहिये।।२२-२३।।

अभिषेकस्तु—ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रीकुरु मम सिद्धिं कुरु स्वाहा। ततस्तस्याः कर्णे मायाबीजमष्टोत्तरशतं जपेत् इति शक्तिशोधनम् ।।२४।।

ऊपर लिखे मन्त्र से कुलनायिका (शक्ति) का अभिषेक करे, जो 'ऐं' से लेकर 'स्वाहा' तक है। तदनन्तर उस शक्ति के कान में मायाबीज (ह्रीं) का १०८ बार उच्चारण करना चाहिये। इससे शक्तिशोधन होता है।।२४।।

ततः शोधनद्रव्यमर्घ्ये संयोज्यार्घ्यस्थापनं कृत्वा पर्यङ्कमध्ये पीठं पूजयेत्। यथा—ॐ मण्डूकाय नमः। एवं कालाग्निरुद्राधारशक्तिकूर्मवराह-पृथिव्यानन्दकन्दसंविन्नालकेशरपद्मकर्णिकामण्डलधर्मवैराग्यैश्वर्यज्ञाना-ज्ञानानैश्वर्यवैराग्याधर्माज्ञानाविद्यात्मनः सम्पूज्य तदुपरि कुलरूपपीठं संस्थाप्य तत्र पञ्च कामान् पूजयेत् ॐ ह्रीं कामराजाय नमः। ॐ क्लीं कन्दर्पाय नमः। ॐ ऐं मन्मथाय नमः। ॐ ब्लूं मकरध्वजाय नमः। ॐ स्त्रीं मनोभवाय नमः। चतुर्दिक्षु वटुकं भैरवं दुर्गां क्षेत्रपालं पूजयेत् ।।२५।।

तत्पश्चात् शोधित सुरा को अर्घ्य पात्र में रखकर अर्घ्य-स्थापन करके पर्यंक (शय्या) के मध्य में पीठपूजन करे। जैसे—ॐ मण्डूकाय नमः। इसी प्रकार कालाग्निरुद्र, आधारशक्ति, कूर्म, वराह, पृथ्वी, आनन्दकन्द, संविन्नाल, केशर, पद्म, कर्णिका, मण्डल, धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, ज्ञान, अज्ञान, अनैश्वर्य, अवैराग्य, अधर्म, ज्ञानात्मा, विद्यात्मा तथा आत्मा का पूजन करके उसके ऊपर कुलरूप पीठ की स्थापना करे। उस कुलरूप पीठ में ॐ ह्रीं कामराजाय नमः, ॐ क्लीं कन्दर्पाय नमः, ॐ ऐं मन्मथाय नमः, ॐ ब्लूं मकरध्वजाय नमः, ॐ स्त्रीं मनोभवाय नमः—इस मन्त्र द्वारा कामदेव की पूजा करे। तत्पश्चात् चारो दिशाओं में वटुक, वटुकभैरव, दुर्गा तथा क्षेत्रपाल का पूजन करे।।२५।।

ततः ऐं क्लीं स्त्रीं क्लीं ब्लूं आधारशक्तिश्रीपादुकां पूजयामीति तस्या ललाटे सिन्दूरादिना त्रिकोणं लिखेत्। अत्र हेसौः महाप्रेतपद्मासनाय नमः इत्यभ्यर्च्य बालां कामेश्वरीञ्च तत्रैव सम्पूज्य, स्तनयोः वसन्तं मदनं, मुखे सुधाकरं, मौलौ गणेशं, केशाग्रे कुलाध्यक्षं, ललाटे दुर्गां, भ्रुवोर्लक्ष्मीं, जिह्वायां सरस्वतीं, सम्पूज्य दक्षपादादिमूर्द्धान्तं षोडश कामकलाः पूजयेत् ॥२६॥

यथा—अं श्रद्धायै नमः, आं प्रीत्यै नमः, इं रत्यै नमः, ईं भूत्यै नमः, उं कान्त्यै नमः, ऊं मनोभवायै नमः, ऋं मनोहरायै नमः, ॠं मनोरमायै नमः, ऌं मदनायै नमः, ॡं उत्पादिन्यै नमः, एं मोहन्यै नमः, ऐं दीपन्यै नमः, ओं शोधन्यै नमः, औं वशङ्कर्यै नमः, अं रञ्जन्यै नमः, अः प्रियदर्शनायै नमः ॥२७॥

तदनन्तर 'ऐं क्लीं स्त्रीं क्लीं ब्लूं आधारशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि' द्वारा उसके ललाट पर सिन्दूर से त्रिकोण बनाये। उस त्रिकोण में 'हेसौः महाप्रेतपद्मासनाय नमः' से महाप्रेतासन का पूजन करके वहीं पर बाला तथा कामेश्वरी का पूजन करके स्तनद्वय में वसन्त तथा मदन की, मुख में सुधाकर की, मस्तक में गणेश की, केशाग्र में कुलाध्यक्ष की, ललाट में दुर्गा की, दोनों भौं के मध्य में लक्ष्मी की, जिह्वा में सरस्वती की पूजा करके दाहिने पैर से लेकर मस्तक-पर्यन्त सोलह कामकला का सोलह मन्त्रों से पूजन करे। यह पूजन मस्तक से प्रारम्भ करे। कामकला के १६ मन्त्र ऊपर श्लोक २७ में लिखे हैं (यह सब पूजन कुलस्त्री के शरीर में करना होता है)।।२६-२७।।

ततः मूर्द्धादि वामपादान्तं चन्द्रस्य षोडशकलाः पूजयेत्। यथा—अं पूषायै नमः, आं वसायै नमः, इं सुमनायै नमः, ईं रत्यै नमः, उं प्रीत्यै

नमः, ऊं धृत्यै नमः, ऋं शुध्यै नमः, ॠं साम्यायै नमः, लृं मरीच्यै नमः, लॄं आशुमालिन्यै नमः, एं अङ्गिरायै नमः, ऐं वशिन्यै नमः, ओं छायायै नमः, औं सम्पूर्णमण्डलायै नमः, अं तुष्ट्यै नमः, अः अमृतायै नमः। नमः सर्वत्र ॥२८॥

तदनन्तर मस्तक से लेकर वाम पाद के अन्त तक ऊपर मूल में लिखे मन्त्रों से चन्द्र की सोलह कलाओं का पूजन करे।।२८।।

ललितातन्त्रे—

भगे तदीये विज्ञेया नाड्यास्तिस्रः प्रवाहिकाः।
एका तु वाहिका चान्द्री सौरी चान्या तु वाहिका।
आग्नेयी चापरा ज्ञेया पूजयेत्तास्तु साधकः ॥२९॥

ललिता तन्त्र के अनुसार उस शक्ति (कुलस्त्री) के भग में तीन प्रवाहिका नाड़ी को जानना चाहिये। एक है—चान्द्री, दूसरी है—सौरी तथा तीसरी को आग्नेयी कहा गया है। साधक इन तीनों का पूजन करे।।२९।।

अम्बु स्रवति चान्द्री सा पुष्पं स्रवति भानवी।
बीजं स्रवति चाग्नेयी तास्तु नामभिरर्चयेत्।
वाग्भवाद्यैर्नमोक्त्यैः पूजयेत् सुप्रसन्नधीः ॥३०॥

तेन ऐं चान्द्र्यै नमः। ऐं सौर्यै नमः। ऐं आग्नेय्यै नमः।

चान्द्री नाड़ी जल स्रवित करती है। भानवी (सौरी) नाड़ी पुष्प (रजः) स्रवित करती है। आग्नेयी नाड़ी बीज स्रवित करती है। उनके नाम के साथ पूजन करे। सुप्रसन्न चित्त साधक वाग्भव बीज (ऐं) के मध्य में नाड़ी का नाम लेकर 'नमः' से युक्त करके पूजा करे; जैसे—ऐं चान्द्र्यै नमः, ऐं सौर्यै नमः, ऐं आग्नेय्यै नमः।।३०।।

पूजयेन्मदनागारे रक्तचन्दनचर्चिते।
भगमालामनुं प्रोच्य त्रितारानन्तरं तथा ॥३१॥

चन्दन से चर्चित मदनागार (योनि) में भगमाला मन्त्र पढ़े और तदनन्तर ऐं ह्रीं श्रीं कहकर पूजन करना चाहिये।।३१।।

तेन 'ऐं ह्रीं श्रीं ऐं जं ब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि वशमानय स्त्रीं क्लीं ब्लूं भगमालिन्यै नमः ऐं ह्रीं श्रीं' इति मन्त्रेण गन्धाद्यैस्तामर्चयेत्। ततस्तत्रैव मूलदेवतां षोडशोपचारैः कुण्डगोलोद्भवैश्च पूजयेत् ॥३२॥

भगमाला मन्त्र है—ऐं ह्रीं श्रीं ऐं जं ब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि वशमानय स्त्रीं क्लीं

ब्लूं भगमालिन्यै नमः ऐं ह्रीं श्रीं। इस मन्त्र से गन्धादि द्वारा कुलस्त्री की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् षोडश उपचार तथा कुण्डगोलक से उद्भूत (पहले से सञ्चित किये गये) तत्त्व से मूल देवता का पूजन करना चाहिये।।३२।।

तन्त्रान्तरे—

इहाप्यावाहनं नास्ति जीवन्यासो महेश्वरि! ।
तथैवञ्च विधानेन तां षोडशोपचारकैः ।
इष्टदेवीं प्रपूज्याथ सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥३३॥

तन्त्रान्तर में कहते हैं कि हे महेश्वरि! इस पूजा में आवाहन तथा जीवन्यास का प्रयोजन नहीं है। इस प्रकार के विधान से उसकी पूजा सोलह उपचारों से करनी चाहिये। साधक इष्टदेवी का इस प्रकार पूजन करके सर्वसिद्धि का अधिपति हो जाता है।।३३।।

ततः स्वलिङ्गं पूजयेत्। यथा—

पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैः स्वशिवं तदनन्तरम् ॥३४॥

तदनन्तर अपने लिंग का पूजन करे। जैसे तन्त्र में कहा है कि तदनन्तर गन्ध-पुष्पादि द्वारा स्वशिव का पूजन करना चाहिये।।३४।।

तत्र मन्त्रः। आदौ तत्तद्देवतायाः स्वोपासितमन्त्रमुच्चार्य ॐ नमः शिवाय इति तत्परं तत्पुरुषाघोरसद्योजातमन्त्रा इत्ययं समुदायः। श्रीविद्यायान्तु आदौ प्रणवस्ततो माया ततः सुन्दर्याः स्वोपासितत्रिकूटं ततो नमः शिवायेति दशाक्षरः। ततस्तत्र ॐ शान्त्यै नमः। एवं शान्त्यातीतायै समग्रविद्यामुच्चार्य त्रिकोणाय नमः। एवं अवधूतेश्वरीं कुजां कामाख्यां समयां चक्रेश्वरीं कालिकां दिक्करवासिनीं महाचण्डेश्वरीं तारां पूजयेत् ॥३५॥

स्वशिव पूजा-विधान—प्रथमतः उन-उन देवता का अपने द्वारा उपासित मन्त्र का उच्चारण करके 'ॐ नमः शिवाय' कहकर तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात मन्त्र कहे, जो समुदाय का मन्त्र है। किन्तु श्रीविद्या में विशेष रूप से कहा गया है कि प्रथम प्रणव (ॐ) तत्पश्चात् माया तदनन्तर सुन्दरी का स्व उपासित त्रिकूट मन्त्र, तदनन्तर नमः शिवाय—यह दशाक्षर मन्त्र है। तत्पश्चात् कुलनायिका के अंग में ॐ निवृत्यै नमः, ॐ प्रतिष्ठायै नमः, ॐ विद्यायै नमः, ॐ शान्त्यै नमः, ॐ शान्त्यातीतायै नमः मन्त्र से निवृत्ति तथा प्रवृत्ति कला का पूजन करके समग्र विद्या का उच्चारण करके ॐ त्रिकोणाय नमः मन्त्र से त्रिकोण का पूजन करे। इसी प्रकार अवधूतेश्वरी, कुब्जा,

कामाख्या, समया, चक्रेश्वरी, काली, दिक्करवासिनी, महाचण्डेश्वरी तथा तारा का भी पूजन करे।।३५।।

तन्त्रे—

तदनुज्ञां ततो लब्ध्वा दत्त्वा ताम्बूलमेव च।
शिवञ्च तत्र निक्षिप्य गजतुण्डाख्यमुद्रया ॥३६॥
ॐ धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहम् ॥३७॥
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः आरम्भे परिकीर्त्तितः।
ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥३८॥

तन्त्र में कहते हैं कि तदनन्तर उन कुलनायिका की आज्ञा लेकर उन्हें ताम्बूल खिलाकर गजतुण्ड मुद्रा से 'धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा, सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोत्यहम् स्वाहा' पढ़ते-पढ़ते कुलनायिका की योनि में अपने शिव (लिंग) को प्रवेश कराये। तत्पश्चात् उस कुलनायिका स्त्री में अपगत होकर (प्रविष्ट होकर) त्रिभुवनेश्वरी विद्या का जप करे।।३६-३८।।

जपेदिति अष्टोत्तरसहस्रं शतं वा अक्षुब्धो जपेत् ॥३९॥

जप का अर्थ है कि लिंग प्रवेश कराकर अक्षुब्ध स्थिति में १००८ अथवा १०८ बार मन्त्र का जप करे।।३९।।

ॐ प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा।
धर्माधर्मफलस्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम्।
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः शुक्रत्यागे प्रकीर्त्तितः ॥४०॥

ॐ प्रकाश तथा आकाशरूप हस्त द्वारा धृत उन्मनी स्रुक द्वारा धर्म तथा अधर्म फलरूप स्नेह पूर्ण अग्नि में मैं इन्द्रिय वृत्तियों की आहुति देता हूँ। इस मन्त्र द्वारा शुक्र त्याग करे।।४०।।

विशेषस्तु ज्ञानार्णवे—

आलिङ्गनं चुम्बनञ्च स्तनयोर्मर्दनं ततः।
दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकासो लिङ्गघर्षणम्।
प्रवेशः स्थापनं शक्तेर्नवपुष्पाणि पूजने ॥४१॥

ज्ञानार्णव तन्त्र में कहते हैं कि आलिंगन, चुम्बन, स्तनद्वय का मर्दन, योनिदर्शन, योनिस्पर्शन, योनि-विकास, लिंगघर्षण तथा लिंग-स्थापन। शक्ति पूजा में ये नौ प्रकार के पुष्प होते हैं।।४१।।

यामले—

संयोगाज्जायते सौख्यं परमानन्दलक्षणम् ।
कुलामृतं प्रयत्नेन गृह्णीयाद् दुर्लभं नरः ॥४२॥

यामल ग्रन्थ में कहा गया है कि शिव-शक्ति के संयोग से परमानन्दमय सौख्य का उदय होता है। साधक इस पूजा में दुर्लभ कुलामृत को यत्न के साथ ग्रहण करे।।४२।।

तेनामृतेन दिव्येन सर्वे तुष्टा भवन्ति हि ।
यत् कामं कुरुते मन्त्री तत्क्षणादेव सिध्यति ॥४३॥

इस दिव्य कुलामृत से समस्त देवगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। मन्त्र को जानने वाला साधक जो-जो कामना करता है, वह तत्क्षण ही सिद्ध हो जाता है।।४३।।

ततस्तत् कुलामृतमादाय ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि शुक्रशापं विमोचय विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय अमृतं कुरु कुरु स्वाहेति मन्त्रेण संशोध्यार्घ्ये निक्षिप्य तदर्घ्यं दत्त्वा पूजाशेषं समाचरेत् ॥४४॥

तत्पश्चात् इस कुलामृत को ग्रहण करके ॐ अमृते से लगाकर स्वाहा-पर्यन्त मन्त्र से शुक्र का संशोधन करके अर्घ्य में उसका निक्षेप करे और वह अर्घ्य देवी को प्रदान करके पूजा के शेष अनुष्ठान को सम्पन्न करे।।४४।।

उत्तरतन्त्रे—

धूपदीपैश्च नैवेद्यैः..........कुलसाधकः ।
विधाय वन्दितां ताञ्च तदुच्छिष्टं स्वयं चरेत् ॥४५॥
ततस्तत् पीतां सुरां पिवेदिति कुलपूजा ।

उत्तरतन्त्र में कहा है कि कुलसाधक धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा उन देवी (कुलस्त्री) का पूजन करके उनके जूठे बचे को स्वयं ग्रहण करे। तत्पश्चात् उनके द्वारा पीने से बची सुरा का पान करे। इस प्रकार कुलपूजा पूर्ण होती है।।४५।।

अथ वीरानां पुरश्चरणम्

तत्रादौ दीक्षिताः परकीया अष्टशक्तीः क्रमेण संस्थाप्यार्घ्यपात्रं स्थापायि-त्वार्घ्योदकेन ता अभ्युक्ष्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्याष्टशक्तिरूपभेदं कृत्वा ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां संज्ञाभिर्नामकरणं कृत्वा क्रमेणासनादिकं दद्यात् ॥१॥

अब वीरसाधकगण के पुरश्चरण का वर्णन किया जाता है। इसमें आठ दीक्षिता परकीया शक्ति को क्रम से स्थापित करके अर्घ्यपात्र स्थापित करके अर्घ्य के जल से उनका प्रोक्षण करे और धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण करके ब्राह्मी प्रभृति आठ शक्तियों की कल्पना करके उन आठों शक्तियों (कुलस्त्रियों) को शक्ति का एक-एक नाम क्रम से देकर आसनादि प्रदान करे (ब्राह्मी आदि शक्तियों के आठ नाम से क्रमशः एक-एक कुलस्त्री (शक्ति) को सम्बोधित करना होगा)।।१।।

कुलचूड़ामणौ—

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा।
वेश्या नापितकन्या च रजकी रञ्जकी तथा।
विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः ॥२॥

कुलचूड़ामणि में कहा गया है कि ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा, वेश्या, नाऊ की कन्या, धोबिन तथा कपड़ा रंगने वाली इस कार्य में शक्ति होती हैं। विशेष लीलाचातुर्य (वैदग्ध्य) युक्त सभी कुलस्त्री शक्ति होती हैं।।२।।

अष्टकन्यारूपभेदं विलोक्यामर्षवेष्टितम्।
ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां नामभिः कृतसंज्ञकाः ॥३॥

अष्टकन्या की मूर्त्तिविशेष को क्रोधयुक्त लक्ष्य करके ब्रह्माणी प्रभृति अष्टशक्ति के नाम द्वारा उन कन्याओं का नामकरण करे।।३।।

आसनं प्रथमं दत्त्वा स्वागतञ्च पुनः पुनः।
अर्घ्यं पाद्यञ्च पानीयं मधुपर्कं जलं ततः ॥४॥
स्नापयेद् गन्धपुष्पादि केशसंस्कारमेव च।
धूपयित्वा ततः केशान् कौषेयञ्च निवेदयेत् ॥५॥

सर्वप्रथम आसन देकर उनका स्वागत करे। तदनन्तर अर्घ्य, पाद्य, पानीय,

मधुपर्क तथा जल प्रदान करे। तदनन्तर स्नान कराकर गन्ध, पुष्प प्रदान कर केश-संस्कार करे। तदनन्तर केशों को धूप से धूपित करके कौषेय वस्त्र प्रदान करे।।४-५।।

तत् स्नानान्तरे पीठमास्तीर्य पादुकाद्वयं दत्त्वा तत्र समासीनाः प्रत्येकं भूषयित्वा गन्धमाल्यादीनि दद्यात्। ततस्तां तां शक्तिं यथाक्रमेण ब्राह्मण्यादिरूपां समावाह्य जीवन्यासादिकं कृत्वा गन्धपुष्पधूपदीपान्नव्यञ्जनादिकं दत्त्वा तासां सव्यकर्णे क्रमेण स्तवं पठेत् ॥६॥

तदनन्तर स्नान के पश्चात् एक चौकी तथा पादुका देकर उस पर बैठी शक्तियों को भूषित करके गन्ध-मालादि निवेदन करना चाहिये। तत्पश्चात् अष्टशक्तिस्वरूपा उन-उन शक्तियों का आवाहन करके जीवन्यास करने के अनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न, व्यञ्जनादि देकर क्रमशः उनके बाँयें कान में स्तुति पढ़े।।६।।

यथा—

मातर्देवि! नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे! ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥७॥

जैसे—हे माता, देवी तुमको नमस्कार है। हे ब्र्ह्मस्वरूप धारण करने वाली अनघे (पापरहिता) तुम कृपा करके मेरे विघ्नों का नाश करके मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करो।।७।।

विशेष—यह पहली स्तुति ब्रह्माणी शक्ति की है, जो प्रथम शक्ति हैं। इसी प्रकार शेष सात शक्तियों की भी स्तुति करनी चाहिये।

माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥८॥

यह महेशी की स्तुति है, जो महेशी संज्ञा वाली कन्या के कान में कही जायेगी। इसी प्रकार प्रत्येक के कान में कहना है।।८।।

कौमारि वरदे देवि कुमारक्रीड़ने वरे ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥९॥

यह कौमारी की स्तुति है जो कौमारी संज्ञा वाली कन्या के कान में कही जाती है।।९।।

विष्णुरूपधरे देवि! विनतासुतवाहिनि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥१०॥

यह वैष्णवी की स्तुति है। वैष्णवी नाम वाली कन्या के कान में यह स्तुति कहनी चाहिये।।१०।।

वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥११॥

यह वाराही की स्तुति है। वाराही संज्ञा वाली कन्या के कानों में यह स्तुति कहनी चाहिये।।११।।

शक्ररूपधरे देवि शक्रादिसुरपूजिते।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥१२॥

यह इन्द्राणी शक्ति की स्तुति है। इन्द्राणी संज्ञा वाली कन्या के कानों में यह स्तुति कही जाती है।।१२।।

चामुण्डे मुण्डमालासृक्चर्चिते विघ्ननाशिनि।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥१३॥

यह चामुण्डा की स्तुति है। इस संज्ञा वाली कन्या के कानों में इसे कहा जाता है।।१३।।

महालक्ष्मि महोत्साहे! क्षोभसन्तापहारिणी।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥१४॥

यह महालक्ष्मी की स्तुति है। इस संज्ञा वाली कन्या के कानों में इसे कहना चाहिये।।१४।।

मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते।
एके बहुविधे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते॥१५॥

हे मितमातृमये! ज्ञान तथा ज्ञाता स्वरूपे! हे मितिमातृबहिष्कृते! ज्ञातृभिन्ने अर्थात् तुम ज्ञान तथा ज्ञातृ न होकर भी जीवसमूह के कल्याणार्थ ज्ञान तथा ज्ञातृरूपेण आविर्भूत होती हो। हे एके! हे बहुविधे! (तुम एक होकर भी अनेकरूपा हो) हे देवि! हे विश्वरूपे! मैं तुमको प्रणाम करता हूँ।।१५।।

एतत् स्तोत्रं पठेद्यस्तु कर्मारम्भेषु यत्नतः।
विदग्धाञ्च समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते॥१६॥

जो साधक संयत होकर रसिका शक्ति (विदग्धा) को देखकर यह स्तुतिपाठ करता है, उसे कोई विघ्न नहीं होता।।१६।।

यदि व्रीड़ापरा सा तु भोजयेत्तद् गृहाद् बहिः।
स्थितस्तावत् पठेत् स्तोत्रं यावत्तृप्तिः प्रजायते॥१७॥

यदि वह शक्ति भोजन में लज्जित हो तब उस कमरे से बाहर जाकर तब तक यह स्तोत्र पढ़े, जब तक भोजन से उसकी तृप्ति (शक्ति को) न हो जाय।।१७।।

आचम्य मुखवासादि ताम्बूलञ्च निवेदयेत्।
ततो दद्यात् पुनर्माल्यं गन्धचन्दनपङ्किलम्।
विसृज्य दक्षिणीकृत्य वरं प्रार्थ्य सुखी भवेत्॥१८॥

कन्या शक्ति द्वारा भोजन शेष होने पर आचमन कराकर उनके मुखवासादि के लिये ताम्बूल देना चाहिये। पुन: गन्ध-चन्दन से लिप्त माला पहनाये। तदनन्तर विसर्जन करके प्रदक्षिणा के अन्त में वर माँग कर सुखी हो जाय।।१८।।

अन्या यदि न गच्छेत्तु निजकन्या निजानुजा।
अग्रजा मातुलानी वा माता वा तत्सपत्निका॥१९॥

यदि इस शक्तिपूजा में अन्य स्त्री न आये, तब अपनी कन्या, छोटी तथा बड़ी बहन, मातुल, माता तथा विमाता की पूजा करे।।१९।।

पूर्वाभावे परा पूज्या मदंशा योषितो मताः।
सर्वाभावे एकतरा पूजनीया प्रयत्नतः॥२०॥

पूर्वकथित कन्याओं में से पूर्व के अभाव में बाद वाली की पूजा करे। देवी का कथन है कि समस्त स्त्री मेरी ही अंशभूता हैं। यदि आठ स्त्री न एकत्र हो सकें तब एक की ही पूजा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये।।२०।।

एका चेत् युवती तत्र पूजिता चावलोकिता।
सर्वा एव परा देव्याः पूजिताः कुलभैरव! ॥२१॥

हे कुलभैरव! यदि वीरभाव के पुरश्चरण में एक ही युवती की पूजा हो जाय तब भी यह समझे की समस्त श्रेष्ठ देवियों का पूजन हो गया।।२१।।

आदावन्ते च मध्ये च लक्षपूर्त्तौ विशेषतः।
न पूजयति चेत् कान्तां तदा विघ्नैर्विलिप्यते॥२२॥

इस पुरश्चरण के आदि-अन्त-मध्य में; विशेषत: एक लाख जप की पूर्ति में यदि एक स्त्री का भी पूजन न करे, ऐसी स्थिति में वह साधक विघ्नों से विलिप्त होता है।।२२।।

पूर्वार्जितफलं नास्ति का कथा परजन्मनि।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेत् कुलसुन्दरीम्॥२३॥

जो कुलसुन्दरी (कुलस्त्री) का पूजन नहीं करता है, उसे पूर्वार्जित कर्मों का फल नहीं मिलता। फिर परजन्म के बारे में क्या कहा जाय। अतएव समस्त प्रयत्न करके कुलसुन्दर की अर्चना करनी चाहिये।।२३।।

तेन लक्षजपादिकरणे आदौ मध्ये च कुलसुन्दरी पूज्येति। ततो रात्रौ पञ्चमकारेण देवीं सम्पूज्य रहस्यमालया कुलयुक्तो गुरुं शिरसि देवीं हृदि ध्यात्वा शिवोऽहमिति भावयन् जपं कुर्यात् ॥२४॥

अतएव यह सिद्धान्त है कि लक्ष जपादि करने पर आदि एवं मध्य में कुलसुन्दरी का पूजन करे। इसके पश्चात् रात्रि में कुलयुक्त होकर पञ्चमकार द्वारा देवी का पूजन करके रहस्यमाला से गुरु के मस्तक एवं हृदय में देवी का ध्यान करके यह भावना करते-करते जप करे।।२४।।

विशेष—गुरु के मस्तक तथा हृदय में शिष्य कैसे ध्यान करे? इसका अर्थ है कि सहस्रार-स्थित गुरुपादुका में स्थित गुरुमूर्त्ति के मस्तक तथा हृदय में देवी का ध्यान करे।

मुण्डमालातन्त्रे—

गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि।
निशायाञ्च प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्न तु ॥२५॥

मुण्डमालातन्त्र में कहते हैं कि रात्रि का प्रथम प्रहर गत होने पर जप का प्रारम्भ करके तृतीय प्रहर-पर्यन्त जप करना चाहिये। रात्रि बीत जाने पर जप नहीं करना चाहिये।।२५।।

स्वतन्त्रतन्त्रे—

रात्रौ मांसासवैर्देवीं पूजयित्वा विधानतः।
ततो नग्नां स्त्रियं नग्नो रमन् क्लेदयुतोऽपि वा ॥२६॥
जपेल्लक्षं ततो देवीं होमयेज्ज्वलदिन्धने।
योनिकुण्डस्थिते सर्पिर्मांसमत्स्ययुतं भृशम् ॥२७॥

स्वतन्त्र तन्त्र में कहते हैं कि रात्रि में मांस तथा आसव से यथाविधान देवी की पूजा करके तत्पश्चात् नग्न होकर नग्न स्त्री से रमणयुक्त होकर पसीने से तर होकर एक लाख जप करे। तत्पश्चात् देवी के उद्देश्य से योनि के आकार के कुण्ड में प्रज्वलित अग्नि में मांस-मत्स्ययुक्त प्रचुर सर्पिः से होम करे।।२६-२७।।

दशांशं तर्पयेद् द्रव्यैर्मांसमिश्रैस्तु साधकः।
तर्पणस्य दशांशेन अभिषिच्य जगन्मयीम् ॥२८॥

दशांशं भोजयेत् साधु साधकं देवताप्रियम्।
द्रव्यं मांसञ्च मत्स्यञ्च चर्वणन्तु प्रदापयेत् ॥२९॥

साधक मांसमिश्रित द्रव्य (मदिरा) द्वारा होम का दशांश तर्पण करे। तर्पण के दशांश से जगन्मयी का अभिषेक करे। अभिषेक के दशांश की संख्या में देवताप्रिय साधकों को बुलाकर भोजन कराये। भोजन में द्रव्य (मद्य), मांस, मत्स्य तथा • चर्वणप्रधान सामग्री अवश्य होनी चाहिये।।२८-२९।।

तदन्ते तोषयेद् भक्त्या गुरुं स्वर्णादिभिः प्रिये! ।
एतत् कल्पान्महादेवि! मन्त्रः सिध्यति निश्चितम् ॥३०॥

इति कुलपुरश्चरणम्

हे प्रिये! इसके अनन्तर स्वर्णादि द्वारा भक्तिसहित गुरु को सन्तुष्ट करे। हे महादेवि! इस वीराचार कल्प से अवश्य ही मन्त्र सिद्धि मिलती है।।३०।।

यत्तु तन्त्रचूड़ामणौ—

विना हेतुकमासाद्य क्षोभयुक्तो महेश्वरः ।
न पूजा हवनं कुर्यान्न ध्यानं नापि चिन्तनम्।
तस्माद् भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥३१॥

तन्त्रचूड़ामणि में कहते भी हैं कि हेतुक (विजया) स्वीकार न करके अर्थात् विना विजया लिये मनःस्थिति क्षोभयुक्त रहती है, उससे पूजा, हवन, ध्यान तथा चिन्तन नहीं करना चाहिये। अतएव भोजन करके विजया का पान करके ही परमेश्वरी का पूजन करना चाहिये।।३१।।

हेतुकं—विजयाम्। महेश्वरः—साधकः। पीत्वेति विजयामेव प्रकरणादिति। तत्तु वीरपरम्। मद्यदानन्तु वीरभावभाजामवधूतानां शूद्रस्य च युज्यते। यथा समयातन्त्रे वीरभावमुपक्रम्य—

न विधिर्न निषेधोऽस्ति कार्याकार्यविचारणा ॥३२॥

हेतुक = विजया। महेश्वर = साधक। पीत्वा—प्रकरण के अनुसार विजयापान करके। लेकिन यह वीरभाव के लिये कहा गया है। मद्यपान मात्र वीरभावापन्न साधक, अवधूत तथा शूद्र के लिये विहित है। जैसे समयातन्त्र में वीरभाव प्रकरण के प्रारम्भ में कहा है कि वीरभाव में किसी विषय की विधि नहीं है, किसी विषय का निषेध नहीं है तथा कार्याकार्य (कार्य-अकार्य) का विचार भी नहीं है।।३२।।

श्रीक्रमे—

न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कथञ्चन।
वामकात्मा ब्राह्मणो हि मद्यं मांसं न भक्षयेत्॥३३॥

श्रीक्रम में कहा गया है कि ब्राह्मण किसी भी प्रकार से महादेवी को मद्य का निवेदन न करे। वाम भावयुक्त ब्राह्मण भी मद्य तथा मांस का भक्षण कदापि न करे।।३३।।

देव्यास्तु दक्षिणे भागे चक्रपार्श्वे निवेदयेत्।
एतद् द्रव्यन्तु शूद्रस्य नान्येषान्तु कदाचन॥३४॥

शूद्रगण पूजा में मद्य को देवता के दक्षिण पार्श्व में (चक्र पार्श्व) में निवेदित करें। अन्य लोग पूजा में यह द्रव्य कदापि अर्पित न करें।।३४।।

वैश्यस्य माक्षिकं शुद्धं क्षत्रियस्य गवाज्यकम्।
ब्राह्मणस्य गवां क्षीरं ताम्रे वा विष्टरे मधु।
नारिकेलोदकं कांस्ये सर्वेषां द्रव्यशोधनम्॥३५॥

वैश्य के लिये माक्षिक (मधु) शुद्ध है। क्षत्रिय के लिये गोघृत शुद्ध है। ब्राह्मण हेतु गोक्षीर शुद्ध है अथवा ताम्रपात्र में मधु भी शुद्ध है। कांसे के पात्र में नारियल का पानी सबके लिये शोधित द्रव्य होता है।।३५।।

क्षत्रियवैश्ययोस्तु गौड़ी माध्वी च दानार्हा, तत्र तयोरधिकारात्। तदभावेऽनुकल्पविधानम्। तथा च—

गोक्षीरं ब्राह्मणो दद्यात् गव्यमाज्यञ्च बाहुजः।
वैश्यश्च माक्षिकं द्रव्यं शूद्रः पैष्टादिकं पुनः॥३६॥

क्षत्रिय तथा वैश्य गौडी (गुड़ से बनी) तथा माध्वी (शहद से बनी) सुरा का दान कर सकते हैं; क्योंकि इन दोनों पर उनका अधिकार होता है। इन दोनों के अभाव में अनुकल्प का विधान है। जैसा कि तन्त्र में कहा भी गया है कि ब्राह्मण मद्य के स्थान पर गोक्षीर, बाहुबली (बाहु से उत्पन्न क्षत्रिय) गाय का घृत, वैश्य मधु तथा शूद्र पिष्टकादि प्रदान करें (यह सब मद्य के स्थान पर विहित है)।।३६।।

यत्तु कुलार्णवे—

जलं क्षीरं घृतं भद्रे! मधु मैरेयमैक्षवम्।
पैष्टं तरुभवं धान्यसम्भवं चक्रनिर्मितम्॥३७॥

कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि हे भद्रे! हे देवि! जल, क्षीर, घृत तथा मधु

से बने मद्य, मैरेय मद्य, ऐक्षव (ईख से बने मद्य), पैष्ट, तरुभव, धान्य से बने मद्य, चक्रनिर्मित, सहकारभव मद्य आदि मद्य के अनेक भेद हैं।।३७।।

मादकधर्मसम्भेदाद् वर्ज्यमासीत् सुलोचने! ।
ज्ञानेन संस्कृतं तत्तु महापातकनाशनम् ।।३८।। इति।

हे सुलोचने! मादक धर्म के मिश्रण के कारण यह वर्जनीय था। यह ज्ञान (मन्त्र) द्वारा संस्कृत होकर महापातकों का नाश करने वाला हो गया है।।३८।।

यच्च—

पीत्वा-पीत्वा पुनः पीत्वा पतित्वा धरणीतले ।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।३९।।

तदप्यवधूताख्यपञ्चमाश्रमिपरम्।

और यह भी कहा गया है कि पान करे, पुनः पान करे, पुनः पुन पान करके धरणीतल पर पड़ जाये—इतना पीये। उठकर पुनः पीये। इससे पुनर्जन्म नहीं मिलता। यह अवधूत नामक पञ्चम आश्रमी के लिये है अर्थात् अवधूत के लिये इतना मदिरापान दोषकारक नहीं है।।३९।।

यत्तु—

संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी ।।४०।।

तदपि ब्राह्मणेतरपरम्।

यह भी कहा गया है कि विजया (संविदा) तथा आसव में से संविदा श्रेष्ठ है। यह भी ब्राह्मण के अतिरिक्त क्षत्रियादि जाति वाले के लिये ही कहा गया है।।४०।।

भैरवतन्त्रेऽपि—

मद्यं मांसं विना वत्स! यत्किञ्चित् कुलसाधनम् ।
शक्त्यै दत्त्वा ततः शेषं गुरवे तन्निवेदयेत् ।
तदनुज्ञां मूर्ध्नि कृत्वा शेषमात्मनि योजयेत् ।।४१।।

इत्यनेन सामान्यतो मद्यं निषिद्धम्।

भैरवतन्त्र में कहते हैं कि हे वत्स! मद्य तथा मांस कुलपूजा साधनादि जो शक्ति (कुलस्त्री) को देने के पश्चात् बचे, उसे गुरु को प्रदान करना चाहिये एवं उनकी आज्ञा लेकर साधक को बचा हुआ ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार सामान्यतः मद्य का निषेध ही किया गया है।।४१।।

वस्तुतस्तु ब्राह्मणस्य प्रतिनिधिद्रव्यदानमपि न युक्तम्। यथा ताराप्रदीपे—

पञ्चामृतं तथा खण्डं शाल्यन्नं पिष्टकं तथा।
यवगोधूमजैर्मुद्‌गैः पक्वान्नं परिकल्पयेत् ॥४२॥
व्यञ्जनं षड्रसोपेतं घृताक्तं सुमनोहरम्।
फलं नानाविधं रम्यं पायसान्नं तथैव च।
एवं सात्त्विकद्रव्येण ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम् ॥४३॥

ब्राह्मणों को तो प्रतिनिधि द्रव्यों का दान भी नहीं करना चाहिये; जैसाकि ताराप्रदीप में कहा भी गया है—पञ्चामृत, मिश्री, शाल्यन्न, पिष्टक, यव, गोधूम तथा मूँग द्वारा बना पक्वान्न प्रदान करना चाहिये।

घृत में बना षड्रस युक्त व्यञ्जन, नाना प्रकार के मनोहर फल तथा पायसान्न रूपी सात्त्विक द्रव्यों से ब्राह्मण द्वारा देवी का पूजन होना चाहिये।।४२-४३।।

सामिषान्नमामिषञ्च मधुमाक्षिकसम्भवाम्।
गौड़ी तालीञ्च विविधां खार्जूरीं पुष्पसम्भवाम्।
एवं दद्यात् क्षत्रियोऽपि पैष्टिकं न कदाचन ॥४४॥

सामिषान्न, आमिष, मधुजात सुरा, गौड़ी, ताली, खजूर से बनी सुरा, पुष्प से बनी सुरा क्षत्रिय प्रदान करे; किन्तु कदापि पैष्टिक सुरा प्रदान न करे।।४४।।

नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे गव्यं तथा मधु।
राजन्यवैश्ययोर्देयं न द्विजस्य कदाचन ॥४५॥

क्षत्रिय तथा वैश्य मद के स्थान पर कांस्य पात्र में नारियल का जल तथा कांसे के पात्र से घृत तथा मधु प्रदान करे; किन्तु ब्राह्मण के लिये यह देय नहीं है।।४५।।

एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत्।
शूद्रस्य पैष्टिकं दानं न वैश्यस्य कदाचन ॥४६॥ इति।

इस प्रकार के अनुकल्प को देने से ब्राह्मण हीन आयु (अल्पायु) हो जाता है। शूद्रगण पैष्टिक मद्य दे सकते हैं; लेकिन वैश्य इसे कदापि न दे।।४६।।

कुलपूजायान्तु मकारपञ्चकस्यावश्यकत्वम्। यथा—

मधुमांसं विना देवि! कुलपूजां समाचरेत्।
जन्मान्तरसहस्रस्य सुकृतं तस्य नश्यति ॥४७॥

कुलपूजन में मकारपञ्चक आवश्यक है; कहा भी है कि हे देवि! मधु तथा मांस के विना जो कुलपूजा करता है, उसके हजार जन्मों के सुकृत नष्ट हो जाते हैं।।४७।।

तथा—

मधु मद्यं मत्स्यमांसं मुद्रा चैवेति साधकः।
मकारपञ्चकेनैव कुलपूजां समाचरेत् ॥४८॥

और भी कहा गया है कि कुलपूजा हेतु मधु, मद्य, मत्स्य, मांस तथा मुद्रा आवश्यक है। इन मकारपञ्चक से कुलपूजन करना चाहिये।।४८।।

●

अथ मांसादिनिर्णयः

मांसन्तु विविधं ज्ञेयं जलखेचरभूचरम्।
त्रिविधं मांसं संप्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम्॥१॥

मांसादि-निर्णय कहा गया है कि मांस विविध प्रकार का होता है। देवता की प्रसन्नता के लिये जलचर, खेचर (आकाशीय) तथा भूचर तीन प्रकार का मांस जानना चाहिये।।१।।

मत्स्यस्तु त्रिविधं देवि! उत्तमाधममध्यमम्।
उत्तमं त्रिविधं देवि! शालपाठीनरोहितम्॥२॥
प्रवीणं कण्टकैर्हीनं तैलाक्तं वल्कलैर्युतम्।
देव्याः प्रीतिकरञ्चैव मध्यमं तच्चतुर्विधम्।
क्षुद्राणि तानि सर्वाणि अधमानि विदुर्बुधाः॥३॥

भगवान् कहते हैं, हे देवि! उत्तम, मध्यम तथा अधमभेद से मत्स्य मांस त्रिविध है। उत्तम शाल तथा रोहित और पाठीन हैं। प्रवीण (प्राचीन बृहदाकृति), कांटा से रहित, तैलाक्त और वल्कलयुक्त मत्स्त्य मध्यम हैं। ये देवता के प्रीतिकारक कहे गये हैं। ये चार प्रकार हैं। सभी क्षुद्र मत्स्य को देवगण अधम कहते हैं।।२-३।।

भूचरमांसञ्च—

गोमेषाश्वोष्ट्रमहिषवराहाजमृगोद्भवम्।
महामांसाष्टकं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम्॥४॥

भूचर मांस में गाय, मेष, अश्व, ऊँट, महिष, वराह, बकरा तथा मृग के मांस को महामांसाष्टक कहा गया है। यह देवता को प्रसन्नता देने वाला होता है।।४।।

मांसाभावेऽनुकल्पः समयाचारे—

लवणार्द्रकपिण्याकतिलगोधूममाषकम्।
लशुनञ्च महादेवि! मांसप्रतिनिधिः स्मृतः॥५॥

इति मांसानुकल्पः

मांस के अभाव में उसका अनुकल्प (प्रतिनिधि) कहते हैं) जैसा कि समयाचार तन्त्र में कहा गया है कि लवण, आर्द्रक (अदरख), पिण्याक (तिलकल्प), तिल, गोधूम, उड़द तथा लहसुन को मांस का प्रतिनिधि कहा गया है।।५।।

अथ भक्ष्यविशेषस्य मुद्रापरिभाषा द्विविधा। यथा कुलार्णवे—

कृसरं मण्डलाकारं चन्द्रबिम्बनिभं शुभम्।
चारु पक्वं मनोहारि शर्कराद्यैश्च पूरितम्।
पूजाकाले देवताया मुद्रैषा परिकीर्त्तिता ।।६।।

अब भक्ष्यविशेष की द्विविधा मुद्रा परिभाषा कहते हैं। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार चन्द्रबिम्ब-तुल्य मण्डलाकार सुपक्व मनोहर शर्करादि से परिपूरित शुभ कृसर देवता की पूजा में मुद्रा कहा जाता है।।६।।

यामले—

मृष्टधान्यादिकं यावच्चर्वणीयं प्रकल्पयेत्।
तेषां संज्ञा कृता मुद्रा महामोदप्रदायिनीम् ।।७।।

यामल के अनुसार भूजे धान्य प्रभृति चबाने वाली वस्तु की कल्पना करे, उनकी मुद्रा संज्ञा दी गई है अर्थात् ये भी मुद्रा हैं, जो महान् आनन्द देते हैं।।७।।

शोधनस्तु—ॐ प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठा यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वाः इत्यनेन मांसस्य। ॐ त्र्यम्बकमित्यादिना मीनस्य। ॐ तद्विष्णोरित्यादिना मुद्रायाः। मांसमुद्रा-दानन्तु कुलपूजायामन्यत्रापि भवति ।।८।।

मांसशोधन मन्त्र—ॐ प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठा यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।

मत्स्यशोधन मन्त्र—ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।

मुद्राशोधन मन्त्र—ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्। मांस-मुद्राशोधन कुलपूजा में तथा अन्यत्र भी किया जाता है।।८।।

अथ वामाचारानुकल्पः

यथा तन्त्रान्तरे—

देव्युवाच

पूर्वं यदुक्तं तत्सर्वं कथयस्व महेश्वर!।
स्वयम्भुकुसुमं किंवा किंवा शुक्रं महामते ।।९।।

अब वामाचार का अनुकल्प कहा जाता है। जैसे अन्य तन्त्र में देवी कहती हैं कि हे महेश्वर! आपने पहले जो कुछ मुझसे कहा था; वह पुनः कहिये। हे महामते! स्वयम्भु पुष्प क्या है? शुक्र क्या है?।।९।।

किंवा शवासनं किंवा मैथुनञ्चाशुचिश्च वा।
का वा योनिस्तथा शय्या किंवा मैथुनसम्भवम् ॥१०॥

शवासन क्या है? मैथुन अथवा अशुचि क्या है? योनि क्या है? शय्या क्या है? मैथुन से किया पूजन क्या है?।।१०।।

किंवा श्मशानं केशञ्च रक्तं किं मत्स्यमांसकम्।
भगगीतिर्लिङ्गगीतिर्नरशङ्ख महेश्वर!।
कथयस्व महादेव! निखिलेन समादरात् ॥११॥

श्मशान क्या है? केश क्या है? रक्त क्या है? मत्स्य क्या है? मांस क्या है? हे महेश्वर! भगगीति क्या है? लिंगगीति क्या है? नरशङ्ख क्या है? हे महादेव! मुझे यह सब सादर बतायें।।११।।

ईश्वर उवाच

पशुभावं महादेवि! यदुक्तं तत् शृणुष्व मे।
स्वयम्भुकुसुमं देवि! रक्तचन्दनसंज्ञकम् ॥१२॥
दुग्धं मथित्वा यत् कुर्यान्नवनीतं महेश्वरि।
शुक्रं तत् कथितं पूर्वं पुनश्चात्रैव कथ्यते ॥१३॥

ईश्वर कहते हैं—हे महादेवि! पशुभाव जो मेरे द्वारा कहा गया है, उसे सुनो! हे देवि! रक्तचन्दन ही स्वयम्भु पुष्प है। हे महेश्वरि! दूध को मथ कर जो नवनीत निकलता है, वह शुक्र है। यह मैंने पहले भी कहा है और पुनः यहाँ कहता हूँ।।१२-१३।।

वीरासनं महादेवि! शवासनमुदाहृतम्।
रक्तपुष्पं महादेवि! दद्यादञ्जनयोगतः।
मैथुनं कथितं देवि! कथ्यते चाशुचिः प्रिये! ॥१४॥

हे देवि! हे महादेवि! वीरासन ही शवासन है। हे महादेवि! अञ्जन योगयुक्त (अञ्जन मिश्रित) जो रक्तपुष्प देवी को निवेदित किया जाता है, वह काजल से युक्त रक्तपुष्प मैथुन है। हे प्रिये! अब अशुचि कहते हैं।।१४।।

अस्नानमशुचिर्यत्र अशुचिश्चाभिधीयते।
भोजनानन्तरं पूजा अशुचिः सर्वसम्मता ॥१५॥

जहाँ स्नान को न करना अशुचि माना गया है, वहाँ वही अशुचि है। भोजन करके पूजा करना अशुचि है, जो सर्वजन-सम्मत है।।१५।।

योनिर्यन्त्रं महादेवि! योनिर्यत्र प्रकीर्त्तिता।

उत्तराभिमुखीभूय पूजयेत् परदेवताम्।
शय्याशब्दः समुद्दिष्टः सर्वतन्त्रसमन्वितः ॥१६॥

हे महादेवि! जहाँ योनि कहा गया है, वहाँ यन्त्र ही योनि है। उत्तरमुखी होकर परम देवता की पूजा करे। वह समस्त तन्त्रसम्मत शय्या है।।१६।।

करकच्छपिका कृत्वा दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम्।
कथितं देवदेवेशि! पूजा मैथुनसम्भवा ॥१७॥

हे देवि! करकच्छपिका (कूर्ममुद्रा) से तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करना ही मैथुन-जनित पूजा है।।१७।।

श्मशानं देवदेवेशि! यदुक्तं भैरवैः परैः।
शून्यागारं महादेवि श्मशानं समुदाहृतम् ॥१८॥

हे देवदेवेशि! श्रेष्ठ भैरवगण ने श्मशान में साधन का वर्णन किया है। हे महादेवि! खाली भवन जहाँ कोई न रहता हो, वही श्मशान कहा गया है।।१८।।

केशञ्च बिल्वपुष्पञ्च रक्तञ्च रक्तचन्दनम्।
दधिदुग्धं पायसञ्च नवनीतं तथा मधु।
शर्करा पनसाम्रादि मत्स्यमांससमुदाहृतम् ॥१९॥

बिल्वपुष्प ही केश है। रक्तचन्दन ही रक्त है। दधि, दुग्ध, पायस, नवनीत, चीनी, पनस तथा आम्र आदि को ही मत्स्य-मांस कहा गया है।।१९।।

भगगीति महेशानि लिङ्गस्तवमुदाहृतम्।
नरशङ्खं महेशानि! शङ्खं दक्षिणसंज्ञकम् ॥२०॥

हे देवि! देवी का स्तव ही भगगीति लिङ्गस्तव है (लिंगस्तुति ही भगगीति है)। दक्षिणावर्त्ती शङ्ख ही नरशङ्ख (नरकपाल) है।।२०।।

नरास्थिमालिका देवि! शङ्खमाला उदाहृता।
इति ते कथितं देवि पशुभावमनुत्तमम् ॥२१॥

नरास्थिमाला अर्थात् शङ्ख की माला। हे देवि! सर्वोत्तम पशुभाव तुमसे कहा (अर्थात् जो पशु भावापन्न हैं, उनके लिये वास्तविक द्रव्य के स्थान पर अनुकल्प अर्थात् प्रतिनिधिद्रव्य का विधान है; क्योंकि पशुभाव वाले घृणा-लज्जा से युक्त हैं। वास्तविक द्रव्यों से अर्चना में उन्हें घृणादि का भाव ग्रसित करेगा। अतः यह विधान है)।।२१।।

दक्षिणाया महापूजा कथिता सर्वसम्मता।
दक्षिणां दक्षिणेनैव योऽर्चयेद् भक्तिभावतः।
अचिरेणैव सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥२२॥

सर्वसम्मत दक्षिणा की महापूजा कही गई। जो साधक दक्षिणा की दक्षिणभाव में अर्चना करते हैं, उनको अविलम्ब सिद्धि मिलती है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये।।२२।।

कामबीजादिकं कृत्वा यदि विद्यां जपेत् सुधीः।
त्रैलोक्यं दासवद्भावं भजते चापरेण किम्॥२३॥

यदि सुधी साधक विद्या का जप काली-बीज को पहले लगाकर करता है, तब त्रिलोक उसके दास के समान हो जाता है। इससे अधिक अन्य फल क्या होगा?।।२३।।

यामले—

मया च कथितो देवि! तव पूजाविधिः प्रिये!।
आसुरी सा समाख्याता तथा चान्तावसायिनाम्॥२४॥
बलिदानं महेशानि! कथित यत्तव प्रियम्।
तत्र सर्वत्र दातव्यं दधि दुग्धं तथा मधु॥२५॥

हे देवि! हे प्रिये! यामल में तुम्हारी जिस पूजाविधि का वर्णन है, वह आसुरी पूजा है। हे महेशानि! उस आसुरी पूजा का विधान अन्तावसायीगण (चाण्डालादि अन्त्यज) के लिये है। उसमें तुम्हारे जो प्रिय बलिदान को कहा गया है, उसके स्थान पर दधि, दुग्ध तथा मधु प्रदान करना चाहिये।।२४-२५।।

कुक्कुटं माहिषं यत्र तत्र मांसमुदाहृतम्।
नकुलान् महिषादीनि तत्र दुग्धं निवेदयेत्॥२६॥
छेदनं करणं देवि! जन्तूनां समुदाहृतम्।
आज्यैर्यज्ञविशेषेण कुर्याच्चैवमनन्यधीः॥२७॥

इति वामानुकल्पः।

इति कुलाचारनिरूपणम्

जहाँ मुर्गा, महिष-प्रभृति बलि का विधान है, वहाँ मत्स्य-मांस कहा गया है। जहाँ नकुल-महिष की बलि कहते हैं, इन सबमें दुग्ध प्रदान करना चाहिये।

हे देवि! जन्तुगण के छेदन को बलि कहा जाता है। साधक अनन्यचित्त होकर आज्य यज्ञविशेष द्वारा साधन कर्म करे। यह वामाचार का अनुकल्प कहा गया। इस प्रकार कुलाचार निरूपित किया गया।।२६-२७।।

अथ पूजाधारः

नारदीये—

आपोऽग्निर्हृदयं चक्रं विष्णोः क्षेत्रसमुद्भवम्।
यन्त्रञ्च प्रतिमास्थानमर्चने सर्वदा हरेः ॥१॥

अब पूजाधार कहा जाता है। नारदीय पुराण में कहते हैं कि जल, अग्नि, गण्डकी नदी (विष्णुक्षेत्र, जहाँ शालग्रामशिला मिलती है) से निकला अर्थात् शालग्राम शिला, यन्त्र तथा प्रतिमा सर्वदा विष्णुपूजा के आधार हैं।।१।।

गौतमीये—

शालग्रामे मनौ यन्त्रप्रतिमामण्डलेषु वा।
नित्यं पूजा हरेः कार्या न तु केवलभूतले ॥२॥

वचनद्वये हरिरिति देवतामात्रोपलक्षकम् ॥३॥

गौतमीय तन्त्र में कहते हैं कि शालग्राम में मन्त्र में, य़न्त्र में, प्रतिमा में अथवा मण्डल में सदा हरिपूजन करना चाहिये। कभी भी पृथ्वी पर (जमीन पर) विष्णुपूजन नहीं करना चाहिये। यहाँ जो दोनों वचनों में 'हरि' कहा गया है, वह समस्त देवताओं का बोधक है।।२-३।।

बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदि कृष्णशिलां लभेत्।
गोष्पदेनैव चिह्नेन तेन जन्म समाप्यते ॥४॥

यदि अनेक जन्मार्जित पुण्य से गोष्पद चिह्न से (गाय के पैर के चिह्न से) युक्त एक कृष्णशिला मिल जाय, तब इसी से उस व्यक्ति के पुनर्जन्म की समाप्ति हो जाती है (मुक्ति हो जाती है)।।४।।

एतेन विष्णुपूजायां शिलाया एव प्राधान्यम्। मनौ—चन्दनादिलिखितमन्त्रः। बोधायनः—प्रतिमास्थानेष्वप्सु नाग्नावावाहनविसर्जने इति।

अन्यत्रापि—शालिग्रामे स्थाविरे वा नारायणविसर्जने इति। स्थाविरं स्थिरप्रतिमा ॥५॥

इससे विष्णु-पूजनार्थ शालिग्राम शिला की प्रधानता सिद्ध हो जाती है। प्रतिमा,

जल तथा अग्नि में विसर्जन-आवाहनादि आवश्यक नहीं होता, यह बोधायन का वचन है। अन्यत्र भी कहा गया है कि शालग्राम शिला में (जो स्थविर है) आवाहन-विसर्जन नहीं होता। स्थाविर = स्थिर प्रतिमा।।५।।

शक्तिविषये तु योगिनीतन्त्रे—

लिङ्गस्थां पूजयेद् देवीं पुस्तकस्थां तथैव च।
मण्डलस्थां महामायां यन्त्रस्थां प्रतिमासु च।
जलस्थां वा शिलास्थां वा पूजयेत् परमेश्वरीम्।।६।।

शक्तिसाधनार्थ योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि शिवलिंग-स्थिता, पुस्तक-स्थिता, मण्डलस्थिता महामाया की; यन्त्र-स्थिता, प्रतिमास्थिता, जलस्थिता, शालग्रामस्थिता परमेश्वरी की पूजा करे अर्थात् शिवलिंग, दुर्गासप्तशती-प्रभृति पुस्तक, सर्वतोभद्रादि मण्डल, यन्त्र, प्रतिमा, जल तथा शालग्रामादि शिला में पूजन करे। ये सभी शक्तिपूजा के स्थल हैं।।६।।

शिला शालग्रामादिस्तथा च पद्मपुराणे—

शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः।
तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश।।७।।

शिला अर्थात् शालग्रामादि। पद्मपुराण में कहते हैं कि जहाँ पर शालग्राम शिलारूपी केशव विद्यमान हैं, वहाँ देवता, असुर, यक्ष तथा चौदहो भुवन विराजित रहते हैं।।७।।

कौलावलीये—

यत्रापराजितापुष्पं जवापुष्पञ्च विद्यते।
करवीरे शुक्लरक्ते द्रोणं वा यत्र तिष्ठति।
तत्र देवी वसेन्नित्यं तद्यन्त्रे चण्डिकार्चने।।८।।
हयारिकुसुमे देवः स्वयमस्ति सदाशिवः।
तन्मुखे मनुमादाय पुष्पमध्ये तु पूजयेत्।।९।।

कौलावली में कहा गया है कि जहाँ अपराजिता पुष्प तथा जवापुष्प विद्यमान है, जहाँ सफेद तथा लाल कनेर का पुष्प अथवा द्रोणपुष्प है, वहाँ देवी नित्य विराजित रहती हैं। उस पुष्पयन्त्र से देवी का पूजन करे। करवीर (कनेर) के पुष्प में भगवान् सदाशिव स्वयं विराजित रहते हैं। उस पुष्प के मुख में तथा मध्य में मन्त्र से उनकी पूजन करे।।८-९।।

एतत् सर्वं यन्त्राभावे। तथाहि—

यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं मन्त्रात्मा देवतैव हि।
देहात्मनोर्यथाभेदो यन्त्रदेवतयोस्तथा ॥१०॥
विना यन्त्रेण पूजायां देवता न प्रसीदति।
दुःखनिर्यन्त्रणाद् यन्त्रमित्याहुस्तन्त्रवेदिनः ॥११॥

इति यन्त्रस्य प्राधान्यमुक्तम्। एवञ्च यन्त्रस्य मन्त्रमयत्वस्थितौ मन्त्रोऽपि यन्त्रतुल्य इत्यायातम् ॥१२॥

यन्त्र के अभाव में उपर्युक्त सभी पुष्पयन्त्र में पूजन करना चाहिये। मन्त्र भी यन्त्र के समान ही होते हैं। मन्त्र के स्वरूप में देवता ही विराजित रहते हैं। जैसे देह तथा आत्मा में अभेद है, यन्त्र तथा देवता में भी उसी प्रकार का अभेद है अर्थात् दोनों एक ही हैं।

यन्त्ररहित पूजन से देवता प्रसन्न नहीं होते। यन्त्र से दुःख का निवारण होता है। दुःख का नियन्त्रण करने के कारण ही इसे 'यन्त्र' कहा गया है। इस वचन से यन्त्र की प्रधानता सिद्ध होती है। यन्त्र भी मन्त्रमय है। अतएव मन्त्र भी यन्त्र के तुल्य है। यह उपलब्धि होती है।।१०-१२।।

स्वच्छन्दभैरवे—

कुर्याच्च स्थण्डिले यन्त्रं हस्तमात्रां सुसुन्दरम्।
रत्नादिषु विनिर्माणे मानमिच्छावशाद् भवेत् ॥१३॥
रक्तेन रजसा पूर्य श्रीचक्रं भुवि पूजयेत्।
नश्यन्ति सर्वविघ्नानि प्राप्स्यते च यथेप्सितम् ॥१४॥

रक्तेन रजसा चूर्णेन, सिन्दूरादिनेत्यर्थः। श्रीचक्रमित्युपलक्षणं सर्वत्र यन्त्रमात्रस्येति ॥१५॥

स्वच्छन्दभैरव में कहते हैं कि स्थण्डिल पर एक हाथ का अतिसुन्दर यन्त्र बनाये। रत्नादि से यन्त्र-निर्माण में यन्त्र का नाप इच्छानुसार कर सकते हैं।

भूमि में श्रीयन्त्र अंकित करके रक्तवर्ण चूर्ण (सिन्दूर) से उसका पूरण करके पूजन करे। ऐसा करने से समस्त विघ्न शान्त हो जाते हैं एवं जो इच्छा हो, प्राप्त होता है। यहाँ श्रीचक्र का कथन समस्त चक्रों का उपलक्षक है।।१३-१५।।

तथा—

दशभागं सुवर्णस्य ताम्रस्य द्विदशं तथा।
षड्गुणं रजतस्यापि चैतल्लोहत्रयं शुभम् ॥१६॥

चक्रेऽस्मिन् पूजयेद्यो हि स सौभाग्यमवाप्नुयात्।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनामधिपो जायतेऽचिरात् ॥१७॥
विद्रुमे रचिते यन्त्रे पद्मरागेऽथवा प्रिये!।
इन्द्रनीलेऽथ वैदूर्ये स्फाटिके मरकतेऽपि वा।
धनं पुत्रं तथा दारान् यशांसि लभते ध्रुवम् ॥१८॥
ताम्रन्तु कान्तिदं यन्त्रं सौवर्णं शत्रुनाशनम्।
राजतं क्षेमदञ्चैव स्फाटिकं सर्वसिद्धिदम् ॥१९॥

और भी कहते हैं कि सुवर्ण दस भाग, ताँबा बारह भाग, चाँदी छः गुना—यह लौहत्रय कह जाता है, जो शुभ होता है। इस लौहत्रय से निर्मित यन्त्र से जो पूजा करता है, उसे सौभाग्य मिलता है तथा शीघ्र अणिमादि आठों सिद्धियाँ मिलती हैं।

हे प्रिये! जो विद्रुम रत्न से निर्मित यन्त्र अथवा पद्मराग-निर्मित यन्त्र अथवा नीलम (चित्त यन्त्र अथवा वैदूर्य-निर्मित यन्त्र अथवा स्फटिक-निर्मित यन्त्र अथवा मरकत मणि पर निर्मित यन्त्र पर पूजा करता है, उसे धन, पुत्र, स्त्री एवं यश प्राप्त होता है। ताम्रयन्त्र कान्तिप्रद, सुवर्णयन्त्र शत्रुनाशक, चाँदी का यन्त्र क्षोभप्रद तथा स्फटिक का यन्त्र सर्वसिद्धिप्रद कहा गया है।।१६-१९।।

तन्त्रचूड़ामणौ—

अकृत्वा सुषमां रेखां न कृत्वा सुषमं मुखम्।
योऽत्र यन्त्रे प्रवर्त्तेत तस्य सर्वं हराम्यहम् ॥२०॥

अत्र यन्त्रे श्रीयन्त्रे प्रकरणात् वस्तुतस्तूपलक्षणमपरम्।

तन्त्रचूड़ामणि में कहा गया है कि जो यन्त्र में सुन्दर रेखा एवं सुन्दर मुख नहीं बनाता और ऐसे यन्त्र की पूजा करता है, उसका सब कुछ मैं हरण कर लेता हूँ। यह भगवान् का वचन है। यह वचन सभी यन्त्रों के लिये कहा गया है। श्रीयन्त्र उदाहरणमात्र है।।२०।।

तथा—

यस्य यत्र स्थितिर्देव! तत्र तं नार्चयेद्यदि।
तन्मांसं रुधिरेणैव पारणा तस्य जायते ॥२१॥
पशोरालोकनं न स्यात्तथा कुर्वीत यत्नतः।
यदि दैवात् पशोरग्रे लिखनं विद्यते क्वचित्।
ममाङ्गक्षतिरेवात्र क्रियते पापबुद्धिना ॥२२॥

कुङ्कुमेन चन्दनेन रक्तेन चन्दनेन वा।
लिखेद्यन्त्रं महादेव! सावधानः स्मृतागमः ॥२३॥

पशुरत्रादीक्षितः।

और भी कहा गया है—हे देव! जहाँ जिन देवता की अवस्थिति है, यदि वहाँ उनकी अर्चना न हो, तो उनको निवेदित मांस तथा रुधिर द्वारा उनका पारण हो सकता है। ऐसा यत्न करे कि साधनादि को पशु (पशुभावापन्न पश्वाचारी लोग अर्थात् अदीक्षित) न देख सके, क्योंकि दैवात् यदि पशु के सामने यन्त्रादि का लेखन किया जाता है, तब पशु के सामने लिखने वाला वह पापबुद्धि साधक मेरे अंग को चोट पहुँचाने का कार्य करता है। हे महादेव! सावधानी से आगम शास्त्र का स्मरण करते हुये (मन्त्र जपते हुये) सावधानी से कुङ्कुम, चन्दन अथवा रक्तचन्दन से यन्त्र लिखना चाहिये।।२१-२३।।

मुण्डमालातन्त्रे—

ताम्रपात्रे कपाले वा श्मशानकाष्ठनिर्मिते।
शनिभौमदिने वापि शरीरेऽमृतसम्भवे।
स्वर्णे रौप्येऽथ लौहे वा चक्रं कार्यं विधानतः ॥२४॥

मुण्डमाला तन्त्र में कहते हैं कि ताम्रपात्र, कपाल, श्मशान (चिता) की लकड़ी से बना पात्र लेकर उस पर तथा अमृतजात शरीर पर, स्वर्ण, चाँदी अथवा लौह पर शनि अथवा मंगलवार को विधान का पालन करते हुये चक्र लिखना चाहिये।।२४।।

पूजाप्रदीपे—

अनुक्तकल्पे यन्त्रन्तु लिखेत् पद्मं दलाष्टकम्।
षट्कोणकर्णिकं तत्र वेदद्वारोपशोभितम् ॥२५॥

पूजाप्रदीप में कहते हैं कि जिस देवता के कल्प में (तन्त्रविधि में) यन्त्र लेखन की विधि नहीं लिखी है, वहाँ एक अष्टदल कमल बनाकर उसे षट्कोण कर्णिका तथा चार द्वारों से सुसज्जित करना चाहिये।।२५।।

अथ यन्त्रदर्शनफलम्

सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत् फलं समवाप्नुयात्।
तत् फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम् ॥२६॥
षोडशमहादानानि कृत्वा यल्लभते फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम् ॥२७॥

सार्द्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत् फलमश्नुते।
तत्फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम् ॥२८॥

श्रीचक्रेत्युपलक्षणम्।

अब यन्त्रदर्शन का फल कहते हैं। तन्त्र में कहा है कि मानव सम्यक् रीति से एक सौ यज्ञ (क्रतु) करके जो फल प्राप्त करता है, वही फल भक्तिपूर्वक श्रीचक्र के दर्शन मात्र से उसे मिलता है। साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान का जो फल है, वह भक्तिपूर्वक श्रीचक्र के दर्शन से प्राप्त होता है। मानव सोलह महादान से जो फल प्राप्त करता है, वह श्रीचक्र के दर्शन मात्र से मिल जाता है। यहाँ भी श्रीचक्र उपलक्षणमात्र है। सभी चक्रों के लिये यही फल समझना चाहिये।।२६-२८।।

अथ चक्रपादोदकमाहात्म्यम्

गङ्गापुष्करनर्मदासु यमुनागोदावरीगोमती-
गङ्गाद्वारगयाप्रयागवदरीवाराणसीसिन्धुषु ।
रेवासेतुसरस्वतीप्रभृतिषु ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
तीर्थस्नानसहस्रकोटिफलदं श्रीचक्रपादोदकम् ॥२९॥

अब श्रीचक्र के चरणामृत का माहात्म्य कहते हैं। श्रीचक्रात्मक ब्रह्माण्ड भाण्ड के अन्तर्गत गंगा, पुष्कर, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, गोमती, हरिद्वार, गया, प्रयाग, वाराणसी, सिन्धु, सेतुबन्ध, सरस्वती प्रभृति तीर्थों में स्नान की तुलना में सहस्र कोटि तीर्थस्नान के समतुल्य फल श्रीचक्र के चरणामृत-पान से मिल जाता है।।२९।।

अथ यन्त्रादिनाशप्रायश्चित्तम्

दग्धञ्च स्फुटितं यन्त्रं हृतं चौरेण वा प्रिये!।
उपवासं प्रकुर्वीत दिनमेकमतन्द्रितः ॥३०॥
लक्षमात्रं जपेद् विद्यां होमतर्पणपूर्विकाम्।
सद्भक्त्या तु गुरुं तोष्य ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥३१॥

लक्षं जप्त्वा तद्दशांशं होमं तद्दशांशं तर्पणादिकमपि कुर्यात्। अयुतजपः कार्य इत्येके ॥३२॥

यदि यन्त्र दग्ध, स्फुटित (टूटना) अथवा चोरी हो जाय तब एक दिन विना आलस्य के उपवास करना चाहिये। मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये तथा यथाविधि दशांश होम एवं होम का दशमांश तर्पण करना चाहिये। सद्भक्ति से गुरु को सन्तुष्ट करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। एक लाख जप, दस हजार होम,

एक हजार तर्पण तथा एक सौ अभिषेक करना चाहिये। कोई-कोई दस हजार जप भी कहते हैं।।३०-३२।।

कदाचिद् लुप्तचिह्नं वा स्फुटितादिविभूषणम्।
भस्म करोति यो मर्त्यो मृत्युस्तस्य द्रुतं भवेत्॥३३॥
तस्मात्तु तीर्थराजे वा गङ्गादिसरितां वरे।
समुद्रे वा क्षिपेद् देवि! अन्यथा दुःखमाप्नुयात्॥३४॥

इदमपि यन्त्रमात्रविषयकमिति।

जो कभी लुप्त हो गये अंक मन्त्र चिह्नादि वाले टूटे यन्त्र को भस्म करता है, तो उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है। अतएव हे देवि! ऐसे यन्त्र को प्रयाग में, गंगादि श्रेष्ठ नदी में अथवा समुद्र में विसर्जित करना चाहिये; अन्यथा दुःख प्राप्त होता है।।३३-३४।।

असंस्कृतयन्त्रादौ पूजा न कार्या, फलाजनकत्वात् प्रत्यवायजनकत्वाच्च।
अथ प्रतिष्ठितयन्त्रादौ कदाचित् पूजाऽभावे महाकपिलपाञ्चरात्रम्—

एकाऽपूजाऽविहिता कुर्याद् द्विगुणमर्चनम्।
त्रिरात्रन्तु महापूजा सम्प्रोक्षणमतः परम्॥३५॥
मासादूर्ध्वमनेकाहं पूजा यदि विहन्यते।
प्रतिष्ठैवोच्यते कैश्चित् कैश्चित् सम्प्रोक्षणक्रमः॥३६॥

असंस्कृत यन्त्र का पूजन नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसकी पूजा से फल नहीं मिलता, प्रत्युत पाप ही मिलता है। प्रतिष्ठित यन्त्र, प्रतिमा आदि की भी कदाचित् पूजा न होने पर महाकपिल मुनि उनके प्रतिकार के लिये कहते हैं कि यदि एक दिन पूजा न हो तब दूनी अर्चना करे। तीन दिन पूजा न करने पर जप, होम, तर्पणादि से युक्त षोडशोपचार महापूजा करे। तीन रात्रि (तीन दिन) पूजा न होने पर सम्प्रोक्षण करना चाहिये।।३५-३६।।

सम्प्रोक्षणन्तु देवस्य देवस्य त्वेति पूर्ववत्।
गवां रसैश्च संस्नाप्य दर्भतोयैर्निषिच्य च।
प्रोक्षयेत् प्रोक्षणीतोयैर्मूलेनाष्टोत्तरं शतम्॥३७॥
सम्पूज्य सकुशं पाणिं न्यस्य देवस्य मस्तके।
पञ्चावरं जपेन् न्यूनमष्टोत्तरशतोत्तरम्॥३८॥

ततो मूलेन मूर्द्धादिपीठान्तं संस्पृशेदिति।

'देवस्य त्वा' इत्यादि मन्त्र से पूर्ववत् देवता का सम्प्रोक्षण करना चाहिये। (यह मन्त्र ग्रन्थ में पहले कहा गया है)। दुग्ध से देवता को स्नान कराकर कुशोदक (कुशा-मिश्रित जल) से सेचन करके १०८ मूल मन्त्र पढ़कर प्रोक्षणी पात्र के जल से उसका प्रोक्षण करना चाहिये। देवता (यन्त्रादि के मस्तक का पुष्प तथा कुशा हाथ में लेकर स्पर्श करते हुये पञ्च न्यून अष्टोत्तर मन्त्र का जप करना चाहिये। इसके पश्चात् मूल मन्त्र पढ़ते हुये यन्त्र अथवा देवता के मूर्धा से लेकर मस्तक तक का स्पर्श करना चाहिये।।३७-३८।।

तत्त्वन्यासं लिपिन्यासं मन्त्रन्यासञ्च विन्यसेत्।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणस्थापनमाचरेत् ॥३९॥
पूजाञ्च महतीं कुर्यात् स्वतन्त्रोक्तां यथाविधि।
यागहीनादिषु प्रायः संक्षेपेण विधिः स्मृतः ॥४०॥

और इसके पश्चात् तत्त्वन्यास, लिपिन्यास तथा मन्त्रन्यास करने का विधान है। यह सब करने के पश्चात् प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र पढ़कर प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। तदनन्तर यथाविधि अपने तन्त्र की विधि से महापूजा करे। नियमित पूजा न होने के अवसर पर इस विधि को संक्षेप में कहा गया।।३९-४०।।

अथास्पृश्यस्पर्शे तु बोधायनः—द्रव्यवत् कृतशौचानां देवतार्चानां भूयः प्रतिष्ठापनमिति ॥४१॥

अब अस्पृश्य के द्वारा स्पर्श करने के विषय में बोधायन कहते हैं कि देवता की प्रतिमा अस्पृश्य के द्वारा स्पर्श हो जाने पर जैसे ताम्र आदि का पात्र शुद्ध करते हैं, वैसे ही उनकी भी शुद्धि करके उन्हें पुनः प्रतिष्ठित करना चाहिये।।४१।।

देवतार्चा देवताप्रतिमा। तासामस्पृश्यस्पृष्टानां द्रव्यवत् कृतशौचानां प्रकृत-द्रव्यस्य ताम्रादेर्यथोक्तशुद्धिजनकैरम्लादिभिः कृतशुद्धीनां भूयः प्रतिष्ठा-पनात् पूज्यत्वमित्यर्थः ॥४२॥

देवतार्चा—देवता की प्रतिमा। अस्पृश्य के द्वारा स्पर्श किये गये देवता-प्रतिमासमूह को द्रव्य की तरह शुद्धि करे। जैसे ताम्रपात्र को यथोक्त अम्ल आदि से शुद्ध करते हैं, वैसे ही शुद्धि करके पुनः प्रतिष्ठा द्वारा पूजात्व सम्पादित होता है। यही बोधायन ऋषि का तात्पर्य है।।४२।।

आदिपुराणे—

खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते।
यागहीने पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥४३॥

अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते।
दशष्वेतेषु नो चक्रुः सन्निधानं दिवौकसः ॥४४॥

आदिपुराण के अनुसार देवविग्रह के खण्डित, विदीर्ण, अग्निदग्ध, अपने स्थान से च्युत, यथाविधि परिमाणहीन, पूजाहीन, पशु द्वारा स्पृष्ट, अपवित्र स्थान में पतित, अन्य देवमन्त्र से पूजित, पतित-चाण्डालादि के स्पर्श द्वारा दूषित—इन दस स्थान के देवताविग्रह में देवगण सन्निधान नहीं करते।।४३-४४।।

पतिते—दुष्टभूमिष्वित्येकम्। अन्यमन्त्रार्चिते अन्यदेवतामन्त्रार्चिते इत्यर्थः ॥४५॥

पतिते = दुष्ट भूमि में गिरना। अन्यमन्त्रार्चित = अन्य देवता के मन्त्र से पूजित।।४५।।

अथ लिङ्गद्वयादिपूजानिषेधः

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

लिङ्गद्वयं सदा नार्च्यं गणेशद्वयमेव च।
शक्तिद्वयं तथा सूर्यद्वयमेकत्र नार्चयेत् ॥१॥
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु शालग्रामशिलाद्वयम्।
एतेषामर्चनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही ॥२॥

एकत्र एकासने। द्वारकाचक्रं शिवनाभित्वेन ख्यातम्।

अब लिंगद्वयादि के पूजन का निषेध कहते हैं। मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि एक स्थान पर अर्थात् एक आसन पर दो शिवलिंग, दो गणेश की कभी भी अर्चना नहीं करनी चाहिये। ऐसे ही दो शक्ति तथा दो दुर्गा का कभी पूजन नहीं करना चाहिये। दो द्वारका चक्र (शिवनाभि) तथा दो शालग्राम की पूजा भी नहीं करनी चाहिये। ऐसा करने से गृही नित्य उद्वेग को प्राप्त करता है।।१-२।।

लैङ्गे—

एकीकृत्य च लिङ्गानि दश पञ्च शतानि वा।
प्रत्येकेनाऽथवा देवि! बिल्वपत्रैः प्रपूजयेत् ॥३॥
एकं पाशुपतं लिङ्गं मृच्छिलादिविनिर्मितम्।
शालग्रामशिलामेकां गृहस्थोऽपि प्रपूजयेत् ॥४॥

लिङ्गपुराण में कहा है—हे देवि! पाँच, दश, अथवा एक सौ शिवलिंग का एकत्र एक साथ पूजन करे। अथवा बिल्वपत्र से सबको एक-एक करके पूजे। गृहस्थ मृत्तिका अथवा शिला से निर्मित एक शिवलिंग तथा एक शालग्राम की पूजा कर सकता है।।३-४।।

अथ पञ्चधा शुद्धिः

अथ पञ्चधा शुद्धिं विना पूजायाः फलाजनकत्वात् सा निरूप्यते। कुलार्णवे—

आत्मस्थानमनुद्रव्य देव शुद्धिस्तु पञ्चमी।
यावन्न गुरुते देवि! तावद् देवार्चन कुतः ॥५॥

पाँच प्रकार की शुद्धि के विना पूजा फलजनिका नहीं होती; अतः उसका निरूपण करते हैं। जैसे कुलार्णव में कहा है कि आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, मन्त्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि और पाँचवी देवशुद्धि कही गयी है। हे देवि! जब तक पूजक इन पाँच शुद्धि को सम्पन्न नहीं कर लेता, तब तक देवता की अर्चना कैसे होगी?।।५।।

शुचिं विना हि पूजा तु अभिचाराय कल्पते।
सुस्नातैर्भूतशुद्ध्या च प्राणायामादिभिः प्रिये!।
षडङ्गाद्याखिलन्यासैरात्मशुद्धिरुदीरिता ।।६।।

इन पञ्चशुद्धि के विना क्रिया करने से पूजक की पूजा उसी के लिये अभिचाररूप अर्थात् अनिष्टकारी हो जाती है। हे प्रिये! विधान के अनुसार स्नान, भूतशुद्धि, प्राणायाम, षड़ङ्गन्यास प्रभृति समस्त न्यास के द्वारा आत्मशुद्धि करनी चाहिये।।६।।

वितानधूपदीपादि पुष्पमाल्यादिशोभितम्।
पञ्चवर्णरजोभिश्च स्थानशुद्धिरितीरिता ।।७।।

सम्मार्जन तथा अनुलेपनादि द्वारा पूजास्थान को दर्पण की तरह शुद्ध, सुन्दर, छायायुक्त, धूप, दीप तथा पुष्पमाल्यादि द्वारा युक्त तथा पाँच रंगों की रज (चूर्ण) द्वारा शोभित करना चाहिये। यह स्थानशुद्धि होती है।।७।।

ग्रथित्वा मातृकावर्णैर्मूलमन्त्राक्षराणि च।
क्रमोत्क्रमाद् द्विरावृत्त्या मन्त्राणां शुद्धिरीरिता ।।८।।

प्रथमतः एक मातृकावर्ण का पाठ करके समग्र मन्त्र का पाठ करे। पुनः एक मातृका कहकर समग्र मन्त्र पढ़े। ऐसे 'अ' से लगाकर 'क्ष' पर्यन्त मातृका से करना चाहिये। इससे मन्त्र शुद्ध हो जाता है।।८।।

तथा चादौ एकैकमातृकावर्णं जपित्वा समग्रमन्त्रं जप्त्वा पुनर्मातृकैकैकवर्णं जपेत्। यथा अं मूल। इत्यादि एवं क्षकारपर्यन्तम्। ततः क्षकाराद्यकारान्तं जपेदित्यर्थः ।।९।।

प्रथम एक मातृकावर्ण बिन्दुयुक्त पढ़े, तदनन्तर समग्र मन्त्र को पढ़े, जैसे अं इसके बाद मन्त्र। आं इसके बाद मन्त्र। ऐसा 'अ' से लगाकर 'क्ष' तक करना होगा। यह करके पुनः क्षं तथा मन्त्र। अब 'क्ष' से लगाकर विलोमरूप से 'अ' तक मूल मन्त्र लगाकर जपे। पहले अनुलोम, तदनन्तर विलोम।।९।।

पूजाद्रव्याणि सप्रोक्ष्य मूलास्त्रैश्च विधानतः।
दर्शयेद् धेनुमुद्रादि द्रव्यशुद्धिः प्रकीर्त्तिता ।।१०।।

यथाविधान से मूल मन्त्र तथा 'फट्' मन्त्र से पूजा-द्रव्यादि का प्रोक्षण करके देव-देवी को धेनुमुद्रा प्रभृति प्रदर्शनीय मुद्रा दिखाये। यही द्रव्यशुद्धि कही गई है।।१०।।

पीठे देवीं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मन्त्रवित्।
मूलमन्त्रेण दीपादीन् माल्यादीनुदकेन च ॥११॥
त्रिवारं प्रोक्षयेद् विद्वान् देवशुद्धिरितीरिता।
पञ्चशुद्धिं विधायेत्थं पश्चाद् यजनमाचरेत् ॥१२॥

मन्त्र का ज्ञाता साधक पूजन पीठ पर देवतादि को स्थापित करके उनका सकलीकरण करे और मूल मन्त्र पढ़ते हुये दीपादि दिखाकर पुष्प-माला आदि को तीन बार प्रोक्षित करे। यह देवशुद्धि होती है। इस प्रकार पञ्चशुद्धि करके पूजानुष्ठान करना चाहिये।।११-१२।।

अथ कुण्डनिर्णयः

ब्राह्मी सर्वार्थसिद्धिः स्यात् क्षत्रिया राज्यदा मता।
धनधान्यकरी वैश्या क्षुद्रा तु निन्दिता भवेत् ॥१३॥

अब कुण्डनिर्णय कहते हैं। ब्राह्मी भूमि कुण्ड-निर्माण हेतु प्रशस्त होती है। यह समस्त प्रयोजन को सिद्धि प्रदान करने वाली होती है। क्षत्रिया भूमि राज्यप्रद कही गई है। वैश्या भूमि धन-धान्यप्रदा है एवं शूद्रा भूमि निन्दिता होती है।।१३।।

गौतमीये—

भूमेः परिग्रहं कुर्याद् यावदायतनं भवेत्।
शुक्लमृत्सा तु या भूमिर्ब्राह्मी सा परिकीर्त्तिता ॥
क्षत्रिया रक्तमृद् भूमिर्हरिद् वैश्या प्रकीर्त्तिता।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छुद्रा चतुर्द्धा भूः प्रकीर्त्तिता[१] ॥

गौतमीय तन्त्र में कुण्ड के लिये भूमि-ग्रहण कहा गया है। शुक्ल मिट्टी वाली भूमि ब्राह्मी, रक्त वर्ण मृत्तिका वाली भूमि क्षत्रिया, हरित वर्ण की वैश्या तथा कृष्ण वर्ण वाली भूमि शूद्रा होती है)।

मत्स्यपुराणे—

प्रागुदक्प्लवनां भूमिं कारयेद्यत्नतो नृप!॥१४॥

तत्र पूर्वनीचामुत्तरनीचां वेत्यर्थः।

मत्स्यपुराण में कहते हैं कि हे नृप! यत्नपूर्वक भूमि को पूर्वप्लवना (पूर्व में नीची) तथा उत्तरप्लवना (उत्तर में नीचा) बनानी चाहिये।।१४।।

---

१. मूल ग्रन्थ में इन श्लोकों पर संख्या अंकित न होने से ये श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं।

गणेशविमर्शिन्याम्—

आदौ भूमिं परीक्षेत वास्तुशास्त्रविशारदः।
शल्यादिशोधनं कुर्यात् पौरुषं वा खनेत्ततः ॥१५॥

गणेशविमर्शिनी में कहते हैं कि वास्तुशास्त्र का ज्ञाता विद्वान् पहले भूमि की परीक्षा करे। शल्यादि का शोधन करे। तत्पश्चात् ऊध्वबाहु करके खड़े पुरुष की जितनी लम्बाई होती है, उतना खनन करे।।१५।।

वास्तोः संगृह्य पूर्वस्यामैशान्यामुत्तरेऽपि वा।
दिशि सङ्कल्पयेन्मन्त्री मण्डपञ्च विभागतः ॥१६॥
नवहस्तप्रमाणं वा सप्तहस्तमथापि वा।
पञ्चहस्तप्रमाणं वा चतुरस्त्रं समन्ततः ॥१७॥

सङ्कल्पयेत् कुर्यात्। समन्ततः चतुरस्त्रं चतुर्दिक्षु समम्।

मन्त्रज्ञ साधक वास्तु के पूर्व, ईशान अथवा उत्तर में भूमि लेकर विभागानुरूप मण्डप बनाये। चारो ओर चतुरस्त्र अर्थात् एक समान नव हस्तप्रमाण अथवा सप्त हस्तप्रमाण अथवा पञ्च हस्तप्रमाण मण्डप बनाये।।१६-१७।।

पञ्चहस्तमण्डपमेककुण्डपक्षे। तदुक्तं तत्रैव—एककुण्डमते नान्यत् पञ्च-हस्तगृहं भवेत्। तदेककुण्डं गृहस्योत्तरभागे प्रशस्तम् ॥१८॥

एक कुण्ड के लिये पाँच हाथ का मण्डप बनाना चाहिये वहाँ यह भी कहा है कि एक कुण्डमत से अन्य अर्थात् सात हाथ, नौ हाथ से अन्य एक पञ्चहस्त मण्डप भी होगा। वह एक कुण्ड गृह के उत्तर की ओर बनाना चाहिये।।१८।।

यथा—

अथोत्तरे तथा कुण्डमेकं वेदास्त्रमुद्धरेत्।
लक्षहोमे तु तत् कुर्याद् गृहमध्ये न दूषणम् ॥१९॥

जैसे—अब मण्डप के उत्तर दिशा (उत्तर भाग में) में एक चौकोर कुण्ड बनाये; किन्तु लक्ष होम के लिये मण्डप के मध्य में कुण्ड बनाये; उसमें दोष नहीं है।।१९।।

महादाननिर्णये—

भुक्तौ मुक्तौ तथा पुष्टौ जीर्णोद्धारे तथैव च।
दीक्षा होमे तथा शान्तावेकं वरुणदिग्गतम् ॥२०॥

महादान-निर्णय में कहा है—भोगकामना, मुक्तिकामना, पुष्टिकार्य, जीर्णोद्धार-दीक्षाहोम तथा शान्तिकार्य में मण्डप के पश्चिम भाग में एक कुण्ड बनाना चाहिये।।२०।।

अत्र मण्डपस्येति शेषः। जीर्णोद्धारे नष्टोद्धृतदेवगृहादिप्रतिष्ठायाम्।

इस 'वरुण दिग्गत' पदस्थल में 'मण्डपस्य' यह पद ऊह्य करना चाहिये। जीर्णोद्धार अर्थात् जीर्ण तथा भग्न देवगृहादि का संस्कार-निर्माण आदि।

तन्त्रान्तरे—

उदीच्यं पौष्टिकं कुण्डं वारुणे शान्तिकादिषु।
उच्चाटे चानिले कुण्डं याम्ये च मारणे भवेत् ॥२१॥

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि पौष्टिक कर्म के लिये उत्तर दिशा में, शान्तिकादि कार्य के लिये पाश्चिम (वरुण) दिशा में कुण्ड बनाना चाहिये। उच्चाटन में वायुकोणगत कुण्ड तथा मारण में दक्षिण में कुण्ड बनाना चाहिये।।२१।।

वशिष्ठसंहितायां—

वास्तोरीशभागे तु मण्डपं रचयेत् सुधीः।
षड्द्वादशाष्टभिर्हस्तैः षोडशैर्वा समन्ततः।
चतुर्द्वारसमायुक्तं तोरणाद्यैरलङ्कृतम् ॥२२॥

समन्तत इत्यनेन चतुर्दिक्षु साम्यमुक्तम्।

वशिष्ठसंहिता में कहा है कि सुधी साधक वास्तु के ईशान कोण में चारो ओर (एक बराबर) छः हाथ, बारह हाथ, आठ हाथ अथवा सोलह हाथ का चार द्वार से युक्त तोरणादि से सज्जित मण्डप बनाये।।२२।।

निबन्धे—

तत् त्रिभागमिते क्षेत्रेऽरत्निमात्रसमुन्नताम्।
चतुरस्रां ततो वेदीं मण्डलाय प्रकल्पयेत् ॥२३॥

तस्य मण्डलस्य त्रिभागैः पूर्वपश्चिमयोर्दक्षिणोत्तरयोश्चकृतैस्त्रित्रिभागैर्मितेऽथान्नवधा विभक्तमण्डलमध्ये वेदीं कुर्यादित्यर्थः।

निबन्ध में कहा है कि तदनन्तर उस मण्डप के तीनों भाग के परिमित क्षेत्र में वास्तु मण्डल के लिये अरत्नि परिमाण समुन्नत चतुरस्र वेदी बनाये।।२३।।

तात्पर्य यह कि उस मण्डल के पूर्व तथा पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण में नवधा विभक्त मण्डल में वेदी बनानी चाहिये।

अत्र यद्यपि—

पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्द्धेन्द्वाभं शुभप्रदम्।
शत्रुक्षयकरं त्र्यस्रं वर्तुलं शान्तिकर्मणि ॥२४॥

छेदमारणयोः कुण्डं षडस्त्रं पद्मसन्निभम्।
पुष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्त्रमीरितम्॥२५॥

यद्यपि विभिन्न तन्त्रों में विशेष रूप से कहा गया है कि योनिकुण्ड पुत्रप्रद, अर्द्धचन्द्राकृति कुण्ड शुभप्रद, ताम्रकुण्ड शत्रुनाशक तथा शान्तिकर्म में वर्तुल कुण्ड का प्रयोग करना चाहिये। विद्वेषण तथा मारणार्थ षट्कोणकुण्ड बनाना चाहिये। पद्माकार पद्मकुण्ड पुष्टि देने वाला होता है। अष्टास्त्र कुण्ड रोगों में शान्ति प्रदान करता है।।२४-२५।।

तथा सिद्धसारस्वते—

शान्तौ पुष्टौ तथारोग्ये कुण्डञ्च चतुरस्त्रकम्।
आकर्षणे त्रिकोणं स्यादुच्चाटे वर्त्तुल तथा।
मारणे च तथा योज्यं वर्तुलं मन्त्रिभिः सदा॥२६॥

सिद्धसारस्वत में कहा है मन्त्रिगण (मन्त्रज्ञ) को सदा शान्ति, पुष्टि तथा आरोग्य में चतुरस्त्र कुण्ड, आकर्षण में त्रिकोण कुण्ड, उच्चाटन में वर्त्तुलकुण्ड तथा मारण में भी वर्तुल कुण्ड बनाना चाहिये।।२६।।

तथा—

विप्राणां चतुरस्त्रं स्याद्राज्ञां वर्त्तुलमिष्यते।
वैश्यानामर्द्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्त्रमीरितम्॥२७॥

इति विशिष्याभिहितम्।

कहा गया है कि विप्रगण के लिये चतुरस्त्र कुण्ड बनाना चाहिये। राजाओं को वर्तुलकुण्ड अभिप्रेत होता है, वैष्णवों को अर्धचन्द्र कुण्ड तथा शूद्रगण को ताम्रकुण्ड बनाना चाहिये।।२७।।

तथापि—

सर्वसिद्धिकरं पुंसां चतुरस्त्रमुदाहृतम्।

इति निबन्धनिर्बन्धात्;

चतुरस्त्रन्तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः।
चतुरस्त्रं महेशानि! सर्वकर्माणि साधयेत्॥

इति तन्त्रान्तरवचनात्;

सर्वाधिकारिकं कुण्डं सर्वदं चतुरस्त्रकम्।

इति विज्ञानलतिकावचनाच्च सर्वकामार्थिनां सर्ववर्णानां चतुरस्रकुण्डे होमाधिकारः सिध्यति ॥२८॥

फिर भी निबन्ध के 'चतुरस्र (चौकोर) कुण्ड मानव को सर्वसिद्धि देता है' इस वचन के अनुसार तथा 'कोई कोई तान्त्रिक सभी के लिये चतुरस्र कुण्ड विहित बतलाते है। हे महेशानि! इससे समस्त कर्म सिद्ध हो जाते हैं—इस तन्त्रान्तर-कथन से एवं 'चतुरस्र कुण्ड सबके लिये है' इस विज्ञानलतिका के वचन से यह सिद्ध हो जाता है कि चतुरस्र कुण्ड में सभी कामार्थीगण को होम करने का अधिकार होता है।।२८।।

अस्त्रं—कोणः; यत्तु शारदायाम्—

प्राक्प्रोक्तमण्डपे विद्वान् वेदिकाया बहिस्त्रिधा।
क्षेत्रं विभज्य मध्येंऽशे पूर्वादि परिकल्पयेत् ॥२९॥

अस्त्रं अर्थात् कोण। जैसाकि शारदातिलक में कहते हैं कि यह जो नव कुण्डों का विधान है, इसमें पञ्चमेखला को जानने वाला विद्वान् पहले कही गयी मण्डप वेदिका के बाहरी भाग में चारो ओर के क्षेत्र के अंश का तीन भाग करके उसके मध्यभाग में प्रदक्षिणाक्रम से पूर्वादि आठ दिशाओं के अनुक्रम मनोहारी कुण्डसमूह का निर्माण करे।।२९।।

अष्टास्वाशानुकुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात्।
चतुरस्रं योनिमर्द्धचन्द्रं त्र्यस्रं सुवर्त्तुलम् ॥३०॥
षडस्रं पङ्कजाकारमष्टास्रं तानि नामतः।
आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः ॥३१॥

इति नवकुण्डविधानम्, तत् समर्थपरम्। अत्र वेदिकायां बहिरित्यस्य मध्ये इत्यर्थः। मध्येंऽश इति पूजार्थं सर्वतोभद्रमण्डलं कार्यमित्यर्थः। असामर्थ्ये त्वेककुण्डे होमोऽपि शास्त्रार्थः ॥३२॥

यह कुण्डसमूह चतुरस्र कुण्ड, योनिकुण्ड, अर्द्धचन्द्र कुण्ड, त्र्यस्र कुण्ड, वृत्तकुण्ड, षडस्रकुण्ड, अष्टास्रकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। ईशान कोण तथा पूर्व दिशा के मध्य में आचार्य कुण्ड चतुरस्र अथवा वृत्त रूप में बनाना चाहिये।।३०-३१।।

समर्थ व्यक्ति नौ कुण्ड बना सकते हैं। यहाँ 'वेदिकाया बहिः' का अर्थ है—वेदिका के मध्य में। मध्येंऽशे का अर्थ है—पूजाहेतु सर्वतोमण्डल बनाये। असमर्थ व्यक्ति एक ही कुण्ड में होम करे—यह भी शास्त्र की अनुमति है।।३२।।

निबन्धे—

सहस्त्र खलु होतव्ये कुर्यात् कुण्डं करात्मकम्।
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुष्करम्॥३३॥
षट्करे वेदलक्षञ्चाष्टकरे दशलक्षकम्।
दशहस्तन्तु कोट्यां वै हस्तसंख्या व्यवस्थिता।
दशहस्तात् परं कुण्डं नास्ति होमे महीतले॥३४॥

शारदातिलक (निबन्ध) में लिखा है कि १००० होम हेतु एक हाथ का कुण्ड बनाये। १०००० होमार्थ दो हाथ का कुण्ड तथा एक लाख होमार्थ चार हाथ का कुण्ड बनाये। चार लाख होम के लिये ६ हाथ का कुण्ड एवं दस लाख होम के लिये आठ हाथ का कुण्ड बनाये। एक करोड़ होम के लिये दस हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये। दस हाथ से अधिक का कुण्ड पृथ्वीलोक में नहीं बनाया जाता।।३३-३४।।

एवञ्चाविशेषाच्चतुरस्त्रस्येव योनिकुण्डार्देरपि होमानुसारेण द्विहस्तादित्वं बोध्यम्। शारदायाम्—कोट्यामष्टकरं स्मृतमिति। एतयोर्विरोधस्तु द्रव्यस्य गुरुत्वागुरुत्वेन परिहरणीय:। तथा—

एकहस्तमितं कुण्डं एकलक्षे विधीयते।

इदमप्याज्यहोममधुघृतदूर्वाकरवीरादिहोमे च बोद्धव्यम्॥३५॥

इस प्रकार से कोई विशेष नियम न होने से होम के अनुसार चतुरस्त्र कुण्ड के समान ही योनिकुण्ड आदि भी (होम संख्या के अनुसार) दो हाथ, चार हाथ इत्यादि परिमाण के बन सकते हैं। शारदातिलक में कहा गया है कि एक कोटि होम में आठ हाथ का कुण्ड बनता है। इससे दोनों वचनों में विरोध है (क्योंकि यहाँ दश हाथ के कुण्ड में एक कोटि होम कहा गया है)। होमद्रव्य के परिमाण के कारण यह विरोध है। इसी प्रकार एक हाथ के कुण्ड में एक लाख होम भी विहित है। इसे घी, मधु, दूर्वा तथा आज्य होम जानना चाहिये।।३५।।

तथा—

मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्द्धे च प्रचक्षते।
शतहोमेऽरत्निमात्रं हस्तमात्रं सहस्त्रके॥३६॥
द्विहस्तमयुते लक्षे चतुर्हस्तमुदाहृतम्।
दशलक्षे तु षड्हस्तं कोट्यामष्टकरं स्मृतम्॥३७॥
एकहस्तमिते कुण्डे लक्षमेकं विधीयते।
लक्षाणां दशकं यावत् तावद्धस्तेन वर्धयेत्॥३८॥

तन्त्र में और भी कहा है कि पचास होमार्थ मुष्टि के बराबर कुण्ड होना चाहिये। शत होमार्थ अरत्निमात्र कुण्ड, सहस्र होमार्थ एक हाथ का कुण्ड बनाये। १०००० होमार्थ २ हाथ का कुण्ड, लक्ष होम के लिये ४ हाथ का कुण्ड, दस लाख होम के लिये छः हाथ का कुण्ड एवं कोटि होमार्थ आठ हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये।

एक हाथ के कुण्ड में एक लाख होम, दो लाख होम में दो हाथ का कुण्ड, तीन लाख होम में तीन हाथ का कुण्ड, चार लाख होम में चार हाथ का कुण्ड, पाँच लाख होम में पाँच हाथ का कुण्ड, छः लाख होम में छः हाथ का कुण्ड, सात लाख होम में सात हाथ का कुण्ड, आठ लाख होम में आठ हाथ का कुण्ड, नौ लाख होम में नौ हाथ का कुण्ड एवं दस लाख होम में दस हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये।।३६-३८।।

मुष्टिः कूर्परात् कनिष्ठामूलावधिः। अवन्तिः कूर्परात् कनिष्ठाग्रावधि। हस्तप्रमाणमग्रे वक्ष्यते ।।३९।।

कूर्पर (कानी उँगली) से कनिष्ठा उँगली के मूल पर्यन्त को मुष्टि कहा जाता है। कानी उँगली से कनिष्ठा उँगली के अग्र भाग तक को अवन्ति कहा जाता है। हाथ का परिमाण आगे कहा जायेगा।।३९।।

द्विहस्तादिकुण्डमानन्तु गौतमीये—

पूर्वपूर्वस्य कुण्डस्य कोणसूत्रन्तु यद् भवेत्।
उत्तरोत्तरकुण्डानां मानं तत् परिकीर्तितम् ।।४०।।

हो हाथ के कुण्डमानार्थ गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि पूर्व-पूर्व कुण्ड के कोणसूत्र जिस परिमाण के होंगे, उत्तर-उत्तर द्विहस्तादि कुण्ड उसी परिमाण का कहा जायेगा।।४०।।

तथा—

कर्णसूत्रप्रमाणेन द्विहस्तं कुण्डमुद्धरेत्।
सर्वकुण्डेषु सर्वत्र वर्द्धयेत् विधिनाऽमुना ।।४१।।

इसी प्रकार एक हाथ कुण्ड के कर्णसूत्र परिणाम के द्वारा ही दो हाथ के कुण्ड को बनाना चाहिये। सभी स्थल में इसी परिमाण से कुण्ड के माप में वृद्धि करनी चाहिये अर्थात् अधिक आहुति के लिये इसी परिमाण से कुण्ड के आकार में वृद्धि करनी चाहिये।।४१।।

कर्णसूत्रं कोणसूत्रम्। तथा चायमर्थः—पूर्वपूर्वस्य हस्तादिमितस्य कोण-सूत्रमानम् ईशानकोणनिर्ऋतिकोणपातितसूत्रस्य यन्मानं तदुत्तरोत्तरस्य

द्विहस्तादिकुण्डस्य मानमिति पारिभाषिकं द्विहस्तादिकं, परिभाषाया बलवत्वात्, न तु यथाश्रुतस्य द्वैगुण्यमिति। तथा च एकहस्तकुण्डकोण-द्वयमानेन द्विहस्तं द्विहस्तकुण्डकोणेन त्रिहस्तं परिकल्प्य त्रिहस्तं कुण्ड-कोणद्वयमानेन चतुर्हस्तं कार्यम्। एवं परत्रापि ॥४२॥

कर्णसूत्र = कोणसूत्र। पूर्व-पूर्व हाथ के नाप के कुण्ड का कोणसूत्र ईशान कोण और निर्ऋति कोण में पातित सूत्र का जो परिमाण है, वह उत्तरोत्तर द्विहस्तादि कुण्ड का परिमाण है। यही परिभाषा द्विहस्तादि की है; परन्तु कहे गये परिमाण का दूना हो हाथ नहीं होता। एक हाथ के कुण्ड के कोणद्वय का परिमाण दो हाथ का चतुरस्र कुण्ड, द्विहस्त कुण्ड के कोणद्वय का परिमाण तीन हाथ का चतुरस्र कुण्ड के कोणद्वय के परिमाण से चार हाथ का चतुरस्र कुण्ड होगा। ऐसा ही पाँच हाथ के कुण्डादि स्थल में भी जानना चाहिये।।४२।।

गौतमीये—

ततः कुण्डं खनेन्मन्त्री यथाशास्त्रविधानतः ।
त्यक्त्वा सर्पस्य गात्रञ्च शिरोदेशं प्रयत्नतः ॥४३॥
शिरोघाते भवेन्मृत्युः पिण्डेषु पिण्डघातनम् ।
पृष्ठे तु दुःखसम्भूतिः क्रोड़े सर्वार्थसाधनम् ॥४४॥

गौतमीय तन्त्रानुसार तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक वास्तुनाग के शरीर तथा मस्तक का त्याग करके शास्त्रविधान के अनुसार कुण्ड का खनन करे।

वास्तुनाग का मस्तक आहत होने से साधक की मृत्यु हो जाती है। उसका शरीरांश आहत होने पर यजमान का वह-वह अंग आहत होता है। वास्तुनाग का पृष्ठ भाग आहत होने पर साधक को दुःख का सामना करना पड़ता है। क्रोड में गृह अथवा कुण्डादि का निर्माण करने पर सर्वार्थ-सिद्धि मिलती है।।४३-४४।।

ज्योतिषे—

पूर्वादिषु शिरः कृत्वा नागः शेते त्रिभिस्त्रिभिः ।
भाद्रादौ वामपार्श्वेन तस्य क्रोड़े शुभं गृहम् ॥४५॥ इति।

ज्योतिष के अनुसार तीन-तीन मास नाग एक दिशा में मस्तक करके रहते हैं। (नाग = वास्तुनाग)। भाद्रादि में वाम पार्श्व में शयन करते हैं। वास्तुनाग के क्रोड़ में गृह अथवा कुण्ड बनाने से शुभ होता है।।४५।।

शारदायाम्—

यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदिष्यते ।
खाताधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः ॥४६॥

वक्रे कुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले।
मेखलारहिते शोको ह्यधिके वित्तसंक्षयः ।।४७।।

शारदातिलक में कहते हैं कि कुण्ड का जो परिमाण विस्तार अथवा मध्य सूत्र है, उसी परिमाण में कुण्ड का खात कहा जायेगा। इसके अधिक विस्तार से साधक रोगी होता है एवं न्यून होने पर उसके धेनु तथा धन का क्षय होता है। कुण्ड टेढ़ा होने पर मनस्ताप एवं कुण्ड की मेखला छिन्न होने पर मरण होता है। मेखलारहित कुण्ड शोकप्रद तथा अधिक मेखलायुक्त कुण्ड वित्तनाशक कहा गया है।।४६-४७।।

भार्याविनाशकं प्रोक्तं कुण्डं योन्या विना कृतम्।
अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत् कण्ठवर्जितम् ।।४८।।

योनिरहित कुण्ड पत्नी-विनाशक कहा गया है। जो कुण्ड कण्ठरहित होता है, वह अपत्यनाशक कहा गया है।।४८।।

अतएव वशिष्ठसंहितायाम्—

तस्मात् सर्वं परीक्ष्यैव कर्त्तव्यं शुभवेदिकाम्।
हस्तमानं ततः कुर्यात् चतुरस्त्रं समन्ततः।
सात्त्विकी मेखला पूर्वा द्वितीया राजसी स्मृता।
तृतीया तामसी प्रोक्ता मेखलानां विनिर्णयः ।।४९।।

अतएव वशिष्ठ संहिता में कहते हैं कि इस प्रकार से समस्त परीक्षा करके ही शुभ वेदी बनानी चाहिये। चारो ओर एक हाथ का चतुरस्त्र कुण्ड बनाना चाहिये। प्रथम मेखला सात्त्विकी, दूसरी राजसी एवं तीसरी मेखला को तामसी कहते हैं। इस प्रकार यह मेखला स्वरूप-निर्णय कहा गया।।४९।।

हीने न्यूनखाते। अधिके चतुरादिमेखलायुक्ते। पूर्वा प्रथमा कुण्डादिति शेषः ।।५०।।

हीने—न्यूनखाते अर्थात् कुण्ड की विशालता की अपेक्षा न्यून। अधिके—चार मेखला अधिक से युक्त अर्थात् चार से अधिक मेखलायुक्त। पूर्वा—प्रथमा (कुण्ड से) यह जानना चाहिये।।५०।।

तथा—

कुण्डानां मेखलास्तिस्त्रो मुष्टिमात्रे तु ताः क्रमात्।
उत्सेधायामतो ज्ञेया द्व्येकार्द्धाङ्गुलसम्मिताः ।।५१।।
अरत्निमात्रे कुण्डे तु तास्त्रिद्व्येकाङ्गुलात्मिका।
हस्तमात्रमिते कुण्डे वेदाग्निनयनाङ्गुलाः ।।५२।।

चतुर्हस्तेषु कुण्डेषु वसुतर्कयुगाङ्गुलाः ।
कुण्डे द्विहस्ते ता ज्ञेया वरवेदगुणाङ्गुलाः ।।५३।।

कुण्डों में तीन मेखला होती है। मुष्टि (इक्कीस अंगुल) के नाप का कुण्ड होने पर मेखला का विस्तार दो अंगुल तथा ऊँचाई एक अंगुल और आधा अंगुल होगी। अरत्नि अथवा साढ़े बाईस अंगुल कुण्ड में मेखला की ऊँचाई यथाक्रमेण तीन अंगुल, दो अंगुल तथा एक अंगुल होगी। द्विहस्त कुण्ड में मेखला का विस्तार तथा उच्चता यथाक्रमेण छः अंगुल, चार अंगुल तथा तीन अंगुल होगी। चार हाथ के कुण्ड में यथाक्रम से आठ अंगुल, छः अंगुल तथा चार अंगुल हो सकती है।।५१-५३।।

विशेष—कोई भी कुण्ड हो, उसके चौबीस भाग का एक भाग ही एक अंगुल होगा, यह सोमशम्भु का कथन है। खात के दोनों ओर आधा अंगुल छोड़ कर मेखला होगी। अन्यान्य कुण्डों की मेखला भी इसी विधानानुसार होगी।

कुण्डे रसकरे तास्तु दशाष्टर्त्वङ्गुलाः क्रमात् ।
वस्तु हस्तमिते कुण्डे मानुपङ्क्त्यष्टकाङ्गुलाः ।।५४।।

दस हाथ के कुण्ड में वह तीन मेखला दस अंगुल, आठ अंगुल तथा छः अंगुल की कही गई है। आठ हाथ के कुण्ड में वह मेखला बारह अंगुल, दस अंगुल तथा आठ अंगुल की कही गई है।।५४।।

दशहस्ते मिते कुण्डे मनुभानुदशाङ्गुलाः ।
विस्तारोत्सेधतो ज्ञेयाः मेखला सर्वतो बुधैः ।।५५।।

दश हाथ के कुण्ड में वह तीनों मेखला चारो ओर विस्तार तथा उच्चता में चौदह अंगुल, बारह अंगुल तथा दस अंगुल की कही गयी है।।५५।।

मेखला तु ब्रह्मचारिमेखलावद् वेष्टनरूपा चतुरस्रा कार्या। तथा च एकहस्ते कुण्डे कुण्डसमीपस्था चतुरङ्गुला। तद्बहिस्त्र्यङ्गुला। सर्वाः परस्परात् संसक्ताः। एवं द्विहस्ते षट्चतुस्त्र्यङ्गुला, चतुर्हस्ते अष्टषट्चतुरङ्गुला इत्यादिक्रमेण मेखला कार्या। मानं तुतत्सेधत आयामतश्चैकम् ।।५६।।

यह मेखला ब्रह्मचारी की मेखला की तरह चतुरस्र को आवेष्टित करके होती है। तब एक हाथ के कुण्ड में कुण्ड के पास चार अंगुल, उसके बाहर तीन अंगुल, उसके बाहर दो अंगुल की मेखला होनी चाहिये। सभी मेखलायें परस्पर संयुक्त हों। इसी प्रकार से दो हाथ के कुण्ड में छः अंगुल तथा चार अंगुल और तीन अंगुल की होनी चाहिये। चार हाथ के कुण्ड में आठ अंगुल, छः अंगुल तथा चार अंगुल की मेखला बनानी चाहिये। उच्चता तथा विस्तार का नाप एक ही है।।५६।।

पिङ्गलायाम्—

खातादेकाङ्गुलं त्यक्त्वा मेखलानां विधिर्भवेत् ॥५७॥

पिङ्गलागम में कहते हैं कि खात से एक अंगुल छोड़कर मेखला की रचना करनी चाहिये।।५७।।

कालोत्तरे—

खाताद् बाह्येऽङ्गुले कण्ठः सर्वकुण्डेष्वयं विधिः ॥५८॥

कालोत्तर में कहते हैं कि खात के बाहर एक अंगुल का कण्ठ होता है। सभी प्रकार के कुण्ड के लिये यही नियम है।।५८।।

सर्वकुण्डेष्विति चतुरस्रादिनवकुण्डेष्वित्यर्थः। तत्रापि तेषां मुष्टावेकहस्तत्वे तथा बोध्यम्। द्विहस्ताद्‌द्वित्वे तु अर्द्धार्द्धाङ्गुलक्रमेण कण्ठवृद्धिः ॥५९॥

सर्वकुण्डेषु का अर्थ है—चतुरस्रादि नव कुण्ड। यहाँ वे कुण्डसमूह मुष्टिपरिमित, अवन्तिपरिमित अथवा एक हाथ परिमित होने पर उस प्रकार एक अंगुल का कण्ठ वाला होगा। द्विहस्तादि परिमित कुण्ड होने पर आधा आधा अंगुल क्रम बढ़ता जायेगा। जैसे तीन हाथ वाले में आधा अंगुल बढ़ेगा, उससे आधा अंगुल चार हाथ वाले में बढ़ेगा। ऐसे ही समझना चाहिये।।५९।।

यथा गौतमीये—

मेखलानां भवेदस्तः परितो नेमिरङ्गुल।
एकहस्तस्य कुण्डस्य वर्द्धयेत्तां क्रमात् सुधीः।
दशहस्तान्तमन्येषामर्द्धाङ्गुलवशात् पृथक् ॥६०॥

एक हाथ परिमित कुण्ड की मेखला समूह के भीतर चारो ओर एक अंगुल नेमि (नाभि अथवा कण्ठ) होगी। सुधी साधक दस हाथ के अन्यान्य कुण्डसमूह में उसी मेखलाओं की नेमि को इसी अंगुल क्रम से आधा-आधा अंगुल बढ़ाता जाय।।६०।।

परितश्चतुर्दिक्षु मेखलात्रयस्यान्तर्भागे नेमिर्भवति। सा च विस्तारोच्छ्राययोरेकाङ्गुलप्रमाणा। एकहस्तस्येति एकहस्तान्तकुण्डत्रयस्येत्यर्थः। तत्त्रययोनेर्नाभेश्च समप्रमाणतया नेमेरपि समप्रमाणत्वात्। इयमेव कालोत्तरे कण्ठत्वेनोक्ता ॥६१॥

परितः अर्थात् चारो ओर (मेखलात्रय के अन्तर्भाग में) नेमि होगी। इसी उच्चता तथा विस्तार का परिमाण होगा एक अंगुल। 'एकहस्तस्य' का अर्थ है—कुण्डत्रय के एक हाथ पर्यन्त। इन तीनों कुण्ड की योनि तथा नाभि सम प्रमाण की होने के कारण नेमि भी सम प्रमाण की होगी। इस नेमि को कालोत्तर तन्त्र में कण्ठ कहा गया है।।६१।।

शारदायाम्—

होतुरग्रे योनिरासामुपर्यश्वत्थपत्रवत्।
मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां कुण्डानां योनिरीरिता।
षट्च्चतुर्द्व्यङ्गुलायामविस्तारोन्नतिशालिनी ॥६२॥

शारदातिलक में कहा है कि होता के आगे इन मेखलासमूह के ऊपरी भाग में पीपल के पत्ते के समान योनि होगी। मुष्टिपरिमित कुण्ड, अवन्तिपरिमित कुण्ड तथा एक हाथ परिमित कुण्डसमूह की योनि की दीर्घता छः अंगुल विस्तार चार अंगुल तथा उच्चता दो अंगुल युक्त कही गयी है।।६२।।

एकाङ्गुलन्तु योन्यग्रे कुर्य्यादीषदधोमुखम्।
एकैकाङ्गुलतो योनिं कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत्।
यवद्वयक्रमेणैव योन्यग्रमपि वर्द्धयेत् ॥६३॥

योनि के आगे के भाग को एकाङ्गुल तथा ईषत् अधोमुख करे। अन्य दो हाथ, चार हाथ वाले कुण्ड की योनि को क्रमशः एक-एक अंगुल बढ़ाता जाय। योनि के अग्रभाग को उस समय एक-एक यव इतना बढ़ाते जाना चाहिये।।६३।।

आसमिति मेखलानामित्यर्थः। यद्यपि चतुरङ्गुलाद्यमेखलोपरिस्थाया एकाङ्गुलकण्ठव्यवहितखातगतैकाङ्गुलाग्राया: षडङ्गुलप्रमाणाया योने-र्द्वितीयतृतीयमेखलोपरिस्थत्वं न सम्भवति तथापि सर्वोन्नतमेखलोपरिस्थत्वे तयोरप्युपरि सुतरामवस्थानम्। षडिति। आयामे दैर्घ्य आयते षट् विस्तारे चत्वारः उन्नतौ द्वावङ्गुलीत्यर्थः। अश्वत्थपत्रवदित्यनेन षट्चतुरङ्गुल-विस्तृतमूला क्रमिकसङ्कोचेनैकाङ्गुलाग्रा योनिरित्यभिहितम्। मुष्ट्यावन्त्येक-हस्तानां योनिरेकरूपैव ॥६४॥

आसां—इसक अर्थ है मेखलासमूह। यद्यपि चतुरङ्गुल प्रथम मेखला के ऊपर स्थित एकाङ्गुल कण्ठ तो खातगत एकाङ्गुलाग्र परिमिता योनि द्वितीय तथा तृतीय के मुख के ऊपर स्थित नहीं हो सकता, तथापि सर्वोन्नत मेखला के ऊपर अवस्थित उन दोनों के ऊपर अवस्थान सम्भव हो सकता है। षड् इत्यादि का अर्थ है—दीर्घता छः अंगुल, विस्तार चार अंगुल, उच्चता दो अंगुल। अश्वत्थ पत्ररूप अर्थात् चतुरङ्गुल विस्तृत मूला योनि के क्रमिक सङ्कोच के कारण एकाङ्गुलाग्रा योनि होगी। तात्पर्यार्थ यह है कि योनि का अग्र एक अंगुल होगा। मुष्टि के बराबर, अवन्ति के बराबर तथा एक हाथ के बराबर कुण्ड की योनि एक प्रकार की ही होगी।।६४।।

गौतमीये—

प्रथमे मेखले योनिं कुण्डौष्ठीं होतुरग्रतः ।
कुर्याद् गजौष्ठवत्तान्तु कुण्डवित् सर्वलक्षणाम् ।।६५।।

गौतमीय तन्त्रानुसार प्रथमतः होता के आगे मेखला में कुण्डाग्रा योनि बनानी चाहिये। कुण्डवित् विद्वान् को उस योनि को हाथी के ओठ के समान सर्वलक्षणयुक्त बनाना चाहिये।।६५।।

प्रथम इति। कुण्डसमीपस्थायाः प्रथममेखलाया मध्यभागे इत्यर्थः। कुण्डौष्ठीमिति। कुण्डे ओष्ठोऽग्रं यस्यास्तादृशीम्। गजौष्ठवदिति। तथा च शारदागौतमीयवचनाभ्यामश्वत्थपत्राकारा गजौष्ठाकारा वा योनिः कर्त्तव्येत्यर्थः। वाशिष्ठे—

पृष्ठोन्नता गजौष्ठी वा सच्छिद्रा मध्य उन्नता ।।६६।।

योनिरिति शेषः।

प्रथमे = कुण्डसमीपस्थ प्रथम मेखला का मध्यभाग। कुण्डोष्ठीम् का अर्थ है—कुण्ड के अग्र में जो योनि है, वह योनि ही कुण्डोष्ठी है। गजौष्ठवत्—शारदातिलक तथा गौतमीय तन्त्रानुसार पीपल के पत्ते के समान अथवा हाथी के ओष्ठ के समान योनि बनानी चाहिये। वशिष्ठ कहते हैं कि योनि की पीठ ऊँची हो। यह हाथी के ओठ के समान, छिद्रयुक्त तथा बीच से ऊँची होनी चाहिये।।६६।।

त्रैलोक्यसारे—

कुम्भद्वयसमायुक्ता अश्वत्थदलवन्नता ।
अङ्गुष्ठमेखलायुक्ता मध्ये चाज्यस्थितिर्यथा ।।६७।।

त्रैलोक्यसार में कहते हैं कि कुम्भद्वय से युक्त, अश्वत्थ (पीपल) के पत्ते के समान अवनता, अंगूठे के परिमाण की मेखला से युक्त जिसके मध्य में आज्य रह सके, ऐसी योनि बनानी चाहिये।।६७।।

कुम्भद्वयेति। गजकुम्भाकारमृत्पिण्डद्वययुक्तमूलदेशा। नता नम्रा। अङ्गुष्ठेति। विस्तारोच्छ्राययोरङ्गुष्ठमितया एकया मृद्घटितमेखलया वेष्टितेत्यर्थः। तथा सति हस्तगलिताज्यस्य स्थित्या कुण्डे तत्पातो भवतीति तात्पर्यम्। एतेन योन्युपरि अङ्गुष्ठप्रमाणा मेखला देयेति सिद्धम्। योनिप्रमाणवृद्धावपि न तन्मानवृद्धिः ।।६८।।

कुम्भद्वय का अर्थ है—योनि के मूल में गजकुम्भाकार (हाथी के मस्तक के

आकार का) मिट्टी के पिण्ड को युक्त करे। नता—नम्रा। अंगुष्ठ इत्यादि का तात्पर्य है कि विस्तार तथा उच्चता में अंगूठे के नाप की एक मेखला से योनि को घेरे। इससे हाथ से पिघले घी की स्थिति होगी और कुण्ड में वह गिरेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि योनि के ऊपर अंगुष्ठ के बराबर मेखला बनानी होगी। जैसे-जैसे योनि के नाप में वृद्धि होगी (कुण्ड के माप के अनुपात में वृद्धि) उसी परिमाण में मेखला का परिमाण भी बढ़ेगा।।६८।।

स्वायम्भुवे—

अङ्गुष्ठमानोष्ठकण्ठा कार्याऽश्वत्थदलाकृतिः।

अङ्गुष्ठमानौष्ठं कण्ठे खातबाह्याङ्गुलदेशे यस्यास्तादृशी ओष्ठोऽत्र्याग्रम्॥६९॥

स्वायम्भुव तन्त्रानुसार कण्ठ में अंगुष्ठ-नाप के अग्र भाग वाली पीपल के पत्ते के समान (त्रिकोणाकृति) योनि बनाये। अंगुष्ठ बराबर ओष्ठ, उतना ही ओठ, उतने ही नाप का कण्ठ जिसका है, अर्थात् खात के बाहर अंगुल-परिमित स्थान में अंगुष्ठ बराबर ओष्ठ जिस योनि का है अर्थात् खात के बाहर अंगुल परिमित स्थान के योनि का अग्र अंगुष्ठ बराबर होगा। यहाँ ओष्ठ को अग्र कहा है।।६९।।

गणेशविमर्शिन्याम्—

मेखलानां बहिःस्थानं स्थलमित्यभिधीयते।
चतुरस्रं स्थलारब्धं नालं मध्ये सरन्ध्रकम्॥७०॥
स्थूलमूलन्तु सूक्ष्माग्रं तन्नालं स्यान्मनोहरम्।
बाह्यस्थमेखलावाह्य स्थानादारभ्य कारयेत्॥७१॥

गणेशविमर्शिनी में कहा गया है कि मेखलासमूह का बाहरी स्थान स्थल कहा जाता है। चतुरस्र कुण्ड की मेखला का बाहरी स्थान रूप स्थल योनि की नाल का आरम्भ स्थल है अर्थात् स्थल भाग से आरम्भ होकर योनि की बाह्य मेखला संलग्न नाल होगा। मध्य में छिद्र होगा। नाल का मूल स्थूल तथा अग्र सूक्ष्म और नाल मनोहारी हो। बाहरी मेखला के बाह्य स्थान से प्रारम्भ करके नाल का निर्माण करे।।७१।।

बहिःस्थानं होतुरग्रे इति शेषः। चतुरस्रेति। चतुरस्रीकृतस्थले लग्नमूलमित्यर्थः। तथा च नालमूले चतुरस्रं कार्यम्॥७२॥

बहिःस्थानम् अर्थात् होता के आगे। चतुरस्र इत्यादि = चतुरस्री कृत स्थल (चौकोर स्थल) में मेखला का मूल जुटेगा। नाल के मूल में चतुरस्र करना होगा।।७२।।

यामले—

नालं तिथ्यङ्गुलायाममर्काङ्गुलमथापि वा।
स्थूलं वेदाङ्गुलं ज्ञेयं योनिलग्नं सरन्ध्रकम्।
अवन्तिमुष्टिहस्तानां नालमात्रमुदीरितम् ॥७३॥

यामल में कहते हैं कि नाल पन्द्रह अंगुल अथवा बारह अंगुल का हो। स्थूल चार अंगुल हो। वह छिद्रमय तथा योनि से जुटा हो। अवन्ति बराबर, मुष्टि बराबर अथवा हाथ भर के कुण्ड का नाल को कहा गया है।।७३।।

द्विहस्तादिककुण्डेषु चतुरङ्गुलतः क्रमात्।
आयतिं तस्य जानीयात् स्थौल्यं द्व्यङ्गुलतः पुनः ॥७४॥

दो हाथ वाले कुण्ड में चार अंगुल क्रम से नाल का दैर्घ्य होगा तथा दो अंगुल उसकी मोटाई होगी।।७४।।

सम्मोहनतन्त्रे—

मूलं मध्ये तथाग्रञ्च व्युत्क्रमात् षट्त्रिकं चतुः।
तन्मानाङ्गुलिमानं स्यादेतन्मानस्य लक्षणम् ॥७५॥

सम्मोहन तन्त्र में कहते हैं—नाल के मूल, मध्य तथा अग्र व्युत्क्रम से छः अंगुल, तीन अंगुल तथा चार अंगुल होगा। इसी परिमाण द्वारा अंगुली का परिमाण होगा। यही मान का लक्षण है।।७५।।

मूलमिति शेषाङ्कादेरेव व्युत्क्रमः। तेन चतुरङ्गुलमध्यं त्र्यङ्गुलमग्रमित्यर्थः।
तथा—

स्थलादारभ्य नालं स्याद्योन्या मध्ये सरन्ध्रकम् ॥७६॥

'मूलम्' का अर्थ है कि शेष दो अंक का व्युत्क्रम होगा। इससे मध्यभाग चार अंगुल एवं अग्रभाग तीन अंगुल का होगा। कहा गया है कि योनि के स्थल से (मेखला के बहिर्देश से) प्रारम्भ करके नाल होता है। मध्य मेखला छिद्रयुक्त होती है।।७६।।

योन्या इत्यस्य नालमित्यन्वयः। सरन्ध्रकमित्युभयथा मूलादग्रावधि अन्तः सूत्रासिना रन्ध्रवत्, स्थलावधि योनिमूलपर्यन्तनिरवकाशसंयोगे मध्यमेखलोपरि परिधिस्थापनार्थमवकाशाच्च (?) ॥७७॥

'योन्याः' पद का 'नाल' पद से अन्वय (सम्बन्ध) होगा। सरन्ध्रकम् का अर्थ है—उभय प्रकार के मूल से अग्र-पर्यन्त मध्यवर्त्ती सूत्रादि द्वारा रन्ध्रयुक्त। स्थल से योनिमूल- पर्यन्त निरवकाश संयोग होने पर मध्य मेखला के ऊपरी भाग में परिधि स्थान के लिये अवकाश रहता है।।७७।।

तथाच यामले—

नालमेखलयोर्मध्ये परिधेः स्थापनाय च।
रन्ध्रं कुर्यात्तथा विद्वान् द्वितीयमेखलोपरि ।।७८।।

रन्ध्रमवकाशम्। सरन्ध्रपदद्वयदानादुभयथा सरन्ध्रत्वं व्यक्तमुक्तम्।

इसी प्रकार से यामल में कहा है कि विद्वान् साधक नाल तथा मेखला के मध्य में परिधि स्थापना के लिये द्वितीय मेखला के ऊपरी भाग में रन्ध्र करे। रन्ध्र अर्थात् अवकाश। सरन्ध्र पदद्वय के प्रयोग से उभय प्रकार के सरन्ध्रत्व को स्पष्टतः कहा गया है।।७८।।

यथा गौतमीये—

स्थलादारभ्य नालं स्यात्सरन्ध्रं योनिमध्यतः।
सूक्ष्माग्रं सूक्ष्ममूलञ्च सरन्ध्रं नालमिष्यते।
योन्या मध्ये बिलं कुर्यात्तदाज्यग्राहिसंज्ञकम् ।।७९।।

गौतमीय तन्त्र में कहते हैं कि स्थूल से प्रारम्भ करके योनि के मध्य तक नाल सरन्ध्र होगा। नाल का सूक्ष्माग्र, स्थूलमूल तथा सरन्ध्र अभिप्रेत है। योनि के मध्य में छिद्र करना होगा। यह आज्यग्राही नामक छिद्र है (जिससे घृतादि नीचे अग्नि में जाता है)।।७९।।

मध्यतो मूलदेशस्य मध्यपर्यन्तमित्यर्थः। अतएव स्थलादारभ्य नालं स्यात् योनिमूलस्य धारणे—इति पुरश्चरणचन्द्रिका। बिलं अभिन्नाधोभाग-मीषन्निम्नं तदेव छिद्रमुच्यते आज्यग्राही च ।।८०।।

मध्यतः—मूलदेश के मध्यपर्यन्त। इसीलिये पुरश्चरणचन्द्रिका में कहा गया है कि धारण के लिये योनिमूल से प्रारम्भ करके नाल होगा। अविदीर्ण (अपृथक्) तथा इससे निम्न अधोभाग को ही बिल कहा जाता है और उसे ही छिद्र भी कहते हैं। वही आज्य ग्रहण करता है।।८०।।

परिधींस्तद्विन्यासञ्चाह छन्दोगपरिशिष्टे—

बाहुमात्राः परिधयः ऋजवः सत्त्वचोऽव्रणः।
त्रयो भवन्त्यशीर्णाग्रा एकेषान्तु चतुर्दिशम् ।।८१।।

छन्दोग परिशिष्ट में परिधि और उसके विन्यास के सम्बन्ध में कहा गया है कि तीन परिधि बाहु के नाप की ऋजु (सरल), त्वक् युक्त, छिद्रशून्य तथा अच्छिन्न अग्रभाग वाली होगी। किसी के मत से परिधि चारो दिशा में स्थापित करनी चाहिये।।८१।।

प्रागग्रावभितः पश्चादुदगग्रमथापरम्।
न्यसेत् परिधिमन्यश्चेदुदगग्रः सपूर्वतः ॥८२॥

इस परिधि का अग्नि के उत्तर-दक्षिण पार्श्व में पूर्वाग्र करके स्थापन करे। अपर एक परिधि का पश्चिम में उत्तराग्र करके स्थापन करे। यदि अन्य एक परिधि होती है, तब उसे अग्नि के पूर्व में उत्तराग्र स्थापित करना चाहिये।।८२।।

बाहुमात्रा मूलावधिमध्यमाङ्गुल्यग्रान्तदक्षिणबाहुप्रमाणाः। ऋजवः सरलाः। सत्वचस्त्वक्सहिताः। अव्रणाश्छिद्ररहिताः। अशीर्णाग्रा अच्छिनाग्राः। ते च उदुम्बरशाखामयाः कार्याः। एकेषां मते चतुर्दिशं देया इत्यर्थः। अभितः अग्रे पार्श्वद्वये दक्षिणोत्तरयोः। पश्चात्पश्चिमे। उदगग्र उत्तराग्रः। पूर्वतः अग्नेः पूर्वस्याम्। सर्वे परिधयो मध्यमेखलोपर्यैव, एकत्र दृष्टत्वात् ॥८३॥

बाहुमात्राः—दक्षिण बाहु के मूल से मध्यमाङ्गुलि के अग्रभाग के अन्तपर्यन्त का माप। ऋजुः—सरल। सत्वक्—त्वक् सहित। अव्रण—छिद्ररहित। अशीर्णाग्र—विना छिद्र का अग्र। यह परिधि समूह उडुम्बर शाखा का बनाना चाहिये। एक सम्प्रदाय का मत है कि चारो ओर परिधि स्थापनीय है—यह अर्थ है। अभितः—अग्नि का दक्षिण तथा उत्तर पार्श्व। पश्चात्—पश्चिम में। उगदग्र—उत्तराग्र। पूर्वतः—अग्नि के पूर्व दिशा की ओर। समस्त परिधि मध्य में मेखला का ऊपरी भाग ही स्थापनीय है। इसलिये एकत्र दृष्ट होता है।।८३।।

नाभिः कुण्डमध्ये निर्मातव्या। अन्यत्र निर्माय वा तत्र न्यस्तव्या। कपिल-पाञ्चरात्रे—

कल्पयेदन्तरे नाभिं कुण्डस्याम्बुजसन्निभाम्।
मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभिरुत्सेधविस्तृता ॥८४॥
नेत्रवेदाङ्गुलोपेता कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत्।
यवद्वयक्रमेणैव नाभिं पृथगुदारधीः ॥८५॥

नाभि का कुण्डमध्य में निर्माण करना चाहिये अथवा अन्यत्र निर्माण करके कुण्ड में स्थापित करना चाहिये। कपिल पाञ्चरत्र के अनुसार कुण्ड के मध्य में कमल के समान नाभि स्थापित करे। मुष्टि के नाप के कुण्ड में, अवन्ति नाप के कुण्ड में तथा एक हाथ के कुण्ड में नाभि का दैर्घ्य तथा विस्तार तीन अंगुल (दैर्घ्य) तथा चार अंगुल (विस्तार) होगा। उदार बुद्धि वाले साधक अन्य कुण्डसमूह के नाप के अनुसार इस नाभि का विस्तार क्रमशः दो जौ के बराबर करता रहे अर्थात् दो हाथ के कुण्ड में दो यव के नाप से नाभि को बढ़ाये, उससे बड़े कुण्ड़ में इसी अनुपात से नाभि का आकार बढ़ाते जाना चाहिये।।८४-८५।।

नाभिक्षेत्रं त्रिधा भित्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम्।
बहिरंशद्वयं नाभौ पत्राणि परिकल्पयेत्।
योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिञ्च वर्जयेत् ॥८६॥

नाभि क्षेत्र का तीन भाग करके मध्यभाग को कर्णिका करे। नाभि के बाहर के अंशद्वय में पत्रसमूह का निर्माण करे। योनिकुण्ड में योनि का तथा पद्मकुण्ड में नाभि का वर्जन करे।।८६।।

अथ स्थण्डिललक्षणम्

सिद्धान्तशेखरे—

हस्तमात्रं स्थण्डिलं वा संक्षिप्ते होमकर्मणि।

क्रियासारे—

कुण्डमेवंविधं न स्यात् स्थण्डिले वा समाचरेत् ॥८७॥

अब स्थण्डिल कहते हैं। सिद्धान्तशेखर में कहा है कि संक्षिप्त होम में हाथ भर का ही स्थण्डिल बनाना चाहिये। क्रियासार ग्रन्थ के अनुसार यदि कुण्ड इस प्रकार का न हो तब स्थण्डिल में ही हवन किया जा सकता है।।८७।।

शारदायाम्—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं स्थण्डिले वा समाचरेत्।
तत् कुर्याद् हस्तमात्रन्तु चतुरस्रं समन्ततः।
प्रागग्रा उदगग्रा वा तिस्रो देखास्तदन्तरम् ॥८८॥

शारदातिलक में कहा गया है कि नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य होम स्थण्डिल पर करना चाहिये। यह स्थण्डिल चौकोर तथा एक हाथ माप का होना चाहिये। इसके मध्य में पूर्वाग्र तथा उत्तराग्र तीन रेखायें होनी चाहिये।।८८।।

एकेन रेखात्रयदानं वैकल्पिकम्। होमन्तु सर्वदैव पूर्वास्येन कर्त्तव्यः। रेखात्रयं प्रादेशमितमन्यत्र दृष्टत्वादिति ॥८९॥

इसके द्वारा रेखात्रय लगाना वैकल्पिक प्रतीत होता है; किन्तु होम तो पूर्वमुख होकर ही करना चाहिये। रेखात्रय का आदेश परिमित ही है; क्योंकि अन्यत्र ऐसा देखने में नहीं आता।।८९।।

अथ स्रुक्स्रुवौ

प्रकल्पयेत् स्रुचं यागे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना।
श्रीपर्णीशिंशपाक्षीरशाखिष्वेकतमं गुरुः।
गृहीत्वा विभनेद्धस्तमात्रं षड्त्रिंशता पुनः ॥९०॥

हस्तमात्रं—बाहुमात्रम्। षट्त्रिंशता अङ्गुलीभिरिति शेषः।

अब स्रुक् स्रुवा के विषय में कहा जा रहा है। गुरु विहित रूप से याग (होम) के लिये स्रुक् स्रुवा का निर्माण करे। श्रीपर्णी (गम्भारी), शिंशपा (शीशम), क्षीरवृक्ष (जिनसे दूध निकले, जैसे वट, पाकड़) में से कोई एक लेकर छत्तीस अंगुल परिमित बाहु प्रमाण दीर्घ लकड़ी काटे।।९०।।

यथा आगस्त्ये—

स्रुचं बाहुप्रमाणेन होमार्थं विदधीत वै।
विंशत्यंशैर्भवेद् दण्डो वेदी तैरष्टभिर्भवेत्॥९१॥

होम के लिये बाहुप्रमाण स्रुक् का निर्माण करे। इस का दण्ड बीस अंश का होगा और आठ अंगुल की इसकी वेदी होगी।।९१।।

एकांशेन मितः कण्ठः सप्तांशेन मितं मुखम्।
वेदी त्र्यंशेन विस्तारः कण्ठस्य परिकीर्त्तितः॥९२॥

एकांश का कण्ठ होगा। सप्तांश परिमाण का मुख होगा। वेदी के तीन भाग परिमाण से (१/३) से कण्ठ का विस्तार कहा गया है।।९२।।

मुखं कण्ठप्रमाणं स्यान्मुखे मार्गं प्रकल्पयेत्।
कनिष्ठाङ्गुलिमानेन सर्पिषो निर्गमाय च॥९३॥

मुख भी कण्ठ के ही बराबर होगा अर्थात् वेदी के तृतीयांश परिमाण विस्तार का होगा। निर्गम के लिये मुख में कनिष्ठा उँगली के इतना एक मार्ग (गर्त्त) होगा (जहाँ से घृतादि जायेगा)।।९३।।

वेदीमध्ये विधातव्या भागेनैकेन कर्णिका।
विदधीत बहिस्तस्या एकांशेनाभिहितोऽवटम्॥९४॥

वेदी के मध्यभाग में एक भाग द्वारा कर्णिका करे। उस कर्णिका के बाहरी भाग में एक अंश द्वारा अवट (गर्त्त) बनाये।।९४।।

तस्य खातं त्रिभिर्भागैर्वृत्तमर्द्धांशतो बहिः।
अंशेनैकेन परितो दलानि परिकल्पयेत्॥९५॥

इस गर्त्त के तीन भाग परिमाण में खात होगा तथा बाहर अर्धांश मान में वृत्त होगा। एक अंश द्वारा वृत्त के चारो ओर दलसमूह की कल्पना करनी चाहिये।।९५।।

मेखला मुखवेद्याः स्यात् परितोऽर्द्धांशमानतः।
दण्डमूलाग्रयोः कुम्भौ गुणवेदाङ्गुलैः क्रमात्॥९६॥

मुख तथा वेदी के चारो ओर अर्धांश परिमाण में मेखला होगी। दण्ड के मूल भाग तथा अग्रभाग के कुम्भ द्वय (मुख) यथाक्रम से गुणाङ्गुली (तीन उँगली) तथा वेदाङ्गुली (चार उँगली) परिमाण के होंगे।।९६।।

गण्डीयुगं यमांशैः स्याद् दण्डस्यानाह ईरितः।
षड्भिरंशैः पृष्ठभागो वेद्याः कूर्माकृतिर्भवेत्॥९७॥

मूल तथा अग्र की दोनों गण्डी (घट) दो अंश परिमाण में कंकणाकृति के समान होंगे। छः अंश परिमाण में दण्ड का आनाह (विस्तार) करे। वेदी के पृष्ठभाग में कूर्माकृति होगी।।९७।।

हंसस्य वा हस्तिनो वा पोत्रिणो वा मुखं लिखेत्।
मुखस्य पृष्ठभागे स्यात् सम्प्रोक्तं लक्षणं स्रुचः॥९८॥

इस स्रुक् के मुख के पीछे हंस का मुख अथवा हाथी का मुख अथवा पात्री (वराह) का मुख बनाना चाहिये। यही स्रुक् का लक्षण कहा गया है।।९८।।

स्रुचश्चतुर्विंशतिभिर्भागैरारचयेत् स्रुवम्।
द्वाविंशत्या दण्डमानामंशैरेतस्य कीर्त्तितम्॥९९॥

स्रुक् के चौबीसवें भाग की स्रुवा बनानी चाहिये। स्रुवा के दण्ड का परिमाण इस चौबीसवें भाग के २२वें भाग द्वारा कहा गया है।।९९।।

चतुर्विंशैरानाहः कर्षाज्यग्राहितच्छिरः।
अंशद्वयेन निखनेत् पङ्के मृगपदाकृतिः॥१००॥

इसका विस्तार चार अंश द्वारा होगा। अंशद्वय से इसके मस्तक को कर्ष-परिमित आज्यग्राही (अस्सी रत्ती घृत समाने योग्य आकार का) आकार का निर्माण करना चाहिये। पङ्क (मुख के पीछे) को मृगपद की आकृति का बनाना चाहिये।।१००।।

दण्डमूलाग्रयोर्गण्डी भवेत् कङ्कणभूषितः।
स्रुवस्य विधिराख्यातः सर्वतन्त्रसमन्वितः॥१०१॥

गण्डी कुम्भकङ्कणञ्च। तथा च—गण्डी कङ्कणकुम्भयोरिति भाण्डरिः।

दण्ड के मूल और अग्र में कङ्कण के आकार की गण्डी घट होगा। सर्वतन्त्र-सम्मत स्रुवा की यह विधि कही गई है। गण्डी अर्थात् कुम्भ तथा कङ्कण। कङ्कण तथा कुम्भ के अर्थ में 'गण्डी' शब्द का प्रयोग होता है।।१०१।।

स्रुवस्तु पञ्चाङ्गुलांस्त्यक्त्वा शङ्खमुद्रया धार्याः। यथा—
पञ्चाङ्गुलान् बहिस्त्यक्त्वा धारयेच्छङ्खमुद्रया। इति॥१०२॥

पाँच उँगली जगह छोड़कर शङ्ख मुद्रा द्वारा स्रुवा को धारण करना चाहिये। जैसे

तन्त्र में कहा गया है कि बाहरी भाग का पाँच उँगली स्थान छोड़कर शङ्खमुद्रा से स्रुवा को पकड़ना चाहिये।।१०२।।

तयोरभावे तु वाशिष्ठे—

पलाशपत्रे निश्छिद्रे रुचिरे स्रुक् स्रुवौ स्मृतौ।
विद्ध्याद् वाश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि ।।१०३।।

स्रुक् तथा स्रुवा के अभाव में वशिष्ठ संहिता में कहते हैं कि संक्षिप्त होमार्थ विना छेद मनोहर दो पलाश पत्ते को लेकर स्रुक् तथा स्रुवा का काम ले सकते हैं। अथवा दो पीपल के पत्ते से स्रुक् तथा स्रुवा का कार्य किया जा सकता है।।१०३।।

अथ हस्तप्रमाणम्

गौतमीये—

मुष्ट्यरत्निप्रमाणानि यत्किञ्चित् कथितानि च।
यजमानस्य कर्त्तव्यं नान्यस्यापि कदाचन ।।१०४।।

अब हस्तप्रमाण कहते हैं। गौतमीय तन्त्रानुसार मुष्टि, अरत्नि-प्रभृति जो कुछ भी परिमाण कहा गया है, सब कुछ का माप यजमान के हाथ तथा उँगलियों से लेना चाहिये। दूसरे के हाथ अथवा उँगली से माप नहीं करना चाहिये।।१०४।।

तथा छन्दोगपरिशिष्टम्—

मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्त्तरि।
मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेव निश्चयः।
चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्यं हस्तं तन्त्रविदो विदुः ।।१०५।।

छन्दोगपरिशिष्ट के अनुसार परिमाणकर्त्ता को नहीं कहा जाने के कारण जहाँ परिमाण करने को कहा गया है, वहाँ यजमान ही परिमाणकर्त्ता होगा। यही विद्वानों का निश्चय है। पण्डित तान्त्रिकगण चौबीस अंगुली के परिमाण (नाप) को हस्त कहते हैं।।१०५।।

कर्त्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमाङ्गुलिपर्वणः।
मध्यस्य दैर्घ्यमानेन मानाङ्गुलमुदाहृतम् ।।१०६।।

साधक कर्त्ता के दाहिने हाथ की मध्यमा उँगली के मध्य पर्व की लम्बाई के परिणाम को अंगुलि कहते हैं।।१०६।।

यजमानस्यासान्निध्ये तु कपिलपञ्चरात्रम्—

यवानां तण्डुलैरेकमङ्गुलं चौष्ठभिर्भवेत्।
अदीर्घयोजितैर्हस्तश्चतुर्विंशद्भिरङ्गुलैः ।।१०७।।

जब यजमान उपस्थित न हो तब कपिल पाँचरात्र में कहते हैं—जो अधिक दीर्घ न हो (सामान्य आकार का हो), ऐसे आठ यव (जौ) को लम्बाई में आस-पास रखता जाये। यह एक अंगुल होता है। ऐसे चौबीस अंगुल से एक हाथ होता है।।१०७।।

वयसोऽनुक्रमे पुनः—

अष्टभिस्तैर्भवेज्ज्येष्ठं मध्यमं सप्तभिर्यवैः।
कन्यसं षड्भिरुद्दिष्टमङ्गुलं मुनिसत्तमः ॥१०८॥ इति।

यजमान की आयुक्रम के अनुसार पुनः कहते हैं—हे मुनिश्रेष्ठ! आठ यव से एक अंगुल यह प्रमाण वयस्क का होता है (ज्येष्ठ अंगुल)। सात यव से बारह वर्षादि मध्य वयस्क का मध्यम अंगुल तथा छः यव ५-६ वर्ष के बालक का कनिष्ठ अंगुल होता है।।१०८।।

कन्यसं कनिष्ठम्। मानन्तु सर्वत्र यवपार्श्वेन। षड्यवाः पार्श्वसम्मिता इति कात्यायनवचनात् ॥१०९॥

कन्यसं—कनिष्ठ। षड्यवां—अर्थात् एक दूसरे से लम्बाई में सटे छः यव बराबर एक अंगुल। इस प्रकार से कात्यायन वचनानुसार एक अंगुल परिमाण को जानना चाहिये।।१०९।।

●

अथ होमादिसङ्ख्या

विशिष्यसंख्यानुक्तौ होमादिसंख्यामाह महाकपिलपञ्चरात्रम्—

संख्यानुक्तौ शतं साष्टं सहस्रं वा जपादिषु ॥१॥ इति।

जब प्रयोगादि में संख्या न कही गयी हो तब महाकपिल पाञ्चरात्र में होमादि की संख्या कहते हैं—जप-होमादि में जब संख्या न कही गई हो तब १०८ अथवा १००८ जप तथा तदनुसार होम करना चाहिये।।१।।

विष्णुधर्मोत्तरे—

दूर्वाहोमः परः प्रोक्तस्तेन स्वर्गे महीयते।
तस्माद् दशगुणं प्रोक्तमिक्षुभिः प्राप्नुयात्कृते ॥२॥

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार दूर्वाहोम श्रेष्ठ कहा गया है। उससे होता स्वर्ग में पूजित होता है। गन्ना से होम करने पर उससे दशगुणित फल प्राप्त होता है।।२।।

तस्माद् दशगुणं शस्यैर्व्रीहिभिर्द्विगुणं भवेत्।
यवैश्चतुर्गुणं प्रोक्तं तिलैर्दशगुणं तथा।
बिल्वैर्दशगुणं प्रोक्तं घृतेनाष्टगुणं स्मृतम् ॥३॥

घृतञ्च गव्येतरदग्राह्यम्।

शस्य के द्वारा होम करने पर ईख से १० गुना फल मिलता है। व्रीही से होम करने पर द्विगुण फल, यव के द्वारा चौगुना फल, तिल द्वारा दस गुणा फल, बिल्व द्वारा दस गुना फल तथा घृत द्वारा होम करने पर आठ गुना फल प्राप्त होता है।।३।।

यथा वाराहपुराणे—

माहिषं आविकं आजमषञ्जीयमिति स्थितिः ॥४॥

होम में गाय के घृत के अतिरिक्त अन्य घृत नहीं लेना चाहिये। जैसे कि वराहपुराण में कहा है कि महिष का घृत, भेड का घृत, बकरी का घृत अविहित है—यही होम की मर्यादा अर्थात् नियम है।।४।।

होमे स्वाहान्तमन्त्रकरणकतामाह यज्ञपार्श्वे—

आदाय दक्षिणे पाणौ स्रुवं त्रिमधुरं हविः।
प्राङ्मुखो वह्निजायान्ते जुहुयान्न्युब्जपाणिना ॥५॥

स्वाहान्त मन्त्र द्वारा होम का विधान करते हुये यज्ञपार्श्व में कहते हैं कि पूर्वमुख होकर दाहिने हाथ में स्रुवा लेकर न्युब्ज (अधोमुख) हथेली में त्रिमधुर-युक्त हविः से होम करना चाहिये।।५।।

आदायेति स्रुवमित्यन्वयः। त्रिमधुरं घृतशर्करावत्। हविर्घृतं जुहुयादित्यर्थः। न्युब्जपाणिनेति अधोमुखहस्तेनेत्यर्थः ।।६।।

'आदाय' पद का 'स्रुवं' पद के साथ अन्वय (सम्बन्ध) है। त्रिमधुर—घृत, शहद, शर्करा। हविः—घृत। न्युब्जपाणिना—अधोमुख हाथ द्वारा।।६।।

यत्तु न्युब्जपाणिनेति शाख्यन्तरीयम्—

उत्तानेनैव हस्तेन अङ्गुष्ठाग्रेण पीड़ितम्।
संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद् हविः ।।

इति गोमिलवचनादिति केचिदाहुः। तत् तुच्छम्, उक्तगोभिलवचनस्य पाण्याहुतिपरत्वात्, तावतैवाङ्गुष्ठाग्रेण पीड़ितमित्यस्य सङ्गतेः।

आहूतीश्च घृतादीनां स्रुवेणाधोमुखेन तु।
हुनेत् तिलाद्याहुतीस्तु दैवेनोत्तानपाणिना।

इति भविष्यपुराणाच्च। अतएव—पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका इत्यपि सङ्गच्छते ।।७।।

और कोई-कोई कहते हैं कि 'न्युब्ज हस्त द्वारा' अन्य शाखा वालों के लिये है, इसीलिये गोभिल ऋषि का यह वचन है कि हाथ की उँगलियों को संहत करके वाग्यत होकर उत्तान हस्त द्वारा ही अंगुष्ठ के अग्रभाग से हवि का होम करे; किन्तु यह तुच्छ है; क्योंकि गोभिल के इस वचन से कि हाथ द्वारा आहुति देनी है। इसलिये 'अङ्गुष्ठाग्रेण पीड़ितं। इस वाक्य की संगति होती है। घृतादि की आहुति ऐसे नहीं दी जा सकती। उसे तो अधोमुख द्रव्य द्वारा ही देना होगा। इसीलिये भविष्यपुराण में कहा गया है कि सभी लोग अधोमुख हस्त से आहुति प्रदान करें। उत्तान हस्त से तिलादि आहुति का होम हो सकता है। यहाँ पर यह वचन भी संगत है कि अंगुली के द्वादशपर्व पूरण करके पाण्याहुति होती है।।७।।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

नमोऽन्ते न नमो दद्यात् स्वाहान्ते द्विठमेव च।
पूजायामाहुतौ चैव सर्वत्रायं विधिः स्मृतः ।।८।।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहते हैं कि पूजा तथा आहुति में नमः से अन्त होने वाले मन्त्र

में फिर से नमः न लगाये। तथा स्वाहान्त मन्त्र में भी दोबारा स्वाहा नहीं लगाना चाहिये। शास्त्र में सर्वत्र यही कहा गया है।।८।।

अस्यार्थः—सर्वत्र नमोऽन्ते मन्त्रे नमः पदं न दद्यात्। तथा च इदं पाद्यं आदित्याय नमः इत्येव प्रयोज्यम्। 'पाद्यादीनि समुल्लिख्य पश्चादुल्लेखयेत् सुरान्।' इत्यादि वचनात्। न तु ॐ आदित्याय नमः इदमर्घ्यं ॐ आदित्याय नमः इत्यादि ॥९॥

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि जो मन्त्र 'नमः' से समाप्त हो रहा है, उसमें पुनः 'नमः' न लगाये। ऐसा होने पर 'इदं पाद्यं, ॐ आदित्याय नमः' इस प्रकार से मन्त्रप्रयोग होगा; क्योंकि पुनः 'नमः' आगे नहीं लगाया जाता, इसलिये सभी का वचन यह है कि पहले इदं पाद्यं कहकर तब देवतागण का उल्लेख किया जाय; किन्तु 'ॐ आदित्याय नमः इदमर्घ्यं ॐ आदित्याय नमः' ऐसा प्रयोग कदापि नहीं हो सकता।।९।।

प्रणवादिनमोऽन्तचतुर्थ्यन्तपदस्य मन्त्रत्वमुक्तं ब्रह्मपुराणे यथा—

ॐङ्कारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तकीर्त्तितम्।
स्वनाम सर्वसत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥१०॥

प्रणवादि एवं नमः से अन्त होने वाले तथा चतुर्थी विभक्ति से अन्त होने वाले देवतावाचक पद का मन्त्रत्व बताते हुये ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि आदि में प्रणव (ॐ) युक्त तथा अन्त में 'नमः' पद से कथित समस्त देवताओं का नाम मन्त्र कहा जाता है।।१०।।

नमोऽन्ते नमो निषेधस्तु तान्त्रिकेतरत्र, तेन नमोऽन्ते मन्त्रान्ते इदं द्रव्यममुकदेवतायै नमः इत्येवं तान्त्रिकपूजासु प्रयुज्यते। एवं सर्वत्राहुतौ स्वाहान्ते द्विस्वाहा पदं न दद्यादिति ॥११॥

तान्त्रिक पूजा के अतिरिक्त वैदिकादि पूजा में नमः से अन्त मन्त्र के अन्त में नमः पद लगाने का निषेध है। इसीलिये नमः से अन्त होने वाले मन्त्र के अन्त में 'इदं द्रव्यं अमुकदेवतायै नमः' इस प्रकार से तान्त्रिक पूजा में कहा जाता है। इसी प्रकार सर्वत्र आहुति में 'स्वाहा' से अन्त होने वाले मन्त्र में (पुनः) स्वाहा नहीं लगाना चाहिये।।११।।

यत्तु पूजायामाहूतौ सर्वत्र नमोऽन्त न नमः स्वाहान्ते न द्विठं दद्यादित्यर्थ इति व्याख्यानम्, तन्न चारु, आहूतौ नमः पददानस्याप्रसक्त्या निषेधानौचित्यात्, स्वाहान्ते द्विठस्य तान्त्रिकपूजादावर्घ्यादिनियतस्य निषेधानर्हत्वाच्च ॥१२॥

और जो 'पूजा तथा आहुति में सर्वत्र नमः से अन्त होने वाले मन्त्र में पुनः नमः पद तथा स्वाहान्त मन्त्र पद में पुनः द्विठ (स्वाहा) न लगाये' इस प्रकार की व्याख्या है, वह सुसंगत नहीं है। किसी स्थल में आहुति में नमः पददान की प्रसक्ति न रहने पर उसका निषेध सङ्गत नहीं है। स्वाहान्त में पुनः स्वाहा तान्त्रिक पूजा में अर्घ्यादि में नियत है; अतः वह निषेध के योग्य नहीं है।।१२।।

यत्तु—

मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः ।
स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम् ॥

इत्यनेन होमे मन्त्रस्य ॐङ्कारादित्वमुक्तम् तदपि तान्त्रिकेतरमात्रपरम्, अन्यथा तान्त्रिकमन्त्रस्य मन्त्रान्तरताप्रसङ्गः, तेन स्वाहान्तमन्त्रे स्वाहान्तरं न प्रयोज्यम्। आपस्तम्बः नाप्रोक्षितमिन्धनमग्नावादध्यात् ॥१३॥

विचक्षण ऋत्विक् देवता का ध्यान करते-करते ओंकार से पूत किये गये स्वाहान्त मन्त्र द्वारा अन्त में स्वाहा पद देकर होम करे—इस वचन द्वारा होम में मन्त्र का जो ओंकारादित्व कहा गया है, वह भी तान्त्रिक से भिन्न मन्त्रमात्र के लिये हैं; अन्यथा यह स्वीकार न करने से तान्त्रिक मन्त्रों का मन्त्रान्तरत्व प्रसङ्ग उपस्थित हो जायेगा। इसीलिये स्वाहान्त मन्त्रों में अन्य स्वाहा पद का प्रयोग करना उचित नहीं है। आपस्तम्ब कहते हैं कि अप्रोक्षित (जिसे प्रोक्षण द्वारा शुद्ध न किया हो, ऐसा) इन्धन अग्नि में नहीं देना चाहिये।।१३।।

स्मृतिः—

आदौ तु देवतोद्देशं तैत्तिरीकठशाखिनोः ।
काण्वमध्यन्दिनानान्तु पश्चादुल्लेखयेत् सुरान् ॥१४॥

अन्येषां देवतोद्देशो नास्ति, अनभिधानात् ।

स्मृति में कहा है कि तैत्तिरीय, कठ शाखा वालों ने देवता के उद्देश्य से प्रथमतः (नाम कीर्त्तन) उल्लेख किया। काण्व तथा माध्यन्दिन शाखा वाले ऋत्विकगण ने बाद में देवताओं का उल्लेख किया। देवता के उद्देश्य से उक्त न होने के कारण अन्य शाखा वालों के देवताओं का उद्देश्य नहीं है अर्थात् अन्य शाखा वालों के देवताओं के लिये विहित नहीं है।।१४।।

अग्निलक्षणम्

वायुपुराणे—

अर्चिष्मान् पिण्डितशिखः सर्पिकाञ्चनसन्निभः ।
स्निग्धः प्रदक्षिणश्चैव वह्निः स्यात् कार्यसिद्धये ॥१५॥

अग्नि का लक्षण कहा जाता है। वायुपुराण के अनुसार और भी कहा गया है कि कार्यसिद्धि के लिये अर्चिष्मान् (दीप्तशिखा युक्त), पिण्डितशिख (संहत शिखा), घृत तथा काञ्चन के समान वर्ण वाले, स्निग्ध (रम्य) तथा प्रदक्षिण (दक्षिणावर्त्त-युक्त) अग्नि उपयुक्त होती है।।१५।।

तथा तत्रैव—

क्षुत्तृट् क्रोधत्वरायुक्ता हीनमन्त्रं जुहोति यः।
अप्रबुद्धे सधूमे वा सोऽन्धः स्यादन्यजन्मनि ॥१६॥
अल्पे रूक्षे सस्फुलिङ्गे वामावर्त्ते भयानके।
आर्द्रकोष्ठैः सुसम्पन्ने फुत्कारेवति पावके ॥१७॥
कृष्णार्चिषि सदुर्गन्धे तथा निहति मेदिनीम्।
आहुतिं जुहुयाद्यस्तु तस्य नाशो भवेद्ध्रुवम् ॥१८॥

वायुपुराण में ही कहा गया है कि जो व्यक्ति क्षुधा, तृष्णा, क्रोध तथा त्वरा से युक्त होकर अप्रबुद्ध (अनुज्ज्वल, जो सम्यक् रूप से जली नहीं है) तथा धूआँ से युक्त अग्नि में हीनमन्त्र (मन्त्ररहित) घृतादि से होम करता है, वह अन्य जन्म में अन्धा हो जाता है।

जो व्यक्ति, अल्प, रूक्ष, चिनगारी से युक्त, वामावर्त्त, भयानक, गीले काष्ठ वाली (गीले काष्ठ में जल रही धूम्रयुक्त), फूत्कारयुक्त कृष्णवर्ण, शिखा वाली, दुर्गन्ध वाली, मेदिनी विदारण अग्नि में होम करता है, उसका निश्चय ही नाश होता है।।१६-१८।।

तथागमे—

स्वर्णसिन्दूरबालार्ककुङ्कुमक्षौद्रसन्निभः।
सुवर्णरेतसा वर्णः शोभनं परिकीर्त्तितः ॥१९॥

आगम में कहा गया है कि सुवर्णरेतस् वह्नि का वर्ण स्वर्ण, सिन्दूर, बाल सूर्य, कुङ्कुमचूर्ण के सदृश होता है।।१९।।

भेरीवारिदहस्तीन्द्रनिनादोऽग्निः शुभावहः।
नागचम्पकपुन्नागपाटलायूथिकानिभः ॥२०॥
पद्मेन्दीवरकह्लारसर्पिगुग्गुलुसन्निभः।
पावकस्य शुभो गन्ध इत्युक्तस्तन्त्रवेदिभिः ॥२१॥

भेरी, मेघ तथा हाथी के शब्द के समान अग्नि का शब्द शुभकारी होता है। नागकेशर, चम्पा, श्वेत उत्पल, पाटला, जूही, पद्म, इन्दीवर, कह्लार, घृत तथा गुग्गुलु के समान अग्नि का गन्ध शुभ होता है। यह तन्त्रवेत्तागण का कथन है।।२०-२१।।

प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाश्छत्राभाः शिखिनः शिखाः।
शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः ॥२२॥

अग्नि की शिखा प्रदक्षिणाक्रम (दक्षिणावर्त्ती), कम्पनरहित, मयूर की शिखा के समान होने पर यजमान के लिये; विशेषतः राजा के लिये शुभ होती है।।२२।।

कुन्देन्दुधवलो धूमो वह्नेः प्रोक्तः शुभावहः।
कृष्णः कृष्णगतिर्वर्णो यजमानं विनाशयेत् ॥२३॥

वह्नि की धूआँ कुन्दपुष्प तथा चन्द्र के समान धवल होने पर शुभदा होती है। कृष्णगति वह्नि का कृष्णवर्ण यजमान का विनाश करता है।।२३।।

श्वेतो राष्ट्रं निहन्त्याशु वायसस्वरसन्निभः।
खरस्वरसमो वह्नेर्ध्वनिः सर्वविनाशकृत् ॥२४॥

कृष्णगति का श्वेत वर्ण राष्ट्र का विनाश करने वाला होता है। अग्नि की ध्वनि जब काक के समान हो अथवा गर्दभ के स्वर के समान हो तब वह सभी के लिये विनाशकारी होती है।।२४।।

पूतिगन्धो हुतभुजो होतुर्दुःखप्रदो भवेत्।
छिन्नावृत्ता शिखा कुर्यान्मृत्युं धनपरिक्षयम् ॥२५॥

हुतभुग वह्नि दुर्गन्धियुक्त होने पर होता के लिये दुःखप्रद हो जाती है। वह्नि की शिखा छिन्ना अथवा वृत्ताकार होने पर वह यजमान का विनाश तथा धननाश करती है।।२५।।

शुकपक्षनिभो धूमः पारावतसमप्रभः।
शनिं तुरगजातीनां गवाञ्च कुरुते चिरात् ॥२६॥

यदि वह्नि के धूम्र का वर्ण शुक पक्षी के पंख के समान अथवा कबूतर के पंख के समान वर्णयुक्त हो तब वह यजमान के लिये तथा उसके अश्वसमूह तथा गौ-समूह का शीघ्र विनाश करने वाला होता है।।२६।।

एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्ताय देशिकः।
मूलेनाज्येन जुहुयात् पञ्चविंशतिमाहुतिः ॥२७॥

इस प्रकार का दोष होने पर मन्त्रोपदेष्टा गुरु प्रायश्चित्त के लिये मूल मन्त्र से घृत द्वारा पच्चीस आहुति प्रदान करे।।२७।।

तथा—

कर्णहोमे भवेद् व्याधिर्नेत्रेऽन्धत्वं समीरितम्।
नासिकायां मनःपीड़ा मस्तके धनसंक्षयः ॥२८॥

तन्त्र में कहा गया है कि अग्नि के कर्ण में होम करने से व्याधि एवं नेत्र में होम करने से अन्धत्व होता है। नासिका में होम करने से मन की पीड़ा तथा मस्तक में होम करने से धननाश होता है।।२८।।

यतः काष्ठं ततः श्रोत्रं यतो धूमोऽत्र नासिका।
यत्राऽल्पज्वलनं नेत्रं यतोऽङ्गारस्ततः शिरः।
यत्र प्रज्वलिता ज्वाला जिह्वा सा जातवेदसः ॥२९॥

जहाँ अग्नि का काष्ठ है, वह अग्नि का कान है; जहाँ से धूआँ उठे, वह उसकी नाक है, जहाँ हल्की जल रही हो, वह नेत्र है; जहाँ अङ्गार पड़े हों, वह अग्नि का मस्तक है एवं जहाँ शिखा उठ रही है, वही अग्नि की जीभ होती है।।२९।।

तथा—

वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत् समिद्धोमेषु देशिकः।
शयानमाज्यहोमेषु निषण्णं शेषवस्तुषु।
अस्यान्तर्जुहुयाद् वह्नेर्विपश्चित् सर्वकर्मसु ॥३०॥

स्थितमूर्द्धस्थितमित्यर्थः।

देशिक (मन्त्रदाता) समिद् होम में वैश्वानर का ध्यान उठे हुये तथा खड़े हुये रूप में करे। आज्य होम में अग्नि का ध्यान सोये हुये रूप में करे। अन्यान्य द्रव्यों के होम में अग्नि का ध्यान बैठे हुये रूप में करे। विद्वान् साधक सभी वस्तु के होम को अग्नि के मुख में ही प्रक्षिप्त करे।।३०।।

होमीयद्रव्यपरिमाणम्

शारदायाम्—

अथात्र होमद्रव्याणां प्रमाणमभिधीयते।
कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम् ॥३१॥

अब होम के द्रव्य का परिमाण कहते हैं। शारदातिलक में कहा गया है कि अब होमद्रव्य का परिमाण कहा जा रहा है। घृत होम में घृत का परिमाण एक कर्ष (एक तोला) होता है। दुग्ध होम में दुग्ध का परिमाण शुक्तिमात्र (२ कर्ष या २ तोला) कहा गया है (यह मात्रा एक आहुति की कही गई है)।।३१।।

उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभिः ।
तत्समं मधुदुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम् ॥३२॥

मनीषयों ने पञ्चगव्य होम में पञ्चगव्य का परिमाण दो तोला अर्थात् दुग्ध के बराबर कहा है। मधु भी उतना ही कहा गया है। दुग्धान्न अक्ष (कर्ष) मात्र लेना कहा गया है।।३२।।

दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिताः ।
पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः शक्तवोऽपि तथोदिताः ॥३३॥

दधिहोम में दधि को प्रसृति (२ पल मात्र) मात्र ग्रहण करना कहा गया है। लावा के होम में एक मुष्टि प्रमाण कहा गया। पृथुक (चिपिटक) का प्रमाण लावा के बराबर ही ग्रहणीय होता है एवं सत्तु के होम में भी उतना ही परिमाण कहा गया है।।३३।।

गुड़ं पलार्द्धमानं स्याच्छर्करापि तथा स्मृता ।
ग्रासार्द्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वावधिः स्मृतः ॥३४॥

गुड़ के होम में गुड़ का परिमाण आधा पल (दो कर्ष) कहा गया है। शर्करा होम में शर्करा का भी उतना ही परिमाण कहा गया है। चरुहोम में ग्रासार्द्ध (अस्सी रत्ती) चरु लेना चाहिये। इक्षु (ईख) के होम में एक पोर (पर्व) मात्र इक्षु का ग्रहण करना चाहिये।।३४।।

एकैकं पत्रपुष्पाणि तथाऽपूपानि कल्पयेत् ।
कदलीफलनारङ्गफलान्येकैकशो विदुः ॥३५॥

पत्रहोम में पत्र तथा पुष्प एक-एक ही प्रदान करना चाहिये। अपूप (पूआ) भी ही देना चाहिये। फल होम में केला अथवा नारङ्गी एक-एक प्रदान करना चाहिये।।३५।।

मातुलङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधाकृतम् ।
अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः ॥३६॥

मातुलुंग (बिजौरा नीबू) एक चौथाई, पनस दस टुकड़ा करके एक टुकड़ा, नारियल का आठ हिस्सा करके एक हिस्सा यह विद्वानों ने होम का परिमाण कहा है।।३६।।

त्रिधाकृतं फलं बिल्वं कपित्थं खण्डितं त्रिधा ।
उर्वारुकफलं होमे कथितं खण्डितं त्रिधा ॥३७॥

बिल्व तथा कपित्थ १/३ भाग होम में देना चाहिये। उर्वारुक (कर्कटी) भी १/३ भाग ही होम में देना चाहिये।।३७।।

फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशाङ्गुलाः।
दूर्वात्रयं समुद्दिष्टं गुडूची चतुरङ्गुलाः ॥३८॥

अन्यान्य फल विना काटे अखण्डित ही होम में देना चाहिये। समिधा दस अंगुली की होती है। एक-एक आहुति में तीन दूर्वा देनी चाहिये। गुरुच चार अंगुल देना चाहिये।।३८।।

ब्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्गा माषा यवा अपि।
तण्डुलाः स्युस्तदर्द्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसंमिताः ॥३९॥

ब्रीही मुष्टिमात्र परिमाण में लेना चाहिये। मूंग, उडद तथा यव भी उतना ही लेना चाहिये। तण्डुल (चावल) दो कर्ष तथा कोदो धान भी एक मुष्टि लेकर हवन करे।।३९।।

गोधूमरक्तकलमा विहिता मुष्टिमानतः।
तिलाश्चुलुकमात्राः स्युः सर्षपास्तत्प्रमाणकाः ॥४०॥

गेहूँ, कमला धान मुष्टि परिमाण में देना चाहिये। सरसों तीन चुलुक मात्र तथा तिल भी चुलुक मात्र (एक कर्ष) प्रदान करना चाहिये।।४०।।

मुष्टिप्रमाणं लवणं मरीचान्येकविंशतः।
पुरं वदरमानं स्याद्रामठं तत्समं स्मृतम् ॥४१॥

प्रत्येक हवि में लवण मुष्टिमात्र देना चाहिये। मिर्च (काली मिर्च) एक बार में इक्कीस देना चाहिये। गुग्गुल को अस्सी गुंजा (घुमची) के भार बराबर प्रदान करना चाहिये। हिंगुल भी उतना ही देना चाहिये।।४१।।

चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च।
तिन्तिड़ीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः ॥४२॥

चन्दन, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी तथा कुङ्कुम को तिन्तिड़ी के बीज के बराबर देना चाहिये—ऐसा विद्वानों का कथन है।।४२।।

अथ कर्षादिमानम्

गुञ्जाभिर्दशभिर्माषः शोणो माषचतुष्टयम्।
द्वौ शोणौ वटकः कोलो वदरं द्रक्षणश्च सः ॥४३॥

अब कर्षादि का परिमाण कहते हैं। १० गुंजा = १ माषा, ४ माषा = १ शोण, २ शोण = १ बटक। बटक को ही कोल, वदर तथा द्रक्षण भी कहा जाता है।।४३।।

कोलौ पाणितलं कर्षः सुवर्णं कवलग्रहः।
पिचुर्विड़ालपदकं तिन्दूकोऽक्षश्च तद् द्वयम् ॥४४॥

शक्तिरष्टमिका ते द्वे पलं बिल्वं चतुर्थिका।
मुष्टिराम्रप्रकुञ्चोऽथ द्वे पले प्रसृतिस्तथा ।।४५।।

अशीतिगुञ्जातः शास्त्रोक्ततोलकम्।

२ कोल = १ कर्ष अथवा पाणितल। कर्ष को ही सुवर्ण, कवलग्रह, पिचु, विडालपदक, तिन्दुक तथा अक्ष कहा जाता है। २ कर्ष = १ शुक्ति। शुक्ति ही अष्टमिका भी कही जाती है। २ शुक्ति = १ पल। पल का वाचक है—बिल्व, चतुर्थिका, मुष्टि, आम्र, प्रकुञ्च। २ पल = १ प्रसृति।।४४-४५।।

तथा—

सप्तपत्रान्विता दूर्वा होमकर्मणि शस्यते ।।४६।। इति।

साथ ही यह भी कहा गया है कि होम कार्य में सात पत्तों वाली दूर्वा प्रशस्त होती है।।४६।।

अथ नित्यहोमः

तदुक्तं सोमभुजगावल्याम्—

नाजप्तः सिध्यते मन्त्रो नाहूतश्च फलप्रदः।
नानिष्टो यच्छते कामान् तस्मात्सिद्धिर्न संशयः ।।४७।।
पूजया लभते पूजां जपात् सिद्धिर्न संशयः।
विभूतिं चाग्निकार्येण सर्वसिद्धिश्च विन्दति ।।४८।।

अब नित्य होम कहते हैं। सोमभुजगावली ग्रन्थ में कहा गया है कि अजप्त मन्त्र (विना जपा मन्त्र) सिद्ध नहीं होता एवं अनाहूत (विना आहुति दिये) मन्त्र सिद्ध नहीं होता तथा अपूजित मन्त्र से कामना-सिद्धि नहीं होती। अतएव जप, होम तथा पूजा का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये।।४७-४८।।

नीलतन्त्रे—

नित्यहोमं प्रवक्ष्यामि सर्वार्थं येन विन्दन्ति।
सपर्यां सम्यगापाद्य बलिपूर्वं चरेद्विधिम् ।।४९।।

नीलतन्त्र में कहते हैं कि नित्यहोम से समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं। अतः नित्यहोम को कहते हैं। बलिपूर्वक सम्यक् पूजा करके होमविधि का अनुष्ठान करना चाहिये।।४९।।

ततो होमं तर्पणञ्च चरेत् साधकसत्तमः।
बलिवैश्वादिकञ्चैव ब्राह्मणः स्वयमाचरेत् ।।५०।।

उत्तम साधक तदनन्तर होम तथा तर्पण करे। ब्राह्मणों को बलि तथा वैश्वदेव (होम) का अनुष्ठान स्वयं करना चाहिये।।५०।।

अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य तिस्रो रेखाः समालिखेत्।
विधिवदग्निमानीय क्रव्यादेभ्यो नमस्तथा ॥५१॥

स्थण्डिल का अर्घ्य जल से प्रोक्षण करके उस पर तीन रेखायें बनाये। विधानपूर्वक अग्नि लाकर 'ॐ क्रव्यादेभ्यो नम:' कहकर ब्राह्मण का अंश निकाले।।५१।।

मूलमन्त्रं समुच्चार्य कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा।
भूमौ वा संस्तरेद्वह्निं व्याहृतित्रितयेन तु ॥५२॥
स्वाहान्तेन त्रिधा हूत्वा षड़ङ्गहरणं चरेत्।
ततो देवीं समावाह्य मूलेन षोडशाहुतिम्।
हूत्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य विसृजेदिन्दुमण्डले ॥५३॥

मूलमन्त्र का उच्चारण करके भूमि पर कुण्ड अथवा स्थण्डिल में अग्नि स्थापित करे। स्वाहा के पहले व्याहृतित्रितय लगाये; जैसे—ॐ भू: स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्व: स्वाहा। इनसे तीन बार होम करके पूजित देवता का षड़ङ्ग होम सम्पन्न करे। तदनन्तर देवी का आवाहन करके मूल मन्त्र से सोलह बार आहुति प्रदान करे। होम करके स्तव तथा नमस्कार करके चन्द्रमण्डल में अग्नि का विसर्जन करना चाहिये।।५२-५३।।

श्यामादौ तु विशेषः—आदौ भैरवान् हूत्वा मूलेन षोडशाहुतीर्जुहुयात् ॥५४॥

श्यामा आदि के होम में विशेष पद्धति यह है कि। प्रथमत: भैरवगण के लिये होम करके मूल मन्त्र से सोलह बार आहुति प्रदान करनी चाहिये।।५४।।

भैरवाश्च हुनेदष्टौ आज्यान्विततिलैः शुभैः।
पूर्वादिदिक् क्रमेणैव ततो होमं समाचरेत् ॥५५॥

घी से सने पवित्र तिल द्वारा पूर्वादि दिशाक्रम से भैरव के लिये आठ होम करे। तदनन्तर मूल देवता का होम करना चाहिये।।५५।।

●

अथ बृहद्धोमपद्धतिः

कुण्डस्यैशान्यां दिशि हस्तप्रमाणवेद्यां शाक्ताभिषेकरीत्या घटं संस्थाप्य तत्र निजदेवतामावाह्य सम्पूज्य कुण्डं मूलेन वीक्ष्य फड़िति कुशैः सन्ताड्य फड़िति कुशोदकेन प्रोक्ष्य हुमित्यनेनाभुक्ष्य फड़िति तालत्रयेण संरक्ष्य मूलमुच्चार्य सामान्यकर्मणि ॐ कुण्डाय नमः इति तमर्चयेत्। विशेषहोमादौ तु ॐ अमुकदेवताकुण्डाय नमः इति कुण्डं पूजयेत् ॥१॥

अब बृहद् होम-पद्धति कही जाती है। कुण्ड के ईशान कोण में एक हाथ की वेदी में शाक्ताभिषेक रीति से घटस्थापन करे। उसमें इष्ट देवता का आवाहन करके पूजन करे। कुण्ड का मूल मन्त्र से वीक्षण करके 'फट्' कहकर कुशा द्वारा उस कुण्ड का ताड़न करे। पुन: फट् मन्त्र से कुशा को जल से सिञ्चित करके उस कुशा से उस कुण्ड का प्रोक्षण करे। तदनन्तर 'हुं' मन्त्र द्वारा कुण्ड का अभ्युक्षण करके 'फट्' कहते हुये तीन ताली बजाकर रक्षा करे। अब मूल मन्त्र कहते हुये ॐ कुण्डाय नम: मन्त्र द्वारा कुण्ड की अर्चना करे; परन्तु विशेष होमादि की स्थिति में अमुक के स्थान पर देवता का नाम लेकर 'ॐ अमुकदेवताकुण्डायै नम:' मन्त्र से कुण्ड का पूजन करना चाहिये।।१।।

ब्रह्मसंहितायां होमकाण्डे—

ऐशान्यां वेदिकां हस्तविस्तारोन्नतिशालिनीम् ।
कृत्वाऽस्मिन् स्थापयेत्कुम्भं यथोक्तक्रमयोगतः ॥२॥
तत्र सम्पूजयेद् देवं यथाविध्युपचारकैः ।
ततो होमं प्रकुर्वीत देवतासन्निधानतः ॥३॥

ब्रह्मसंहिता के होमकाण्ड में कहते हैं कि कुण्ड के ईशान कोण में एक हाथ विस्तृत तथा ऊँचाई वाली वेदी बनाकर इस वेदिका पर यथोक्त क्रम से घट-स्थापन करना चाहिये। उस घट में यथाविधान उपचारों से अपने इष्टदेवता का पूजन करने के पश्चात् उसके सन्निधान में हवन करना चाहिये।।२-३।।

तन्त्रे—

वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण ताड़नं स्मृतम् ।
तेनैव प्रोक्षणं प्रोक्तं वर्मणाऽभ्युक्षणं मतम् ॥४॥

तन्त्र के अनुसार मूल मन्त्र द्वारा वीक्षण तथा शर (फट्) मन्त्र द्वारा ताड़न कहा गया है। उसी शर मन्त्र से प्रोक्षण तथा वर्म (हुं) मन्त्र से अभ्युक्षण करना चाहिये।।४।।

ततः कुण्डमध्ये प्रागग्रा उदगग्रा वा तिस्रो रेखा लिखेत्। होतुः प्राङ्मुखत्वे प्रागग्रा उदङ्मुखत्वे उत्तराग्रा इति विशेषः। एतेन होमप्रागुदन्यतरमुखत्वं होतुं सिद्धम् ॥५॥

तदनन्तर कुण्ड में पूर्वाग्र अथवा उत्तराग्र तीन रेखा खींचे। होता के पूर्वमुख होने पर पूर्वाग्र रेखा एवं उत्तरमुख होने पर उत्तराग्र रेखा होगी। इससे सिद्ध होता है कि होम में होता पूर्वमुख तथा उत्तरमुख दोनों हो सकता है।।५।।

ततः संक्षेपहोमपद्धतिक्रमेण क्रव्यादांशत्यागपर्यन्तं विधाय औदर्यमूलाधार-स्थवह्निभ्यां सह भौमस्य वह्नेरैक्यं विभाव्य रं वह्निचैतन्यं कल्पयामीति पावके चैतन्यं निधाय ओंकारेणाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य फड़िति प्रोक्ष्य हुमित्यवगुण्ठ्य रं वह्निमूर्त्तये नमः इति गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य कुण्डस्योपरि त्रिः परिभ्राम्य प्रणवमुच्चार्य जानुस्पृष्टभूमिः शिवशुक्रबुद्ध्या आत्मनोऽभिमुखं देव्या योनावेनं निक्षिपेत्। ततो वागीश्वरवागीश्वर्योः सम्पूज्य ॐ चित् पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहेति वह्निं ज्वालयेत्। ततः ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखमिति वह्नि-मुपतिष्ठेत्। ततः स्वदेहे वह्निजिह्वान्यासं कुर्यात्। यथा लिङ्गे—सरयूं हिरण्यायै नमः। पायौ—षरयूं कनकायै नमः। एवं मूर्ध्नि—शरयूं रक्तायै नमः। मुखे—वरयूं कृष्णायै नमः। घ्राणे—लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रे—ररयूं बहुरूपायै नमः। सर्वगात्रेषु—यरयूं अतिरक्तायै नमः। एताः सात्विक्या यागकर्माणि। काम्यकर्माणि तु उक्तबीजैः सह पद्मरागा-सुवर्णाभद्रलोहितालोहिताश्वेताधूमिनिकरालिकाः एताराजस्यः। क्रूर-कर्मणि तु उक्तबीजैः सह विश्वमूर्त्तिस्फुलिङ्गिनीधूर्मवर्णमनोजवा लोहिता-करालाकाल्यः एतास्ता मस्यः ॥६॥

इसके पश्चात् संक्षेप में होमपद्धति क्रम से क्रव्य आदि का अंश निकालकर समस्त कर्म करके उदरस्थित वह्नि तथा मूलाधार-स्थित वह्नि के साथ भौम वह्नि के ऐक्य की भावना करके 'ॐ रं वह्निचैतन्यं कल्पयामि' इस मन्त्र से अग्नि में चैतन्य सम्पादन करके ॐकार द्वारा उस वह्नि को १०८ बार अभिमन्त्रित करके, धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके 'फट्' मन्त्र द्वारा उस अग्नि का प्रोक्षण करे। अब 'हुं' मन्त्र से

उसका अवगुण्ठन करके, 'ॐ रं वह्निमूर्तये नमः' मन्त्र से उस वह्नि का गन्ध-पुष्पादि से पूजन करके कुण्ड के ऊपर उस अग्नि को तीन बार भ्रामित करे। अब प्रणव (ॐ) का उच्चारण करके भूमि में जानुद्वय स्थापित कर शिव-शुक्रभावन से अपनी ओर अभिमुख देवी की योनि में उस वह्नि को स्थापित करे। अब वागीश्वर एवं वागीश्वरी का पूजन करके 'ॐ चित् पिंगल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' मन्त्र से अग्नि को प्रज्वलित करे। तत्पश्चात् 'ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्' इस मन्त्र से वह्नि की उपासना करे। तदनन्तर अपनी देह में वह्नि का जिह्वान्यास करे। जैसे लिंग में 'सरयूं हिरण्यायै नमः', पायु में—'षरयूं कनकायै नमः'। मस्तक में—'शरयूं रक्तायै नमः', मुख में—'वरयूं कृष्णायै नमः'। घ्राण में—'लरयूं सुप्रभायै नमः'। नेत्र में—'ररयूं बहुरूपायै नमः'। सम्पूर्ण शरीर में—'यरयूं अतिरक्तायै नमः'। योगकर्म में ये सब सात्त्विक जिह्वा होती हैं।

काम्यकर्म में उक्तबीज के साथ पद्मरागा, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी तथा करालिका को पूर्वोक्त मन्त्र से पूर्वोक्त स्थान में न्यास करे। अग्नि की ये सभी राजस जिह्वायें हैं। क्रूरकर्म में उक्त बीजों के साथ विश्वमूर्त्ति, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, कराला तथा कालीरूपी तामस जिह्वा का पूर्वोक्तरूपेण पूर्वोक्त स्थानों में न्यास करना चाहिये।।६।।

शारदायाम्—

लिङ्गपायुशिरोवक्त्रघ्राणनेत्रेषु सर्वतः।
वह्नीरार्घीशसंयुक्ताः सादियान्ताः सबिन्दवः।
वर्णा मन्त्राः समुद्दिष्टा जिह्वानां सप्त देशिकैः।।७।।

शारदातिलक में कहा गया है कि लिंग, गुह्य, शिर, मुख, नासिका, नेत्र तथा सर्वाङ्ग में यथाक्रम से अग्नि की सात जिह्वा का न्यास करना चाहिये। स से ष पर्यन्त (स ष श व ल र ष) पर्यन्त वर्ण वह्नि (र), इर (य), अर्घीश (ऊ) तथा बिन्दु (ं) युक्त होने पर अग्नि की त्रिविध जिह्वा के सात मन्त्र देशिकगण द्वारा उपदिष्ट हैं।।७।।

वह्निः रेफ। इरो यकारः। अर्घीशः षष्ठस्वर। तेन वर्णत्रयेणैकं बीजम्। ततः कराङ्गन्यासौ। सहस्रार्चिषे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, एवं स्वस्तिपूर्णाय तर्जनीभ्यां स्वाहा। उत्तिष्ठपुरुषाय मध्यमाभ्यां वषट्। धूमव्यापिने कवचाय हुं। सप्तजिह्वाय कनिष्ठाभ्यां वौषट्। धनुर्द्धराय करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। ततो मूर्त्तिन्यासः। मूर्ध्नि—ॐ अग्न्ये जातवेदसे नमः। दक्षांसे—ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। दक्षपार्श्वे—ॐ अग्नये

हव्यवाहनाय नमः। दक्षकट्यां—ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः। लिङ्गे—ॐ अग्नेय वैश्वानराय नमः। वामकट्यां—ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः। वामपार्श्वे—ॐ अग्नये विश्वमुखायै नमः। वामांसे—ॐ अग्नये देवमुखाय नमः। ततो रं वह्न्यासनाय नमः इति वह्नेरासनं कल्पयित्वा तत्र वह्निं धारयेत् ॥८॥

वह्नि = रेफ। इर = य। अर्घीश = षष्ठ स्वर (ऊ)। इन तीन वर्णों से एक बीज होता है। तत्पश्चात् मूलोक्त (ऊपर संस्कृत में कहे गये) मन्त्र से अग्नि का करन्यास तथा अंगन्यास करना चाहिये। तदनन्तर ऊपर संस्कृत में कहे गये मन्त्र के अनुसार अग्नि का मूर्त्तिन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् 'ॐ रं वह्न्यासनाय नमः' कहकर आसन की कल्पना करके उस आसन पर वह्नि का ध्यान करना चाहिये।।८।।

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं जवाभम्।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं वद्धमौलिं जटाभिः ॥९॥

ध्यान का अर्थ है कि पद्मासन पर उपविष्ट, जवापुष्प के समान त्रिनेत्र, जटासमूह के द्वारा आबद्धमस्तक, दाहिनी ओर के हाथ द्वारा (निचले हाथ द्वारा) वरमुद्रा, ऊपर के दाहिने हाथ में शक्ति, बाँयीं ओर के ऊपर वाले हाथ में स्वस्तिक, बाँयें ओर के नीचे वाले हाथ में अभयदान मुद्रा वाले स्वर्ण के आभूषण से भूषित अग्निदेव का ध्यान करता हूँ।।९।।

ततो मेखलानामुपरि बालामन्त्रेण शुद्धजलैः परिषिच्य मेखलायां गर्भशून्यैर्दर्भैरग्रेण मूलमाच्छादयन् त्रिस्त्रिः परिवेष्टयेत्। ततः प्राचीवर्जं दिक्षु परिधीन् निक्षिप्य तत्र प्रादक्षिण्येन ब्रह्मादिदेवताः पूजयेत्। पुनर्वह्निं ध्यात्वा तत्र पीठे समावाह्य ॐ वैश्वानर जातवेदसे इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा इदं पाद्यं ॐ अग्नये नमः। एवं क्रमेणाभ्यर्च्य मेखलायां वामां ज्येष्ठां रौद्रीमम्बिकाञ्च सम्पूज्य मध्ये षट्कोणेषु सरयूं हिरण्यायै नमः। एवं षरयूं कनकायै नमः। शरयूं रक्तायै नमः। वरयूं कृष्णायै नमः। लरयूं सुप्रभायै नमः। ररयूं बहुरूपायै नमः। यरयूं अतिरक्तायै नमः। एवं काम्ये सरयूं पद्मरागायै नमः इत्यादि। क्रूरकर्मणि विश्वमूर्त्यै नमः इत्यादि ॥१०॥

तत्पश्चात् मेखलाओं पर बाला मन्त्र (ऐं क्लीं सौः) पढ़कर जल द्वारा परिसेचन करके मध्य मेखला में गर्भशून्य दर्भ (कुशाओं) से आगे के द्वारा मूल का आच्छादन करते-करते चारो ओर तीन-तीन बार परिवेष्टित करे। परिस्तरण (पातन) करे।

तदनन्तर पूर्व दिशा को छोड़कर अन्य तीनों दिशाओं में परिधि बनाकर उसमें दक्षिणावर्त्त प्रदक्षिण क्रम से ब्रह्मादि देवताओं का पूजन करना चाहिये। पुनः वह्नि का ध्यान करके उस पीठ पर अग्नि का आवाहन करके 'ॐ वैश्वानर जातवेदसे इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा इदं पाद्यं ॐ अग्नये नमः' इस मन्त्र से पाद्य आदि तथा गन्ध आदि उपचार से अग्नि का पूजन करना चाहिये। इस क्रम से अर्चना करके मेखला में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री तथा अम्बिका का पूजन करके पूजित कुण्ड में तथा छः कोणों में सरयूं हिरण्यायै नमः, षरयूं कनकायै नमः, शरयूं रक्तायै नमः, वरयूं कृष्णायै नमः, लरयूं सुप्रभायै नमः, ररयूं बहुरूपायै नमः, यरयूं अतिरक्तायै नमः इत्यादि मन्त्र से अग्नि के सात जिह्वा की पूजा करे। यहाँ सभी मन्त्रों के आदि में प्रणव लगाना चाहिये।

इसी प्रकार काम्य कर्मों में ॐ सरयूं पद्मरागायै नमः, ॐ षरयूं सुवर्णायै नमः, ॐ शरयूं भद्रलोहितायै नमः, ॐ वरयूं लोहितायै नमः, ॐ लरयूं श्वेतायै नमः, ॐ ररयूं धूमिन्यै नमः, ॐ यरयूं करालिकायै नमः—इन मन्त्रों से अग्नि की सात जिह्वाओं का पूजन करे। इसी प्रकार क्रूर कर्मों में ॐ सरयूं विश्वमूर्तिण्यै नमः, ॐ षरयूं स्फुलिङ्गिन्यै नमः, ॐ शरयूं धूम्रवर्णायै नमः, ॐ वरयूं मनोजवायै नमः, ॐ लरयूं लोहितायै नमः, ॐ ररयूं करालायै नमः, ॐ यरयूं काल्यै नमः—इन सात मन्त्रों से अग्नि की सात जिह्वा का पूजन करना चाहिये।।१०।।

यथा गणेशविमर्शिण्याम्—

मध्ये च कोणषट्के च जिह्वा सम्पूजयेत्ततः।
हिरण्यातप्तहेमाभाशूलपाणेर्दिशि स्थिता ।।११।।
वैदूर्यवर्णा कनका प्राच्यौ दिशि समाश्रिता ।
तरुणादित्यसङ्काशा रक्ता जिह्वाऽग्निसंस्थिता ।।१२।।
कृष्णा नीलाभ्रसङ्काशा नैर्ऋत्यां दिशि संस्थिता ।
सुप्रभा पद्मरागाभां वारुण्यां दिशि संस्थिता ।।१३।।
अतिरक्ता जवाभासा वायव्यां दिशि संस्थिता ।
बहुरूपा यथार्थाभा दक्षिणोत्तरसंस्थिता ।।१४।।

गणेश्वरविमर्शिनी में कहा गया है कि उसके पश्चात् मध्य में तथा अग्नि के छः कोणों में अग्नि की जिह्वाओं का पूजन करे। तपे हुये सुवर्ण के समान वर्णों वाली हिरण्या जिह्वा ईशान कोण में स्थित रहती है।

वैदूर्य के वर्ण वाली अग्निजिह्वा कनका पूर्व कोण में स्थित रहती है। अग्नि की

रक्ता जिह्वा तरुण सूर्य के समान वर्णों वाली है और अग्निकोण में स्थित है। अग्नि की कृष्णा जिह्वा नील मेघ के समान वर्णों वाली है और नैर्ऋत्य दिशा के कोण में स्थित है। सुप्रभा जिह्वा पद्मराग के वर्ण वाली है और पश्चिम (वरुण) दिशा में स्थित है। अतिरक्ता जिह्वा जवापुष्प के वर्णों वाली रक्तवर्णा है, जो वायुकोण में स्थित है। बहुरूपा जिह्वा बहुत से वर्णों वाली है, जो दक्षिणोत्तर में स्थित है।।११-१४।।

ततः केशरेष्वग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च अग्नये सप्तजिह्वाय नमः ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ॐ स्वस्तिपूर्णाय दिवसे स्वाहा। ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्। ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं। ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। सर्वाङ्गे–ॐ धनुर्द्धराय अस्त्राय फट्। पूर्वादिदलेषु ॐ अग्नये जातवेदसे नमः। ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः। एवं ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः। ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः। ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः। ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः। ॐ अग्नये देवमुखाय नमः। इति वह्निमूर्त्तिः शक्तिस्वस्तिकधरिणीरभ्यर्च्य स्व-स्वदिक्षु लोकपालान् पूजयेत् ॥१५॥

तदनन्तर केशरसमूह के अग्न्यादि कोण में तथा दिक् समूह में ऊपर संस्कृत मूल में कहे गये मन्त्र से अग्नि के षडङ्ग देवताओं की पूजा करे। तदनन्तर पूर्वादि दलसमूह में ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः इत्यादि मन्त्रों से शक्ति तथा स्वस्तिक-धारिणी वह्नि की मूर्तियों की पूजा करके अपनी-अपनी दिशाओं में स्थित लोकपालों का पूजन करे।।१५।।

ततो हस्ताभ्यां स्रुक्स्रुवौ गृहीत्वा अधोमुखौ कृत्वा त्रिरग्नौ प्रताप्य कुशैस्तदग्रमध्यमूलानि सम्मार्ज्य दक्षिणहस्तेन प्रोक्ष्य पुनः प्रताप्य तान् दर्भानग्नौ प्रक्षिप्यात्मनो दक्षिणे कुशान्तरे स्थापयेत् ॥१६॥

तदनन्तर हाथों में स्रुक् और स्रुवा लेकर दोनों को अधोमुख करके अग्नि से तीन बार तपाकर कुशा से इनके अग्र, मध्य तथा मूल का मार्जन करके दाहिने हाथ से प्रोक्षण करके उन दोनों को पुनः तपाकर कुशा को जिससे मार्जन किया था, उसी अग्नि में छोड़ देना चाहिये और अपने दाहिने हाथ में अन्य कुश रखकर उस पर स्रुक् तथा स्रुवा को धारण करना चाहिये।।१६।।

तत आज्यस्थालीमात्मसम्मुखमानीय अस्त्रजप्तेन वारिणा संशोध्य तस्या-माज्यं निक्षिप्य वीक्षणादिभिः संस्कृत्य वायव्ये अङ्गारमुद्धृत्य तत्र नम इत्याज्यस्थालीं निवेशयेत्। ततो दर्भयुग्मं संदीप्य घृते क्षिप्ताग्नौ क्षिपेत्। नमः इति मन्त्रेण दीप्तदर्भयुग्मेनाज्यं निर्मन्थ्य (?) तद्दर्भद्वयमग्नौ क्षिपेत्।

ततः फडिति मन्त्रेण घृतेन प्रज्वलितान् दर्भान् प्रदर्श्याग्नौ क्षिपेत्। ततो घृतं गृहीत्वा पुनरङ्गारं वह्नौ संयोज्य जलं स्पृष्ट्वा दक्षिणहस्तोपरि-भावेनाधोमुखन्यस्तपाणिरग्रे दक्षिणाङ्गुष्ठानाभिकाभ्यां मूले वाम-हस्ताङ्गुष्ठानाभिकाभ्यां प्रादेशमितौ दर्भौ धृत्वा फड़िति मन्त्रेण घृतं पवित्री-कृत्य नम इति मन्त्रेण तत्कुशाभ्यां आत्मसंमुखे घृतसम्प्लवं कुर्यात्। ततः प्रादेशमात्रं पवित्रं घृतमध्ये क्षिप्त्वा द्वौ भागौ कृत्वा शुक्लकृष्णपक्षौ स्मरेत्। ततो वामे इड़ां दक्षिणे पिङ्गलां मध्ये सुषुम्नां ध्यात्वा होमं कुर्यात् ॥१७॥

तदनन्तर अपने सामने आज्य की थाली लाकर 'फट्' मन्त्र जप कर जल द्वारा उसका शोधन करके उसमें आज्य रखे। वीक्षणादि द्वारा उस आज्य को संस्कृत करके वायव्य कोण में अग्नि रखकर उस पर 'नमः' कहकर उस थाली को स्थापित करे। तदनन्तर दो कुशा को प्रज्वलित करके उसे घृत में डुबोकर अग्नि में 'नमः' मन्त्र से प्रज्वलित उन दोनों कुशाओं को थाली में सञ्चित घृत में घुमाकर उन्हें अग्नि में रख दे। अनन्तर 'फट्' मन्त्र पढ़कर उन घृत द्वारा प्रज्वलित दर्भद्वय को घृत दिखलाकर अग्नि में छोड़ दे। अब घृत लेकर पुनः उद्धृत अङ्गार को (घृत द्वारा प्रज्वलित वह्नि करके) अग्निकुण्ड में रख दे (जो अग्नि वायव्य कोण में रखी गयी थी, उसे)। तत्पश्चात् जलस्पर्श करके अधोमुख दाहिनी हथेली के ऊपर अधोमुख बाँयीं हथेली रखकर दक्षिण हाथ के अंगूठा तथा अनामिका द्वारा प्रादेश-परिमित दर्भ के अग्र को तथा वाम हस्त के अंगुष्ठ तथा अनामा द्वारा दर्भ के मूल को पकड़कर 'नमः' मन्त्र से उन दर्भों द्वारा घृत को चलाये। तदनन्तर प्रादेश-पर्यन्त कुश को घृत में डुबोकर दो भाग करके वाम भाग में शुक्ल पक्ष तथा दक्षिण भाग में कृष्ण पक्ष की भावना करनी चाहिये। तत्पश्चात् उस घृत के वाम भाग में इड़ा का, दक्षिण भाग में पिङ्गला का तथा मध्य में सुषुम्ना का ध्यान करके होम करना चाहिये।।१७।।

यथा नमः इति मन्त्रेण स्रुवेण दक्षभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्नये स्वाहेति वह्नेर्दक्षिणनेत्रे जुहुयात्। तथैव वामादाज्यं गृहीत्वा ॐ सोमाय स्वाहेत्यग्नेर्वामनेत्रे जुहुयात्। तथैव मध्यादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहेत्यग्नेः कपालनेत्रे जुहुयात्। ततो नमः इति दक्षिणभागादाज्यं स्रुवेणादाय ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहेत्यग्नेर्मुखे जुहुयात्। ततो महाव्याहृतिहोमं कुर्यात्—ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहेति। ततो ॐ वैश्वानर जातवेद इत्यादिमन्त्रेण त्रिवारं हूत्वाग्नेर्गर्भाधानादिक्रियाः कुर्यात्। यथा ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहेति प्रतिकर्मणि क्रमेणाष्टावाहुतिर्जुहुयात्। एवं पुंसवनं, सीमन्तोन्नयनं, जातकर्म, नामकरणं,

निष्क्रमणमन्नप्राशनं, चूड़ाकरणमुपनयनं महाव्रतमुपनिषत् स्नानं, गोदानम् उद्वाहम् ॥१८॥

अब होम का प्रकार कहा जाता है। जैसे—नमः मन्त्र से स्रुव द्वारा द्विधा विभक्त घृत के दक्षिण भाग से आज्य लेकर 'ॐ अग्नये स्वाहा' कहकर अग्नि के दक्षिण नेत्र में होम करे। इसी तरह घृत के वाम भाग से आज्य लेकर 'ॐ सोमाय स्वाहा' मन्त्र द्वारा अग्नि के वाम नेत्र में हवन करे। इसी तरह मध्य भाग से आज्य लेकर 'ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा' कहकर अग्नि के कपालनेत्र में होम करे। तदनन्तर नमः मन्त्र से घृत से दक्षिण भाग से स्रुवा द्वारा आज्य लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा' कहकर अग्नि के मुख में होम करे। तदनन्तर 'ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा' कहकर महाव्याहृति से होम करना होगा। तत्पश्चात् 'ॐ वैश्वानर जातवेदसे' इत्यादि मन्त्र से तीन बार होम करके अग्नि की गर्भाधानादि क्रिया संस्कार करे। जैसे—ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहा—यह कहकर आठ बार आहुति प्रदान करे। ऐसे ही पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, महाव्रत, उपनिषत् स्नान, गोदान तथा विवाह कर्म कराये। उपरोक्त मन्त्र में जो कर्म करना हो, उसे 'गर्भाधान' की जगह लगाना चाहिये। सबमें आठ आहुति प्रदान करना चाहिये।।१८।।

नामकरणे तु 'ॐ अग्नेर्नामकरणं सम्प्रदायामीत्युक्त्वाष्टाहुतिर्हूत्वा अग्ने! त्वममुकनामासीति तत्तद्विहितं नाम कुर्यादिति विशेषः। क्रूरकर्मणि मरणमधिकम्। सुन्दरीपक्षे तु ॐ अग्नेर्गर्भाधानं कल्पयामि ऐं नमः इत्येकैकाहुतिं दद्यादिति विशेषः ॥१९॥

किन्तु नामकरण में 'ॐ अग्नेर्नामकरणं सम्पादयामि स्वाहा' कहकर आठ बार आहुति देकर 'ॐ अग्ने त्वं अमुकनामासि' कहकर अमुक के स्थान पर वह नाम लगाना चाहिये। इस नामकरण में यही विशेष है। क्रूर कर्म में 'मरण' विशेष होता है। (वचन है— शुभेषु स्युर्विवाहान्ता मृत्वन्ता क्रूरकर्मसु)। किन्तु सुन्दरी-साधना में 'ॐ अग्नेर्गर्भाधानं कल्पयामि ऐं नमः' कहकर एक आहुति प्रत्येक संस्कार में दी जायेगी (जिस देवता की पूजा करनी हो, उनके नाम से अग्नि का नामकरण करना होगा, जैसे कृष्ण की पूजा में कहा जायेगा, 'त्वं कृष्णाग्निरसि'; नारायण की पूजा में त्वं नारायणाग्निरसि'; दुर्गा की पूजा में 'त्वं दुर्गाग्निरसि—इस प्रकार से नामकरण करके सूचित करना होता है कि अग्नि! तुम्हारा यह नाम है)।।१९।।

ततो वह्नेः पितरौ सम्पूज्यात्मनि संयोज्य, मूलाग्रमध्यघृतसम्प्लुताः

पञ्चसमिधस्तूष्णीं हुत्वा वह्नेः पूर्वोक्तजिह्वाङ्गमूर्त्तिनामेकैकाहुतिं हुत्वा स्रुवेण चतुर्वारमाज्यमादाय स्रुचि निधाय तां स्रुचः स्रुवेण पिधाय उत्तिष्ठन् ॐ वैश्वानर जातवेदसे इत्यादि मन्त्रेण वौषडन्तेन जुहुयात्। ततो महाविघ्नेश्वरमन्त्रेण दशाहुतिर्जुहूयात्। यथा—ॐ स्वाहा। ॐ श्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गं गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गणपतये वरवरद सर्वजनं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ॥२०॥

तदनन्तर अग्नि के पिता वागीश्वर तथा माता वागीश्वरी की पूजा करके अपनी आत्मा में उन्हें लीन करने की भावना करके पाँच समिधा के मूल, मध्य तथा अग्र भाग में घी लगाकर उन्हें विना मन्त्र पढ़े आहुति दे। यह आहुति वह्नि की जिह्वा, अंगदेवता तथा मूर्त्ति- समूह के उद्देश्य से देनी होती है। अब स्रुवा से चार बार घी लेकर स्रुक में देकर स्रुवा द्वारा उसे आच्छादित करके खड़े होकर ॐ वैश्वानर जातवेदसे इत्यादि से अर्थात् 'ॐ वैश्वानर जतवेदसे इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा वौषट्' इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे। तदनन्तर ऊपूर मूल संस्कृत में लिखे महाविघ्नेश्वर के १० मन्त्रों से १० आहुति प्रदान करनी चाहिये।।२०।।

प्रपञ्चसारे—

ताराद्यैर्दशभिर्भेदैः पूर्वपूर्वसमन्वितैः ।
मनुना गाणपत्येन हुनेत् पूर्वं दशाहुतिः ॥२१॥

प्रपञ्चसार में कहते हैं कि 'ताराद्यै' अर्थात् जिसमें पूर्व में प्रणव लगा हो, ऐसे गणपति मन्त्र से पूर्व में दस आहुति प्रदान करनी चाहिये।।२१।।

विशेष—विभक्त गणपति मन्त्र से दस आहुति देने के अनन्तर समस्त मन्त्र के द्वारा चार आहुति प्रदान करनी चाहिये। गणेश्वरविमर्शिनी में यह भी कहा है कि 'भिन्नेषु दशधा हूत्वा समस्तेन सुरेश्वरि'।

ततो वह्नौ देवतायाः पीठमभ्यर्च्य, वह्निरूपां देवतां विचिन्त्य पञ्चोपचारैरर्चयेत्। सुन्दरीपक्षे अङ्गमन्त्रेण सम्पूज्य ऐं ह्रीं श्रीं समस्तप्रकटगुप्तगुप्ततरकुलकोटिनिरहस्यातिरहस्ययोगिनीचक्रश्रीपादुकां पूजयामि। तारादौ तु ब्राह्मयादिलक्ष्म्यादीन्द्रादिवज्रादींश्च पूजयेत्। ततो वह्निमुखे घृतेन मूलमन्त्रेण पञ्चविंशत्याहुतिर्जुहुयात्। ततस्तु तत्तद्देवताया आवरणदेवतानां घृतेनैकैकाहुतिं जुहुयात्। ततः सङ्कल्पिततत्तत्कल्पोक्तद्रव्येण होमं कुर्यात् ॥२२॥

इसके पश्चात् अग्नि में पूज्य देवता के पीठ की अर्चना करके अग्निरूप देवता का ध्यान करके पञ्चोपचार द्वारा अर्चना करे। सुन्दरी-साधना में अंगमन्त्र द्वारा पूजा करके ऐं ह्रीं श्रीं इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से पूजा करे। तारा आदि की पूजा में ब्राह्मी प्रभृति अष्टशक्ति, लक्ष्मी, इन्द्रादि लोकपाल तथा वज्रादि अस्त्र की पूजा की जाती है। तत्पश्चात् वह्नि के मुख में घृत द्वारा मूल मन्त्र से पच्चीस बार आहुति देकर आत्मा के साथ देवता तथा अग्नि के ऐक्य का चिन्तन करके मूल मन्त्र से घृत द्वारा ग्यारह बार आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् उन-उन पूज्य देवताओं के आवरण देवतासमूह में से प्रत्येक को घृत द्वारा एक बार आहुति प्रदान करे। अनन्तर उन देवताओं के कल्प (विधि) में कहे गये द्रव्य से संकल्पित होम करना चाहिये।।२२।।

निबन्धे—

बहुरूपाख्यजिह्वायां जुहुयात् सर्वकर्मणि।
यतः समस्तसिद्धीनां सवित्री बहुरूपिका ॥२३॥

निबन्ध में कहा है कि समस्त कर्मों में अग्नि की बहुरूपा नामक जिह्वा में हवन करना चाहिये। क्योंकि बहुरूपा जिह्वा समस्त सिद्धि प्रदान करने वाली होती है।।२३।।

यामले—

कुण्डमध्ये हिरण्याख्या वश्याकर्षणकर्मणि।
कनकाख्या स्तम्भनादौ सुप्रभा द्वेषणे मता ॥२४॥
कृष्णाख्या मारणे शक्ता सुप्रभा शान्तिकर्मणि।
उच्चाटनेऽतिरक्ताख्या बहुरूपा सुसिद्धिदा ॥२५॥

तास्तु प्रागुक्तगणेशविमर्शिनीवचनादवगन्तव्या।

यामल में कहा है कि वश्य तथा आकर्षण कर्म में कुण्ड में हिरण्या नामक जिह्वा, स्तम्भनादि में कनका जिह्वा, विद्वेषण में रक्ता नाम्नी जिह्वा, मारण में कृष्णा जिह्वा, शान्ति कर्म में सुप्रभा जिह्वा एवं उच्चाटन में अतिरक्ता जिह्वा प्रशस्त होती है। बहुरूपा जिह्वा सुसिद्धिदा होती है।।२४-२५।।

ततः ॐ भूरग्नये पृथिव्यै च महते स्वाहा। ॐ भुवो वायवे अन्तरिक्षाय च दिवे महते स्वाहा। ॐ स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा इत्याहुतिर्जुहुयात्। ततो होमद्रव्याणि स्रुवेण स्रुचि निधाय स्रुवेणाच्छाद्य तौ नाभौ संस्थाप्य ॐ इतः पूर्वमित्यादिमन्त्रेण मूलमन्त्रेण च पूर्णाहुतिं दत्त्वा संहारमुद्रया देवतामात्मन्युद्वास्य पुनर्व्याहृतिभिर्हूत्वाग्नेर्जिह्वाङ्गमूर्त्ति-नामेकैकाहुतिं जुहुयात्। ततः पूर्ववन्मेखलोपरि वारिणा परिषिच्यात्मनि

संहारमुद्रयाग्निं योजयित्वा परिधीन् परिस्तरांश्चाग्नौ क्षिपेत्। नैमित्तिके कर्मणि एतान् दहेत्। नित्ये न दहेत्। ततो दक्षिणाच्छिद्रावधारणे कार्ये ॥२६॥

उसके पश्चात् ऊपर लिखे चार मन्त्रों से आहुति प्रदान करे, जो मूल संस्कृत में लिखे हैं। तत्पश्चात् होमद्रव्य का स्त्रुव द्वारा स्त्रुक में स्थापन करके स्त्रुव द्वारा उसे आच्छादित करे। इन दोनों को कुण्ड की नाभि के पास स्थापित करे और 'ॐ इत पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत् कृतं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयं सकलं सम्यक् अमुकदेवतायै (पूज्यदेवता का नाम) समर्पये ॐ तत् सत्' इस मन्त्र से तथा मूल मन्त्र से आहुति देकर संहारमुद्रा द्वारा देवता को आत्मा में विलीन करके पुनः व्याहृति द्वारा होम करके अग्नि की जिह्वाओं को तथा अंगदेवतासमूह एवं मूर्त्तिसमूह में से प्रत्येक को होम द्वारा एक-एक आहुति देनी चाहिये। तदनन्तर पहले की तरह मेखला के ऊपर जलसेचन करके संहार मुद्रा से आत्मा में अग्नि को (भावना द्वारा) विलीन करके परिधियों को तथा आस्तरण कुशों को अग्नि में छोड़े। नैमित्तिक कर्म में इन सबको दग्ध करे। नित्यकर्म में इन सबों को दग्ध न करे। तदनन्तर दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करे।।२६।।

काम्यहोमेऽङ्गुलिनियमस्तु—

तर्जन्यङ्गुष्ठसंयोगाच्छान्त्यर्थं जुहुयान्नरः।
दाहज्वराभिचाराणामनामाङ्गुष्ठमुद्रया ॥२७॥
विद्वेषणोच्चाटने तु मारणे च प्रशस्यते।
प्रदेशिनीमध्यमाभ्यां वधोपशमनं भवेत् ॥२८॥

काम्य होम में अंगुलि-नियम कहा जाता है। मानव शान्ति के लिये तर्जनी तथा अंगुष्ठ के संयोग से होम करे। दाह-ज्वर तथा अभिचार कार्य में अनामा तथा अंगुष्ठ मुद्रा से होम करे। विद्वेषण, मारण तथा उच्चाटन में अनामा तथा अङ्गुष्ठ मुद्रा से होम प्रशस्त है। तर्जनी तथा मध्यमा द्वारा होम करने से वध का उपशम होता है।।२७-२८।।

वपुर्मेधा तथा कान्तिनीतिपुष्ट्यादिके तथा।
आकर्षणानि सर्वाणि दूरादनुगतानि च।
तर्जन्यनामिकायोगत् सद्य एव भवन्ति हि ॥२९॥

शरीर तथा मेधा की वृद्धि, कान्ति-नीति की पुष्टि प्रभृति कार्य तथा दूरवर्त्ती होने पर भी नैकट्य कारक समस्त आकर्षण कार्य तर्जनी तथा अनामा के योग से होम में सद्यः फलप्रद होता है।।२९।।

मोहनं वश्यकाम्यञ्च प्रीतिसंवर्धनं तथा।
प्रदेशिनीकनिष्ठाभ्यां सर्वमेतत् प्रसिध्यति ॥३०॥

कनिष्ठा तथा तर्जनी के योग से होम द्वारा मोहन, वशीकरण तथा काम्य वस्तुलाभ और प्रीति में वृद्धि होती है।।३०।।

मोहनाकर्षणञ्चैव क्षोभणोच्चाटनं तथा।
कनिष्ठमध्यमाङ्गुष्ठसंयोगेन तु लीलया ॥३१॥

कनिष्ठा, मध्यमा तथा अंगूठे के सहयोग से होम द्वारा अनायास मोहन, आकर्षण क्षोभन तथा उच्चाटन सिद्ध हो जाता है।।३१।।

विधियुक्तेन होमेन तथा द्रव्यानुयोगतः।
सर्वमन्त्राः प्रसिध्यन्ति मुद्रामन्त्रप्रयोगतः ॥३२॥

इति वृहद्धोमपद्धतिः

शास्त्रविहित यथोक्त परिमाण द्वारा मुद्रा और मन्त्रप्रयोग से विधिपूर्वक होम करने पर सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं।।३२।।

अथ संक्षेपहोमप्रयोगः

कुण्डस्यैशान्यां दिशि हस्तविस्तृतोन्नतवेद्यां शाक्त्याभिषेकरीत्या घटं संस्थाप्य घटशोधनं कुर्यात्। यथा क्लीमिति सम्प्रोक्ष्य ऐं इति ताडयेत्। सौः इति कलसमारोप्य ह्रीं इति जलैः पूरयेत् ॥३३॥

संक्षेप में होम-प्रयोग कहा जाता है। कुण्ड के ईशान दिशा की ओर एक हाथ विस्तृत तथा उन्नत वेदी पर शाक्ताभिषेक रीति से घट स्थापित करके घट का शोधन करे। जैसे 'क्लीं' मन्त्र से प्रोक्षण करके 'ऐं' द्वारा ताड़न करके 'सौः' मन्त्र द्वारा कलश स्थापित करके 'ह्रीं' मन्त्र से उसे जलपूर्ण करे।।३३।।

गङ्गाया सरितः सर्वाः समुद्रश्च सरांसि च।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः ॥३४॥
ह्रदाः प्रस्रवणा पुण्याः स्वःपातलमहीगताः।
सर्वतीर्थाणि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम्॥३५॥

इति तीर्थावाहनम्।

इसके पश्चात् उपर्युक्त दोनों श्लोक को पढ़कर समस्त पुण्यतीर्थों का घर में आवाहन करना चाहिये।।३४-३५।।

श्रीं इति पल्लवं दद्यात्। हुं इति फलं, स्त्रीं इति स्थिरीकरणम्, रं इति

सिन्दूरं, अस्त्राय फडिति पुष्पं, मूलमन्त्रेण दूर्वाम्। ॐ इत्युपलक्षणम्। हुं फट् स्वाहा इति कुशेन ताड़नम्। तत्र देवीपीठं विचिन्त्य तत्र मूलदेवतामावाह्य सम्पूज्य कुण्डं स्थण्डिलं वा मूलमन्त्रेण वीक्ष्य फडिति कुशैः सन्ताड्य फडिति प्रोक्ष्य हुमित्यभ्युक्ष्य फडिति तालत्रयेण संरक्ष्य मूलमुच्चार्य सामान्यहोमे ॐ कुण्डाय नम इति विशेषहोमे ॐ अमुकदेवताकुण्डाय नमः इति सम्पूज्य तत्र मध्यभागे प्रागग्रा उदगग्रा वा तिस्रो रेखा कुर्यात् ॥३६॥

तदनन्तरः 'ॐ' मन्त्र से पल्लव प्रदान करना चाहिये। 'हुं' मन्त्र से फल, 'स्त्रीं' मन्त्र से स्थिरीकरण, 'रं' मन्त्र से सिन्दूर, 'अस्त्राय फट्' मन्त्र से फूल, मूल मन्त्र से दूर्वा एवं 'हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से कुशा से ताड़न करे। उस घट में देवीपीठ का चिन्तन करके उस घटरूपी पीठ में मूल देवता का आवाहन करके पूजा करके कुण्ड अथवा स्थण्डिल का मूल मन्त्र से वीक्षण, 'फट्' मन्त्र से कुश द्वारा ताड़न, 'फट्' मन्त्र से प्रोक्षण, 'हुं' मन्त्र से अभ्युक्षण, 'फट्' मन्त्र से तालत्रय द्वारा संरक्षण करके मूल मन्त्र उच्चारण करके सामान्य होम में 'ॐ कुण्डाय नमः' एवं विशेष होम में 'ॐ अमुकदेवताकुण्डाय नमः' मन्त्र से कुण्ड की पूजा करके उस कुण्ड के मध्यभाग में पूर्वाग्र तथा उत्तराग्र तीन रेखा खींचे।।३६।।

तत्र प्रागग्रासु तासु मुकुन्देशपुरश्चरान् उत्तराग्रासु ब्रह्मवैवस्वतचन्द्रान् प्रादक्षिण्येन पूजयेत्। सुन्दरीपक्षे तु सर्वत्र षट्तारीप्रयोगः। यथा ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ब्रह्मणे नमः। एवं क्रमेण पूजयेत्। ततः कुण्डमध्ये आदौ षट्कोणं तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिस्त्रिकोणं तद्बहिवृत्तं तद्बहिरष्टदलं तद्बहिश्चतुरस्त्रं एवं यन्त्रं सिन्दूरादिना लिखित्वा तदुपरि मूलेन पुष्पाञ्जलीन् दद्यात्। सुन्दरीपक्षे तु वालया। ततः सर्वाणि प्रणवेनाभ्युक्ष्य कर्णिकोपरि आधारशक्त्यादीन् सम्पूज्याग्न्यादिकोणेषु ॐ धर्माय नमः। एवं ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय, पूर्वादिदिक्षु अधर्माय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अनैश्वर्याय; मध्ये ॐ अनन्ताय, ॐ पद्माय, ॐ अर्कमण्डलाय; द्वादशकलात्मने ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने। ततः केशरेषु पूर्वादितो मध्ये च पीतायै, श्वेतायै, अरुणायै, कृष्णायै, धूम्रायै, तीव्रायै, स्फुलिङ्गिन्यै, रुचिरायै, ज्वालिन्यै, पुनर्मध्ये रं वह्न्यासनाय नमः ॥३७॥

उसमें उसी पूर्वाग्र रेखात्रय में प्रदक्षिण क्रम से यथाक्रमेण मुकुन्द, ईश तथा पुरन्दर की एवं उत्तराग्र की रेखात्रय में यथाक्रमेण ब्रह्मा, वैवस्वत तथा चन्द्रमा की पूजा करे।

सुन्दरी-साधना में सर्वत्र मुकुन्दादि के पूजन में षट्तारा का प्रयोग करना चाहिये; जैसे—'ऐं क्लीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ब्रह्मणे नमः'। इस क्रम से सबका पूजन करने के पश्चात् कुण्डमध्य में प्रथमतः षट्कोण बनाये। उसके बाहर वृत्त, उसके बाहर त्रिकोण, उसके बाहर पुनः वृत्त, उसके बाहर अष्टदल, उसके बाहर चतुर्द्वार-युक्त चतुरस्र—इस प्रकार से सिन्दूर आदि से अंकित करके उस पर मूल मन्त्र जपते हुये पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिये। किन्तु सुन्दरी-साधना में (शक्तिसाधना में) बालामन्त्र द्वारा पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर समस्त होम द्रव्य का अभ्युक्षण प्रणव मन्त्र ॐ से करके कर्णिका के ऊपर आधारशक्ति प्रभृति का पूजन करके अग्निकोण आदि में ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः कहकर इनकी क्रमशः पूजा करके, पूर्वादि दिशाओं में ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः ॐ अनैश्वर्याय नमः कहकर क्रम से इनकी पूजा करने के पश्चात् मध्य में क्रम से ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ॐ ऊं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः कहकर क्रमशः इनकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् केशरसमूह में पूर्वादि क्रमानुसार ॐ पीतायै नमः, ॐ श्वेतायै नमः, ॐ अरुणायै नमः, ॐ रुचिरायै नमः, ॐ ज्वालिन्यै नमः मन्त्र से पीतादि पीठशक्ति की पूजा करके मध्य में ॐ रं वह्न्यासनाय नमः मन्त्र द्वारा पीठासन की पूजा करे।।३७।।

ततो वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनां वागीश्वरेण संयुक्तामिति ध्यात्वा ॐ ह्रीं वागीश्वराय नमः। ॐ ह्रीं वागीश्वर्यै नमः इति मन्त्रेण कुण्डमध्ये पञ्चोपचारैः पूजयेत्। सुन्दरीपक्षे तु कामेश्वरं कामेश्वरीं पूजयेत्। ततः कुण्डमध्ये ॐ वह्नेर्योगपीठाय नमः। चतुर्दिक्षु ॐ वामायै नमः। एवं ज्येष्ठायै रौद्र्यै अम्बिकायै, ततो मूलमुच्चार्य ॐ अमुकदेवताकुण्डाय नमः इति कुण्डं सम्पूज्य तदधो वागीश्वरीं तत्तद्देवतारूपां ऋतुमतीं ध्यात्वा पूजयेत्। ततो वह्निमादाय वौषड़न्तमूलमन्त्रेण वीक्ष्य फड़न्तमूल-मन्त्रेणावाह्य रमिति तस्माद् वह्निमुद्धृत्य मूलमुच्चार्य हुं फट् क्रव्यादेभ्यः स्वाहा इति मन्त्रेण क्रव्यादांशं त्यजेत् ॥३८॥

तदनन्तर मूल में अंकित 'ॐ वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीश्वरलोचनां' इत्यादि से ध्यान करके 'ॐ ह्रीं वागीश्वराय नमः' तथा 'ॐ वागीश्वर्यै नमः' द्वारा इनका पूजन पञ्चोपचार से करे। शक्ति (सुन्दरी) साधन में कामेश्वर तथा कामेश्वरी का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर कुण्डमध्य में 'ॐ वह्नेर्योगपीठाय नमः' से तथा चारो ओर यथाक्रम से ॐ वामायै नमः, ॐ ज्येष्ठायै नमः, ॐ रौद्र्यै नमः, ॐ अम्बिकायै नमः कहकर

पूजन करे। तत्पश्चात् मूल मन्त्र का उच्चारण करके 'ॐ अमुकदेवताकुण्डाय नमः' (अमुक के स्थान पर पूजित हो रहे देवता का नाम लगेगा) मन्त्र द्वारा कुण्ड का पूजन करके उसके अधोदेश में उन-उन देवतारूपा ऋतुमती वागीश्वरी का ध्यान-पूजन करे। तत्पश्चात् अग्नि लाकर मूल मन्त्र के अन्त में 'वौषट्' लगाकर उस वह्नि का वीक्षण करना चाहिये साथ ही मूल मन्त्र के अन्त में 'फट्' युक्त करके आवाहन करने के पश्चात् 'रं' मन्त्र पढ़ते हुये उसमें से कुछ अग्नि निकालकर मूल मन्त्र को उच्चरित करके 'ॐ हुं फट् क्रव्यादेभ्यः स्वाहा' मन्त्र से क्रव्यादि का अंश निकाल दे।।३८।।

गौतमीये—

पाषाणभवमग्निञ्च यदि वाऽरणिसम्भवम्।
श्रोत्रियाणां गेहजञ्च वनस्थं वाऽथवाहरेत्।
यदृच्छालाभसंप्राप्तो ह्ययोग्यो यागकर्मणि ।।३९।।
निराग्निब्राह्मणाल्लब्धो ह्यर्द्धलाभकरो भवेत्।
क्षत्रबन्धोश्चतुर्थांशं फलं दद्याद् हुताशनः ।।४०।।
वैश्याच्छूद्राच्च विफलं जायते होमकर्म तत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वह्निमुक्तं समाहरेत् ।।४१।।

गौतमीय तन्त्र में कहा है कि चकमक पत्थर अथवा लोहे के घर्षण से उत्पन्न अथवा अरणि काष्ठ के मंथन से उत्पन्न अथवा श्रोत्रिय सात्त्विक ब्राह्मण के गृह से अथवा वन में लगी आग से अग्नि लाये। मनमाने ढंग से प्राप्त वह्नि यागकार्य के लिये अनुपयुक्त होती है। निरग्नि ब्राह्मण से प्राप्त अग्नि से आधा फल मिलता है। क्षत्रिय से प्राप्त अग्नि चौथाई फल देती है। वैश्य अथवा शूद्र से प्राप्त अग्नि से होम विफल होता है। अतएव सर्वप्रयत्न से वह्नि को विहित स्थान से लाये।।३९-४१।।

तन्त्रान्तरे—

द्विजातिभवनाद्वापि वह्निमानीय साधकः।
वौषड़न्तेन मूलेन मन्त्रितं तदनन्तरम् ।।४२।।
अग्निमावाहयेदस्त्रमन्त्रेण तदनन्तरम्।
हुं फड़न्तेन मूलेन क्रव्यादांशं परित्यजेत् ।।४३।।

अन्य तन्त्र के अनुसार साधक द्विजाति के गृह से वह्नि लाकर मूल मन्त्र के अन्त में 'वौषट्' लगाकर उससे अभिमन्त्रित अग्नि का अवलोकन करना चाहिये। तत्पश्चात् 'फट्' मन्त्र से अग्नि का आवाहन करना चाहिये। मूल मन्त्र के अन्त में 'हुं फट्' लगाकर क्रव्याद का अंश छोड़े।।४२-४३।।

ततो वह्निं फड़िति मन्त्रेण संरक्ष्य हुमित्यवगुण्ठ्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य बाहुभ्यामुद्धृत्य कुण्डोपरि त्रिर्विभ्राम्य महीस्पृष्टजानुः शिवशुक्रबुद्ध्या आत्मनाभिमुखं देव्या योनावेनं निक्षिपेत्। ततो ह्रीं वह्निमूर्तये नमः इत्यभ्यर्च्य रं वह्निचैतन्याय नम इति चैतन्यं संयोज्य ॐ चित् पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा इति ज्वालयेत्। ततः— ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विशतोमुखम्। इत्युपतिष्ठेत्। ततः ॐ अग्ने त्वममुकनामासि इति नाम कुर्यात् ॥४४॥

तदनन्तर 'फट्' मन्त्र से वह्नि का रक्षण करके 'हुं' मन्त्र से अवगुण्ठन करके 'रं' बीज से धेनुमुद्रा प्रदर्शन द्वारा अमृतीकरण करके बाहुद्वय से उस वह्नि को उद्धृत करके शिव-शुक्र बुद्धि से (भावना से) उसे अपनी ओर अभिमुख देवि की योनि में स्थापित करे। तत्पश्चात् 'ॐ ह्रीं वह्निमूर्त्तये नमः' मन्त्र से अर्चना करके 'ॐ रं वह्निचैतन्याय नमः' मन्त्र से अग्नि का चैतन्य संयोग कराकर 'ॐ चित् पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' मन्त्र द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्, सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्' मन्त्र से अग्नि की उपासना करे। तदनन्तर 'ॐ अग्ने त्वं अमुकदेवतानामासि' कहे (अमुक देवता के स्थान पर जिस देवता की उपासना कर रहे हैं, उनका नाम लगाना चाहिये। जैसे यदि नारायण की पूजा-हवनादि हो रही है तब 'ॐ अग्ने त्वं नारायणाग्नि असि' यह कहना चाहिये)।।४४।।

यथा मत्स्यसूक्ते—

प्रतिष्ठायां लोहिताग्निर्वास्तुयागे प्रजापतिः ।
जलाशयप्रतिष्ठायां वरुणः समुदाहृतः ॥४५॥
लक्षहोमे वह्निनामा कोटिहोमे ध्रुवः स्मृतः।
पौष्टिकं वरदश्चैव क्रोधोऽग्निश्चाभिचारके ।
प्रकृते देवतानाम पुरश्चरणकर्मणि ॥४६॥

मत्स्यसूक्त में कहा है कि प्रतिष्ठा की अग्नि का नाम लोहित, वास्तुयाग की अग्नि का नाम प्रजापति, जलाशय प्रतिष्ठा की अग्नि का नाम वरुण कहा गया है। एक लाख होम वाली अग्नि को वह्नि कहते हैं। करोड़ होम की अग्नि का नाम ध्रुव है। पौष्टिक कर्म की अग्नि को वरद तथा अभिचार कर्म की अग्नि को क्रोध कहते हैं। पुरश्चरण में पूज्य देवता के नाम से अग्नि का नाम होता है।।४५-४६।।

तत ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा इत्यनेन पाद्यादिभिः सम्पूज्य ॐ अस्याग्नेर्हिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः। ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं। ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ धनुर्द्धराय अस्त्राय फड़िति सम्पूज्य, पूर्वादितः ॐ अग्नये जातवेदसे नमः। ॐ अग्नये सप्तजिह्वायै नमः। ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः। ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः। ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः। ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः। ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः। ॐ अग्नये देवमुखाय नमः। इति वह्निमूर्त्तिः शक्तिस्वस्तिकधारिणीं पूजयेत्। तद्बाह्ये—ॐ ब्राह्म्याद्यष्टशक्तिभ्यः। तद्बाह्ये—ॐ पद्माद्यष्टनिधिभ्यः। तद्बाह्ये—ॐ इन्द्रादिलोकपालेभ्यः। तद्बाह्ये—वज्राद्यस्त्रेभ्यः ॥४७॥

तदनन्तर 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' मन्त्र द्वारा पाद्यादि उपचारों से अग्नि की पूजा करके 'ॐ अस्याग्नेर्हिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः' मन्त्र से अग्नि की जिह्वाओं का पूजन करके ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट् द्वारा अग्नि के छः अंगों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वादि दिक् से प्रारम्भ करके 'ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, ॐ अग्नये सप्तजिह्वायै नमः, ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः, ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः, ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, ॐ अग्नये देवमुखाय नमः' इन मन्त्रों से स्वस्तिकधारिणी वह्निमूर्त्तिसमूह का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् बाहर 'ॐ ब्राह्म्याद्यष्टशक्तिभ्यो नमः' उसके बाहर ॐ पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः' उसके बाहर 'ॐ इन्द्रादिलोकपालेभ्यो नमः' उसके बाहर ॐ वज्राद्यस्त्रेभ्यो नमः' मन्त्र से सबका पूजन करना चाहिये।।४७।।

ततो बृहद्धोमरीत्या स्रुवाज्यसंस्कारौ कार्यौ। ततः प्रादेशमात्रं पवित्रं घृतमध्ये निक्षिप्य द्वौ भागौ कृत्वा शुक्लकृष्णपक्षौ स्मरेत्। ततः सव्यापसव्यमध्यमध्यभागेषु इडां पिङ्गलां सुषुम्नाञ्च ध्यात्वा होमं कुर्यात् ॥४८॥

तत्पश्चात् बृहद् होम पद्धति के अनुसार स्रुव तथा घृत का संस्कार करे। तदनन्तर प्रादेश परिमित कुश घृत में छोड़कर घृत का दो भाग (कुशा से दो भाग) करके पूर्ववत्

एक भाग को शुक्ल पक्ष तो द्वितीय भाग को कृष्णपक्ष स्मरण (भावना) करे। तदनन्तर उसके सव्य (दक्षिण) अपसव्य (वाम) तथा मध्य में क्रमशः इड़ा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना की भावना करके होम करना चाहिये।।४८।।

नम इति स्रुवेण दक्षभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्नये स्वाहेति वह्नेर्दक्षिणनेत्रे जुहुयात्। तथा वामादाज्यं गृहीत्वा ॐ सोमाय स्वाहेति वामनेत्रे। ततो मध्यभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहेत्यग्निललाटनेत्रे जुहुयात्। पुनर्दक्षिणत ॐ नम इति मन्त्रेण घृतं गृहीत्वा ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा इत्यग्निमुखे जुहुयात्। ततः ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा इति महाव्याहृतिहोमं कृत्वा ॐ वैश्वानर जातवेद इति मन्त्रेण त्रिवारं जुहुयात्। ततोऽग्नौ मूलस्य पीठपूजापूर्वकं देवतां सम्पूज्य तन्मुखे घृतेन मूलमन्त्रेण पञ्चविंशतिवारं जुहुयात्। ततो वह्नि देव तयोरात्मना सह ऐक्यं विभाव्य मूलेनैकादशाहुतिर्जुहुयात्। ततो मूलस्याङ्गदेवताभ्यः स्वाहा, एवमावरणं देवताभ्यां स्वाहेति जुहुयात्। शक्तश्चेत् प्रत्येकमेकैकाहुतिं जुहुयात्। ततः सङ्कल्पं विधाय तत्तत् कल्पोक्तद्रव्येण होमं कुर्यात्। यदि दीक्षाङ्गहोमस्तदा घृताक्तैस्तिलैस्तत्तत् कल्पोक्तद्रव्यैर्वाष्टोत्तरं सहस्रं शतं वा जुहुयात्। ततो मूलेन पूर्णाहुतिं दत्त्वा संहारमुद्रया स्वेष्टदेवतां हृदये समानीय क्षमस्वेत्यग्निं विसृज्य दक्षिणां दद्यात् ।।४९।।

इति संक्षेपहोमविधिः

नमः मन्त्र से दक्षिण भाग से स्रुवा द्वारा घृत लेकर 'ॐ अग्नये स्वाहा' मन्त्र द्वारा अग्नि के वामनेत्र में होम करे। 'नमः' मन्त्र से इसी प्रकार वाम भाग से स्रुवा द्वारा घृत लेकर 'ॐ सोमाय स्वाहा' से वाम भाग के नेत्र में आहुति प्रदान करे। अब मध्यभाग से 'नमः' मन्त्र से घृत लेकर 'ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा' कहकर अग्नि के ललाट नेत्र में आहुति प्रदान करे। पुनः 'ॐ नमः' कहकर दक्षिण भाग से घृत लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा' द्वारा अग्नि के मुख में आहुति प्रदान करे। तदनन्तर मूलोक्त मन्त्र से अर्थात् ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा द्वारा महाव्याहृति होम करना चाहिये। अनन्तर 'ॐ वैश्वानर जातवेद' इत्यादि मन्त्र से तीन बार होम करे। अनन्तर अग्नि में मूल देवता का पीठपूजन करके मूल देवता का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् अग्नि के मुख में मूल मन्त्र जपते हुये पच्चीस बार होम करे। तत्पश्चात् वह्नि, स्वयं साधक तथा देवता—तीनों एक हैं, यह भावना करके मूल मन्त्र द्वारा ग्यारह बार होम करे। तदनन्तर मूल देवता के अंगदेवतागण को आहुति इस मन्त्र से प्रदान करे—'ॐ अङ्गदेवताभ्यः स्वाहा'। आवरण देवता को इस मन्त्र से आहुति प्रदान करे—

'ॐ आवरणदेवताभ्यः स्वाहा'। समर्थ होने पर जितने अंगदेवता तथा आवरण देवता हैं, उन सभी को एक-एक आहुति प्रदान करे। इसके अनन्तर संकल्प करके अपने कल्पोक्त (अपने तन्त्र मार्ग में विहित) होम द्रव्य द्वारा होम करना चाहिये। यदि होम दीक्षा का अंग है तब घृतमिश्रित तिल द्वारा अथवा उस कल्पोक्त द्रव्य द्वारा १००८ अथवा १०८ बार होम करे। तदनन्तर मूल मन्त्र द्वारा पूर्णाहुति देकर संहार मुद्रा प्रदर्शन करते हुये अपने इष्ट देवता को हृदय में लाकर (भावना द्वारा लाकर) 'ॐ क्षमस्व' कहकर अग्नि का विसर्जन करके दक्षिणा (आचार्य अथवा गुरु को) प्रदान करे। इस प्रकार संक्षेप में होमविधि समाप्त होती है।।४९।।

अथ प्रयोगानन्तरशान्तिकलसजलस्नानमन्त्रा वशिष्ठसंहितोक्ता यथा—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते।।५०।।

अब प्रयोग के पश्चात् शान्तिकलश से स्नान का मन्त्र कहते हैं, जो वशिष्ठसंहिता में कहा गया है। इस मन्त्र से कृत्य करे—देवगण तुम्हारा अभिषेक करें। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, वासुदेव जगन्नाथ तथा बलराम, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध तुमको विजयी बनावें।।५०।।

आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा।
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः।
ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु वः सदा।।५१।।

इन्द्र, अग्नि, भगवान् यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर, शिव, ब्रह्मा के साथ समस्त देव एवं दिक्पालगण सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें।।५१।।

कीर्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिर्माया निद्रा च भावना।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्याः समागताः।।५२।।

कीर्त्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, माया, निद्रा तथा भावना नामक देवपत्नीगण उपस्थित होकर तुम्हारा अभिषेक करें।।५२।।

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः।
ग्रहास्त्वामाभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः।।५३।।

आदित्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु सन्तुष्ट होकर तुम्हारा अभिषिक्त करें।।५३।।

ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च।
देवपत्न्या द्रुमा नागा दैत्यश्चाप्सरसां गणाः ॥५४॥
अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि राजानो दाहनानि च।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥५५॥
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ॥५६॥

इति शान्तिस्नानम्।

ऋषिगण, मुनिगण, धेनुगण, देवमातृगण, देवपत्नीगण, द्रुमगण, नागगण, दैत्यगण, अप्सरागण, अस्त्रसमूह, सर्वशास्त्रसमूह, राजागण, वाहनगण, औषधसमूह, रत्नसमूह, काल की कलायें, काष्ठा-प्रभृति कालावयव, नदीसमूह, सागरसमूह, पर्वतसमूह, तीर्थसमूह, मेघसमूह, नदसमूह, देवगण, दानवगण, गन्धर्वगण, यक्षगण, राक्षसगण, पन्नगगण, धर्म, काम तथा अर्थसिद्धि हेतु तुमको अभिषिक्त करें।।५४-५६।।

गुप्तं सर्वेषु मन्त्रेषु तव स्नेहेन पार्वति!।
अभिषेकं प्रवक्ष्यामि सर्वरोगभयापहम् ॥१॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं महापातकनाशनम्।
सर्वाशापूरकं सर्वमन्त्रदोषविनाशनम् ॥२॥
सर्वार्थसाधकं देवि! सर्वतीर्थफलप्रदम्।
अभिचारहरं सर्वग्रहदोषनिवारणम् ॥३॥

अब दिव्याभिषेक कहते हैं। ईश्वर कहते हैं—हे देवि पार्वति! तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण समस्त तन्त्रों में गोपनीय रोग तथा भय का नाशक, श्लाघ्य, यशप्रद, आयुवर्द्धक, महापातक-नाशक, समस्त आशाओं का आधारभूत तथा परिपूरक, मन्त्रदोष-निवारक, सर्वार्थसाधक, समस्त तीर्थ-फलदायक, अभिचार-नाशक, समस्त ग्रहदोष-निवारक अभिषेक को कहता हूँ।।१-३।।

भूतावेशादिशमनं डाकिनीनां भयापहम् ॥४॥
तेजोवृद्धिकरं देवि! बलवृद्धिविनाशनम्।
तेजोह्रासे बलह्रासे बुद्धिह्रासे धनक्षये ॥५॥
स्त्रीकृतेष्वपि दोषेषु शरीरे मानसे तथा।
विकारे देशिकः कुर्यादभिषेकं विचक्षणः ॥६॥

हे देवि! मन्त्रोपदेष्टा विचक्षण देशिक यह अभिषेक तेज का ह्रास, बल का ह्रास,

बुद्धि का ह्रास, धन का क्षय एवं स्त्रीकृत दोष के निराकरणार्थ, शरीर तथा मन के विकार तथा भूतावेश में शान्तिकारक है। डाकिनी भय-निवारक, तेजवृद्धि करने वाला, तक्षक द्वारा डसे व्यक्ति की भी विषपीड़ा को शान्त करने वाला श्रेष्ठ अभिषेक करे।।५-६।।

असौभाग्ये च नारीणामभिषेकः प्रवर्त्तते।
सर्वदोषहरो धर्म सत्यं सत्यं हि पार्वति! ।।७।।

स्त्रीगण का दुर्भाग्य होने पर इसे करना चाहिये। यह सर्वरोगहर धर्म कर्म भी है। यह सत्य वचन है।।७।।

नदीतीरे देवभूमौ तरुमूले चतुष्पथे।
देवतायतने वापि स्थापयेद् घटमव्रणम्।
नातिह्रस्वं नातिदीर्घं मृत्ताम्रस्वर्णनिर्मितम् ।।८।।

नदीतीर पर, मन्दिर में, वृक्ष के नीचे, चौराहे पर अथवा देवभूमि में न तो छोटा न ही बड़ा मृत्तिका, ताम्र अथवा स्वर्ण का अक्षत घट स्थापित करे।।८।।

कामबीजेन संप्रोक्ष्य वाग्भवेनैव ताड़येत्।
शक्त्या कलसमारोप्य मायया पूरयेज्जलैः।
मन्त्रेणानेन तीर्थानि देशिकस्तत्र विन्यसेत्।।९।।

काम (क्लीं) बीज द्वारा घट का प्रोक्षण करके ऐं (वाग्भव) बीज द्वारा ताड़न करे। शक्ति (सौः) बीज से मण्डल में कलश स्थापन करके माया (ह्रीं) बीज द्वारा घट का जल- पूरण करे। तदनन्तर निम्न मन्त्र द्वारा उस घट में तीर्थसमूह का न्यास (आवाहन) करे।।९।।

गङ्गाद्या सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च।
सर्वे समुद्रा सरितः सर्वांसि जलदा नदाः ।।१०।।
ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वपातालमहीगताः।
सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ।।११।।

इस मन्त्र से आचार्य तीर्थसमूह का आवाहन घट में करे।।१०-११।।

रमाबीजेन जप्तेन पल्लवं प्रतिदापयेत्।
कूर्चेन फलदानं स्यात् स्त्रीबीजेन स्थिरीकृतिः ।।१२।।

रमा बीज (श्रीं) द्वारा घट के ऊपर पल्लव प्रदान करे। कूर्च बीज (हुं) द्वारा नारिकेलादि फल प्रदान करे। स्त्रीं बीज जपते हुये घट का स्थिरीकरण करना चाहिये।।१२।।

सिन्दूरं वह्निबीजेन पुष्पं दद्याच्छराणुना।
मूलेन दूर्वां प्रणवैः कुर्यादभ्युक्षणं ततः ॥१३॥

वह्निबीज (रं) जपते हुये घट पर सिन्दूर प्रदान करे। शरबीज जपते हुये (फट् द्वारा) पुष्प प्रदान करे। मूल मन्त्र जपते हुये घट पर दूर्वा चढ़ाये। तदनन्तर प्रणव (ॐ) का उच्चारण करके घट का अभ्युक्षण करे।।१३।।

हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण कुर्याद् दर्भेन ताड़नम्।
विचिन्त्य देवीपीठन्तु तत्रावाह्य प्रपूजयेत् ॥१४॥

'हुं फट् स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण करके कुशा से घट का ताड़न करना चाहिये। उस घट को 'देवी की पीठ है' ऐसी भावना करके पूज्य देवता का तन्त्रोक्त विधान से मन्त्रज्ञ विद्वान् उस घट में देवी का आवाहन करके (अथवा जिस देवता का पूजन करना है, उसका आवाहन करके) पूजा करे। अब नीचे लिखा मन्त्र पढ़ते हुये विद्वान् देशिक उस घट का चालन करे।।१४।।

ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मकलस! देवतात्मक! सिद्धिद! ।
सर्वतीर्थेषु सम्पूर्ण पूरयाऽस्मन्मनोरथम् ॥१५॥

यह मन्त्र पढ़कर हस् क्ल् ह्रीं मन्त्र को पढ़कर वाद्य यन्त्र बजाकर उस घट को चालित करे।।१५।।

ईशानेन्दुस्मरक्षौण्यस्तदन्ते भुवनेश्वरी।
मन्त्रेणानेन वादित्रनिर्घोषैश्चालयेद् घटम् ॥१६॥

ईशान (ह्) इन्दु (स्) स्मर (क्) तथा क्षोणी (ल) अन्त में भुवनेश्वरी (ह्रीं) लगाने से 'ह्स्क्ल्ह्रीं' मन्त्र का उद्धार होता है। यह मन्त्र पढ़ते तथा वाद्यों को बजवाते हुये घट को चालित करे।।१६।।

अभिषिञ्चेद् गुरुः शिष्यं यजमानं पुरोहितः।
अभिषिञ्चेद् ग्रहेऽश्वत्थपल्लवैर्भूतसङ्गमे ॥१७॥
सिञ्चेदौडुम्बरैर्मन्त्रदोषे च करवीरजैः।
यशोधनायुस्तेजःश्रीफलकामे च च्यूतजैः ॥१८॥

गुरु शिष्य का अभिषेक करे। पुरोहित यजमान का अभिषेक करे। ग्रहपीड़ा में पीपल के पत्ते से, भूतावेश में गूलर के पत्ते से, मन्त्रदोष में कनेर के पत्ते से, यश, धन, आयु तथा तेजस्विता और ऐश्वर्य की कामना में आम के पत्ते से अभिषेक करना चाहिये।।१७-१८।।

तुलसीमञ्जरीभिश्च सर्वपापक्षयार्थिभिः ।
सर्वतीर्थफलावाप्त्यै शाक्तानां बिल्वसम्भवैः ॥१९॥

समस्त पाप का क्षय करने का इच्छुक व्यक्ति तुलसीमञ्जरी द्वारा अभिषेक करे। समस्त तीर्थफल की प्राप्ति हेतु शाक्तगण बिल्वपत्र द्वारा अभिषेक करें।।१९।।

अभिचारे नारसिंह्यैरभिषेकः प्रचक्षते ।
कुर्याद् दर्भैरगर्भैश्च दोषेषु स्वीकृतेषु च ॥२०॥
असौभाग्ये च नारीणां दूर्वाभिः सेचनं तथा ।
अथवा सर्वकामेषु विदधीताम्रपल्लवैः ॥२१॥

अभिचार में नारसिंह के पत्ते द्वारा अभिषेक करायें। स्वीकृत दोष की शान्ति के लिये अगर्भित कुश से अभिषेक किया जाता है। नारीगण का दुर्भाग्य दूर करने के लिये दूर्वा से अभिषेक करना चाहिये अथवा समस्त फल-प्राप्ति हेतु आम के पल्लव से अभिषेक श्रेयस्कर होता है।।२०-२१।।

अस्याभिषेकमन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्ति ऋषिरनुष्टप्छन्दः शक्तिर्देवता सर्वसिद्धिसं-कल्पसिद्धये विनियोगः ॥२२॥

इस अभिषेक मन्त्र से ऋष्यादिन्यास करके अभिषेक करना चाहिये। इसके दक्षिणामूर्त्ति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, शक्ति देवता हैं। समस्त सिद्धि तथा संकल्प की सिद्धि के लिये इसका विनियोग (प्रयोग) होता है।।२२।।

ॐ राजराजेश्वरी शक्तिभैरवी रुद्रभैरवी ।
श्मशानभैरवी देवी त्रिपुरानन्दभैवरी ॥२३॥
त्रिकूटा त्रिपुटा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
त्रिपुरेशी महादेवी तथा त्रिपुरनायिका ॥२४॥
त्रिपुरानन्दिनी देवी तथैव त्रिपुरातनी ।
एता त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥२५॥

राजराजेश्वरी, शक्तिभैरवी, रुद्रभैरवी, श्मशानभैरवी, त्रिपुरानन्दभैरवी, त्रिकूटा देवी, त्रिपुटा, त्रिपुरसुन्दरी, महादेवी, त्रिपुरेशी, त्रिपुरनायिका, त्रिपुरानन्दिनी देवी, त्रिपुरातनी— ये मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें।।२३-२५।।

छिन्नमस्ता महादेवी तथा चैकजटेश्वरी ।
तारा च जयदुर्गा च शूलिनी भुवनेश्वरी ॥२६॥
त्वरिताख्या महादेवी तथा विन्ध्यनिवासिनी ।
नित्या च नित्यरूपा च वज्रप्रस्तारिणी परा ॥२७॥

सर्वचक्रेश्वरी देवी तथा नीलसरस्वती।
सर्वसिद्धिकरी देवी सिद्धगन्धर्वसेविता ॥२८॥
उग्रतारा महादेवी तथा दक्षिणकालिका।
एता त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वरिणा ॥२९॥

महादेवी छिन्नमस्ता, एकजटेश्वरी, तारा, जयदुर्गा, शूलिनी, भुवनेश्वरी, महादेवी त्वरिता, विन्ध्यवासिनी, नित्या, नित्यरूपा, परा वज्रप्रस्तारिणी, सर्वचक्रेश्वरी देवी, नीलसरस्वती, सर्वसिद्धिदात्री, सिद्धगन्धर्वादि से सेवित, उग्रतारा, महादेवी दक्षिणकालिका तुम्हारा अभिषेक करें।।२६-२९।।

क्षेमङ्करी महाकाली चानिरुद्धसरस्वती।
मातङ्गिनी चान्नपूर्णा राजराजेश्वरी तथा।
एता त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥३०॥

क्षेमंकरी, महाकाली, अनिरुद्ध सरस्वती, मातङ्गी, अन्नपूर्णा, राजराजेश्वरी तुम्हें मन्त्रपूत जल से अभिषिक्त करें।।३०।।

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥३१॥

उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, अतिचण्डिका—ये मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करें।।३१।।

उग्रदंष्ट्रा महादंष्ट्रा शुभदंष्ट्रा कपालिनी।
भीमनेत्रा विशालाक्षी मङ्गला विजया जया।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥३२॥

उग्रदंष्ट्रा, महादंष्ट्रा, शुभदंष्ट्रा, कपालिनी, भीमनेत्रा, विशालाक्षी, मंगला, विजया, जया तुम्हारा मन्त्रपूत जल से अभिषेक करें।।३२।।

मङ्गला नन्दिनी भद्रा लक्ष्मीः कीर्त्तिर्यशस्विनी।
पुष्टि मेधा शिवा साध्वी यशःशोभा जया धृतिः ॥३३॥
श्रीनन्दा च सुनन्दा च नन्दिन्यानन्दपूजिता।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥३४॥

मङ्गला, नन्दिनी, भद्रा, लक्ष्मी, कीर्त्ति, यशस्विनी, पुष्टि, मेधा, शिवा, साध्वी, यशः, शोभा, जया, धृति, श्रीनन्दा, सुनन्दा तथा आनन्दपूजिता तुमको मन्त्रपूत जल से अभिषिक्त करें।।३३-३४।।

विजया मङ्गला भद्रा धृतिः शान्तिर्दितिः क्षमा।
सिद्धिस्तुष्टी रमा पुष्टिः श्रीर्ऋद्धिश्च रतिस्तथा॥३५॥
शाक्री जयावती ब्राह्मी जयन्ती चापराजिता।
दीप्तिः कान्तिर्यशोलक्ष्मीरीश्वरी वृद्धिरेव च॥३६॥
अजिता मानवी श्वेता भीतिश्चादितिरेव च।
माया चैव महामाया मोहिनी क्षोभिणी तथा॥३७॥
अवशा विमला गौरी शरण्या मतिरेव च।
दुर्गा क्रियारुन्धती च तथैव विग्रहात्मिका॥३८॥
चर्चिका चापरा ज्येष्ठा तथैव सुरपूजिता।
वैवस्वती च कौमारी तथा माहेश्वरी परा॥३९॥
वैष्णवी च महालक्ष्मीं कार्त्तिकी कौषिकी तथा।
शिवदूती च चामुण्डा मुण्डमालाविभूषणा।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा॥४०॥

विजया, मङ्गला, भद्रा, धृति, शान्ति, दिति, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि, रमा, पुष्टि, श्री, ऋद्धि, रति, दीप्ति, कान्ति, यशोलक्ष्मी, ईश्वरी, वृद्धि, शाक्री, जयावती, ब्राह्मी, जयन्ती, अपराजिता, अजिता, मानवी, श्वेता, भीति, अदिति, माया, महामाया, मोहिनी, क्षोभिणी, अवशा, विमला, गौरी, शरण्या, मति, दुर्गा, क्रिया, अरुन्धती, विग्रहरूपा चर्चिका, अपरा, ज्येष्ठा, सुरपूजिता वैवस्वती, कौमारी, परा माहेश्वरी, वैष्णवी, महालक्ष्मी, कार्त्तिकी, कौषिकी, शिवदूती, मुण्डमाला-विभूषिता चामुण्डा मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करें।।३५-४०।।

इन्द्रो वह्निर्यमश्चैव नैर्ऋतो वरुणस्तथा।
पवनो धनदेशानौ ब्रह्मानन्तौ दिगीश्वराः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा॥४१॥

इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्त— ये दिक्पाल तुम्हारा मन्त्रपूत जल से अभिषेक करें।।४१।।

संवत्सरश्चायनौ च मासाः पक्षौ दिनानि च।
तिथयश्चाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा॥४२॥

संवत्सर, अयन, मास, पक्ष, दिन तथा तिथि तुम्हारा मन्त्रपूत जल से अभिषेक करें।।४२।।

रविः सोमः कुजः सौम्यो गुरुः शुक्रः शनैश्चरः।
राहुः केतुश्च सततमभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः॥४३॥

रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु ग्रह मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करें।।४३।।

नक्षत्रं करणं योगोऽमृतं सिद्धिस्ततः परम्।
दग्धं पापं तथा भद्रा योगवाराः क्षणास्तथा।।४४।।
वारवेला कालवेला दण्डा राश्यादयस्तथा।
अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्रपूतेन वारिणा।।४५।।

नक्षत्र, करण, अमृतयोग, सिद्धियोग, दग्धयोग, पापयोग, भद्रयोग प्रभृति योग, वार, क्षण, वारवेला, कालवेला, दण्डसमूह, राशि आदि मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करें।।४४-४५।।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तसंज्ञकः।
कपाली भीषणाख्यश्च संहारोऽष्टौ च भैरवाः।
अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्रपूतेन वारिणा।।४६।।

असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण संहार—ये आठ भैरव मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करें।।४६।।

डाकिनीपुत्रकाश्चैव राकिनीपुत्रकास्तथा।
लाकिनीपुत्रकाश्चान्ये काकिनीपुत्रकः परे।।४७।।
शाकिनीपुत्रका भूयो हाकिनीपुत्रकास्तथा।
ततश्च याकिनीपुत्रा देवीपुत्रास्ततः परम्।।४८।।
मातृणाञ्च तथा पुत्रा ऊद्ध्र्वमुख्याः सुताश्च ये।
अधोमुख्याः सुतोत्तानमुख्याः सुत्ताश्च ये परे।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा।।४९।।

डाकिनी के पुत्रगण, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी के बहुत से पुत्रगण, हाकिनी के, याकिनी के, परदेवी के, मातृगण के पुत्रगण तथा ऊर्ध्वमुखी कन्यागण, अन्यान्य ऊर्ध्वमुखी, उत्तानमुखी तथा अधोमुखी कन्यागण—ये सभी मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें।।४७-४९।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा।।५०।।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव—ये सभी मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें।।५०।।

पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकाराश्चैव षोडशः।
आत्मनश्च गुणाश्चैव स्थूलाः सूक्ष्माश्च ये परे।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥५१॥

पुरुष, प्रकृति, १६ विकार (११ इन्द्रिय + ५ महाभूत), आत्मा के सभी गुण, अन्यान्य जो सब स्थूल तथा सूक्ष्म हैं, इस मन्त्रपूत जल से तुमको अभिषिक्त करें।।५१।।

वेदादिबीजं हुंबीजं बीजं तत् शैवकेतनम्।
शक्तिबीजं रमाबीजं मायाबीजं गुणाकरम् ॥५२॥
चिन्तारत्नं महाबीजं नारसिंहञ्च श्रीकरम्।
मार्तण्डभैरवं दौर्गबीजं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥५३॥
गाणपत्यञ्च वाराहं कालीबीजं भयापहम्।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥५४॥

वेदादिबीज (ॐ), हुं बीज, मीनकेतन, शैवकेतन (क्लीं), शक्तिबीज (सौः), रमाबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), सुधाकर (द्रां), महाबीज चिन्तारत्न, नारसिंह बीज (क्ष्रौं), श्रीकरबीज (क्लीं), मार्त्तण्डभैरव बीज, दौर्गबीज (दुं), श्रीपुरुषोत्तम बीज (क्लीं), गणपति बीज (गं), वराहबीज (हुं), भयावह काली बीज (क्रीं)—ये मन्त्रपूत जल से तुम्हारा अभिषेक करें।।५२-५४।।

रतिश्च वल्लभा वह्नेर्वषट् कूर्चमतः परम्।
वौषट्कारस्तु फट्कारमभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥५५॥

रतिबीज (क्लीं), वह्निवल्लभा (स्वाहा), वषट्, कूर्च (हुं), वौषट्कार, फट्कार तुमको अभिषिक्त करें।।५५।।

नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा दानवाश्च ये।
पिशाचाः गुह्यका भूता अभिषेकेण ताडिताः ॥५६॥
अलक्ष्मीः कालकर्णी च पापानि सुमहान्ति च।
नश्यन्तु चाभिषेकेण ताराबीजेन ताड़िताः ॥५७॥
रोगाः शोकाश्च दारिद्र्यं दौर्बल्यं चित्तविक्रिया।
नश्यन्तु चाभिषेकेण वाग्बीजेनैव ताड़िताः ॥५८॥

जो सभी प्रेत, कूष्माण्ड, राक्षस, दानव, पिशाच, गुह्यक तथा भूतकण हैं, वे इस अभिषेक से ताड़ित होकर नष्ट हो जायँ। अलक्ष्मी, कालकर्णी, महापापसमूह ताराबीज

से ताड़ित होकर अभिषेक से विनष्ट हों। रोग, शोक, दरिद्रता, दुर्बलता, चित्तविकार वाग्भव बीज से ताड़ित होकर अभिषेक से विनष्ट हों।।५६-५८।।

लोकादुद्वेगो रागश्च दौर्भाग्यमपि दुर्यशः।
नश्यन्तु चाभिषेकेण मन्मथेनैव ताडिताः ॥५९॥

लोक का उद्वेग, राग, दुर्भाग्य, अपयश इस मन्मथ बीज से ताड़ित होकर अभिषेक से नष्ट हो जायँ।।५९।।

तेजोह्रासो बुद्धिह्रासः शक्तिह्रासस्तथैव च।
नश्यन्तु चाभिषेकेण शक्तिबीजेन ताड़िताः ॥६०॥

तेज का ह्रास, बुद्धि का ह्रास, शक्ति का ह्रास शक्तिबीज से ताड़ित होकर इस अभिषेक से नष्ट से जायँ।।६०।।

विषानिला महारोगो डाकिन्यभिभवस्तथा।
घोराभिचाराः क्रूराश्च ग्रहा नागास्तथैव च।
नश्यन्तु चाभिषेकेण कालीबीजेन ताड़िताः ॥६१॥

विष एवं वायु से जनित रोग, महारोग, डाकिनी का आवेश, घोर अभिचार, क्रूरग्रह तथा नागजनित पीड़ा—ये सभी कालीबीज से ताड़ित होकर इस अभिषेक द्वारा नष्ट हों।।६१।।

नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः।
अभिषेकेण शाक्तेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥६२॥

शाक्ताभिषेक से समस्त विपत्ति नष्ट हों। सुस्थिर सम्पत्ति हो, मनोरथ पूर्ण हो।।६२।।

अयमेव दिव्याभिषेकः। अनेन प्रकारेण गुरुणा गुरुतुल्येन वाऽभिषिक्तः कृतपूर्णानन्दादिनामा अकृतनामा वाभिषिक्तः सम्यग् गुरुर्भवितुर्महति। अत एवोक्तं—

स्मरेच्छिरसि हंसगं तदभिधानपूर्वं गुरुम्। इति।

अतएव नामान्तरसत्त्वे तन्नामानन्दनाथान्तं वक्तव्यम्, न चेत् प्रकृतनामैवानन्दनाथान्तं प्रयोज्यम् 'आनन्दनाथशब्दान्ता गुरवः परिकीर्त्तिता' इति वचनात्। अन्यादृशावधूताभिषेकप्रक्रिया तु गौरवाद्व्यर्थत्वच्च नालिखिता॥६३॥

इति श्रीरघुनाथतर्कवागीशभट्टाचार्यकृते आगमतत्त्वविलासे द्वितीयखण्डः

●

यह शाक्ताभिषेक ही दिव्याभिषेक है। इस प्रकार से गुरु अथवा गुरुतुल्य व्यक्ति से अभिषिक्त होकर पूर्णानन्दादि नामकरण करके अथवा नामकरण न करके भी साधक गुरु हो जाता है। इसीलिये कहते हैं कि मस्तक में हंसगत गुरु का उनके नाम के साथ स्मरण करना चाहिये। अतएव नामान्तर होने से उसके आगे अर्थात् गुरु के नाम के आगे आनन्दनाथ लगाकर नाम लेना चाहिये; अन्यथा उनके जन्मनाम के आगे आनन्द-नाथ लगाना चाहिये—ऐसा कहा गया है।

अन्य प्रकार के अवधूताभिषेक की प्रक्रिया ग्रन्थ के आकार-वृद्धि से नहीं लिखी जा रही है; क्योंकि इस काल में वास्तविक अवधूत का अभाव है। अत: इस ग्रन्थ में उन्हें नहीं लिखा गया है।।६३।।

श्रीरघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्यकृत आगमतत्त्वविलास का द्वितीय खण्ड समाप्त